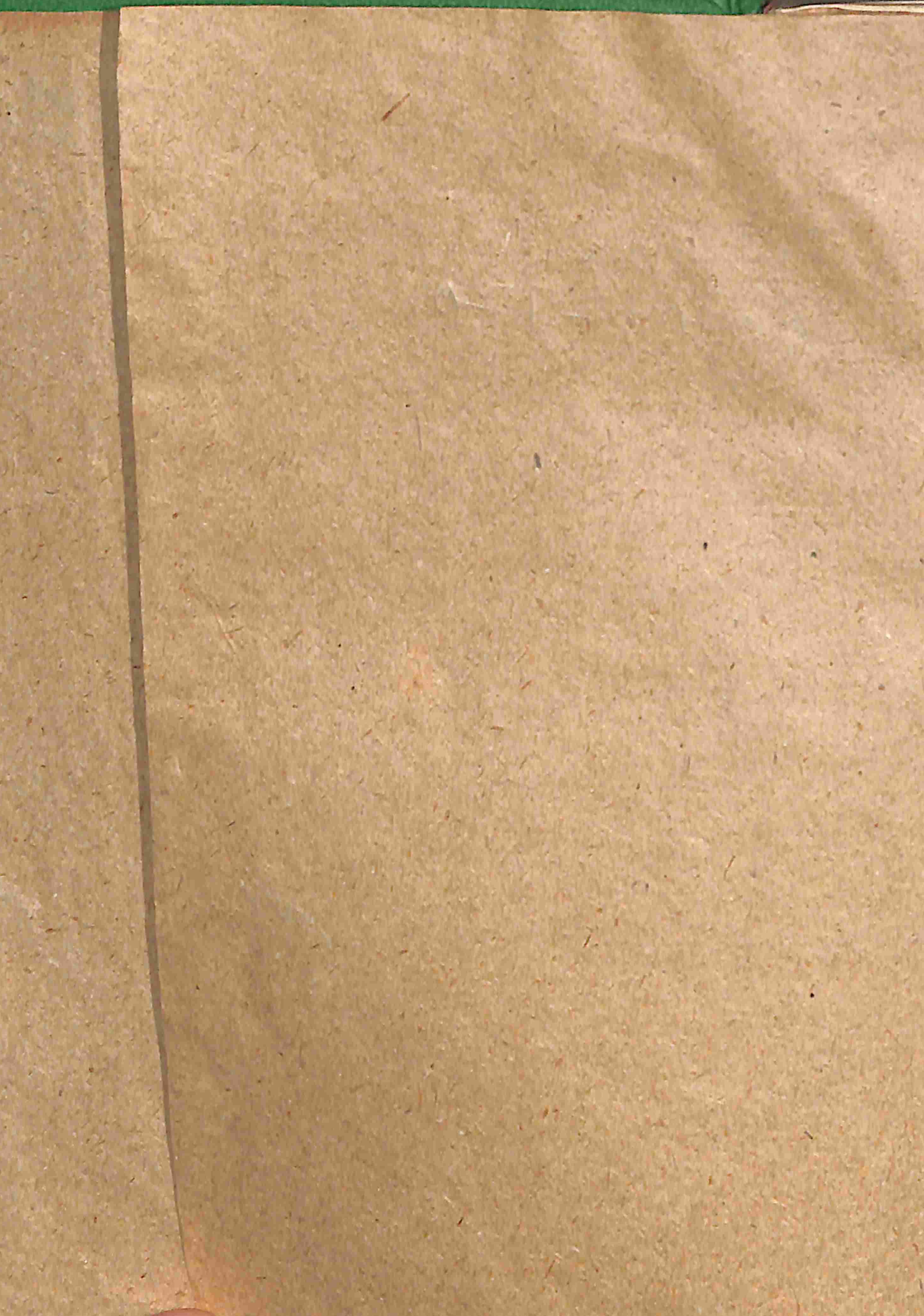


MAHANIRVANA-TANTRAM

COMPILED BY

SHRIMAN MAHESHWAR BHAGWAT

PURVA KANDAM

CORRECTED BY

PANDIT JWALAPRASAD MISRA

HEAD PANDIT

Kameshwarnath Sanskrit Pathshala

TRANSLATED BY

BALDEO PRASAD MISHRA OF MORADABAD

PRINTED & PUBLISHED

BY

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

SHRI VENKATESHWAR STEAM PRESS

BOMBAY

1929

॥ श्रीः ॥

महानिर्वाणतन्त्रम् ।

(सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम्)

श्रीमन्महेश्वरभगवत्प्रणीतम् ।



मुरादाबादनिवासिसुखानन्दमिश्रात्मजपण्डित-

बलदेवप्रसादमिश्रविरचितया,

भाषाटीकया समलंकृतम् ।



तदेतत्

तान्त्रिकजनोपकारार्थं

क्षेमराज-श्रीकृष्णदास-श्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

शके १८५१, संवत् १९८६.



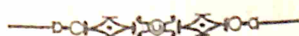
मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, बम्बई.



महानिर्वाणतन्त्रकी भूमिका।



सनातनधर्मावलम्बी आर्यसन्तानोंमें जो धर्मशास्त्र प्रचलित हो रहे हैं, उन सबका परमउद्देश केवल ब्रह्मस्वरूपकी उपलब्धि है। अनेक धर्मशास्त्रोक्त अनेक देवी देवताओंकी पूजा जिसप्रकार केवल ब्रह्मप्राप्तिका कारण है, ऐसेही सनातनधर्मशास्त्र भी केवल वेदार्थके जाननेका अनुपम उपाय है। भिन्न भिन्न धर्मशास्त्रोंमें अथवा एक शास्त्रके भिन्न भिन्न अंशोंमें अलग अलग देवताके आराधना करनेकी विधि है। कहींपर लिखा है कि, महादेवजी ही सर्वप्रकारसे आराध्य हैं। शिवको छोड़कर दूसरे देवताकी पूजा करनेसे पाप होता है। कहीं लिखा है कि, विना विष्णुजीकी उपासना किये गति नहीं होती। कहीं यह देखा जाता है कि, शक्तिआराधनाही चारों फलोंको प्राप्त करनेवाली होती है। इन बातोंके देखनेसे धर्मशास्त्रकी पृथक्ता तो परस्पर ज्ञात होती है। परन्तु शैव, वैष्णव, या शाक्ति किसी सम्प्रदायकी विधिमें कोई विरोध दिखाई नहीं देता। यदि शैव शिवकी उपासनाको छोड़कर विष्णु, शक्ति, सूर्य वा गणपतिकी पूजा करे तो उसको पाप लगेगा। इस प्रकार सबको ही अपने अपने कुलदेवताकी आराधना करनी चाहिये, परन्तु किसी दूसरे देवताकी निन्दा करना कभी उचित नहीं है। भगवद्गीतामें श्रीनारायणजीने स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहा है कि, "श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"। इसका तात्पर्य यही है कि, उत्तम अनुष्ठानयुक्त पराये धर्मकी अपेक्षा अपना धर्म हिंसादिदोषसे दूषित होनेपर भी श्रेयस्कर है।

हमारे देशमें अनेक लोग वंशपरम्परासे तांत्रिक उपासनामें दीक्षित होकर भी तन्त्रानभिज्ञताके हेतु तन्त्रमें कहीहुई विधिको बुरा कहते हैं। धर्मशास्त्रका और तन्त्रका मर्म जानते होते तो ये लोग कभी ऐसा न कहते। विशेष करके तांत्रिक अनुष्ठान फलको शीघ्र ही देता है। जो लोग दीक्षागुरु हैं वे तंत्रमें विशेष ज्ञान न रखनेके कारण शिष्यको विधिविधानसे सब कार्य नहीं बताते। इस कारण मंत्र मृतवत् और साधन निष्फल होते हैं। किसी ज्ञानी गुरुसे उपदेश ले कि, जिससे अंगकी विकलता न हो तब देखिये कि, कैसा प्रत्यक्ष फल मिलेगा। तंत्रका ज्ञान हो तो किसी प्रकारसे अंगकी विकलता नहीं हो सकती इसी कारणसे हमने तंत्र शास्त्रके प्रचार करनेका विचार किया है।

समस्त १९२ तंत्र हैं जो कि,पृथ्वीकी क्रान्तिरेखाके अनुसार तीन सम्प्रदायोंमें बांटे गये हैं। उनमेंसे ६४ तंत्र विष्णुक्रान्त हैं जो कि गौड़राजमें प्रचलित हैं, पूज्यपाद स्वामी कृष्णानन्दजीने विष्णुक्रान्तसम्प्रदायसे संग्रह करके ही तंत्रसार नामक ग्रंथ बनानया है। ६४ तंत्र रथक्रान्त हैं । नेपाल आदि देशोंमें बहुतायतसे इन ग्रन्थोंका प्रचार है । यह "महानिर्वाणतंत्र" ऊर्ध्वाम्नाय तंत्र, राधातंत्र आदि ६४ तंत्र इस सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं । शेष ६४ तंत्र और और स्थानोंमें प्रचलित हैं । दुरात्मा यवन लोगोंके अत्याचारसे कोई कोई तंत्र तो सम्पूर्णतः लोप होगये । कोई कोई तंत्र अपनी अपनी सीमाको लांघकर भिन्न भिन्न अधिकारमें स्थापित हो गये यही कारण है जो प्राणतोषिणी तंत्रमें समस्ततंत्रोंका मत उद्धृत हुआ है ।

तंत्रसारमें महानिर्वाणतंत्रका नाम नहीं लिखा है। इस कारणसे कोई कोई महात्मा इस ग्रंथकी प्रामाणिकतामें संशय करते हैं । ऐसी शंका करनेवालोंको उचित है कि,पद्मपुराण, अग्निपुराण और शंकरविजयको पढ़कर अपने संदेहको दूर करें ।

सामवेद और अथर्ववेदसे तंत्रशास्त्रकाही आविर्भाव हुआ है । ब्रह्मज्ञानरूप मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिये तंत्रशास्त्रही प्रथम सोपान है । कुलार्णव तंत्र और इस महानिर्वाण तंत्रमें ब्रह्मोपासनाकी विधि व प्रकरण वर्तमान है । जिसने साकार उपासनादिसे अपने चित्तको कुछेक शुद्ध करलिया है वह ब्राह्मण, शूद्र, शैव, शाक्त, वैष्णव, गृहस्थ वा उदासीन जो कोई भी हो किसी भी देवताके मंत्रसे दीक्षित हो या अदीक्षित हो वह ब्रह्मज्ञानी गुरुकेद्वारा पुनर्वार दीक्षा प्राप्त करसकता है। यद्यपि इस ब्रह्मोपासनामें किंचित् सगुणभाव है तथापि जबतक सोऽहं ज्ञानसे उत्तीर्ण होकर निर्विकल्प ज्ञानमें न पहुँचेगा तबतक पूरी भांतिसे सगुणभावको दूर नहीं किया जासकेगा। विशेष करके सगुणभावके विना ध्यान और उपासना नहीं होसकती है। यदि कोई जलमें गिरजाय तो वह जलका अवलम्ब और परिहार कर तैरता हुआ पारजायगा, इसी भांतिसे गुणराशिमें पतितहुए हम लोग विना गुणका अवलम्बन किये और गुणका परिहार किये उससे (गुणसे) उत्तीर्ण नहीं होसकते ।

तंत्रसार इस अनुपम ग्रंथकी भाषाटीका विद्यावारिधि पं० ज्वलाप्रसादजी मिश्रने की है इसमें सिद्धि प्रदायक और अनुभूत प्रयोग हैं ।

पं० जीवानन्द विद्यासागरकी मूल मुद्रित पुस्तकके अतिरिक्त हमको दो प्राचीन लिखित पुस्तकें भी मिलीं । जिनमेंसे एक पुस्तक भी ७५० वर्ष पूर्वकी लिखी हुई है । इसी पुस्तकसे भलीभाँति शुद्ध करके वर्तमान पुस्तकमें पाठान्तरआदि सन्निवेशित किये हैं ।

अपने पूज्यपाद ज्येष्ठ सहोदर विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रको शतशः धन्यवाद देता हूँ कि, जिन्होंने आद्यन्त पर्यंत इस तंत्रकी लिखित कापीको देखकर मुझको उपकृत किया है । इनके अतिरिक्त "श्रीलक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालय कल्याणके कर्मचारी, पं० किशनलाल, बाबू उदितनारायणलाल वर्मा वकील गाजीपुर, पं० ईश्वरीप्रसाद पांडे सदरबाजार मेरठ, पं० हरिहरप्रसाद पाठक प्रोप्राइटर "मेडिकल" प्रेस व सत्यसिन्धु मासिक पत्र कानपुर, बाबू बलदेवसहाय माथुर सौदागर मुरादाबाद, आयुर्वेद प्रचारक सुप्रसिद्ध विद्वान् लाला शालिग्रामजी वैश्य मुरादाबाद, तथा श्रीयुत ललिताप्रसादजी शर्मा दरीबा पान मुरादाबाद निवासी भी धन्यवादके पात्र हैं कि जिन्होंने सदैव काल उत्साह देते रहकर तंत्रशास्त्रका अनुवाद प्रचलित करनेका विचार किया ।

परमोदार गुणग्राही, स्वभाषाहितैषी "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेसाधिप खेमराज श्रीकृष्णदासजीको भी वारंवार धन्यवाद दिया जाता है कि, महान् अनुग्रहसे यह ग्रंथ मुम्बईमें निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालयमें मुद्रित कर आप महाशयोंके सम्मुख लाये ।

इस ग्रंथके सम्पूर्ण अधिकार भी उक्त यंत्राधीशको समर्पित हैं ।

नित्यतंत्र और गुरुतंत्रकी भी भाषाटीका मैंने किया है, जो कि मुद्रित होचुकी है । जिनकी इच्छा हो १) रु० मूल्य भेजकर मेरे पाससे मँगवालें ।

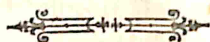
Obedient
Baldev Prasad Misra
Dindarpura.
Moradabad
U. P.

कृपापात्र-
पं० सुखानंदमिश्रात्मज
बलदेवप्रसाद मिश्र,
दीनदारपुरा, मुरादाबाद.

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना खेतवाडी-बंबई.

महानिर्वाणतन्त्रका-सूचीपत्र ।

भूमिका, तांत्रिकउपासना, मूलमंत्र और आध्यात्मिकतत्त्वादि ।



प्रथमोल्लास ।

कैलासमें भवानीजीका शिवजीसे जीवके निस्तार होनेके उपायका प्रश्न करना, कैलास और सदाशिवका वर्णन, पार्वतीजीके प्रश्न करनेकी प्रार्थना, महादेवजीका सम्मति देना, भगवतीका प्रश्न करना, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके आचार व्यवहारका वर्णन, कलियुगमें दिव्यभाव और पशुभावका निषेध, पशु और दिव्यभावके लक्षण, वीरसाधन और वीरसाधनके पतित होनेकी शंका, मद्यपान दूषणीय क्यों है ? कलियुगके खोटे वृत्तिवाले मनुष्योंका उद्धार करनेके उपायका प्रश्न ॥ श्लोक ॥ ७४ ॥

द्वितीयोल्लास ।

भगवतीजीका कलियुगके जीवोंके निस्तारका उपाय पूँछना, पार्वतीजीके प्रश्नकी प्रशंसा, कलियुगमें दुर्मदमनुष्योंकी वेदपुराणादिके द्वारा मुक्तिकी असंभावना कहनी, कलियुगमें तंत्र ही निस्तारका उपाय है । कलियुगमें शौचादिके न होनेसे वेदमंत्रकी विफलता । अनेक तंत्र और देवता व सम्प्रदायका कथन, महानिर्वाणतंत्रकी प्रशंसाका वर्णन, ब्रह्मोपासनाकी रीति, परब्रह्मकी प्रशंसा ॥ श्लोक ॥ ५४ ॥

तृतीयोल्लास ।

परब्रह्मकी उपासनाके उपदेश । ब्रह्मसाधनके प्रश्नोत्तर, ब्रह्मके लक्षण, मंत्रोद्धार, मन्त्रकी प्रशंसा, मंत्रका अर्थ और चैतन्य करना, अनेक मंत्रामंत्रोंका न्यास, प्राणायाम, ध्यान मानसपूजा, बाहिरीपूजा, पञ्चरत्ननामक स्तोत्र, जगन्मङ्गलनामक कवच, प्रणामादिकथन, महाप्रसादग्रहण । इसके त्यागनेके महापापका वर्णन, साधकका आचार, व्यवहार, संध्या और ब्रह्मगायत्री, प्रातःक्रिया, पुरश्चरण विधि, दीक्षा और ब्रह्ममन्त्रके सिद्ध करनेकी आवश्यकता, ब्रह्ममंत्र ग्रहण करनेके नियम और रीतिपद्धति । शाक्तवैष्णवादि सब ही दुबारा ब्रह्ममंत्र ग्रहण करनेमें अधिकारी हैं या नहीं, ब्रह्ममंत्रमें गुरुके विचारकी आवश्यकता है या नहीं, ब्रह्मके उपासनाका माहात्म्य और उसके निन्दकके महापापका वर्णन ॥ श्लोक ॥ १५४ ॥

चतुर्थोल्लास ।

शक्तिउपासनाके विषयमें पार्वतीजीका प्रश्न । पराप्रकृतिका स्वरूप । कलियुगमें पशुभाव और दिव्यभावका निषेध, वीरसाधनकी सफलता । ब्रह्मज्ञानके लिये शुद्धाशुद्धका समज्ञान, शक्तिसे सृष्टि, स्थिति और संहारका कथन, महाकाल और आदिकालिकाके नामका माहात्म्य, कौलप्रशंसा, प्रबलकालिके लक्षण, सुरापानमें कौलका अधिकार क्यों है, कौलकी पवित्रता, संकल्पसिद्धिकथन, कल्किकरवर्णन, सत्यनिष्ठाकी प्रशंसा; कुलाचारकी आवश्यकता, कलिमें जातकर्मादिकी संज्ञा और नित्यनैमित्तिक क्रियाकर्मादिका तन्त्रके अनुसार करनेका विधान । तन्त्रके विरुद्धकर्म करनेका दोष । तंत्रसम्मत समस्त नित्य और नैमित्तिक कार्योंका अनुष्ठान ही आद्यासाधन है।।श्लोक १०९

पंचमोल्लास ।

आद्याके मंत्रका उद्धार । मंत्रसाधनप्रशंसा । मंत्रके भेद । शक्तिपूजाके पंचतत्त्व और पंचतत्त्वके विना पूजाकी निष्फलताकथन । प्रातःक्रिया, स्नान-सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म, गुरुका ध्यान, गुरुको प्रणाम, इष्टदेवताको प्रणाम, स्नानाविधि, शिखाबन्धन, तिलक और त्रिपुण्ड्रधारण, तांत्रिकसन्ध्या, गायत्रीध्यान, तर्पण, देवताको अर्घ्य देना, मूलपूजाका पूर्वकृत्य, यज्ञमंडपमें जाना, हाथ पांव धोना, साधारण अर्घ्यका स्थापित करना, द्वारदेवताकी पूजा । विघ्ननिवारण आसनस्थापन, विजयाशोधन, विजयासे तर्पण, विजयाग्रहण-पूजाद्रव्यको उचित स्थानमें रखना, अग्निप्राकारका ध्यान, करशोधन, दिग्बन्धन, भूतशुद्धि, जीवन्यास, मातृकान्यास, सरस्वतीका ध्यान, अन्तर्मातृकान्यास, बाह्यमातृकान्यास, प्राणायाम, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अंगन्यास, पीठन्यास, आठ भैरव और आठ नायकाओंके नाम, आद्याका मूलध्यान, मानसपूजाका कथन, विशेषअर्घ्यके संस्कारकी विधि, आदिकालिकाके यन्त्र बनानेकी रीति, पठिदेवतापूजापद्धति, सुधाघटस्थापन और तत्त्वसंस्कारका कथन, घटनिर्माण करनेकी विधि और व्यवस्था । घटविशेषमें फल, सुराशोधन, ब्रह्मशाप व कृष्णशापके छूटनेकी विधि आनन्द और भैरवचक्र, भैरवीका मन्त्र, मांसशोधन । मत्स्यशोधन और मुद्राशोधन ।।श्लोक ।।२१५।।

षष्ठोल्लास ।

पंचतत्त्वादिकथन । पूजाके भेद, मांसके प्रकारभेद, बलिपशुनिरूपण, मत्स्य और मुद्राभेदकथन । शुद्धितात्पर्य, सुरापाननिषेध, शक्तिग्रहणविधि, शक्तिशोधनविधि, श्रीपात्रस्थापनविधि, नवपात्र और अन्यान्यपात्रस्थापनविधि, तर्पण और बलिप्रकरण । बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल, गणेश और सर्वभूतोंकी और शिवाबलिकी रीति । मलपूजा, आवरणपूजा और पशुबलि । आदिकालिकाका दूसरा ध्यान, आद्याका आवाहन, प्राणप्रतिष्ठा और जीवन्यासविधि, देवताशोधन, षोडशोपचार, उपचार देनेके मंत्रादि । गुरुशक्तिकी पूजा और तर्पणविधि, आवरणदेवताकी पूजापद्धति, बलि, होम, मंडलसंस्कारविधि, अग्निजलानेका मन्त्र, पूर्णाहुतिकी क्रिया, जप, स्तोत्र, कवच, पाठादि, जपपद्धति, मालाकी पूजा और तर्पण, जपसमर्पण, स्तोत्र, कवच, पाठ, प्रदक्षिणा, आत्मसमर्पण, विसर्जनविधि, निर्माल्यवासिनीकी पूजा, ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादिकी पूजा, चक्रानुष्ठान, पानपात्रनिर्माणविधि, पानपात्र और शुद्धिपात्रस्थापनके नियम, परिवेषणके नियम, सुधापानकी व्यवस्था, कुलस्त्री और गृहस्थसाधकके सुरापानके नियम, चक्रका प्रसाद भोजन करनेमें जूठका विचार दूषणीय है ॥ श्लोक ॥ १९९ ॥

सप्तमोल्लास ।

आद्याशक्तिका शतनामस्तोत्र । भगवतीका प्रश्न और तिसका उत्तर । स्तवमाहात्म्य, स्तवके ऋष्यादि मन्त्र । पुनर्वार ककारकूटस्तवमाहात्म्यकीर्तन । आदिकालिकाका कवच, त्रैलोक्यविजयके ऋष्यादि मन्त्र, त्रैलोक्यविजयकवच, त्रैलोक्यविजयकवचमाहात्म्य, आद्यामन्त्रकी पुरश्चरणविधि । संक्षेपपूजा और संक्षेपपुरश्चरणपद्धति, कालीमन्त्रकी प्रशंसाका कहना, कुल, कुलाचार और पंचतत्त्वनिरूपणकथन । प्रथमतत्त्व, द्वितीयतत्त्व, तृतीयतत्त्व, चतुर्थतत्त्व, पंचमतत्त्व और पंचतत्वके लक्षणकथन ॥ श्लोक ॥ १११ ॥

अष्टमोल्लास ।

वर्णाश्रमविधि । वर्णाश्रममें भगवतीका प्रश्न और तिसका उत्तर, कलिमें पंचवर्ण और दो प्रकारके आश्रमोंका निर्देश, गृहस्थाश्रम, भिक्षु-

काश्रम, कलियुगमें संन्यासकी व्यवस्था, दोनोंमें सबके अधिकारिव्यवस्था, गृहस्थाश्रम और संन्यासका कालनिरूणण, गृहस्थका कर्तव्यकर्म और आचार व्यवहारकथन, गृहीका नित्यकर्म,पितामाताके प्रति व्यवहार, पत्नीके प्रति व्यवहार, पुत्र और कन्याके प्रति व्यवहार, भ्राताआदि बंधुओंके प्रति व्यवहार, सामाजिक व्यवहार,आन्तरिक और बाह्य शौचाशौचानिरूपणविधि, संध्याकालविधि, वैदिकसंध्याके अनुष्ठानमें भगवतीका संशय, वैदिकसंध्या करनेकी आवश्यकतावर्णन, स्वाध्याय और गृहकर्मके अनुष्ठानमें नियतकाला-दिपातकर्तव्य । कलिमें उपवास और दानविधि, पुण्यकाल, पुण्यतीर्थकथन, पितामाताकी सेवा छोड़कर तीर्थमें जानेसे नरकका निर्णय । नारीधर्म और उसका कर्तव्य । यौवनमें स्त्री स्वामीके वश रहे । अभक्ष्यमांसनिर्णय और निरामिषभोजनविधि । ब्राह्मणादि पांचवर्णोंकी वृत्ति । ब्राह्मणोंके कर्म । क्षत्रिय और राजाके कर्म । वैश्य और शूद्रके कर्म । भैरवीचक्र और उसकी विधि । घटस्थापन और संक्षेपपूजाकथन, आनंदभैरवी और आनंदभैरवका ध्यान । गृहस्थको सुरापानका निषेध । गृहस्थको परशक्ति संगमनिषेध । शैवविवाह । चक्रके स्थापनका माहात्म्य । चक्रमें साधकका कर्तव्य । कलि-युगमें कुलधर्म छिपानेका दोष । तत्त्वचक्रवर्णन, तत्त्वचक्रमें अधिकारिता। तत्त्वचक्रमें तत्त्वशोधनमंत्र । तत्त्वचक्रकी अनुष्ठान विधि । संन्यासधर्मकथन। संन्यास ग्रहण करनेका काल । वृद्ध पिता माता पतिव्रता स्त्री और छोटे २ बालबच्चोंको छोड़कर संन्यास ग्रहणकरनेका निषेध । सबजातिके पुरुषोंको संन्यासमें अधिकार है । संन्यासग्रहण करनेके समय कर्तव्यकर्म । संन्यास ग्रहणकरनेमें गुरुका आश्रय लेना । तीन ऋण (देवऋण, ऋषिऋण, पितृ-ऋण) का छूटना । अपना श्राद्ध । अग्निस्थापन, शाकल्यहोम, व्याहृतिहोम, प्राणहोम, तत्त्वहोम, यज्ञोपवीतहोम । शिखा काटना, आहुति देना । महा-वाक्यका उपदेश, शिष्यको अपना रूप समझकर गुरुको प्रणाम, ब्रह्ममंत्रो-पासकका संन्यास-संन्यासीके आचार व्यवहार । संन्यासीके मृतक होनेपर उसकी देहको भस्मकरना निषेध है, चित्तशुद्धिके लिये उपासनादिकथन, कुलावधूत और यतीका माहात्म्य कहना ॥ श्लोक ॥ २८९ ॥

नवमोल्लास ।

दशविधिसंस्कारकी आवश्यकता और कुशंडिका। कलियुगमें मंत्रप्रयोगकी पृथक्‌ता । कुशंडिकाके लिये वेदी बनाना, अग्निका स्थापन, अग्निका ध्यान, अग्निके सात जीभोंका वर्णन, अग्निस्थापनक्रिया, यज्ञकी सामग्रीका संस्कार । धाराहोम । यथार्थकर्मका होम । स्विष्टकृद्धोम । व्याहृतिहोम । पूर्णाहुति, शान्तिकर्म, अग्निके निकट प्रार्थना और अग्निविसर्जन । दक्षिणादान,होमान्ततिलक, पुष्पधारण । मस्तकमें पुष्पधारण, चरुकर्म, जानहोम, दशविधिसंस्कार, ऋतुसंस्कार, गर्भाधान, पुंसवन, पंचामृतदान,सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, वाहिरी, मुंडन,कर्णवेध, उपनयन,ब्रह्मचर्यप्रदान, गायत्रीका अर्थ,गृहस्थाश्रमग्रहण, विवाह,कन्यादान, विवाहांग कुशंडिका, विना स्त्रीकी अनुमतिके दुबारा ब्राह्मविवाहका निषेध,शैवविवाहकथन,ब्राह्मविवाहकी संतानके रहित शैवविवाहकी सन्तानका धनाधिकारनिषेध, रोटी कपड़ेकी व्यवस्था, शैवविवाहके भेद और शैवविवाहकी रीति, अनुलोमज और विलोमज शैवसन्तानकी जातिका निर्णय, शैवविवाहका हेतुवादकथन ॥ श्लोक ॥२८३॥

दशमोल्लास।

आभ्युदयिक, पार्वण, एकोद्दिष्ट, अन्त्येष्टि और प्रेतश्राद्धादि । वृद्धिश्राद्धमें प्रश्न, वृद्धिश्राद्धादिव्यवस्था और उसके प्रतिनिधिका निरूपण, वृद्धिश्राद्धप्रयोग, पार्वणश्राद्धव्यवस्था, श्राद्धमें विधान, एकोद्दिष्टश्राद्धव्यवस्था, प्रेतश्राद्धव्यवस्था, आशौचव्यवस्था, शवदाहव्यवस्था । सहमरणव्यवस्था, अन्त्येष्टिक्रियाकी व्यवस्था । आद्यश्राद्धके अधिकारीका निरूपण, तिलकांचनउत्सर्गव्यवस्था, सस्यादिदानव्यवस्था, वृषोत्सर्ग । कौलपूजाप्रशंसाकथन, शुभकर्मका दिननिरूपण, गृहप्रवेशनियम और संक्षेपसे यात्राका वर्णन, दुर्गोत्सवादिमें कौलका कर्तव्य । कौलमाहात्म्यवर्णन । पूर्णाभिषेक और उसकी व्यवस्था । पूर्णाभिषेकका योग्य अधिकारी । गुरुका आश्रय ग्रहणकरना । गणेशपूजा । ध्यान, पीठशक्ति और आवरणपूजा, अधिवास, तिलकांचन, कौलभोज्यदान, षोडशमातृकापूजा । वसुधारा और वृद्धिश्राद्ध, पूर्णाभिषेकके लिये गुरुके पास जायकर प्रार्थना । पूर्णाभिषेकका

संकल्प, गुरुवरण, यज्ञमंडपका संस्कार, घटस्थापन । पात्रस्थापन और तर्पणविषयकव्यवस्था । पूजा और शक्तिसाधककी पूजा, शक्तिसाधकसे गुरुकी प्रार्थना । शक्तिसाधककी पूर्णाभिषेकमें सम्मति, पूर्णाभिषेकमंत्रकथन, पशुको दिया हुआ मंत्र फिर ग्रहण करना, शिष्यका नामकरणव्यस्था, गुरुदक्षिणा, शक्तिसाधककी पूजा और अमृतकी प्रार्थना करना । अमृतदानमें गुरुकी प्रार्थना करना, शक्तिसाधककी सम्मति । कौललोगोंकी अनुमति लेकर शिष्यको अमृतका दान करना, प्रसादका पसरना, चक्रका अनुष्ठान करना, पूर्णाभिषेकमें नवरात्रादि कल्पभेद और व्यवस्थाकथन, शाक्ताभिषिक्तकी चक्रेश्वरताका निषेध करना, कुलद्रव्य और कुलसाधककी निन्दाका दोष कहना, ब्रह्मनिष्ठकौलके लिये कर्मत्याग करना, अथवा कर्मानुष्ठान करनेमें तुल्यताका कथन, सर्वत्र ब्रह्मकी पूजाकी व्यवस्था, सत्कौलका लक्षणकथन । ॥ श्लोक ॥ २१२ ॥

एकादशोल्लास ।

शान्तिरक्षा, प्रायश्चित्तव्यवस्था, द्विविधपापका लक्षण, राजा प्रजाके पापका दंड, धर्माधर्म, प्रश्नोत्तर, व्याभिचार, बलात्कारमें पाप और उसका दंड, पराई स्त्रीको पापकी दृष्टिसे देखनेका पाप, नरहत्या, कर्तव्यपालनमें अस्वीकार, धर्मपत्नीमें अन्यान्यका व्यवहार, वंचक, विश्वासघातक, चोर, झूठी गवाही देनेवाला, जालकरनेवालेको दण्ड, धर्मशाला और विचारपद्धति, हिन्दुआईनका (कानून) सार तात्पर्य, महारोगादिका प्रायश्चित्त, व्रतभंगका महापाप, गोवधका महापाप, इत्यादि विविध प्रसंग ॥ श्लोक ॥ १७० ॥

द्वादशोल्लास ।

सदाशिवके द्वारा सनातन व्यवहारविषयककथन । सम्बंधकथन, राजा प्रजा व्यवहारकथन, विवाह धनाधिकारव्यवस्था, पिंडदानव्यवस्था, शौचाशौचकथन, प्रकारभेदसे विवाह, क्रीतद्रव्यादिका मोल, ऋण, इत्यादि ॥ श्लोक ॥ १२९ ॥

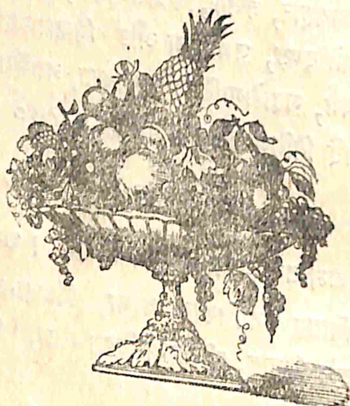
त्रयोदशोल्लास ।

महाकालीरूप, साधन, भजन, ध्यान, धारणा, देव देवीकी प्रतिष्ठाका कारण नियमव्यवस्था, दानके नियम, दाताका भाव, निष्काम और कामनाका भाव, पशुयज्ञादिविधि, पूजाध्यानादिका प्रकरण, गृहपूजा और नियम, नवग्रहका रूप, ध्यानपूजापद्धति, विविधबीजमंत्र, जलाशयप्रतिष्ठा, सत्कर्मक्रियाकथन, वास्तुप्रतिष्ठाका क्रम और पूजा। संसारके विविध कार्य, दशसंस्कारव्यवस्था ॥ श्लोक ॥ २१० ॥

चतुर्दशोल्लास ।

शिवपूजाका प्रश्न । समस्तशिवपूजाओंके पीछे फिर अचलशिवपूजाका कथन, शिवलिंग क्या है ? उसकी पूजा, ध्यान, विश्वरूप क्यों है ? पूजनीय क्यों है ? आसन, उपचार, पूजा, ध्यान, धारणा, फलविधि, अर्चनादिविधि इत्यादि । मुक्ति क्या है ? मुक्तिकी आवश्यकता, मुक्तपुरुष कौन है ? मुक्तिका उपाय, ज्ञान और कर्मकथन, ज्ञान और मुक्तिका संबंध, साधुके लक्षण, चार प्रकार अवधूतोंके लक्षण सर्वधर्मनिर्णयसार इत्यादि ॥ ॥ श्लोक ॥ २११ ॥

महानिर्वाणतन्त्रका सूचीपत्र समाप्त ।



श्रीः॥

महानिर्वाणतन्त्रकी अनुक्रमणिका।

विषय.	पृष्ठांक.

ग्यारहवाँ उल्लास।

विषय.	पृष्ठांक.

बारहवाँ उल्लास।

तेरहवाँ उल्लास।

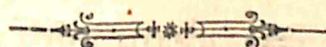
इति महानिर्वाणतन्त्रकी अनुक्रमणिका समाप्त ।

श्रीः ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीमहावीराय नमः ।

महानिर्वाणतन्त्रम् ।

भाषाटीकासहितम् ।



प्रथमोल्लासः १.

गिरीन्द्रशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते ।
नानावृक्षलताकीर्णे नानापक्षिरवैर्युते ॥ १ ॥

ज्योति जागती जगतमें, जनानि जयाजयकार ।
काली कर धर कर उधर, भक्त परयो मँझधार ॥ १ ॥

कैलास पर्वतका एक रमणीय शिखर है, जो अनेक प्रकारके रत्नोंसे विभूषित, अनेक प्रकारके वृक्षलताओंसे युक्त और बहुतसे पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान है ॥ १ ॥

सर्वर्तुकुसुमामोदमोदिते सुमनोहरे ।
शैत्यसौगन्ध्यमान्द्याढ्य–मरुद्भिरुपवीजिते ॥ २ ॥

उस सुन्दर मनोहर स्थानमें सब ऋतु सब समयमें उदित होकर अनेक प्रकारका कुसुम सौरभ फैलाती हैं, जहाँ सदैव शीतल, मंद, सुगंध पवन चला करता है ॥ २ ॥

अप्सरोगणसङ्गीतकलध्वनिनिनादिते ।
स्थिरच्छायद्रुमच्छायाच्छादिते स्निग्धमञ्जुले ॥ ३ ॥

अप्सराओंके मधुर गानेका मधुर शब्द (सदा) गुंजारता रहता है । वहांके छायेदार वृक्षगण स्थिरभावसे छाया देते हैं, यह स्थान अत्यन्त स्निग्ध और मनोहर है ॥ ३ ॥

मत्तकोकिलसन्दोहसङ्घुष्टविपिनान्तरे ।
सर्वदा स्वगणैः सार्धमृतुराजनिषेविते ॥ ४ ॥

दूसरे वनोंमें मधुर स्वसे मत्त कोयलें शब्द कर रहीं हैं । वहां ऋतुराज (वसंत) अपने सहकारियोंके साथ सदा विराजमान रहता है ॥ ४ ॥

सिद्धचारणगन्धर्वगाणपत्यगणैर्वृते ।
तत्र मौनधरं देवं चराचरजगद्गुरुम् ॥ ५ ॥

सिद्ध, चारण, गंधर्व और विनायकोंसे यह स्थान सदा घिरा रहता है । इस शिखरपर चराचर जगत्के गुरुरूप महादेवजी मौन होकर विराजमान हैं ॥ ५ ॥

सदाशिवं सदानन्दं करुणामृतसागरम् ।
कर्पूरकुन्दधवलं शुद्धसत्त्वमयं विभुम् ॥ ६ ॥

जो सदा कल्याणके देनेवाले, सदानंद, करुणास्वरूप अमृतके समुद्र हैं, उनका आकार कपूर और कुन्दके फूलके समान श्वेत है, शुद्धसत्त्वमय और (अनुपम) विभु हैं ॥ ६ ॥

दिगम्बरं दीननाथं योगीन्द्रं योगिवल्लभम् ।
गङ्गाशीकरसंसिक्तजटामण्डलमण्डितम् ॥ ७ ॥

वे दिगंबर (नग्न) अर्थात्–मायारहित हैं, दीनोंके नाथ, योगियोंमें इंद्र और योगियोंके प्यारे हैं, उनके जटाजूट गंगा-शीकरसे संयुक्त हो रहे हैं ॥ ७ ॥

विभूतिभूषितं शान्तं व्यालमालं कपालिनम् ।
त्रिलोचनं त्रिलोकेशं त्रिशूलवरधारिणम् ॥ ८ ॥

उनके सब शरीरमें विभूति लगी हुई है, मूर्ति (अत्यन्त) शान्त है, वे नरकपाल और सर्पोंकी मालासे शोभायमान हैं उन त्रिलोकीके नाथ और त्रिनेत्रके हाथमें त्रिशूल है ॥ ८ ॥

आशुतोषं ज्ञानमयं कैवल्यफलदायकम् ।
निर्विकल्पं निरातङ्कं निर्विशेषं निरञ्जनम् ॥ ९ ॥

वे आशुतोष अर्थात् शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले, ज्ञानमय और कैवल्य (मोक्ष) फल देने वाले, सुख दुःखरहित, तीनों तापोंसे हीन, भेदहीन और निरंजन (निर्लेप) हैं ॥ ९ ॥

सर्व्वेषां हितकर्त्तारं देवदेवं निरामयम् ।
प्रसन्नवदनं वीक्ष्य लोकानां हितकाम्यया ।
विनयावनता देवी पार्वती शिवमब्रवीत् ॥ १० ॥

वे निरामय, देवदेव और सबके हितकारी हैं, उन शिव-जीका प्रसन्न-वदन देखकर देवी पार्वतीने (एक दिन) लोकके हितार्थ अवनत हो विनीत वचन द्वारा पूछा ॥ १० ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

देवदेव ! जगन्नाथ ! मन्नाथ ! करुणानिधे ।
त्वदधीनास्मि देवेश ! तवाज्ञाकारिणी सदा ॥ ११ ॥

पार्वतीजी बोली हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! आप मेरे नाथ और दयाके समुद्र है । हे देवताओंके ईश्वर ! मैं आपके अधीन हूं, सदा आपकी आज्ञाके अनुसार वर्त्तने-वाली हूं ॥ ११ ॥

विनाज्ञया मया किञ्चिद्भाषितुं नैव शक्यते ।
कृपावलेशो मयि चेत्स्नेहोऽस्ति यदि मां प्रति॥ १२॥

विना आपकी अनुमतिके प्राप्त हुए मैं आपसे कुछ भी नहीं कह सकती यदि मेरे प्रति आपके कृपाकण प्रकाशित हों और जो आपका स्नेह मेरे ऊपर हो ॥ १२ ॥

तदा निवद्यते किञ्चिन्मनसा यद्विचारितम् ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य कश्चिल्लोकयां महेश्वर ।
छेत्ता भवितुमर्हो वा सर्वज्ञः सर्वशास्त्रवित् ॥ १३॥

तो मैं अपने मनकी वासना आपके निकट कुछ प्रकाश कर सकती हूं । हे महेश्वर ! आपके सिवाय और कौन मेरे सन्देहके भंजन करनेको समर्थ है और कौन सर्वशास्त्रका जाननेवाला सर्वज्ञ है ॥ १३ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

किमुच्यते महाप्राज्ञे कथ्यतां प्राणवल्लभे ।
यदकथ्यं गणेशेऽपि स्कन्दे सेनापतावपि ॥१४॥

सदाशिवने कहा हे प्राणवल्लभे ! तुम अत्यन्त बुद्धिमती हो, तुम क्या जाननेकी इच्छा करती हो सो कहो जो बात गणेश या स्वामिकार्तिकसे प्रकाशित नहीं की उस बातको तुम्हारे निकट कहते हुए मुझको कुछ बाधा नहीं है ॥१४॥

तवाग्रे कथयिष्यामि सुगोप्यमपि यद्भवेत् ।
किमस्ति त्रिषु लोकेषु गोपनीयं तवाग्रतः ॥ १५ ॥

जो विशेष गुप्त करने योग्य भी हो तो भी मैं उसको तुमसे कहूंगा, (अधिक क्या कहूं) त्रिलोकीमें ऐसा कोई विषय नहीं है जो तुमसे छिपा हुआ रह सके॥ १५ ॥

मम रूपासि देवि त्वं न भेदोऽस्ति त्वया मम ।
सर्वज्ञा किं न जानासि त्वनभिज्ञेव पृच्छसि ॥१६॥

हे देवि ! तुम हमारा ही स्वरूप हो, तुममें और हममें कुछ भेद नहीं है, तुम सर्वज्ञ होकर भी अनभिज्ञके समान हमसे क्या पूछती हो ? ॥ १६ ॥

इति देववचः श्रुत्वा पार्वती हृष्टमानसा ।
विनयावनता साध्वी परिपप्रच्छ शंकरम् ॥ १७॥

पार्वतीजी परमेश्वरके मुखारविंदसे यह वचन सुनकर चित्तमें अत्यन्त हर्षित हुईं और विनयपूर्वक नम्र वचनों करके महादेवजीसे पूछने लगीं ॥ १७ ॥

आद्योवाच ।

भगवन् ! सर्वभूतेश ! सर्वधर्मविदांवर ।
कृपावता भगवता ब्रह्मान्तर्यामिणा पुरा ॥ १८ ॥
प्रकाशिताश्चतुर्वेदाः सर्वधर्मोपबृंहिताः ।
वर्णाश्रमादिनियमा यत्र चैव प्रतिष्ठिताः ॥ १९ ॥

आदिशक्तिने कहा—हे भगवन् ! सर्व प्राणियोंके ईश्वर और सर्व धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, अन्तर्यामी दयालु आपने ब्रह्माका रूप धारण कर प्रथम सर्व धर्मयुक्त चार वेद प्रकट किये हैं जिनमें सब वर्ण और आश्रमोंके नियमोंकी व्यवस्था की गयी है ॥ १८ ॥ १९ ॥

त्वदुक्तयोगयज्ञाद्यैः कर्मभिर्भुवि मानवाः ।
देवान्पितॄन्प्रीणयन्तः पुण्यशीलाः कृते युगे ॥ २० ॥

आपके वचनानुसार योग व यज्ञादि सिद्ध करके सत्ययुगके पुण्यवान् मनुष्यगण देवता और पितृगणोंको तृप्त करते हैं ॥ २० ॥

स्वाध्यायध्यानतपसा दयादानैर्जितेन्द्रियाः ।
महाबला महावीर्य्या महासत्त्वपराक्रमाः ॥ २१ ॥

उस कालके लोक इन्द्रियोंको जीतकर वेदका पढ़ना, परमार्थकी चिन्ता, तप, दया और दानशीलताके द्वारा महाबलवान्, महावीर्ययुक्त और अत्यन्त पराक्रमी होते थे ॥२१॥

देवायतनगा मर्त्या देवकल्पा दृढव्रताः ।

सत्यधर्मपराः सर्वे साधवः सत्यवादिनः ॥ २२ ॥

वे लोग दृढ़व्रत, देवताओंके समान, मर्त्य-अर्थात् मरणशील होकर भी देवलोकमें जा सकते थे, उस समयमें सब ही सत्य बोलनेवाले, साधु और श्रेष्ठ मार्गमें चलनेवाले थे ॥२२॥

राजानः सत्यसंकल्पाः प्रजापालनतत्पराः ।

मातृवत्परयोषित्सु पुत्रवत्परसूनुषु ॥ २३ ॥

उस कालमें राजालोग सत्यसंकल्प और प्रजापालन परायण थे, वे परायी स्त्रीको माताके समान और पराये पुत्रको पुत्रके समान देखते थे ॥ २३ ॥

लोष्टवत्परवित्तेषु पश्यन्तो मानवास्तदा ।

आसन्स्वधर्मनिरताः सदासन्मार्गवर्त्तिनः ॥ २४ ॥

उस समयके लोग पराये धनको मट्टीके ढेलेके समान देखते थे, (अधिक क्या कहा जाय) सब ही अपने धर्ममें निरत और सदैव श्रेष्ठमार्गके अवलम्बी थे ॥ २४ ॥

न मिथ्याभाषिणः केचिन्न प्रमादरताः क्वचित् ।

न चौरा न परद्रोहकारका न दुराशयाः ॥ २५ ॥

कोई भी मिथ्यावादी, प्रमादी, चोर, परायी बुराई करनेवाले और बुरे आशयवाले न थे ॥ २५ ॥

न मत्सरा नातिरुष्टा नातिलुब्धा न कामुकाः ।
सदन्तःकरणाः सर्वे सर्वदानन्दमानसाः ॥ २६ ॥

वह मत्सरता-अर्थात् शुभ मनुष्योंके साथ द्वेष करना, क्रोध, लोभ वा कामुकताके हाथमें नहीं गिरे, सब हीका अन्तःकरण सत् और आनंदमय था ॥ २६ ॥

भूमयः सर्वसस्याढ्याः पर्ज्जन्याः कालवर्षिणः ।
गावोऽपि दुग्धसम्पन्नाः पादपाः फलशालिनः॥२७॥

पृथ्वी उसकालमें अनेक प्रकारके धान्योंसे पूर्ण थी, अवसरपर मेघ जल वर्षाते थे, गायें दूधके भारसे झुकी रहतीं थीं और वृक्ष फलोंके भारसे पूर्ण थे ॥ २७ ॥

नाकालमृत्युस्तत्रासीन्न दुर्भिक्षं न वा रुजः ।
हृष्टाः पुष्टाः सदारोग्यास्तेजोरूपगुणान्विताः[१] ॥२८॥

उस समयमें अकालमृत्यु, दुर्भिक्ष वा रोगभय नहीं था, सब ही हृष्ट, पुष्ट, रोगरहित, तेजस्वी और रूप गुणसे युक्त थे ॥ २८ ॥

स्त्रियो न व्यभिचारिण्यः पतिभक्तिपरायणाः ।
ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्याः शूद्रा :स्वाचारवर्तिनः२९॥

---

१ तेजोरूपसमन्विता इति वा पाठः ।

स्त्रियां व्यभिचारिणी नहीं थीं, सब ही पतिमें भक्ति करती थीं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब ही अपने नियन्त्रित आचार व्यवहारके अनुसार चलते थे ॥ २९ ॥

स्वैः स्वैर्धर्मैर्यजन्तस्ते निस्तारपदवीं गताः ।
कृते व्यतीते त्रेतायां दृष्ट्वा धर्मव्यतिक्रमम् ॥३०॥

वह अपने अपने जातीय धर्मका अनुष्ठान करके निस्तारके मार्गको प्राप्त हुए हैं, सतयुगके अन्त-अर्थात् त्रेताके आगमनमें आपने धर्मकी कुछ एक अंगहीनता देखी ॥३०॥

वेदोक्तकर्मभिर्मर्त्या न शक्ताः स्वेष्टसाधने ।
बहुक्लेशकरं कर्म्म वैदिकं भूरिसाधनम् ॥ ३१ ॥

क्योंकि उस समय मनुष्यगण वेदोक्त कर्मके द्वारा अपना इष्ट सिद्ध करनेमें असमर्थ हुए. उन्होंने जाना कि, वैदिक कार्योंके सिद्ध करनेको बहुतसे साधन चाहिये और वह कार्य बहुतसे क्लेशोंसे सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥

कर्तुं न योग्या मनुजाश्चिन्ताव्याकुलमानसाः ।
त्यक्तुं कर्त्तुं न चार्हन्ति सदा कातरचेतसः ॥३२॥

जब मनुष्य वैदिक कार्योंके सिद्ध करनेको असमर्थ हुए तब उनके अन्तःकरण चिन्तासे व्याकुल हो उठे, वे न तो वेदोक्त कार्योंको ही सिद्ध कर सके और न उनको त्याग ही करनेमें समर्थ हुए इस कारण खेद करने लगे ॥ ३२ ॥

वेदार्थयुक्तशास्त्राणि स्मृतिरूपाणि भूतले ।
तदा त्वं प्रकटीकृत्य तपःस्वाध्यायदुर्बलान् ॥३३॥
लोकानतारयः पापाद्दुःखशोकामयप्रदात् ।
त्वां विना कोऽस्ति जीवानां घोरसंसारसागरे॥३४॥

उस कालमें आपने वेदार्थमय स्मृतिशास्त्र पृथ्वीपर प्रकट करके तप करने और वेद पढ़नेमें असमर्थ लोगोंको दुःख, शोक और पीड़ादायक पापसे उद्धार किया था, आपके सिवाय इस संसाररूपी घोर समुद्रसे और कौन जीवोंकी रक्षा कर सकता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

भर्त्ता पाता समुद्धर्त्ता पितृवत्प्रियकृत्प्रभुः ।
ततोऽपि द्वापरे प्राप्ते स्मृत्युक्तसुकृतोज्झिते ॥३५॥

जिस प्रकार पिता अपने पुत्रको पालता है वैसे ही आप अधम जीवके पालन करनेवाले हैं. भरण पोषण करनेवाले, उसका प्रिय करनेवाले और उद्धार करनेवाले आप ही हैं. आप सबके स्वामी और कल्याणविधाता हैं। इसके उपरांत जब द्वापरयुग आया तब स्मृतिसम्मत शुभ क्रियादिका ह्रास होने लगा ॥ ३५ ॥

धर्मार्द्धलोपे मनुजे आधिव्याधिसमाकुले ।
संहिताद्युपदेशेन त्वयैवोद्धारिता नराः ॥ ३६ ॥

उस कालमें आधा धर्म्मलोप हो गया इस कारण मनुष्यगण अनेक प्रकारकी आधिव्याधियोंसे पूर्ण हुए, इस समयमें आपने संहिताशास्त्रका उपदेश देकर मनुष्योंका उद्धार किया ॥ ३६ ॥

आयाते पापिनि कलौ सर्वधर्मविलोपिनि ।
दुराचारे दुष्प्रपञ्चे दुष्टकर्मप्रवर्तके ॥ ३७ ॥

इस समयमें सर्व धर्मका लोप करनेवाले, दुष्टकर्मको करानेवाले, दुराचारी, खोटे प्रपंचको करानेवाले कलियुगका अधिकार हुआ ॥ ३७ ॥

न वेदाः प्रभवस्तत्र[1] स्मृतीनां स्मरणं कुतः ।
नानेतिहासयुक्तानां नानामार्गप्रदर्शिनाम् ॥ ३८॥

इस कालमें वेदका प्रभाव खर्व हो गया, स्मृतियें भी विस्मृतिके समुद्रमें डूब गयीं । इस समयमें अनेक प्रकारके इतिहासोंसे पूर्ण अनेक प्रकारके मार्गोंको दिखानेवाले ॥ ३८॥

बहुलानां पुराणानां विनाशो भविता विभो ।
तदा लोका भविष्यन्ति धर्मकर्मबहिर्मुखाः ॥ ३९॥

बहुतसे पुराणोंका नामतक प्रकाशित नहीं रहेगा । हे विभो ! इस कारण उस समय सब ही जन धर्मकर्मसे विमुख हो जायँगे ॥ ३९ ॥

१ प्रभवन्त्यत्र इति वा पाठः ।

उच्छृङ्खला मदोन्मत्ताः पापकर्मरताः सदा ।

कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखाः शठाः ॥ ४० ॥

कलिके जीवगण शृंखलारहित अर्थात् (वेदादिरूप बेड़ियां जिनकी कट गयी हैं) मदोन्मत्त, सर्वदा पापमें लिप्त, कामी, धनके लालची, क्रूर, निष्ठुर, अप्रियभाषी और शठ हो जायँगे ॥ ४० ॥

स्वल्पायुर्मन्दमतयो रोगशोकसमाकुलाः ।

निःश्रीका निर्बला नीचा नीचाचारपरायणाः ॥ ४१ ॥

इस कालके लोग अल्पायु, मन्दमति, रोगशोकसे युक्त, श्रीहीन, बलहीन, नीच होकर नीचकार्योंको करेंगे ॥ ४१ ॥

नीचसंसर्गनिरताः परवित्तापहारकाः ।

परनिन्दापरद्रोहपरिवादपराः खलाः ॥ ४२ ॥

इस कालमें सब ही नीचोंका संग करेंगे, पराये वित्तको हरण करनेवाले, परनिंदा, परद्रोह, परायी हानिमें तत्पर और खल हो जायँगे ॥ ४२ ॥

परस्त्रीहरणे पापशङ्काभयविवर्जिताः[१] ।

निर्धना मलिना दीना दरिद्राश्चिररोगिणः ॥ ४३ ॥

परायी स्त्रीके हरण करनेमें ये लोग पापकी शंका या भय नहीं करेंगे, ये लोग निर्धन, मलिन, दीन और सदा रोगी रहकर समय बितावेंगे ॥ ४३ ॥

---

१ पापाः शङ्काभयविवर्जिताः इति पाठान्तरम् ।

विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ध्यावन्दनवर्जिताः ।
अयाज्ययाजका लुब्धा[१] दुर्वृत्ताः पापकारिणः॥४४॥

ब्राह्मण सन्ध्यावंदनादि-हीन हो शूद्रके समान आचार करेंगे, वे लोभके वश होकर अयाज्ययाजन अर्थात्- जिस पुरुषकी पुरोहिताई करनेसे अधर्म होता है उसके पुरोहित बनकर यज्ञ करावेंगे, और दुश्चरित्र होकर पाप कार्य करेंगे ॥ ४४ ॥

असत्यभाषिणो मूर्खा दाम्भिका दुष्प्रपञ्चकाः ।
कन्याविक्रयिणो व्रात्यास्तपोव्रतपराङ्मुखाः॥४५॥

यह झूंठ बोलनेवाले, मूर्ख, दम्भी और घोर प्रपंचक (धोखेबाज) होंगे, कन्याको बेचेंगे, पतित और तपोव्रत-भ्रष्ट होकर समय बितावेंगे ॥ ४५ ॥

लोकप्रतारणार्थाय जपपूजापरायणाः ।
पाखण्डाः पण्डितम्मन्याः श्रद्धाभक्तिविवर्जिताः४६

कलियुगके ब्राह्मण लोग लोगोंको छलनेके अभिप्रायसे जप और पूजा करेंगे; परन्तु मनके अन्तरमें श्रद्धा भक्ति कुछ भी नहीं रहेगी । ये घोर पाखंडी और पतितके समान कार्य करके भी अपनी पंडिताईका परिचय देंगे ॥ ४६ ॥

---

१ अयाज्ययाजका मूका इत्यपि क्वचित्पाठः ।

कदाहाराः कदाचारा धूर्तकाः[1] शूद्रसेवकाः ।
शूद्रान्नभोजिनः क्रूरा वृषलीरतिकामुकाः ॥ ४७ ॥

इनका आहार निंदित होगा, आचार अधम होगा, ये शूद्रके सेवक होकर शूद्रका अन्न ग्रहण करेंगे और क्रूर होकर शूद्रकी स्त्रीका संग करनेमें लोलुप होंगे ॥ ४७ ॥

दास्यन्ति धनलोभेन स्वदारान्नीचजातिषु ।
ब्राह्मण्यचिह्नमेतावत्केवलं सूत्रधारणम् ॥ ४८ ॥

अधिक कहांतक कहा जाय, ये धनके लोभसे नीच जातिके पुरुषको अपनी स्त्री दे देंगे । इनके ब्राह्मणताके चिह्नोंमें केवल गलेमें डोरा डालना मात्र रहेगा ॥ ४८ ॥

नैव पानादिनियमो भक्ष्याभक्ष्यविवेचनम् ।
धर्मशास्त्रे सदा निन्दा साधुद्रोहो निरन्तरम् ॥ ४९ ॥

इनके भक्ष्याभक्ष्यका विचार या पानादिका नियम नहीं रहेगा, यह सदा धर्मशास्त्रकी निन्दा और साधुओंका द्रो करेंगे ॥ ४९ ॥

सत्कथालापमात्रञ्च न तेषां मनसि क्वचित् ।
त्वया कृतानि तन्त्राणि जीवोद्धरणहेतवे ॥ ५० ॥

इनके मनमें सत्कथाका आलाप कभी स्थानको प्रा नहीं होगा. (जो हो) जीवोंका उद्धार करनेके लिये आप 'तन्त्रशास्त्र' बनाया है ॥ ५० ॥

---

१ कदाचाराहतका इति वा पाठः ।

निगमागमजातानि भुक्तिमुक्तिकराणि च।
देवीनां यत्र देवानां मन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ॥५१॥

और भोग अपवर्गविधायक बहुतसे आगम व निगम प्रकाशित किये हैं, उनमें देव देवियोंके मन्त्र और यन्त्रादिक सिद्ध करनेके उपाय हैं ॥ ५१ ॥

कथिता बहवो न्यासाः सृष्टिस्थित्यादिलक्षणाः।
बद्धपद्मासनादीनि गदितान्यपि भूरिशः ॥ ५२ ॥

आपने सृष्टि स्थिति आदिके प्रकारसे न्यास कहे हैं, आपने बद्ध पद्मासन और मुक्तपद्मासनादि बहुतसे आसनोंका भी विषय कहा है ॥ ५२ ॥

पशुवीरदिव्यभावा देवतामन्त्रसिद्धिदाः[1]।
शवासनं चितारोहो मुण्डसाधनमेव च ॥ ५३ ॥

आपने जिनसे देवताओंका मन्त्र सिद्ध हो जावे वैसे पशु, वीर और दिव्यभाव प्रकाशित किये हैं। इनके सिवाय शवासन, चितारोहण और मुंडसाधन भी कहा है ॥ ५३ ॥

लतासाधनकर्माणि त्वयोक्तानि सहस्रशः।
पशुभावदिव्यभावौ स्वयमेव निवारितौ ॥ ५४ ॥

आपने लतासाधनादि अगणित अनुष्ठानोंका वर्णन किया है किन्तु आपने पशु व दिव्यभावके सम्बन्धमें स्वयं ही निषेध किया है ॥ ५४ ॥

---

१ देवता यन्त्रसिद्धिदाः इति वा पठनीयम्।

कलौ न पशुभावोऽस्ति दिव्यभावः कुतो भवेत् ।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं स्वयमेवाहरेत्पशुः ॥ ५५ ॥

तात्पर्य यह है कि-जब कलियुगमें पशुभाव होनेकी संभावना नहीं तब दिव्यभावकी संभावना कैसे हो सकती है. पत्ते, फल, फूल और जल इनका लाना पशुभावके अवलंबन करनेका काम है ॥ ५५ ॥

न शूद्रदर्शनं कुर्य्यान्मनसा न स्त्रियं स्मरेत् ।
दिव्यश्च देवताप्रायः शुद्धान्तःकरणः सदा ॥ ५६ ॥

शूद्रका देखना और मन ही मनमें स्त्रीकी मूर्तिका देखना कर्त्तव्य नहीं है, दिव्यभाव अवलंबन करनेके लिये सदा देवताओंके समान निर्मल अन्तःकरण होना उचित है ॥ ५६ ॥

द्वन्द्वातीतो वीतरागः सर्वभूतसमः क्षमी ।
कलिकल्मषयुक्तानां सर्वदास्थिरचेतसाम् ॥ ५७ ॥

इसके सिवाय सुख दुःखको समान भोग करना, राद्वेषसे रहित होकर चलना, सब प्राणियोंको एकसा देखना और क्षमाशील होना पड़ेगा । विशेष विचार करनेसे जाना जाता है कि, यह कलिकाल अत्यन्त भयानक है, इस कालके जीवगण सदा पापमें आसक्त और चंचलचित्तवाले रहते हैं ॥ ५७ ॥

निद्रालस्यप्रसक्तानां भावशुद्धिः कथं भवेत् ।
वीरसाधनकर्माणि पञ्चतत्त्वोदितानि च ॥ ५८

जो लोग निद्रा और आलस्यसे युक्त हैं उनके भावकी शुद्धिका होना किस प्रकारसे संभव है? हे शंकर। आपने वीरसाधन विषयमें पंचतत्त्वका विषय कहा है ॥ ५८ ॥

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
एतानि पञ्च तत्त्वानि त्वया प्रोक्तानि शंकर॥५९॥

आपने मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन पांच तत्त्वोंको सविशेष कहा है ॥ ५९ ॥

कलिजा मानवा लुब्धाः शिश्नोदरपरायणाः ।
लोभात्तत्र पतिष्यन्ति न करिष्यन्ति साधनम् ६०

परन्तु (दुःखकी बात है कि) कलियुगके जीवगण लोभी और शिश्नोदरपरायण (केवल आहार विहारसे ही मनको कृतार्थ समझनेवाले) होंगे वे साधनोंको छोड़ लोभसे बाध्य हो इन पांच तत्त्वोंमें गिरेंगे ॥ ६० ॥

इन्द्रियाणां सुखार्थाय पीत्वा च बहुलं मधु ।
भविष्यन्ति मदोन्मत्ता हिताहितविवर्जिताः ॥६१॥

वे मदमाते हो हिताहितके विचारको पानी देंगे और इन्द्रियोंके सुखके लिये बहुतसा मधु पीवेंगे ॥ ६१ ॥

परस्त्रीधर्षकाः केचिद्दस्यवो बहवो भुवि ।
न करिष्यन्ति ते मत्ताः पापा योनिविचारणम्[१] ६२

१ पापयोनिविचारणम् । इति वा पाठयम् ।

उनमेंसे कोई परनारियोंके सतीत्वका नाश करेंगे और बहुतेरे चोरोंकी वृत्तिसे पृथ्वीपर दिन बितावेंगे। वे पापाचारी पुरुष मत्त होकर योनिविचार नहीं करेंगे ॥ ६२ ॥

अतिपानादिदोषेण रोगिणो बहवः क्षितौ ।
शक्तिहीना बुद्धिहीना भूत्वा च विकलेन्द्रियाः ॥६३॥

बहुतसे अत्यन्त पानदोषसे इस पृथ्वीपर सदा रोगी, शक्तिहीन, बुद्धिहीन और विकलेन्द्रिय हो जायँगे॥ ६३ ॥

ह्रदे गर्त्ते प्रान्तरे च प्रासादात्पर्वतादपि ।
पतिष्यन्ति मरिष्यन्ति मनुजा मदविह्वलाः ॥६४॥

वे मनुष्य मतवाले हो ह्रद (अगाध जलाशय), गर्त्त (कर बिल), प्रान्तर (दुर्गममार्ग), प्रासाद (बड़ी अटारी) और पर्वतके शिखरसे गिरकर मरेंगे ॥ ६४ ॥

केचिद्विवादयिष्यन्ति गुरुभिः स्वजनैरपि ।
केचिन्मौना मृतप्राया अपरे बहुजल्पकाः ॥६५॥

कोई कोई पुरुष मतवाले हो बड़े बूढ़े और स्वजनों साथ लड़ाई झगड़ा करेंगे, कोई मृतकतुल्य और मौन होकर रहेंगे, कोई कोई बड़ी भारी जल्पना (पराये मत खण्डन करके अपना मत जनाने) में लगे रहेंगे ॥ ६५ ॥

अकार्य्यकारिणः क्रूरा धर्म्ममार्गविलोपकाः ।
हिताय यानि कर्म्माणि कथितानि त्वया प्रभो ६६

मन्ये तानि महादेव विपरीतानि मानवे।
के वा योगं करिष्यन्ति न्यासजातानि केऽपि वा ६७

ये बुरी क्रियाओंके करनेवाले, क्रूर और धर्ममार्गका लोप करनेवाले होंगे। हे प्रभो! आपने प्राणियोंके हितार्थ जिन कार्योंका उपदेश दिया है मैं जानती हूं कि कलियुगमें वे कार्य मनुष्योंके लिये विपरीत हो जायँगे, कौन योगाभ्यासमें रत होगा? कौन न्यासादि कार्य करेगा? अर्थात् कोई न करेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

स्तोत्रपाठं यन्त्रलिपिं पुरश्चर्यां जगत्पते।
युगधर्मप्रभावेण स्वभावेन कलौ नराः ॥ ६८ ॥
भविष्यन्त्यातिदुर्वृत्ताः सर्वथापापकारिणः।
तेषामुपायं दीनेश कृपया कथय प्रभो ॥ ६९ ॥

हे जगन्नाथ! कौन पुरुष स्तोत्र पढ़कर यंत्रलिपि और पुरश्चरण करेगा? अर्थात् युगधर्मके प्रभावसे स्वभावसे ही कलियुगी मनुष्य अत्यन्त दुर्वृत्त और पाप करनेवाले होंगे। हे प्रभो! हे दीनेश! उनका क्या उपाय होगा सो आप कृपा करके मुझसे कहें ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

आयुरारोग्यवर्चस्यं बलवीर्य्यविवर्धनम्।
विद्याबुद्धिप्रदं नृणामप्रयत्नशुभंकरम् ॥ ७० ॥

१ यन्त्रलिखिम् इति पाठान्तरम्। २ अयत्नसुभगं करम् इत्यन्ये पठन्ति।

किस उपायके करनेसे मनुष्योंकी आयु, आरोग्य, तेज बल और वीर्य बढ़े, किस उपायसे मनुष्यकी विद्या, बुद्धि, तेज हो और विना ही यत्न किये मंगल प्राप्त हो जाय॥७०॥

येन लोका भविष्यन्ति महाबलपराक्रमाः ।
शुद्धचित्ताः परहिता मातापित्रोः प्रियंकराः ॥७१॥

जिससे मनुष्य महाबलवान्, पराक्रमी, विशुद्धचित्त, पराया हित करनेमें रत और उस कार्यके जो माता पिताको प्यारा हो करनेवाले होंगे ॥ ७१ ॥

स्वदारनिष्ठाः पुरुषाः परस्त्रीषु पराङ्मुखाः ।
देवतागुरुभक्ताश्च पुत्रस्वजनपोषकाः ॥ ७२ ॥

जिस प्रकारसे मनुष्य, अपनी स्त्रीमें रत, परस्त्रीविमुख, देवता व गुरुके भक्त और पुत्र व स्वजनोंके प्रतिपालक हों ॥ ७२ ॥

ब्रह्मज्ञा ब्रह्मविद्याश्च ब्रह्मचिन्तनमानसाः ।
सिद्ध्यर्थं लोकयात्रायाः कथयस्व हिताय यत् ७३

पुरुष जिस प्रकारसे ब्रह्मज्ञानसंपन्न और ब्रह्मपराय० हों, उस उपायको आप लोकयात्राकी सिद्धि और सबके हित करनेके लिये वर्णन करें ॥ ७३ ॥

कर्त्तव्यं यदकर्त्तव्यं वर्णाश्रमविभेदतः ।
विना त्वां सर्वलोकानां कस्त्राता भुवनत्रये ॥७४॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नो नाम प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥

वर्णाश्रमके विभागानुसार जो कुछ कर्तव्य और जो अकर्तव्य है वह सब आप प्रगट करें, आपके अतिरिक्त सबका उद्धार करनेवाला इस त्रिलोकमंडलमें और कौन है ? ॥७४॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादाबादनिवासि पं० बलदेवप्रसाद-मिश्रकृतभाषाटीकायां जीवनिस्तारोपाय-प्रश्नो नाम प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥

द्वितीयोल्लासः २.

इति देव्या वचः श्रुत्वा शंकरो लोकशंकरः ।
कथयामास तत्त्वेन महाकारुण्यवारिधिः ॥ १ ॥

इसके उपरांत करुणासागर, लोकमङ्गलकारी महादेवजी इस प्रकार देवी पार्वतीजीकी उक्ति सुनकर यथार्थ तत्त्वके कहनेका आरंभ करते हुए ॥ १ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

साधु पृष्टं महाभागे जगतां हितकारिणी ।
एतादृशः शुभः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ॥२॥

श्रीसदाशिव बोले-हे महाभागे ! तुम जगत्का हित करनेवाली हो, तुमने अत्यन्त सुन्दर बात पूछी है, पहले किसीने कभी ऐसा प्रश्न नहीं किया ॥ २ ॥

धन्यासि सुकृतज्ञासि हितासि कलिजन्मनाम् ।
यद्यदुक्तं त्वया भद्रे सत्यं सत्यं यथार्थतः ॥ ३ ॥

तुम धन्य और सुकृतज्ञ हो, वास्तवमें तुम ही कलियुगके जीवोंका हित करनेवाली हो. हे भद्रे ! तुमने जो कुछ मेरे प्रति कहा सो सब यथार्थमें सत्य है ॥ ३ ॥

सर्वज्ञा त्वं त्रिकालज्ञा धर्मज्ञा परमेश्वरि ।
भूतं भवद्भविष्यञ्च धर्म्ममुक्तं त्वया प्रिये ॥ ४ ॥

हे परमेश्वरि ! तुम सर्वज्ञ और त्रिकालकी जाननेवाली हो. तुमने भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान विषयमें जो धर्मानुगत बातें कहीं ॥ ४ ॥

यथातत्त्वं यथान्यायं यथायोग्यं न संशयः ।
कलिकल्मषदीनानां द्विजादीनां सुरेश्वरि ॥ ५ ॥

इसमें कोई संदेह नहीं कि, वह वास्तवमें न्यायानुसार योग्य और सत्य है. हे सुरेश्वरि ! कलिकल्मषसे ग्रसित, दीनभावको प्राप्त हुए द्विजादिकोंको ॥ ५ ॥

मेध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा ।
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत् ॥ ६ ॥

पवित्र अपवित्रका विचार नहीं रहेगा, इसकारण वे लोग श्रुति, स्मृति और संहितामें कहे कर्म संपादन करके किस प्रकारसे शुद्ध होंगे ॥ ६ ॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये ॥७॥

हे प्रिये ! मैं सत्य सत्य और फिर सत्य करके सत्य ही कहता हूं कि, कलिकालमें आगमपंथके सिवाय जीवके छुटकारेकी और दूसरी गति नहीं है ॥ ७ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे ।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान्यजेत्सुधीः ॥ ८ ॥

हे शिवे ! मैंने पहले श्रुति, स्मृति और पुराणादिमें कहा है कि, कलियुगमें तान्त्रिकविधानसे पंडित लोग देवताओंकी पूजा करें ॥ ८ ॥

कलावागममुल्लङ्घ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्त्तते ।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः ॥९॥

इस कलिकालमें जो पुरुष आगमके मार्गको लांघकर और मार्गमें दौड़ता है उसको सद्गति नहीं मिलती यह सम्पूर्ण सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ९ ॥

सर्वैर्वेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिः संहितादिभिः ।
प्रतिपाद्योऽस्मि नान्योऽस्ति प्रभुर्जगति मां विना १०

समस्त वेदशास्त्रोंसे, समस्त पुराणोंसे, समस्त स्मृतियोंसे और समस्त संहिताओंसे केवल मैं ही प्रतिपाद्य हुआ हूं (वास्तविक) इस संसारमें मेरे सिवाय और कोई प्रभु नहीं है ॥ १० ॥

आमनन्ति च ते सर्वे मत्पदं लोकपावनम् ।
मन्मार्गविमुखा[1] लोकाः पाषण्डा ब्रह्मघातिनः ॥ ११ ॥

वेदादि समस्त ग्रंथ मेरे पदको लोकपावन कहकर कीर्तन किया करते हैं, जो लोग मुझसे विमुख हैं वे ब्रह्महत्याके पापमें लिप्त और घोर पाखंडी हैं ॥ ११ ॥

अतो मन्मतमुत्सृज्य यो यत्कर्म्म समाचरेत् ।
निष्फलं तद्भवेद्देवि कर्त्तापि नारकी भवेत् ॥ १२ ॥

हे देवि ! मेरे मतका लंघन करके जो पुरुष कर्मका अनुसरण करता है, उसका वह कर्म निष्फल हो जाता है और कर्म-कर्ता भी नरकमें पड़ता है ॥ १२ ॥

मूढो मन्मतमुत्सृज्य योऽन्यन्मतमुपाश्रयेत् ।
ब्रह्महा पितृहा स्त्रीघ्नः स भवेन्नात्र संशयः ॥ १३ ॥

जो मूढ मनुष्य मेरे मतका छोड़कर और मतका आश्रय ग्रहण करता है, इसमें कोई संदेह नहीं कि, वह पुरुष ब्रह्मघाती, पितृघाती और स्त्रीहत्याकारी होता है ॥ १३ ॥

---

१ सन्मार्गविमुखा इति पाठान्तरम् ।

कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः ।
शस्ताः कर्म्मसु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु ॥ १४ ॥

कलिकालके मध्य तंत्रमें कहे हुए समस्त मंत्र सिद्ध और शीघ्र सिद्धिके देनेवाले होते हैं, ये समस्त मंत्र समस्त कर्म और जपयज्ञादिमें श्रेष्ठ हैं ॥ १४ ॥

निर्व्वीर्य्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव ।
सत्यादौ सफला आसन्कलौ ते मृतका इव ॥१५॥

जिस प्रकार विषहीन सर्पकी अवस्था हो जाती है, वैसे ही इस समय वैदिकमंत्रादि वीर्यरहित और मृतकतुल्य हो रहे हैं, वे मंत्र सत्ययुग, त्रेता और द्वापरयुगके अधिकारमें थे ॥ १५ ॥

पाञ्चालिका यथा भित्तौ सर्व्वेन्द्रियसमन्विताः ।
अमूरशक्ताः कार्य्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः ॥१६॥

जिसप्रकार गृहकी भीतमें खिची हुई चित्र-पुतली इन्द्रियोंसे युक्त होनेपर भी कार्यके सिद्ध करनेका सामर्थ्य नहीं रखती वैसी ही अवस्था अन्य मन्त्रोंकी है ॥ १६ ॥

अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म्म वन्ध्यास्त्रीसङ्गमो यथा ।
न तत्र फलसिद्धिः स्याच्छ्रम एव हि केवलम् १७॥

जिस प्रकार बाँझका संग करनेसे पुत्रकी प्राप्ति नहा होती, वैसे ही और मन्त्रोंकी सहायताके द्वारा कर्म करनेसे क्रिया सिद्ध नहीं होती, बरन् श्रम निरर्थक होता है ॥१७॥

कलावन्योदितैर्म्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्म्मतिः ॥ १८ ॥

जो पुरुष कलिकालके विषे और शास्त्रोंमें कहे हुए उपायोंसे सिद्ध होना चाहता है, वह मूढ प्यासा होकर गंगाजीके किनारे कुआ खोदता है ॥ १८ ॥

मद्वक्त्रादुदितं धर्म्मं हित्वान्यद्धर्म्ममीहते ।
अमृतं स्वगृहे त्यक्त्वा क्षीरमार्कं स वाञ्छति ॥ १९ ॥

जो मनुष्य मेरे मुखसे निकले हुए धर्मकी अवहेलना करके अन्य धर्मको ग्रहण करता है वह पुरुष अपने घरमें रखे हुए अमृतको छोड़कर आकके दूधको चाहता है ॥ १९ ॥

नान्यः पन्था मुक्तिहेतुरिहामुत्र सुखाप्तये ।
यथा तन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च सुखाय च ॥ २० ॥

जिसप्रकार तन्त्रमें कहा हुआ मार्ग मोक्ष और सुखके लिये उपयोगी है, वैसा मुक्तिदायक और इस लोक तथा परलोकमें सुखविधायक दूसरा पन्थ दृष्टि नहीं आता ॥ २० ॥

तन्त्राणि बहुधोक्तानि नानाख्यानान्वितानि च ।
सिद्धानां साधकानां च विधानानि च भूरिशः ॥ २१ ॥

हमने अनेक प्रकारके आख्यानोंसे युक्त अनेक प्रकारके तन्त्र प्रकाशित किये हैं, उनमें साधक व सिद्धोंके अर्थ नाना-विध व्यवस्था लिखी हैं ॥ २१ ॥

अधिकारिविभेदेन पशुबाहुल्यतः प्रिये ।
कुलाचारोदितं धर्म्मं गुप्तार्थं कथितं क्वचित् ॥ २२ ॥

हे प्रिये! अधिकारी भेदसे पशुभावकी अधिकता होनेके कारण रक्षाके लिये कहीं गुप्त अर्थवाला कुलाचारगत धर्म प्रकट किया है ॥ २२ ॥

जीवप्रवृत्तिकारीणि कानिचित्कथितान्यपि ।
देवा नानाविधाः प्रोक्ता देव्योऽपि बहुधा प्रिये २३

किसी किसी स्थलमें जीवोंकी प्रवृत्तिके लिये अनुरूप व्यवस्था की है. हे प्रिये! हमने अनेक प्रकारके देव और अनेक प्रकारकी देवियोंका तत्त्व प्रकट किया है ॥ २३ ॥

भैरवाश्चैव वेताला बटुका नायिकागणाः ।
शाक्ताः शैवा वैष्णवाश्च सौरगाणपतादयः[1] ॥ २४ ॥

भैरव, वेताल, बटुक, नायिका, शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर और गाणपत्यगणोंका विषय भी वर्णन किया है ॥ २४ ॥

नानामन्त्राश्च यन्त्राणि सिद्धोपाया ह्यनेकशः ।
भूरिप्रयाससाध्यानि यथोक्तफलदानि च ॥ २५ ॥

(इसके अतिरिक्त) अनेक प्रकारके मन्त्र और यन्त्र यथोक्तफलदायक, बहुतसे श्रमसे सिद्ध होनेवाले अनेक प्रकारके सिद्ध उपाय भी कहे हैं ॥ २५ ॥

१ सौरा गाणपतादय इति वा पठनीयम् ।

यथायथा कृताः प्रश्ना येन येन यदा यदा ।
तदा तस्योपकाराय तथैवोक्तं मया प्रिये ॥ २६ ॥

हे प्रिये ! जिस जिसने जिस जिस समय जैसा जैसा प्रश्न किया है, मैंने उसी समय उन लोगोंके मंगलार्थ वैसा ही उत्तर भी दिया है ॥ २६ ॥

सर्वलोकोपकाराय सर्व्वप्राणिहिताय च ।
युगधर्मानुसारेण याथातथ्येन पार्वति ॥ २७ ॥

हे पार्वति ! मैंने युगधर्मके अनुसार सर्वलोक और प्राणियोंके मंगलार्थ यथार्थ स्वरूपसे यह धर्म कीर्तन किया है ॥२७॥

त्वया यादृक्कृताः प्रश्ना न केनापि पुरा कृताः ।
तव स्नेहेन वक्ष्यामि सारात्सारं परात्परम् ॥२८॥

इस समय जैसे प्रश्न तुमने किये पहले ऐसे प्रश्न कभी किसीने नहीं किये। इस क्षणमें तुम्हारे स्नेहके वश हो, उस तत्त्वका जो कि परेसे भी परे और सारका भी सार है वह वर्णन करता हूँ ॥ २८ ॥

वेदानामागमानां च तन्त्राणां च विशेषतः ।
सारमुद्धृत्य देवेशि तवाग्रे कथ्यते मया ॥ २९ ॥

हे देवि ! समस्त वेद, आगम और विशेष करके तंत्रोंके सारको उद्धृत करके मैं तुम्हारे आगे कहता हूँ ॥ २९ ॥

यथा नरेषु तन्त्रज्ञाः[1] सरितां जाह्नवी यथा ।
यथाहं त्रिदिवेशानामागमानामिदं तथा ॥ ३० ॥

जिस प्रकार मनुष्योंमें तांत्रिक पुरुष श्रेष्ठ है, जैसे नदियोंमें गंगाजी बड़ी हैं, जिस प्रकार देवताओंके मध्य में देवताधिपति हूं वैसे ही तन्त्रोंमें यह महानिर्वाणतन्त्र श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

किं वेदैः किं पुराणैश्च किं शास्त्रैर्बहुभिः शिवे ।
विज्ञातेऽस्मिन्महातन्त्रे सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ३१ ॥

वेद, पुराण और बहुतसे शास्त्रोंका अनुशीलन करनेसे क्या फल है, हे देवि ! जो यह महातन्त्र जाना हुआ हो तो समस्त सिद्धियोंके प्राप्त करनेमें बाधा नहीं रहती ॥ ३१ ॥

यतो जगन्मङ्गलाय त्वयाहं विनियोजितः ।
अतस्ते कथयिष्यामि यद्विश्वहितकृद्भवेत् ॥ ३२ ॥

(देवि !) जब कि तुमने जगत्‌के हितार्थ मुझको नियोजित किया है, तब जिससे जगत्‌का हित हो, उस विषयको मैं तुमसे कहता हूं ॥ ३२ ॥

कृते विश्वहिते देवि विश्वेशः परमेश्वरि ।
प्रीतो भवति विश्वात्मा यतो विश्वं तदाश्रितम् ३३ ॥

१ यथा नरेषु यन्त्रज्ञा इति वा पाठः ।

हे देवि ! हे परमेश्वरि ! जगत्का हित होनेपर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं कारण कि, वह विश्वके आत्मास्वरूप हैं और विश्व (संसार) उनके आश्रयमें स्थिर हो रहा है ॥ ३३ ॥

स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।
स्वप्रकाशः सदापूर्णः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ ३४ ॥

वह एक अद्वितीय, सत्य, नित्य, परात्पर, ब्रह्मादि देवताओंसे भी परे हैं और स्वयंप्रकाश–अर्थात् उनको चंद्र सूर्यादिके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं है, वे सतत पूर्ण और सच्चिदानन्द हैं ॥ ३४ ॥

निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः ।
गुणातीतः सर्वसाक्षी सर्वात्मा सर्वदृग्विभुः ॥ ३५ ॥

वह निर्विकार, निराधार (आश्रयशून्य), निर्विशेष (स्वगतादि भेदरहित), निराकुल (आकुलताशून्य), गुणातीत (शीत, उष्ण, सुखदुःखादि सत्त्वादि वा इनसे भी परे), सर्वसाक्षी (सबके शुभाशुभ कर्मोंको साक्षात् देखनेवाला), सर्वात्मा (सबके स्वरूप), सर्वद्रष्टा (सब पदार्थोंके देखनेवाले जो कि लोकमें हैं) और व्यापक ॥ ३६ ॥

गूढः सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी सनातनः ।
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥ ३६ ॥

१ सुप्रकाश इति पाठान्तरम् ।

वह गूढभावसे सर्वप्राणियोंमें विराजमान रहते हैं, वह सर्वव्यापी और सनातन (आदिअन्तशून्य हैं), उन्होंने समस्त इन्द्रियोंको और उनकी शक्तिको प्रकाशित किया तो है, परन्तु उनके इन्द्रियां नहीं हैं ॥ ३६ ॥

लोकातीतो लोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः।

स वेत्ति विश्वं सर्वज्ञस्तं न जानाति कश्चन ॥३७॥

वह लोकोंसे परे हैं और सब लोकोंके कारण हैं, वह मन और वाणीसे नहीं जाने जाते, वे सर्वज्ञ पुरुष सब जानते हैं; परन्तु उनको कोई नहीं जान सकता ॥ ३७ ॥

तदधीनं जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।

तदालम्बनतस्तिष्ठेदवितर्क्यमिदं जगत् ॥ ३८ ॥

चराचरसहित यह त्रिलोकमंडल उनके अवलंबनसे स्थित हो रहा है। यह अप्रतर्क्य जगत् उसकी अधीनताको नहीं छोड़ सकता ॥ ३८ ॥

तत्सत्यतामुपाश्रित्य सद्वद्भाति पृथक्पृथक्[1]।

तेनैव हेतुभूतेन वयं जाता महेश्वरि ॥ ३९ ॥

यह अनित्य जगत् उनकी सत्यताके आश्रयसे सत्यके समान पृथग्भावसे प्रकाशित हो रहा है; उनहीके हेतुभूत होनेसे हम उनसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥

---

१ समुद्भाति इति वा पाठः।

कारणं सर्वभूतानां स एकः परमेश्वरः ।
लोकेषु सृष्टिकरणात्स्रष्टा ब्रह्मेति गीयते ॥ ४० ॥

वही एक परमेश्वर सर्वभूतोंका कारण है, उसने सृष्टि की है, इस कारण उसका नाम सृष्टिकर्ता और बृहत् होनेसे उसका नाम ब्रह्मा है ॥ ४० ॥

विष्णुः पालयिता देवि संहर्त्ताहं तदिच्छया ।
इन्द्रादयो लोकपालाः सर्वे तद्वशवर्तिनः ॥ ४१ ॥

हे देवि ! विष्णुजी उनकी इच्छासे पालन करते हैं, मैं भी संहार कार्यमें नियुक्त हो रहा हूं। इंद्रादि लोकपालगण भी उनकी आज्ञाके अनुसार चलते हैं ॥ ४१ ॥

स्वे स्वेऽधिकारे निरतास्ते शासन्ति तदाज्ञया ।
त्वं परा प्रकृतिस्तस्य पूज्यासि भुवनत्रये ॥ ४२ ॥

उनकी आज्ञासे वे अपने अपने अधिकारमें नियुक्त रहकर इस जगत्का शासन करते हैं, तुम प्रधान प्रकृति हो इस कारण तुम त्रिलोकीमें पूजित हुई हो ॥ ४२ ॥

तेनान्तर्यामिरूपेण तत्तद्विषययोजिताः ।
स्वस्वकर्म्म प्रकुर्व्वन्ति न स्वतन्त्राः कदाचन ॥ ४३ ॥

सर्वान्तर्यामी उस ईश्वरके नियोगसे जीवगण अपना अपना कर्म किया करते हैं, कोई कभी स्वाधीन भावसे नहीं चल सकता ॥ ४३ ॥

१ वसन्ति इति पाठः ।

यद्भयाद्वाति वातोऽपि सूर्य्यस्तपति यद्भयात् ।
वर्षन्ति तोयदाः काले पुष्यन्ति तरवो वने ॥४४॥

जिसके भयसे वायु प्रवाहित हो रही है, सूर्य भगवान् किरणोंको फैला रहे हैं, मेघ समयपर जल वर्षाते हैं और वनमें वनवृक्ष फूलते हैं ॥ ४४ ॥

कालं कालयते काले मृत्योर्मृत्युर्भियो भयम् ।
वेदान्तवेद्यो भगवान्यत्तच्छब्दोपलक्षितः ॥ ४५ ॥

जो प्रलयमें निमेषादि कालको भी ग्रास करते हैं, जो मृत्युके मृत्यु और भयके भयस्वरूप हैं, जो वेदान्तवेद्य यत् तत् शब्दसे उपलक्षित हैं, जो भगवान् हैं ॥ ४५ ॥

सर्वे देवाश्च देव्यश्च तन्मयाः सुरवन्दिते ।
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं तन्मयं सकलं जगत् ॥४६॥

हे देववन्दिते ! समस्त देव देवीगण और ब्रह्मासे आरम्भ करके स्तम्ब (तृणादिक, तृणका अग्रभाग पर्यंत समस्त) जगत् तन्मय है ॥ ४६ ॥

तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ।
तदाराधनतो देवि सर्व्वेषां प्रीणनं भवेत् ॥ ४७ ॥

उन सर्वेश्वरके परितुष्ट करनेसे जगत् परितुष्ट रहता है और प्रसन्न होनेसे जगत् प्रसन्न होता है, हे देवि ! उनकी आराधनासे सबको प्रीति प्राप्त हो जाती है ॥ ४७ ॥

तरोर्मूलाभिषेकेण यथा तद्भुजपल्लवाः ।
तृप्यन्ति तदनुष्ठानात्तथा सर्व्वेऽमरादयः ॥ ४८ ॥

जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखा व पत्र बढ़ते हैं, वैसे ही उन परमेश्वरकी आराधनासे समस्त देवता तृप्तिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४८ ॥

यथा तवार्चनाद्ध्यानात्पूजनाज्जपनात्प्रिये ।
भवन्ति तुष्टाः सुन्दर्य्यस्तथा जानीहि सुव्रते ॥ ४९ ॥

हे सुव्रते ! प्रिये ! तुम्हारी अर्चना करनेसे, तुम्हारा ध्यान करनेसे, तुम्हारी पूजा करनेसे और तुम्हारा जप करनेसे मातृ-गण सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

यथा गच्छन्ति सरितोऽवशेनापि सरित्पतिम् ।
तथार्च्चादीनि कर्म्माणि तदुद्देश्यानि पार्व्वति ॥ ५० ॥

हे पार्वति ! जिस प्रकार नदियें, अवश होकर समुद्रमें प्रवेश करती हैं, वैसे ही पूजा ध्यानादि समस्त कर्म केवल उस एक ईश्वरमें पहुँच जाते हैं ॥ ५० ॥

यो यो यान्यान्यजेद्देवाञ्छ्रद्धया यद्यदाप्तये ।
तत्तद्ददाति सोऽध्यक्षस्तैस्तैर्देवगणैः शिवे ॥ ५१ ॥

जो जो पुरुष जिस २ वस्तुको पानेके अभिप्रायसे श्रद्धा-सहित जिस जिस देवताकी अर्चना करते हैं, परमेश्वर अध्यक्षस्वरूपसे उन देवताओंके द्वारा उन उन आदमियोंको वैसा ही फलदान कराता है ॥ ५१ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रे कथ्यते प्रिये ।
ध्येयः पूज्यः सुखाराध्यस्तं विना नास्ति मुक्तये ५२॥

हे प्रिये ! और अधिक तुमसे क्या कहूं; संक्षेपसे केवल यही कहता हूं कि, उस परमेश्वरका ही ध्यान चाहिये, वही पूज्य हैं, वही सुखाराध्य हैं, उनके अतिरिक्त जीवकी मुक्तिका दूसरा उपाय नहीं है ॥ ५२ ॥

नायासो नोपवासश्च कायक्लेशो न विद्यते ।
नैवाचारादिनियमो नोपचाराश्च भूरिशः ॥ ५३ ॥

शरीरको कष्ट व ईश्वरकी आराधना करनेमें परिश्रम, उपवास, आचार विचारादिका प्रयोजन नहीं है और ऐसे (बहुत) उपचारोंकी भी आवश्यकता नहीं ॥ ५३ ॥

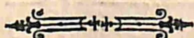
न दिक्कालविचारोऽस्ति न मुद्रान्याससंहतिः ।
यत्साधने कुलेशानि तं विना कोऽन्यमाश्रयेत् ५४॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तरे ब्रह्मोपासनक्रमो नाम द्वितीयोल्लासः॥२॥

हे कुलेशानि ! इसकी साधनामें दिक् वा कालके विचारका प्रयोजन नहीं है, मुद्रा वा न्यासकी भी आवश्यकता नहीं है अतएव उन परमेश्वरके सिवाय किसी दूसरेका आश्रय और कौन ग्रहण करेगा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तरे ब्रह्मोपासनक्रमो नाम द्वितीयोल्लासः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोल्लासः ।



श्रीदेव्युवाच ।

देवदेव महादेव देवतानां गुरोर्गुरुः ।
वक्ता त्वं सर्वशास्त्राणां मन्त्राणां साधनस्य च ॥ १ ॥

श्रीदेवीजी बोली-हे देव ! महादेव ! देवताओंके जो गुरु हैं, आप उनके भी गुरु हैं आप समस्त शास्त्र, मंत्र और साधनके वक्ता हैं ॥ १ ॥

कथितं यत्परं ब्रह्म परमेशं परात्परम् ।
यस्योपासनतो मर्त्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ २ ॥

आपने जिन परात्पर परमेश्वर परब्रह्मका वर्णन किया और जिनकी उपासना करनेसे मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

केनोपायेन भगवन् परमात्मा प्रसीदति ।
किं तस्य साधनं देव मन्त्रः को वा प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! किस उपायसे वे परमात्मा प्रसन्न होते हैं ? हे देव ! उनका साधन वा मंत्र किस प्रकारसे है ? ॥ ३ ॥

किं ध्यानं किं विधानं च परेशस्य[1] महात्मनः ।
तत्त्वेन श्रोतुमिच्छामि कृपया कथय प्रभो ॥ ४ ॥

१-"परेतस्य परात्मनः" इति क्वाचित्कः पाठः ।

हे प्रभो ! उन परमात्मा परमेश्वरका ध्यान क्या है और विधि कैसी है, मैं उसका यथार्थ तत्त्व श्रवण करनेके लिये उत्सुक हुई हूं, अतएव कृपा करके मुझसे कहिये ? ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

अतिगुह्यं परं तत्त्वं शृणु मत्प्राणवल्लभे ।
रहस्यमेतत्कल्याणि न कुत्रापि प्रकाशितम् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे प्राणवल्लभे ! तुम मुझसे यह अतिगुप्त ब्रह्मतत्त्व श्रवण करो; जो मैंने (आजतक) इस रहस्यको कहीं नहीं प्रकाशित किया है ॥ ५ ॥

तव स्नेहेन वक्ष्यामि मम प्राणाधिकं परम् ।
ज्ञेयं भवति तद्ब्रह्म सच्चिद्विश्वमयं परम् ॥ ६ ॥

वह सच्चित् विश्वात्मा परब्रह्म किस प्रकारसे जाना जा सकता है यह गुप्त विषय मुझको प्राणोंसे भी अधिक प्यारा पदार्थ है, तुम्हारे प्रति स्नेह होनेसे मैं तुमसे कहता हूं ॥६॥

यथातत्त्वस्वरूपेण लक्षणैर्वा महेश्वरि ।
सत्तामात्रं निर्विशेषमवाङ्मनसगोचरम् ॥ ७ ॥

हे महेश्वरि ! जो सत्यासत्य निर्विशेष और वचन व मनके अगोचर हैं उनको याथातथ्य स्वरूपमें वा लक्षणके द्वारा किस प्रकारसे जाना जा सकता है ॥ ७ ॥

असत्त्रिलोकीसद्भानं स्वरूपं ब्रह्मणः स्मृतम् ।
समाधियोगैस्तद्वेद्यं सर्वत्र समदृष्टिभिः ।
द्वन्द्वातीतैर्निर्विकल्पैर्देहात्माध्यासवर्ज्जितैः ॥ ८ ॥

जो अनित्य त्रिलोकीमें स्वस्वरूपसे प्रतिभात हो रहे हैं, जो ब्रह्मस्वरूप सर्वत्र समदृष्टि समाधिकी सहायतासे जाना जा सकता है, जो द्वन्द्वसे परे निर्विकल्प और शरीरमें अहन्ता ज्ञानसे रहित है ॥ ८ ॥

यतो विश्वं समुद्भूतं येन जातं च तिष्ठति ।
यस्मिन्सर्व्वाणि लीयन्ते ज्ञेयं तद्ब्रह्म लक्षणैः ॥९॥

जिनसे विश्व (संसार) उत्पन्न हुआ है और जिनसे उत्पन्न होकर सारा संसार अवस्थिति करता है तथा जिनमें सब संसार लयको प्राप्त हो जाता है ऐसे लक्षणोंसे ब्रह्मको जाना जा सकता है ॥ ९ ॥

स्वरूपवुद्ध्या यद्वेद्यं तदेव लक्षणैः शिवे ।
लक्षणैराप्तुमिच्छूनां विहितं तत्र साधनम् ॥ १०॥
तत्साधनं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहिता प्रिये ॥ ११ ॥

हे शिवे ! स्वरूपबुद्धि द्वारा लक्षणोंसे जो ब्रह्मपदार्थ उपलब्ध होता है, तटस्थ लक्षणोंकी सहायतासे भी वह ब्रह्म जाना जा सकता है। हे प्रिये! तटस्थलक्षणोंकी सहायतासे जो ब्रह्मको पानेके अभिलाषी हैं, उनको आगे लिखा हुआ साधन करना चाहिये, मैं उस साधनतत्त्वको कहता हूं तुम सावधान होकर श्रवण करो ॥ १० ॥ ११ ॥

तत्रादौ कथयाम्याद्ये मन्त्रोद्धारं महेशितुः ।
प्रणवं पूर्व्वमुद्धृत्य सच्चित्पदमुदाहरेत् ।
एकं पदान्ते ब्रह्मेति मन्त्रोद्धारः प्रकीर्त्तितः ॥१२॥

हे आद्ये ! पहले तुमसे मन्त्रोद्धार वर्णन करता हूं:– प्रथम "प्रणव" कीर्तन करके फिर "सच्चित्" पद उच्चारण करना चाहिये, फिर "एकम्" पदके पीछे "ब्रह्म" पद कीर्तन करनेसे "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" मन्त्रका उद्धार होगा ॥ १२ ॥

सन्धिक्रमेण मिलितः सप्तार्णोऽयं मनुर्मतः ।
तारहीनेन देवेशि षड्वर्णोऽयं मनुर्भवेत्[1] ॥ १३ ॥

हे देवि ! यह मन्त्र सन्धिक्रमके अनुसार मिलकर सप्तवर्ण होगा और ओंकार अलग करके उच्चारण करनेसे यह षडक्षर होगा १३

सर्व्वमन्त्रोत्तमः साक्षाद्धर्म्मार्थकाममोक्षदः ।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ॥१४॥

समस्त मन्त्रोंसे यह मन्त्र श्रेष्ठ है और यह साक्षात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका देनेवाला है, इसमें सिद्ध व असिद्ध व अरिमित्र दोषकी सम्भावना नहीं है॥ १४ ॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं न राशिगणनं तथा ।
कुलाकुलादिनियमो[2] न संस्कारोऽत्र विद्यते ।
सर्व्वथा सिद्धमन्त्रोऽयं नात्र कार्य्या विचारणा १५॥

---

१ क्वचित् 'षड्वर्णो यो मनुर्मत' इति पाठः।२ "कुलाकुलानां नियमः" इत्यन्ये पठन्ति ।

इसमें तिथि, नक्षत्र, राशिगण, कुलाकुलादिके नियम या संस्कारकी आवश्यकता नहीं है। यह मन्त्र सर्वथा सिद्ध है। इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

बहुजन्मार्ज्जितैः पुण्यैः सद्गुरुर्यदि लभ्यते ।
तदा तद्वक्त्रतो ज्ञात्वा जन्मसाफल्यमाप्नुयात् १६॥

यदि अनेक जन्मसंचित सुकृतिके फलसे सद्गुरु प्राप्त हो जाय तो उसके मुखसे मंत्र श्रवण करके शिष्यगण जन्म सफल कर सकते हैं ॥ १६ ॥

चतुर्व्वर्गं करे कृत्वा परत्रेह च मोदते ॥ १७ ॥

और(तभी) मनुष्य चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) को प्राप्त करके यहां और परलोकमें आनंद भोगकर सकता है॥१७॥

स धन्यः स कृतार्थश्च स कृती स च धार्म्मिकः ।
स स्नातः सर्व्वतीर्थेषु सर्व्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥१८॥

वही धन्य है, वही कृतार्थ है, वही कृती है, वही धार्मिक है, उसने ही सब तीर्थोंमें स्नान किया है और सब यज्ञोंमें दीक्षित हुआ है ॥ १८ ॥

सर्व्वशास्त्रेषु निष्णातः सर्व्वलोकप्रतिष्ठितः ।
यस्य कर्णपथोपान्तप्राप्तो मन्त्रमहामणिः ॥ १९ ॥

१-'लब्ध्वा' इति केचित्पठन्ति । २ केश्चित्-" कर्णपथोपान्ते प्राप्तः " इत्यपि पठ्यते ।

वही सर्वशास्त्रोंका वेत्ता है (अधिक क्या कहें) उसकी सबलोकोंमें प्रतिष्ठा है कि, जिसके कर्णकुहरमें ब्रह्म मंत्ररूप महामणिने स्थान पाया है ॥ १९ ॥

धन्या माता पिता तस्य पवित्रं तत्कुलं शिवे ।
पितरस्तस्य सन्तुष्टा मोदन्ते त्रिदशैः सह ॥
गायन्ति गायनीं गाथां पुलकाञ्चितविग्रहाः॥२०॥

हे शिवे ! उसके माता पिता धन्य हो जाते हैं, कुल पवित्र हो जाता है और पितृलोग संतुष्ट होकर देवताओंके साथ आनंद भोगते हुए इस गाथाको गाया करते हैं कि ॥२०॥

अस्मत्कुले कुलश्रेष्ठो जातो ब्रह्मोपदेशिकः ।
किमस्माकं गयापिण्डैः किं तीर्थैः श्राद्धतर्पणैः २१॥

हमारे वंशमें उत्पन्न हुए पुत्रने ब्रह्ममंत्रसे दीक्षित हो कुलको पवित्र किया है। हमारे निमित्त गया वा तीर्थक्षेत्रमें पिंड देने या श्राद्धादि करनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २१ ॥

किं दानैः किं जपैर्होमैः किमन्यैर्बहुसाधनैः ।
वयमक्षयतृप्ताः स्मः सत्पुत्रस्यास्य साधनात्॥२२॥

जब कि, हमारे कुलमें सत्पुत्र उत्पन्न होकर ब्रह्मसाधनासे सिद्ध हुआ है तब हमारे लिये दान, जप, होम वा अन्य साधनाओंसे क्या प्रयोजन है ? (अधिक क्या कहें) हम अक्षयतृप्तिको प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥

श्रृणु देवि जगद्वन्द्ये सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
परब्रह्मोपासकानां किमन्यैः साधनान्तरैः ॥२३ ॥

हे देवि ! हे जगत्पूज्ये ! मैं तुमसे सत्य ही सत्य कहता हूं कि, जो लोग परब्रह्मके उपासक हैं उनको और कोई साधनोंका प्रयोजन नहीं है ॥ २३ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
ब्रह्मभूतस्य देवेशि किमवाप्यं जगत्त्रये ॥ २४ ॥

हे देवेशि ! ब्रह्ममन्त्रको ग्रहण करते ही देही ब्रह्ममय हो जाता है, जो ब्रह्ममय हो जाता है उसके लिये तीनों जगत्में कौनसी वस्तु दुर्लभ है अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ २४ ॥

किं कुर्वन्ति ग्रहा रुष्टा वेतालाश्चेटकादयः ।
पिशाचा गुह्यका भूता डाकिन्यो मातृकादयः ।
तस्य दर्शनमात्रेण पलायन्ते पराङ्मुखाः ॥ २५॥

ग्रह, वेताल, चेटकादि पिशाचगण, गुह्यक, भूत, डाकिनी और मातृकादिगण रूठकर उसका क्या कर सकती हैं, क्योंकि ये उसके दर्शनमात्रसे ही मुख मोड़कर भाग जाती हैं ॥२५॥

रक्षितो ब्रह्ममन्त्रेण प्रावृतो ब्रह्मतेजसा ।
किं बिभेति ग्रहादिभ्यो मार्त्तण्ड इव चापरः॥२६॥

जो ब्रह्ममन्त्रसे (भलीभांति) रक्षित है और ब्रह्मतेजसे (भलीभांति) ढका हुआ है वह दूसरे सूर्यके समान है, अतः वह ग्रहादिकोंसे क्या भय पा सकता है अर्थात् नहीं ॥ २६ ॥

तं दृष्ट्वा ते भयापन्नाः सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ।
विद्रवन्ति च नश्यन्ति पतङ्गा इव पावके ॥ २७॥

सिंहको देखकर जैसी अवस्था हाथियोंकी हो जाती है वैसे ही उसको देखकर ग्रहादि भाग जाते हैं और अग्निमें पतंगोंकी जैसी दशा हो जाती है वैसे ही ग्रहगण उसके तेजसे नष्ट हो जाते हैं ॥ २७ ॥

न तस्य दुरितं किंचिद्ब्रह्मनिष्ठस्य देहिनः ।
सत्यपूतस्य शुद्धस्य सर्वप्राणिहितस्य च ।
को वोपद्रवमन्विच्छेदात्मावघातकं विना ॥२८॥

सत्यपूत सबका उपकार करनेवाला और परिशुद्ध (निर्मल अन्तःकरणवाले) ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों पर कोई भी पाप आक्रमण नहीं कर सकता, आत्मघातीके सिवाय और कौन पुरुष ऐसे महात्माके प्रति उपद्रव करनेकी इच्छा कर सकता है ॥२८॥

ये द्रुह्यन्ति खलाः पापाः परब्रह्मोपदेशिने[1] ।
स्वद्रोहं ते प्रकुर्वन्ति ह्यतिरिक्तायतः सतः ॥ २९ ॥

जो खल मतियुक्त पापाचारी पुरुष परब्रह्मोपासकके साथ विरुद्ध व्यवहार करते हैं, वे अपने आप ही अपना बुरा करते हैं, क्योंकि परब्रह्मका उपासक और ब्रह्म एक ही है, अलग या दूसरा नहीं है ॥ २९ ॥

---

१ "परब्रह्मोपदेशिनः" इति क्वचित्कः पाठः ।

स तु सर्वहितः साधुः सर्वेषां प्रियकारकः ।
तस्यानिष्टे कृते देवि को वा स्यान्निरुपद्रवः ॥३०॥

हे देवि ! ब्रह्मोपासक पुरुष सबका हितकारी और सर्वप्रियकारक साधु होता है, बस, ऐसे महात्माका अनिष्ट करनेसे कौन पुरुष निरुपद्रव रह सकता है ? ॥ ३० ॥

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यो न जानाति साधकः ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि तस्य मन्त्रो न सिद्ध्यति॥३१॥

जो साधक मन्त्रका अर्थ और उसकी चैतन्यशक्तिको नहीं जानता वह शतलक्ष जप करनेसे भी सिद्ध नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

अतोऽस्यार्थं च चैतन्यं कथयामि शृणु प्रिये ।
अकारेण जगत्पाता संहर्त्ता स्यादुकारतः ॥
मकारेण जगत्स्रष्टा प्रणवार्थ उदाहृतः ॥ ३२ ॥

हे प्रिये ! इस कारणसे मैं इस मन्त्रके अर्थको और उसकी चैतन्यशक्तिको कहता हूं, तुम श्रवण करोः—" अ "—कारका अर्थ है जगत्पाता, " उ "—कारका अर्थ है संहारकर्ता और " म "—कारका अर्थ जगत्की सृष्टि करनेवाला है; प्रणव (ओं) का यही अर्थ है ॥ ३२ ॥

सच्छब्देन सदास्थायि चिच्चैतन्यं प्रकीर्तितम्॥३३॥

" सत् " शब्दका अर्थ सदास्थायि और "चित्" शब्दका अर्थ चैतन्य है ॥ ३३ ॥

एकमद्वैतमीशानि बृहत्त्वाद्ब्रह्म गीयते ।

मन्त्रार्थः कथितो देवि साधकाभीष्टसिद्धिदः॥ ३४॥

हे ईशानि ! हे देवि ! "एक" शब्दका अर्थ द्वैतभाववर्जित है, बृहच्छब्दमें "ब्रह्म" अर्थप्रयुक्त होता है, मैंने साधकोंके अभीष्टका देनेवाला इस मन्त्रका अर्थ तुमसे कहा ॥ ३४ ॥

मन्त्रचैतन्यमेतत्तु तदधिष्ठातृदेवता ।

तज्ज्ञानं परमेशानि भक्तानां सिद्धिदायकम्॥ ३५॥

इसके अधिष्ठातृ देवताके ज्ञान होनेका नाम ही मंत्रचैतन्य है. हे परमेश्वरि ! मंत्रके अधिष्ठाता देवताके ज्ञानके द्वारा भक्तोंको सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ३५ ॥

अस्या[1]धिष्ठातृ देवेशि सर्वव्यापि सनातनम् ।

अवितर्क्यं निरा[2]कारं वाचातीतं निरञ्जनम्॥ ३६॥

हे देवेशि ! जो अवितर्क्य, सर्वव्यापी, सनातन, निराकार, वाचातीत और निरंजन है वही इस मंत्रके प्रतिपाद्य देवता है ३६

वाङ्मायाकमलाद्येन तारहीनेन पार्वति ।

दीयते विविधा विद्या माया श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ३७॥

हे पार्वति ! यह मंत्र प्रणव (ओं) रहित होके "ऐं" "ह्रीं"

१-'तस्याधिष्ठातृ' इति पाठान्तरम् । २-'अवितर्क्यं निरातङ्कम्' इति पाठस्तु नास्मभ्यं रोचते ।

"श्रीं" को प्रणवस्थानमें प्राप्त कर विविध विद्या, माया और सर्वतोमुखी लक्ष्मी देता है ॥ ३७ ॥

तारेण तारहीनेन प्रत्येकं सकलं पदम् ।
युग्मायुग्मक्रमेणापि मन्त्रोऽयं विविधो भवेत् ३८

इस मन्त्रके प्रत्येक पदमें अथवा समस्त पदोंमें प्रणवयुक्त अथवा रहित करनेसे किंवा इसके दो दो पदोंमें प्रणवयुक्त अथवा अलग करनेसे अनेक प्रकारके मंत्र उत्पन्न होते हैं॥३८॥

ऋषिः सदाशिवो ह्यस्य छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवता परमं ब्रह्म सर्वान्तर्यामि निर्गुणम् ॥ ३९ ॥

इस मन्त्रके ऋषि सदाशिव हैं, छंद अनुष्टुप् है, देवता सर्वान्तर्यामि निर्गुण परब्रह्म है ॥ ३९ ॥

---

१ जिसप्रकार 'ऐं सच्चिदेकं ब्रह्म' इस मंत्रके द्वारा विद्या, 'ह्रीं सच्चिदेकं ब्रह्म' इस मंत्रसे माया, 'श्रीं सच्चिदेकं ब्रह्म' इस मंत्रसे लक्ष्मीकी आराधना की जाती है ।

२–प्रत्येक पदमें प्रणव मिलाकर यथाः–'ओंसत्, ओंचित्, ओम् एकम्, ओंब्रह्म' । प्रणवरहित करके यथाः-'सत् चित् एकं ब्रह्म' । समस्तपदमें प्रणव मिलाकर यथाः–'ओंसच्चिदेकं ब्रह्म' । प्रणवरहित यथाः–'सच्चिदेकं ब्रह्म' । दो दो पदमें प्रणव मिलाकर यथा–'ओं सद्ब्रह्म, ओं चित् ब्रह्म, ओं एकं ब्रह्म, ओंसच्चित्, ओंचिदेकम्' । प्रणवरहित करके यथाः–सद्ब्रह्म, चिद्ब्रह्म एकं ब्रह्म, सच्चित्, चिदेकम् ' ॥

चतुर्वर्गफलावाप्त्यै विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ कथयामि शृणु प्रिये ॥४०॥

हे प्रिये ! चतुर्वर्ग फलप्राप्तिके लिये विनियोग करना चाहिये और अब अङ्गन्यास, करन्यासका वर्णन करता हूं, श्रवण करो ॥ ४० ॥

तारं सच्चिदेकमिति ब्रह्मेति सकलं ततः ।
अंगुष्ठतर्जनीमध्यानामिकासु महेश्वरि ॥४१॥
कनिष्ठयोः करतलपृष्ठयोः सुरवन्दिते ।
नमःस्वाहावषट्हुंवौषट्-फडन्तैर्यथाक्रमम् ॥४२॥

प्रथम करन्यासमें " ओंसत्, चित्, ब्रह्म, एकम् (ओंसच्चिदेकं ब्रह्म) " यथा क्रमसे इन कई शब्दोंको उच्चारण करके अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा इन उंगलियोंमें और दोनों करतलपृष्ठमें अन्त " नमः " " स्वाहा " " वषट् " " हुं " " वौषट् " और " फट् " यथाक्रमसे उच्चारण करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

---

१ प्रयोगो यथाः—सदाशिवाय ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। "सर्वान्तर्यामिनिर्गुणपरमब्रह्मणे देवतायै नमः हृदि । धर्मार्थकामोक्षावाप्तये विनियोगः ।" इस मंत्रसे ऋषिन्यास करके फिर अङ्गन्यास करन्यास करे ।

२—'नमः—स्वाहावषट्—वौषट्-फडन्तैश्च यथाक्रमम्' इति पाठस्तु प्रमादविजृम्भितः ।

न्यसेन्न्यासोक्तविधिना साधकः सुसमाहितः ।
हृदादिकरपर्य्यन्तमेवमेव विधीयते[1] ॥ ४३ ॥

साधक इस प्रकार सावधानमनसे न्यासोक्त विधिके अनुसार कर[2]न्यास करे, क्रमसे हृदयादिसे लेकर करतक अंग[3]-न्यास करे ॥ ४३ ॥

प्राणायामं ततः कुर्य्यान्मूलेन प्रणवेन वा ।
मध्यमानामिकाभ्यां च दक्षहस्तस्य पार्वति ॥ ४४ ॥

हे पार्वति ! इसके उपरांत "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" इस मूलमन्त्र अथवा प्रणवके द्वारा दाहिने हाथकी मध्यमा और अनामिका अंगुलीसे प्राणायाम करना चाहिये ॥ ४४ ॥

वामनासापुटं धृत्वा दक्षनासापुटेन[4] च ।
पूरयेत्पवनं मन्त्री मूलमष्टमितं जपन् ॥ ४५ ॥

१–'हृदादिकरपर्यन्तमेवमेवं विधीयते ।' इति पाठस्तु न समीचीनः, किन्तु 'हृदादिपाद–' इति समीचीनतरः ।

२–करन्यास-प्रयोगो यथा–"ओं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । सत् तर्जनीभ्यां स्वाहा । चिन्मध्यमाभ्यां वषट् । एकमनामिकाभ्यां हुम् । ब्रह्म कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ओंसच्चिदेकं ब्रह्म करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।"

३–अङ्गन्यासप्रयोगो यथा–"ओं हृदयाय नमः सच्छिरसे स्वाहा । चिच्छिखायै वषट् । एकं कवचाय हुम् । ब्रह्म नेत्रत्रयाय वौषट् । ओं सच्चिदेकं ब्रह्म करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।"

४--'दक्षनासापुटेन सः' इति पुस्तकान्तरस्थः पाठः ।

वाम नासापुट धारण करके दक्षिण नासापुटके द्वारा वायुको खैंचकर आठ बार मूलमन्त्र जपे। (या प्रणवका उच्चारण करे) ॥ ४५ ॥

अङ्गुष्ठेन दक्षनासां धृत्वा कुम्भकयोगतः ।
जपेद्द्वात्रिंशतावृत्त्या ततो दक्षिणनासया ॥ ४६ ॥

इसके उपरान्त अंगुष्ठसे दक्षिण नासा धारण करके श्वासको रोके और बत्तीस बार मूलमन्त्रका जप करे, फिर दाहिनी नासिका द्वारा-॥ ४६ ॥

शनैः शनैस्त्यजेद्वायुं जपन्षोडशधा मनुम् ।
वामनासापुटेऽप्येवं पूरकुम्भकरेचकम् ॥ ४७ ॥

धीरे धीरे श्वास छोड़तेमें सोलह बार मूलमन्त्रको जपे। फिर इसी प्रकार वाम नासा पुटसे रेचक, पूरक और कुम्भक करे ॥ ४७ ॥

पुनर्दक्षिणतः कुर्य्यात्पूर्ववत्सुरपूजिते ।
प्राणायामविधिः प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य साधने ॥४८॥

हे सुरवन्दिते ! फिर दक्षिण नासासे आरम्भ करके वामनासापर क्रमानुसार पहलेके समान रेचक, पूरक और कुंभक करे। मैंने ब्रह्मसाधनसम्बन्धमें यह प्राणायामकी विधि तुमसे कही ॥ ४८ ॥

ततो ध्यानं प्रकुर्व्वीत साधकाभीष्टसाधनम् ॥४९॥

इसके उपरान्त साधक अपने अभीष्टके सिद्ध करनेवाले ध्यानको करे ॥ ४९ ॥

हृदयकमलमध्ये निर्व्विशेषं निरीहं
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।
जननमरणभीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपं
सकलभुवनबीजं ब्रह्म चैतन्यमीडे ॥ ५० ॥

जो निर्विशेष (अनेक प्रकारके भेदोंसे रहित) और चेष्टारहित हैं, जो हरिहर और ब्रह्माके जानने योग्य हैं, जो योगीन्द्रोंके ध्यानमें भी आते हैं, (जिनके प्राप्त होनेसे) जन्म मृत्युका भय दूर हो जाता है, जो समस्त भुवनके बीजस्वरूप हैं, मैं उन्हीं चैतन्य ब्रह्मका हृदयकमलमें ध्यान करता हूं ॥ ५० ॥

ध्यात्वैवं परमं ब्रह्म मानसैरुपचारकैः ।
पूजयेत्परया भक्त्या ब्रह्मसायुज्यहेतवे ॥ ५१ ॥

ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्तिके अर्थ साधक इस प्रकार ध्यान करके अत्यन्त भक्तिभावसे मानसोपचारके द्वारा परब्रह्मकी अर्च्चना करे ॥ ५१ ॥

गन्धं दद्यान्महीतत्त्वं पुष्पमाकाशमेव च ।
धूपं दद्याद्वायुतत्त्वं दीपं तेजः समर्पयेत्[१] ।
नैवेद्यं तोयतत्त्वेन प्रदद्यात्परमात्मने ॥ ५२ ॥

१ 'दीपं तैजसमर्पयेत्' इत्यपि साधीयान् पाठः ।

इस पूजामें भूतत्त्वको गंधरूपमें कल्पना करके ब्रह्मको समर्पण करे, (इसी भांति) आकाशको पुष्प, वायुतत्त्वको धूप, तेजस्तत्त्वको दीप और जलतत्त्वको नैवेद्य कल्पना करके परमात्माको समर्पण करे ॥ ५२ ॥

ततो जप्त्वा महामन्त्रं मनसा साधकोत्तमः ।
समर्प्य ब्रह्मणे पश्चाद्बहिः पूजां समारभेत् ॥ ५३ ॥

इसके उपरान्त मन ही मनमें "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" इस महामन्त्रको जप कर और ब्रह्मको सब समर्पण करके फिर बाहिरी पूजामें मनको लगाना चाहिये ॥ ५३ ॥

उपस्थितानि द्रव्याणि गन्धपुष्पादिकानि च ।
वस्त्रालंकरणादीनि भक्ष्यपेयानि यानि च ॥ ५४॥

उपस्थित गंध, फूल, वस्त्र, अलंकार, पान, भोजन आदि जितने पदार्थ हैं ॥५४ ॥

मन्त्रेणानेन संशोध्य ध्यात्वा ब्रह्म सनातनम् ।
निमील्य नेत्रे मतिमानर्पयेत्परमात्मने ॥ ५५ ॥

उन पदार्थोंको आगे लिखे हुए मंत्रसे बुद्धिमान् (साधक) संशोधन करके दोनों नेत्र मूँद सनातन ब्रह्मका ध्यान करके उन (ब्रह्म) को अर्पण करे ॥ ५५ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म्मसमाधिना ॥ ५६ ॥

संशोधनका मंत्र—यज्ञपात्र भी ब्रह्म है, हव्य भी ब्रह्म है, अग्नि भी ब्रह्म है, यज्ञ करनेवाला भी ब्रह्म है, (अधिक क्या कहें) जो एकाग्र होकर ब्रह्ममें चित्त लगाते हैं, वह ब्रह्मकर्मको समाधि करके ब्रह्ममार्गमें चले जाते हैं। "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इति श्रुतिरप्यत्र प्रमाणम् ॥ ५६ ॥

ततो नेत्रे समुन्मील्य जप्त्वा मूलं स्वशक्तितः ।
तज्जपं ब्रह्मसात्कृत्वा स्तोत्रं च कवचं पठेत् ५७॥

इसके उपरान्त दोनों नेत्र खोलकर यथाशक्ति " ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" इस मूलमन्त्रका जप करना उचित है, यह जप ब्रह्मको समर्पण करके स्तोत्र और कवचका पाठ करना चाहिये ॥ ५७ ॥

स्तोत्रं शृणु महेशानि ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यच्छ्रुत्वा साधको देवि ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ॥५८॥

हे देवि ! अब परमात्माका स्तोत्र वर्णन करता हूं, श्रवण करो, जिसके श्रवण करनेसे साधक ब्रह्मसायुज्यमुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

ॐ नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय
नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय ।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय ॥ ५९ ॥

तुम सर्वलोकके आश्रयस्वरूप हो, तुम सत् हो, तुमको नमस्कार है, तुम चैतन्यमय विश्वके आत्मा स्वरूप हो, तुम्हें नमस्कार है, तुम अद्वैततत्त्व और मुक्तिके देनेवाले हो, तुम्हें नमस्कार है, तुम सर्वव्यापी, निर्गुण ब्रह्म हो, तुमको नमस्कार है ॥ ५९ ॥

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥ ६० ॥

केवल एक तुम्हीं शरण देनेवाले हो, तुम ही एक वरेण्य हो, केवल एक तुम ही जगत्के कारण हो, पाता और संहारकर्ता तुम हो, तुम निश्चय हो, निर्विकल्प (अनेक प्रकारकी कल्पनाओंसे शून्य) पुरुष हो ॥ ६० ॥

भयानां भयं भीषणं भीषणानां
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैःपदानां नियन्तृत्वमेकं
परेषां परं रक्षकं रक्षकाणाम् ॥ ६१ ॥

तुम भयके भी भय हो, भीषणके भी भीषण हो, तुम्हीं प्राणियोंकी गति हो, पवित्रको भी पवित्र करनेवाले हो, उत्तम स्थानोंके प्रधान नियन्ता आप ही हो और रक्षकोंके भी रक्षक हो ॥ ६१ ॥

परेश प्रभो सर्वरूपा[1]प्रकाशि-
न्ननिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्य ।
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्ततत्त्व
जगद्भासकाधीश पायादपायात् ॥ ६२ ॥

हे परेश ! हे प्रभो ! तुम सर्वरूप हो; परन्तु कोई भी तुमको नहीं देख सकता । अनिर्देश्य हो, इन्द्रियोंसे अगम्य हो, अचिन्त्य हो, अक्षय, व्यापक अव्यक्त तत्त्व और सत्यरूप हो, तुम जगत्के भासकोंके स्वामी हो, तुम हमारी (भक्ति-विश्लेषणादि अपार) विपत्तिसे रक्षा करो ॥ ६२ ॥

तदेकं स्मरामस्तदेकं जपाम-
स्तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥ ६३ ॥

मैं उस अद्वितीय ब्रह्मका स्मरण करता हूं और उसी एक का (नाम) जपता हूं तथा जगत्में एकमात्र साक्षीस्वरूपको नमस्कार करता हूं, सत्यस्वरूप, निरालम्ब और संसार सागरका केवल एक ही पोत होनेसे मैं उसीकी शरण जाता हूं ॥ ६३ ॥

पञ्चरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः[2] ।
यः पठेत्प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

---

[1] "सर्व्वरूपाविनाशिन्" इति काचित्कः पाठः।
[2] "सर्वदात्मनः" इति केचित्पठन्ति ।

परमात्मा ब्रह्मका पंचरत्ननामक यह स्तोत्र जो भक्तिके सहित पाठ करेंगे उनको ब्रह्मसायुज्य प्राप्त हो जायगा॥ ६४॥

प्रदोषेऽदः पठेन्नित्यं सोमवारे विशेषतः ।
श्रावयेद्बोधयेत्प्राज्ञो ब्रह्मनिष्ठान्स्वबान्धवान्॥ ६५ ॥

प्रदोषके समय यह स्तोत्र प्रतिदिन पाठ करना चाहिये, विशेष करके ज्ञानी पुरुषको उचित है कि, अपने ब्रह्मनिष्ठ बांधवोंको सोमवारके दिन यह श्रवण करा दें और भलीभांतिसे समझा दें ॥ ६५ ॥

इति ते कथितं देवि पञ्चरत्नं महेशितुः ।
कवचं शृणु चार्व्वङ्गि जगन्मङ्गलनामकम् ।
पठनाद्धारणाद्यस्य ब्रह्मज्ञो जायते ध्रुवम् ॥ ६६ ॥

हे देवि ! मैंने तुमसे महेश्वरका पञ्चरत्ननामक स्तोत्र कहा, अब जगन्मंगल नामका 'कवच' को कहता हूं। तुम श्रवण करो. इसके श्रवण करने और धारण करनेसे निश्चय ही ब्रह्मज्ञ हो सकता है ॥ ६६ ॥

परमात्मा शिरः पातु हृदयं परमेश्वरः ।
कण्ठं पातु जगत्पाता वदनं सर्वदृग्विभुः ॥ ६७ ॥
करौ मे पातु विश्वात्मा पादौ रक्षतु चिन्मयः ।
सर्व्वाङ्गं सर्वदा पातु परं ब्रह्म सनातनम् ॥ ६८॥

कवच यह है—परमात्मा मेरे शिरकी रक्षा करें, परमेश्वर हृदयकी रक्षा करें, सर्वद्रष्टा विभु (व्यापक परमेश्वर) मुखकी

रक्षा करें, विश्वात्मा मेरे हाथोंकी रक्षा करें, जगत्पाता कंठकी रक्षा करें, चिन्मय मेरे दोनों चरणोंकी रक्षा करें, सनातन परब्रह्म मेरे सब शरीरकी रक्षा करें ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य सदाशिवः ।
ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुबिति परमब्रह्मदेवता ।
चतुर्व्वर्गफलावाप्त्यै विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ६९ ॥

सदाशिव इस जगन्मंगल कवचके ऋषि हैं, छंद अनुष्टुप् है, परब्रह्म देवता, चतुर्वर्ग–प्राप्तिके लिये विनियोग कीर्तन करना होता है ॥ ६९ ॥

यः पठेद्ब्रह्मकवचमृषिन्यासपुरःसरम्[१] ।
स ब्रह्मज्ञानमासाद्य साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत् ॥७०॥

जो ऋषि न्यासको करके इस ब्रह्मकवचका पाठ करता है, वह ब्रह्मज्ञान पाकर ब्रह्ममय हो जाता है ॥ ७० ॥

भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
कण्ठे व दक्षिणे बाहौ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥७१॥

---

१ ऋषिन्यासो यथा--अस्य श्रीजगन्मङ्गलनामककवचस्य सदाशिवऋषि-रनुष्टुप् छन्दः परमब्रह्म देवता, धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये श्रीजगन्मङ्गलाख्यकवच-पाठे विनियोगः । शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि परमब्रह्मणे देवतायै नमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये श्रीजगन्म-ङ्गलाख्यकवचपाठे विनियोगः ।

यदि कोई भोजपत्रपर लिखकर इस कवचको सुवर्णके ताबीजमें रखके कंठ वा दाहिने हाथमें धारण करता है, तो उसके समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं, अथवा सब आठों सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ ७१ ॥

इत्येतत्परमब्रह्मकवचं ते प्रकाशितम् ।
दद्यात्प्रियाय शिष्याय गुरुभक्ताय धीमते ॥ ७२ ॥

मैंने तुमसे यह परब्रह्मकवच प्रकाशित किया, इसको गुरु-भक्त, प्रिय शिष्यको देना चाहिये ॥ ७२ ॥

पठित्वा स्तोत्रकवचं प्रणमेत्साधकाग्रणीः ॥ ७३ ॥

साधकोंमें अग्रगण्य इस स्तोत्रकवचको पढ़कर प्रणाम करें ७३

ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म नमस्ते परमात्मने ।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमोनमः ॥ ७४ ॥

तुम परमात्मा परब्रह्म हो, तुमको नमस्कार है, तुम गुणातीत और सत्स्वरूप हो, ऐसे तुमको नमस्कार है ॥ ७४ ॥

वाचिकं कायिकं वापि मानसं वा यथामति ।
आराधने परेशस्य भावशुद्धिर्विधीयते ॥ ७५ ॥

परमब्रह्मकी आराधनामें कायिक, वाचिक और मानसिक इन तीन प्रकारमें जैसी इच्छा हो वैसा नमस्कार किया जा सकता है, परन्तु चित्तकी शुद्धिका विशेष प्रयोजन है ॥७५॥

एवं सम्पूज्य मतिमान्स्वजनैर्बान्धवैः सह ।
महाप्रसादं स्वीकुर्य्याद्ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ७६ ॥

बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार ब्रह्मकी अर्चना करके आत्मीय अन्तरंगोंके साथ महाप्रसादको ग्रहण करे ॥ ७६ ॥

पूजने परमेशस्य नावाहनविसर्ज्जने ।
सर्व्वत्र सर्व्वकालेषु साधयेद्ब्रह्मसाधनम् ॥ ७७ ॥

परमेश्वरकी पूजाका काल, देश, आवाहन और विसर्जन नहीं है; ब्रह्मसाधनके लिये सब देश और सब समय ठीक है ॥ ७७ ॥

अस्नातो वा कृतस्नानो भुक्तो वापि बुभुक्षितः[1] ।
पूजयेत्परमात्मानं सदा निर्म्मलमानसः ॥ ७८ ॥

स्नान किये हुए या विना स्नान किये हुए भुक्त या अभुक्त जिस अवस्थामें और जिस कालमें हो विशुद्ध चित्त होकर परमेश्वरकी उपासना करनी योग्य है ॥ ७८ ॥

अनेन ब्रह्ममन्त्रेण भक्ष्यपेयादिकञ्च यत् ।
दीयते परमेशाय तदेव पावनं महत् ॥ ७९ ॥

इस ब्रह्ममन्त्रके द्वारा जो कोई भी खाने पीनेकी वस्तु ब्रह्मके लिये समर्पण की जाती है वही पवित्र है ॥ ७९ ॥

गङ्गातोये शिलादौ च स्पृष्टदोषोऽपि वर्त्तते ।
परब्रह्मार्पिते द्रव्ये स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ ८० ॥

गंगाजल और शालग्रामशिलादिमें दोष लग सकता है; परन्तु परब्रह्ममें जो वस्तु अर्पण की जाती है, उसमें किसी दोषके लगनेकी संभावना नहीं है ॥ ८० ॥

---

१ 'मुक्त्वा वापि बुभुक्षितः इति' हस्तलिखितपुस्तकानां पाठः ।

पक्कं वापि न पक्कं वा मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् ।
साधको ब्रम्हसात्कृत्वा भुञ्जीयात्स्वजनैः सह ॥८१॥

द्रव्य पका हुआ हो या बे पका हो; ब्रह्ममन्त्रके बलसे जब वह द्रव्य ब्रह्मको अर्पण किया जाय, तब साधकको उचित है कि, अपने स्वजनोंके साथ उसका भोजन करे ॥ ८१ ॥

नात्र वर्णविचारोऽस्ति नोच्छिष्टादिविवेचनम् ।
न कालनियमोऽप्यत्र शौचाशौचं तथैव च ॥८२॥

ब्रह्मनिवेदित सामग्रीके भोजन करनेमें जातिका विचार वा जूँठका विचार नहीं है। इसमें कालाकाल या शौचाशौचके विचारकी भी आवश्यकता नहीं है ॥ ८२ ॥

यथाकाले यथादेशे यथायोगे न लभ्यते ।
ब्रह्मसात्कृतनैवेद्यमश्नीयादविचारयन् ॥ ८३ ॥

जिस समय, जिस देशमें जैसा ब्रह्मनिवेदित नैवेद्य प्राप्त हो जाय उसको विना विचारे भोजन कर लेना चाहिये॥८३॥

आनीतं श्वपचेनापि श्वमुखादपि निःसृतम् ।
तदन्नं पावनं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥ ८४ ॥

चाहे चण्डालका ही लाया हो अथवा कुत्तेके मुखसे निकला हुआ ही क्यों न हो तो भी हे देवि! वह अतिशय पवित्र है और देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ ८४ ॥

किं पुनर्म्मनुजादीनां वक्तव्यं देववन्दिते ।
परमेशस्य नैवेद्यसेवनाद्यत्फलं भवेत् ॥ ८५ ॥

हे देववन्दिते ! जब ऐसा परमेश्वरको निवेदित अन्न देवताओंको भी दुर्लभ है फिर मनुष्योंको उसके सेवनसे क्या फल होगा इसकी तो बात ही क्या है ॥ ८५ ॥

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्यन्यपातकैः ।
सकृत्प्रसादग्रहणान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८६ ॥

जो पुरुष महापातकी हो वा जिसने और पातक किये हों वह भी यदि केवल एक ही बार ब्रह्मका प्रसाद पावे तो वह सब पापोंसे छूटता है इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥८६॥

सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम् ।
तत्फलं लभते मर्त्यो ब्रह्मार्पितनिषेवणात् ॥८७॥

साढ़े तीनि करोड़ तीर्थोंमें स्नान दान करनेसे जो फल होता है, ब्रह्मार्पित वस्तु ग्रहण करनेसे भी मनुष्यको वही फल प्राप्त होता है ॥ ८७ ॥

अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा यत्फलमश्नुते ।
भक्षिते ब्रह्मनैवेद्ये तस्मात्कोटिगुणं लभेत् ॥८८ ॥

अश्वमेधादि यज्ञ करनेसे जो फल प्राप्त होता है ब्रह्मनिवेदित वस्तुके भक्षण करनेसे उससे करोड़गुण फल मिलता है८८

जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ।
महाप्रसादमाहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ ८९ ॥

यदि सहस्र करोड़ जीभ हो जायँ और शतकरोड़ मुख हो जायँ तो भी ब्रह्ममहाप्रसादका माहात्म्य वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ८९ ॥

यत्र कुत्र स्थितो वापि प्राप्य ब्रह्मार्पितामृतम्।
गृहीत्वा कीकशो वापि ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥९०॥

यदि चांडाल भी किसी स्थानमें ब्रह्मप्रसाद प्राप्त करके उसको भोजन कर ले तो उसको ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है९०

यदि स्यान्नीचजातीयमन्नं ब्रह्मणि भावितम्।
तदन्नं ब्राह्मणैर्ग्राह्यमपि वेदान्तपारगैः ॥ ९१ ॥

यदि नीचजातिका अन्न ब्रह्ममें समर्पित हो जाय तो वेदान्तपारग ब्राह्मणको भी उस अन्नका ग्रहण करना चाहिये।९१॥

जातिभेदो न कर्त्तव्यः प्रसादे परमात्मनः।
योऽशुद्धबुद्धिं कुरुते स महापातकी भवेत् ॥९२॥

परमात्माके प्रसादको ग्रहण करनेमें जातिभेदका विचार करना कर्तव्य नहीं है। जो पुरुष इसको अपवित्र समझता है वह महापातकसे लिप्त होता है ॥ ९२ ॥

वरं पापशतं कुर्य्याद्वरं विप्रवधं प्रिये।
परब्रह्मार्पिते ह्यन्ने न कुर्य्यादवहेलनम् ॥ ९३ ॥

हे प्रिये! वरन् लोक शत शत पापकार्य कर सकता है, वरन् ब्रह्महत्या कर्तव्यकर्मके बीचमें गिनी जा सकती है तथापि ब्रह्मार्पित अन्नका अवहेलन करना कर्तव्य नहीं है ॥ ९३ ॥

ये त्यजन्ति नरा मूढा महामन्त्रेण संस्कृतम् ।
अन्नतोयादिकं भद्रे पितॄंस्ते पातयन्त्यधः ॥९४॥

हे भद्रे! जो मूढलोग महामन्त्र पढ़े हुए इस सुसंस्कृत अन्न जलादिका त्याग करते हैं, वे अपने पितृपुरुषोंको अधोलोक-में गिराते हैं ॥ ९४ ॥

स्वयमप्यन्धतामिस्त्रे पतन्त्याभूतसंप्लवम् ।
ब्रम्हसात्कृतनैवेद्यद्वेष्टॄणां नास्ति निष्कृतिः ॥९५॥

और वे लोग स्वयं भी प्रलयकालतक अन्धतामिस्त्रनामक नरकमें वास करते हैं जो ब्रह्मसात् कृत नैवेद्यादिसे द्वेष करते हैं उनका किसी प्रकारसे छुटकारा नहीं ॥ ९९ ॥

पुण्यायन्ते क्रियाः सर्वाः कुकृतिः सुकृतायते ।
स्वेच्छाचारोऽत्र विहितो महामन्त्रस्य साधने॥९६॥

जो लोग ब्रह्ममन्त्रका साधन करते हैं, उनके अपवित्र कर्म भी पवित्रहो जाते हैं उनका कुकृत्य भी सुकृत हो जाता है और इस महामन्त्रके साधनमें अवैध स्वेच्छाचार शास्त्रोक्त अनुष्ठानमें गिना जाता है ॥ ९६ ॥

किं तस्य वैदिकाचारैस्तान्त्रिकैर्वापि तस्य किम् ।
ब्रह्मनिष्ठस्य विदुषः स्वेच्छाचारो विधिः स्मृतः९७॥

जो ब्रह्मनिष्ठ और ज्ञानवान् है उसके लिये वैदिक या तांत्रिक क्रियाका प्रयोजन क्या है? उसका स्वेच्छाचार ही विधिरूप होकर आदृत किया जाता है ॥ ९७ ॥

कृतेनास्य फलं नास्ति नाकृतेनापि किल्बिषम् ।
निर्विघ्नः प्रत्यवायोऽस्य ब्रह्ममन्त्रस्य साधनात् ॥ ९८ ॥

ब्रह्मनिष्ठ पुरुष कोई भी वैध कार्य करके उसके फलको प्राप्त नहीं होता और वैध कर्म न करनेपर भी उसको उसका प्रत्यवाय नहीं होता । विचार करनेसे जाना जाता है कि, ब्रह्ममन्त्र साधन करनेमें किसी प्रकारके विघ्न या प्रत्यवायकी सम्भावना नहीं है ॥ ९८ ॥

अ[१]स्मिन्धर्मे महेशि स्यात्सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
परोपकारनिरतो निर्विकारः सदाशयः ॥ ९९ ॥

हे महेश्वरि ! इस धर्मके अनुष्ठान करनेमें सत्यवादी, जितेन्द्रिय, परोपकारी, निर्विकार और सदाशय होना चाहिये ९९ ॥

मात्सर्य्यहीनोऽदम्भी च दयावाञ्छुद्धमानसः ।
मातापित्रोः प्रीतिकारी तयोः सेवनतत्परः १०० ॥

ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको मात्सर्य, दंभहीन, दयावान्, शुद्धचित्त, पितामाताका प्रियकारि और उनकी सेवामें परायण होना चाहिये ॥ १०० ॥

ब्रह्मश्रोता ब्रह्ममन्ता ब्रह्मान्वेषणमानसः ।
यतात्मा दृढबुद्धिः स्यात्साक्षाद्ब्रह्मेति भावयन् १०१ ॥

जो ब्रह्मसंबन्धी विषयका श्रवण करते हैं, ब्रह्मचिन्तन

---

१ 'तस्मिन् धर्मे' इति पाठान्तरम् ।

और ब्रह्मानुसंधान करते हैं वही संयतचित्त स्थिरबुद्धिसे ब्रह्मको साक्षात् कर सकते हैं ॥ १०१ ॥

न मिथ्याभाषणं कुर्य्यान्नापरानिष्टचिन्तनम् ।
परस्त्रीगमनंचैव ब्रह्ममन्त्री विवर्ज्जयेत् ॥ १०२ ॥

हे देवि ! ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको मिथ्या कहना, पराया बुरा चेतना या परायी स्त्रीमें रमण करना कर्तव्य नहीं है ॥१०२॥

तत्सदिति वदेद्देवि प्रारम्भे सर्वकर्म्मणाम् ।
ब्रम्हार्पणमस्तु वाक्यं पानभोजनकर्म्मणोः ॥१०३

ब्रह्मनिष्ठपुरुष सब कार्योंके आरम्भमें "तत् सत्" वाक्य उच्चारण करे और पान भोजनादि कार्यमें "ब्रह्मार्पणमस्तु" कहकर ब्रह्मको अर्पण करे ॥ १०३ ॥

येनोपायेन मर्त्यानां लोकयात्रा प्रसिद्ध्यति ।
तदेव कार्य्यं ब्रह्मज्ञैरिदं धर्म्मं सनातनम् ॥१०४॥

जिससे भलीभाँति संसारयात्राका निर्वाह हो जाय, वही कार्य ब्रह्मज्ञको करना उचित है, यही ब्रह्मज्ञानियोंका सनातन धर्म है ॥ १०४ ॥

अथ सन्ध्याविधिं वक्ष्ये ब्रह्ममन्त्रस्य शाम्भवि ।
यां कृत्वा ब्रह्मसम्पत्तिं लभन्ते भुवि मानवाः १०५

हे शाम्भवि ! अब मैं तुमसे ब्रह्मसंध्याविधि कहता हूं, ब्रह्मनिष्ठलोग भूतलपर इस सन्ध्याको करके ब्रह्मस्वरूपसम्पत्ति प्राप्त कर सकेंगे ॥ १०५ ॥

१ 'इदं कार्यसमापनम्' इति वा पाठः ।

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने यथादेशे यथासने ।
पूर्ववत्परमब्रह्म ध्यात्वा साधकसत्तमः ॥ १०६ ॥

श्रेष्ठ साधकको प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सन्ध्यासमय यथोक्त स्थानमें कहे हुए आसनपर पहलेके समान बैठकर परब्रह्मका ध्यान करके ॥ १०६ ॥

अष्टोत्तरशतं देवि गायत्रीजपमाचरेत् ।
जपं समर्प्य विधिवत्पूर्ववत्प्रणमेत्सुधीः ॥ १०७ ॥

हे देवि! ज्ञानी विधिपूर्वक अष्टोत्तर शत(१०८)वार गायत्री का जप करे और उसे ब्रह्मार्पण कर पूर्ववत् प्रणाम करे १०७।

एषा सन्ध्या मया प्रोक्ता सर्वथा ब्रह्मसाधने ।
यदनुष्ठानतो मन्त्री शुद्धान्तःकरणो भवेत्॥ १०८॥

हे पार्वति ! मैंने तुमसे ब्रह्ममन्त्रके सिद्ध करनेकी सन्ध्या-को कहा, इसका अनुष्ठान करनेसे साधकका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है ॥ १०८ ॥

गायत्रीं शृणु चार्वङ्गि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
परमेश्वरं ङेऽन्तमुक्त्वा विद्महे तदनन्तरम् ॥१०९॥

हे सुन्दरि ! इस समय सब पापोंकी नाश करनेवाली गायत्रीको कहता हूं, श्रवण करो, प्रथम परमेश्वरशब्दमें

१ गायत्री यथा '-ओं परमेश्वराय विद्महे परतत्त्वाय धीमहि । तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् । '

चतुर्थी विभक्तिका एकवचन मिलाकर फिर "विद्महे" उच्चारण करना चाहिये ॥ १०९ ॥

परतत्त्वाय पदतो धीमहीति वदेत्प्रिये ।
तदनन्तरमीशानि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ॥११०॥

हे प्रिये ! इसके उपरान्त " परतत्त्वाय" उच्चारण करनेके पीछे 'धीमहि' पदका उच्चारण करना चाहिये फिर 'तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्' पदका उच्चारण करे ॥ ११० ॥

इयं श्रीब्रह्मगायत्री चतुर्वर्गप्रदायिनी ।
पूजनं यजनं चैव स्नानं पानं च भोजनम् ॥१११॥
यद्यत्कर्म्म प्रकुर्वीत ब्रह्ममन्त्रेण साधयेत् ।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रणम्य ब्रह्मदं गुरुम् ११२॥

यह ब्रह्मगायत्री चतुर्वर्गको दान करती है । पूजन, यज्ञ करना, स्नान, पान, भोजनादि जो जो कर्म करने होते हैं ब्रह्ममन्त्रद्वारा उनको सिद्ध करना चाहिये, ब्राह्ममुहूर्तमें बिस्तरेको त्यागकर ब्रह्मदाता गुरुको प्रणाम करना चाहिये॥१११॥

ध्यात्वा च परमं ब्रह्म यथाशक्ति मनुं स्मरेत् ।
पूर्ववत्प्रणमेद्ब्रह्म प्रातःकृत्यमिदं स्मृतम् ॥ ११३ ॥

---

[1] हम परमेश्वरका सदा ध्यान करते हैं। हम परतत्त्व अर्थात् ब्रह्मतत्त्वका सदा ध्यान करते हैं। वह ब्रह्म हमको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें लगावे। (यह गायत्रीका अर्थ है।)

अनन्तर ब्रह्मका ध्यान करके यथाशक्ति मन्त्रको उच्चारण करे, फिर ब्रह्मको नमस्कार करे, बस यही ब्रह्मनिष्ठ लोगोंका प्रातःकृत्य है ॥ ११३ ॥

द्वात्रिंशता सहस्रेण जपेनास्य पुरस्क्रिया ।
तद्दशांशेन हवनं तर्पणं तद्दशांशतः । ११४ ।

यदि ब्रह्ममन्त्रका पुरश्चरण करना हो तो बत्तीस हजार जप करना चाहिये, जपका दशांश होम और होमका दशमांश तर्पण करना उचित है ॥ ११४ ॥

सेचनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन सुन्दरि ।
ब्राह्मणान्भोजयेन्मन्त्री पुरश्चरणकर्म्मणि ॥११५॥

हे सुन्दरि ! तर्पणका दशमांश अभिषेक करना उचित है, जो पुरुष मन्त्रसाधक है, उसको पुरश्चरण करनेके समय अभिषेकका दशमांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये ॥११५॥

भक्ष्याभक्ष्यविचारोऽत्र त्याज्यं ग्राह्यं न विद्यते ।
न कालशुद्धिनियमो न वा स्थाननिरूपणम् ११६॥

ब्रह्मपुरश्चरणमें भक्ष्याभक्ष्यका विचार या त्याज्यात्याज्यका विचार और काल व स्थानका स्थिर करना कुछ भी नहीं है ॥ ११६ ॥

अभुक्तो वापि भुक्तो वा स्नातो वाऽस्नात एव वा ।
साधयेत्परमं मन्त्रं स्वेच्छाचारेण साधकः॥११७॥

ब्रह्मनिष्ठपुरुष ऐसे कार्यमें स्नात हो, अस्नात हो, भुक्त हो, अभुक्त हो, जिस अवस्थामें भी हो इच्छानुसार इस परममन्त्र-का साधन कर सकता है ॥ ११७ ॥

विनायासं विना क्लेशं स्तोत्रं च कवचं विना ।
विना न्यासं विना मुद्रां विना सेतुं वरानने ११८॥

हे वरवर्णिनि ! ब्रह्मके साधन करनेमें क्लेश (श्रम) नहीं करना पड़ता, स्तोत्र या कवच भी नहीं पढ़ना होता, इसमें न्यास, मुद्रा और सेतुकी भी आवश्यकता नहीं है ॥ ११८ ॥

विना चौरगणेशादि जपं च कुल्लुकां विना ।
अकस्मात्परमब्रह्मसाक्षात्कारो भवेद्ध्रुवम् ॥ ११९॥

इस कार्यमें चौर गणेशादिकी पूजा, वा कुल्लुका भी नहीं करनी होती, इन सब अनुष्ठानोंके किये विना भी अल्पका-लमें निश्चय ही परमब्रह्मका साक्षात्कार होता है ॥ ११९ ॥

संकल्पोऽस्मिन्महामन्त्रे मानसः परिकीर्तितः ।
साधने ब्रह्ममन्त्रस्य भावशुद्धिर्विधीयते ॥ १२० ॥

इस महामन्त्रका साधन करनेमें मानसिक संकल्पका ही प्रयोजन है और भावशुद्धिकी भी आवश्यकता है ॥ १२० ॥

सर्वं ब्रह्ममयं देवि भावयेद्ब्रह्मसाधकः ।
न चास्य प्रत्यवायोऽस्ति नाङ्गवैगुण्यमेव च ।
महामनोः साधने तु व्यङ्गं साङ्गायते ध्रुवम् १२१॥

हे देवि! समस्त पदार्थोंको ही ब्रह्ममय जानकर विचार करना ब्रह्मसाधकको उचित है, इस कार्यमें कोई कसर वा अंगहीनता प्रकट नहीं होती और प्रत्यवाय भी नहीं होता। यदि कार्यकी गतिसे कोई अंगहीनता हो तो भी वह सांग हो जाता है॥ १२१॥

कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽतिदुस्तरे।
निस्तारबीजमेतावद्ब्रह्ममन्त्रस्य साधनम्॥१२२॥

इस कलियुगमें दुःसाध्य तपस्याका प्रभाव क्षीण हो गया है, पापकी घोर धार बह रही है, बस यह ब्रह्मसाधन ही केवल जीवके निस्तार होनेका मार्ग है॥ १२२॥

साधनानि बहूक्तानि नानातन्त्रागमादिषु।
कलौ दुर्बलजीवानामसाध्यानि महेश्वरि॥१२३॥

हे महेश्वरि! यद्यपि मैंने अनेक प्रकारके मन्त्र, अनेक प्रकारके आगम और अनेक प्रकारके साधन कहे हैं, परन्तु कलियुगके दुर्बल जीवोंके लिये वे सब अतिशय दुःसाध्य हैं

अल्पायुषः स्वल्पवृत्ता[1] अन्नाधीनासवः प्रिये।
लुब्धा धनार्जने व्यग्राः सदाचञ्चलमानसाः॥१२४॥

हे प्रिये! कलियुगके लोग अल्पायु और अन्नगतप्राण होंगे, वे अनुष्ठान करनेमें यत्न नहीं कर सकेंगे, विशेषकरके वे लोभी और धनके पैदा करनेमें व्यग्र हो सदा चपलमति होंगे॥ १२४॥

१ 'स्वल्पवित्ता' इति वा पाठः।

समाधावस्थिरधियो योगक्लेशासहिष्णवः ।
तेषां हिताय मोक्षाय ब्रह्ममार्गोऽयमीरितः॥ १२५॥

वे योगमें क्लेश करने या समाधिके विषे स्थिर रहनेमें समर्थ नहीं होंगे इस कारण उनका हित करने और उनके मोक्षके लिये मैंने ब्रह्मोपासनाका यह मार्ग स्वच्छ कर दिया॥१२५॥

कलौ नास्त्येव नास्त्येव सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
ब्रह्मदीक्षां विना देवि कैवल्याय सुखाय च॥ १२६॥

मैं सत्य ही कहता हूं कि ब्रह्मदीक्षाके सिवाय कलियुगमें सुख और मुक्तिविधायी और कोई साधन नहीं है ॥ १२६ ॥

प्रातःकृत्यं प्रातरेव संध्यां कुर्य्यात्त्रिकालतः ।
मध्याह्ने पूजनं कुर्य्यात्सर्वतन्त्रेष्वयं विधिः ।
परब्रह्मोपासने तु साधकेच्छाविधिः शिवे ॥ १२७॥

सर्व तन्त्रोंकी व्यवस्था यही है कि, प्रातः कालमें प्रातःकृत्य समाप्त करके त्रिकालीन सन्ध्या करे और मध्याह्न समयमें पूजा करे । हे शिवे ! परब्रह्मकी उपासनामें साधककी इच्छा ही विधि गिनी जाती है ॥ १२७ ॥

विधयः किंकरा यत्र निषेधाः प्रभवोऽपि न ।
स्वेच्छाचारेणेष्टसिद्धिस्तद्विना कोऽन्यमाश्रयेत् १२८

जिस कार्यमें विधि किंकरस्वरूप हैं और सब निषेध भी स्वामीपनसे विमुख हैं, ऐसे जिस ब्रह्मसाधनमें स्वेच्छाचार

होनेसे इष्टसिद्धि होती है उसके सिवाय और किसका आश्रय लिया जा सकता है ॥ १२८ ॥

ब्रह्मज्ञानी गुरुं प्राप्य शान्तं निश्चलमानसम् ।
धृत्वा तच्चरणाम्भोजं प्रार्थयेद्भक्तिभावतः ॥१२९॥

ब्रह्मनिष्ठ पुरुष स्थिरमति, शान्त, ब्रह्मज्ञानी गुरुको प्राप्त करके उसके चरणकमलमें भक्तिसे भरकर प्रार्थना करे ॥१२९॥

करुणामय दीनेश तवाहं शरणागतः ।
त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि यशोधन ॥१३०॥

हे दयामय, दीनेश ! मैं तुम्हारी शरण हुआ. हे यशोधन! तुम मेरे मस्तकपर चरणकमलकी छाया करो ॥ १३० ॥

इति प्रार्थ्य गुरुं पश्चात्पूजयित्वा स्वशक्तितः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तूष्णीं तिष्ठद्गुरोः पुरः॥१३१॥

गुरुसे ऐसी प्रार्थना करके शिष्य यथाशक्ति गुरुकी अर्चना करे, उसके उपरान्त उसके निकट हाथ जोड़कर मौनभावसे रहे ॥ १३१ ॥

गुरुर्विचार्य्य विधिवद्यथोक्तं शिष्यलक्षणम् ।
आहूय कृपया दद्यात्सच्छिष्याय महामनुम् १३२॥

गुरु भी यथाविधान वा यथारीतिसे लक्षणकी परीक्षा करके शिष्यको बुलाकर दयायुक्त हृदयसे महामन्त्र दे ॥ १३२ ॥

उपविश्यासने ज्ञानी प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
स्ववामे शिष्यमानीय कारुण्येनावलोकयेत् १३३॥

इसके उपरान्त वह ज्ञानवान् पुरुष पूर्वमुख वा उत्तरमुख हो आसनपर बैठ शिष्यको अपनी बांई ओर बैठा उसके प्रति करुणाकी दृष्टिसे देखे ॥ १३३ ॥

ततः शिष्यस्य शिरसि ऋषिन्यासपुरःसरम् ।
जपेदष्टशतं मन्त्रं साधकस्येष्टसिद्धये ॥ १३४ ॥

इसके उपरान्त साधककी इष्ट सिद्धिके लिये ऋषिन्यास करके शिष्यके मस्तकपर एकसौ आठवार मन्त्र जप करे १३४॥

दक्षकर्णे ब्राह्मणानामितरेषाञ्च वामतः ।
सप्तधा श्रावयेन्मन्त्रं सद्गुरुः करुणानिधिः १३५॥

इसके उपरान्त करुणामय सद्गुरु ब्राह्मणशिष्यके दाहिने कानमें और दूसरे जातिवाले शिष्यके बाँये कानमें सात वार मन्त्रको सुनावे ॥ १३५ ॥

उपदेशविधिः प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य कालिके ।
नात्र पूजाद्यपेक्षास्ति संकल्पं मानसञ्चरेत् १३६ ॥

हे कालिके ! तुमसे ब्रह्ममन्त्रको कहा. इसमें पूजादिकी अपेक्षा नहीं है, केवल मानसिक संकल्प करना होता है१३६॥

ततः श्रीगुरुपादाब्जे दण्डवत्पतितं शिशुम् ।
उत्थापयेद्गुरुः स्नेहादिमं मन्त्रमुदीरयन् ॥ १३७॥

इसके उपरान्त जब शिष्य गुरुके चरणकमलमें दण्डवत करे तब गुरुको उचित है कि, यह मन्त्रपाठ कराकर शिष्य को उठावे ॥ १३७ ॥

उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि ब्रह्मज्ञानपरो[1] भव।
जितेन्द्रियः सत्यवादी बलारोग्यं सदास्तु ते ॥१३८॥

हे बेटा! तुम उठो। इस समय तुम मुक्त हुए हो, तुम जितेन्द्रिय, सत्यवादी और ब्रह्मज्ञानी हो, तुम्हारा बल और आरोग्य सदा प्रकाशित होता है ॥ १३८ ॥

तत उत्थाय गुरवे यथाशक्त्यनुसारतः।
दक्षिणां स्वं फलं वापि दद्यात्साधकसत्तमः।
गुरोराज्ञावशी भूत्वा विहरेद्देववद्भुवि ॥ १३९॥

इसके उपरान्त साधक उठे और दक्षिणामें शक्तिके अनुसार धन वा फल गुरुको दे, फिर गुरुजीकी आज्ञाके अनुसार शिष्य पृथ्वीपर देवताके समान विहार करे ॥ १३९ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण तदात्मा तन्मयो भवेत्।
ब्रह्मभूतस्य देवेशि किमन्यैर्बहुसाधनैः।
इति संक्षेपतो ब्रह्मदीक्षा ते कथिता प्रिये ॥१४०॥

ब्रह्ममन्त्र ग्रहण करनेपर जीवकी आत्मा ब्रह्ममय हो जाती है, जो ब्रह्ममय होता है उसको और बहुतसे साधनोंसे क्या प्रयोजन है? हे प्रिये! ऐसे तुमसे संक्षेप करके ब्रह्मदीक्षा को कहा ॥ १४० ॥

गुरुकारुण्यमात्रेण ब्रह्मदीक्षां समाचरेत् ॥ १४१॥

---

१ 'ब्रह्मज्ञानयुतो भव' इति वा पाठः।

जब गुरुकी कृपा प्रकाशित होती है तब ब्रह्ममन्त्रमें दीक्षित होना शिष्यका कर्तव्य है ॥ १४१ ॥

शाक्ताः शैवा वैष्णवाश्च सौरा गाणपतास्तथा ।
विप्रा विप्रेतराश्चैव सर्व्वेऽप्यत्राधिकारिणः ॥१४२॥

शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर वा गाणपत्य चाहे जौनसा उपासक हो, ब्राह्मण हो या किसी और वर्णका हो सबको ही ब्रह्ममन्त्रका अधिकार है ॥ १४२ ॥

अहं मृत्युञ्जयो देवि देवदेवो जगद्गुरुः ।
स्वेच्छाचारी निर्विकल्पो मन्त्रस्यास्यप्रसादतः १४३

हे देवि ! इस मन्त्रके प्रसादसे मैं मृत्युञ्जय, देवदेव और जगद्गुरु हुआ हूं, मैं स्वेच्छाचारी और निर्विकल्प हूं ॥१४३॥

अमुमेव ब्रह्ममन्त्रं मत्तः पूर्व्वमुपासिताः ।
ब्रह्मा ब्रह्मर्षयश्चापि देवा देवर्षयस्तथा ॥ १४४ ॥

पहले मेरे निकटसे यह मन्त्र पाकर ब्रह्मा, भृगु आदि महर्षियोंने, इन्द्रादि देवताओंने और नारदादि देवर्षियोंने ब्रह्मकी उपासना की थी ॥ १४४ ॥

देवर्षिवक्त्रान्मुनयस्तेभ्यो राजर्षयः प्रिये ।
उपासिता ब्रह्मभूताः परमात्म प्रसादतः॥ १४५ ॥

हे प्रिये ! देवर्षियोंसे मुनि और मुनियोंसे राजर्षिलोग यह मन्त्र पाकर परमात्माके प्रसादसे ब्रह्ममय हुए हैं ॥१४५॥

ब्राह्मे मनौ महेशानि विचारो नास्ति कुत्रचित् ।
स्वीयमन्त्रं गुरुर्दद्याच्छिष्येभ्यो ह्यविचारयन् १४६।

हे शिवे ! किसी विषयका ब्रह्ममन्त्रमें विचार नहीं है. गुरु निःसन्देह मनसे शिष्यको यह मंत्र दे सकता है ॥ १४६ ॥

पितापि दीक्षयेत्पुत्रान्भ्राता भ्रातॄन्पतिः स्त्रियम् ।
मातुलो भागिनेयांश्च नप्तॄन्मातामहोऽपि च १४७

पिता पुत्रको, भ्राता भ्राताको, पति पत्नीको, मामा भानजेको और नाना धेवतेको यह मंत्र दे सकता है ॥ १४७ ॥

स्वमन्त्रदाने यो दोषस्तथा पित्रादिदीक्षया ।
सिद्धे ब्रह्ममहामन्त्रे तद्दोषो नैव विद्यते ॥ १४८॥

अपने आप यह मन्त्र दूसरेको देनेसे या पित्रादिद्वारा दीक्षा होनेसे जो दोष होता है इस महामंत्रके देनेमें उन दोषोंकी सम्भावना नहीं है ॥ १४८ ॥

ब्रह्मज्ञानिमुखाच्छ्रुत्वा येन केन विधानतः ।
ब्रह्मभूतो नरः पूतः पुण्यपापैर्न लिप्यते ॥ १४९

चाहे जिस विधानसे हो ब्रह्मज्ञानी गुरुके मुखसे ब्रह्ममंत्रके श्रवण करनेसे मनुष्य ब्रह्मस्वरूप और पवित्र होता है फिर वह पापपुण्यसे नहीं जकड़ा जाता ॥ १४९ ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासिता ये गृहस्था ब्राह्मणादयः ।
स्वस्ववर्णोत्तमास्ते तु पूज्या मान्या विशेषतः १५०

जितने ब्राह्मण वा और जातिके मनुष्य ब्रह्ममन्त्रके उपासक हैं वे अपनी अपनी जातिमें पूज्य और मान्य हैं ॥ १५० ॥

ब्राह्मणा यतयः साक्षादितरे ब्राह्मणैः समाः ।
तस्मात्सर्वे पूजयेयुर्ब्रह्मज्ञान्ब्रह्मदीक्षितान् ॥१५१॥

ब्रह्मोपासक ब्राह्मण साक्षात् यतिके तुल्य हैं, और जातिके मनुष्य ब्राह्मणके समान हैं, इसकारण ब्रह्ममन्त्रसे दीक्षित ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंकी पूजा करना सबका कर्तव्य है ॥ १५१ ॥

ये च तानवमन्यन्ते ते नरा ब्रह्मघातिनः ।
पतन्ति घोरनरके यावद्भास्करतारकम् ॥ १५२॥

ब्रह्मज्ञानियोंका अपमान करनेवाले ब्रह्मघाती हैं, जबतक सूर्य और तारे दिखाई देते रहेंगे तबतक उनको घोर नरकमें बास करना पड़ेगा ॥ १५२ ॥

यत्पापं स्त्रीवधे प्रोक्तं यत्पापं भ्रूणघातने ।
तस्मात्कोटिगुणं पापं ब्रह्मोपासकनिन्दनात् १५३

स्त्रीहत्या और भ्रूणहत्यासे जो पाप होता है ब्रह्मोपासककी निन्दा करनेसे उससे कोटिगुण पाप होता है ॥ १५३ ॥

यथा ब्रह्मोपदेशेन विमुक्ताः सर्वपातकैः ।
गच्छन्ति ब्रह्मसायुज्यं तथैव तव साधनात् १५४

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तरे परब्रह्मोपदेशकथनं नाम तृतीयोल्लासः ॥ ३ ॥

जिस प्रकार मनुष्य ब्रह्मोपदेशके प्राप्त करनेसे सर्व प्रकारके पापोंसे छूट ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त हो जाता है वैसे हीं तुम्हारी साधना करनेसे जीवकी वही गति होती है ॥ १५४॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादावादनिवासि पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तरे परब्रह्मोपदेशकथनं नाम तृतीयोल्लासः ॥ ३ ॥

चतुर्थोल्लासः ४.

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुत्वा सम्यक्परब्रह्मोपासनं परमेश्वरी ।
परमानन्दसम्पन्ना शंकरं परिपृच्छति ॥ १ ॥

परमेश्वरी परमेश्वरके मुखसे परब्रह्मकी उपासनाको भलीभांति सुनकर आनन्दित हो श्रीमहादेवजीसे पूछती हुई ॥ १ ॥

कथितं यत्त्वया नाथ ब्रह्मोपासनमुत्तमम् ।
सर्वलोकप्रियकरं साक्षाद्ब्रह्मपदप्रदम् ॥ २ ॥

देवीजी बोलीं—हे नाथ ! आपने जो सर्वलोकोंकी प्यारी साक्षात् ब्रह्मपदको देनेवाली ब्रह्मोपासनाका वर्णन किया॥२॥

तेजोबुद्धिबलैश्वर्य्यदायकं सुखसाधनम् ।
तृप्तास्मि जगदीशान तव वाक्यामृतप्लुता ॥ ३ ॥

इसके द्वारा तेज, बुद्धि, बल और ऐश्वर्य्य बढ़ता है, यह सब सुखोंकी निदानरूप है, हे जगदीश्वर ! आपके वचनामृतको पान कर मैं तृप्त हुई हूं ॥ ३ ॥

यदुक्तं करुणासिन्धो यथा ब्रह्मनिषेवणात् ।
गच्छन्ति ब्रह्मसायुज्यं तथैव मम साधनात् ॥ ४ ॥

हे दयासमुद्र ! आपने जो कहा है कि, ब्रह्मोपासनासे जैसे ब्रह्मसायुज्य मिलता है वैसे ही मेरे साधन (उपासन) से ब्रह्मसायुज्य मिलता है ॥ ४ ॥

एतद्वेदितुमिच्छामि मदीयं साधनं परम् ।
ब्रह्मसायुज्यजननं यत्त्वया कथितं प्रभो ॥ ५ ॥

अतः हे प्रभो ! आपके कहनेके अनुसार ब्रह्मसायुज्यमे उत्पन्न होनेवाले अपनी साधनाके फलको मैं जाननेकी इच्छा करती हूं ॥ ५ ॥

विधानं कीदृशं तस्य साधनं केन वर्त्मना ।
मन्त्रः को वात्र विहितो ध्यानपूजादिकं च किम् ॥ ६ ॥

इस साधनकी विधि क्या है ? किस मार्गका अवलम्बन करनेसे साधन हो सकता है ? इसका मन्त्र वा ध्यान क्या है ? पूजा किस प्रकारकी है ? ॥ ६ ॥

सविशेषं सावशेषमामूलाद्वक्तुमर्हसि।
मम प्रीतिकरं देव लोकानां हितकारकम्।
को ह्यन्यस्त्वामृते शम्भो! भवव्याधिभिषग्गुरुः ७॥

हे देव! मुझको प्रसन्न करनेवाले और लोकोंको हितकारी इस उपासनाके क्रमको विशेषतासे सम्पूर्ण ही आदिसे अन्त तक वर्णन कीजिये. हे शम्भो! आपके विना और कौन पुरुष संसारी व्याधिकी चिकित्सा करनेका गुरु हो सकता है? ॥ ७ ॥

इति देव्या वचः श्रुत्वा देवदेवो महेश्वरः।
उवाच परया प्रीत्या पार्वतीं पार्वतीपतिः ॥ ८ ॥

देवदेव महादेवजी, देवीजीके इस प्रकार वचन सुन परम प्रसन्न हो उनसे कहने लगे ॥ ८ ॥

शृणु देवि! महाभागे तवाराधनकारणम्।
तव साधनतो येन ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ॥ ९ ॥

सदाशिव बोले—हे देवि! मनुष्य तुम्हारी साधनासे ब्रह्मसायुज्य प्राप्त कर सकता है, इस कारण मैं तुम्हारी उपासनाका वर्णन करता हूँ ॥ ९ ॥

त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद्ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे ॥१०॥

तुम ही परब्रह्मकी साक्षात् परा प्रकृति हो, हे शिवे ! तुम से सब जगत्की उत्पत्ति हुई है, तुम जगत्की माता हो॥१०॥

महदाद्यणुपर्य्यन्तं यदेतत्सचराचरम् ।
त्वयैवोत्पादितं भद्रे त्वदधीनमिदं जगत् ॥११॥

हे भद्रे ! महत्तत्त्वसे लेकर परमाणुतक और समस्त चराचर सहित यह जगत् तुमसे ही उत्पन्न हुआ है और समस्त जगत तुम्हारी ही अधीनतामें बँधा हुआ है ॥ ११ ॥

त्वमाद्या सर्वविद्यानामस्माकमपि जन्मभूः ।
त्वं जानासि जगत्सर्वं न त्वां जानाति कश्चन १२॥

तुम ही समस्त विद्याओंकी आदिभूत हो और हमारी भी जन्मभूमि हो, तुम सारे संसारको जानती हो, परन्तु तुमको कोई नहीं जान सकता ॥ १२ ॥

त्वं काली तारिणी दुर्गा षोडशी भुवनेश्वरी ।
धूमावती त्वं बगला भैरवी छिन्नमस्तका ॥ १३ ॥

त्वमन्नपूर्णा वाग्देवी त्वं देवि कमलालया ।
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वदेवमयी तनुः ॥ १४ ॥

तुम काली, दुर्गा, तारिणी, षोडशी, भुवनेश्वरी, धूमावती, बगला, भैरवी और छिन्नमस्ता हो, सर्व शक्तिस्वरूपिणी हो, तुम सर्वदेवमयी और सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो ॥१३॥१४॥

त्वमेव सूक्ष्मा स्थूला त्वं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
निराकारापि साकारा कस्त्वां वेदितुमर्हति ॥१५॥

तुम ही स्थूल, तुम ही सूक्ष्म, तुम ही व्यक्त और अव्यक्तस्वरूपिणी हो, तुम निराकार होकर साकार हो, तुम्हारे यथार्थ तत्त्वको कोई भी नहीं जानता है ॥ १५ ॥

उपासकानां कार्य्यार्थं श्रेयसे जगतामपि ।
दानवानां विनाशाय धत्से नानाविधास्तनूः १६॥

तुम उपासकजनोंका कार्य करनेके लिये जगत्का मंगल करनेके लिये और दानवोंको दलनेके लिये अनेक प्रकारकी मूर्ति धारण करती हो ॥ १६ ॥

चतुर्भुजा त्वं द्विभुजा षड्भुजाष्टभुजा तथा ।
त्वमेव विश्वरक्षार्थं नानाशस्त्रास्त्रधारिणी ॥ १७ ॥

तुम संसारकी रक्षा करनेके लिये कभी द्विभुज, कभी चतुर्भुज, कभी षड्भुज और कभी अष्टभुज मूर्ति धारण करके अनेक भाँतिके अस्त्र शस्त्र लिये रहती हो ॥ १७ ॥

तत्तद्रूपविभेदेन मन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ।
कथितं सर्वतन्त्रेषु भावाश्च कथितास्त्रयः ॥ १८ ॥

सब तंत्रोंमें तुम्हारे अनेक प्रकारसे रूपभेद, यंत्रभेद और मंत्रभेदका वर्णन लिखा है और तुम्हारी त्रिविध भावमय उपासनाका भी वर्णन है ॥ १८ ॥

पशुभावः कलौ नास्ति दिव्यभावोऽपि दुर्लभः ।
वीरसाधनकर्म्माणि प्रत्यक्षाणि कलौ युगे ॥ १९॥

कलियुगमें दिव्य भाव तो है ही नहीं, पशुभाव भी दुर्लभ है, इस युगमें वीरसाधनका अनुष्ठान प्रत्यक्ष फल देनेवाला है १९॥

कुलाचारं विना देवि ! कलौ सिद्धिर्न जायते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधयेत्कुलसाधनम् ॥ २० ॥

हे देवि ! कुलाचारके सिवाय कलियुगमें सिद्ध होनेका उपाय नहीं है, इस कारण सब यत्नोंकरके सबको कुल-साधन करना चाहिये ॥ २० ॥

कुलाचारेण देवेशि ! ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।
ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्यो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥२१॥

हे देवि ! कुलाचारसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, जो पुरुष ब्रह्मज्ञानवाला है वही निःसंदेह जीवन्मुक्त है ॥ २१ ॥

ज्ञानेन मेध्यमखिलममेध्यं ज्ञानतो भवेत् ।
ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने मेध्यामेध्यं न विद्यते ॥ २२ ॥

ज्ञानके प्रभावसे समस्त वस्तु पवित्र और अपवित्र समझी जाती हैं; परन्तु ब्रह्मज्ञानके प्रकाशित होनेसे किसी पवित्र वा अपवित्रका विचार नहीं रहता है ॥ २२ ॥

यो जानाति परं ब्रह्म सर्वव्यापि सनातनम् ।
किमस्त्यमेध्यं तस्याग्रे सर्वं ब्रह्मेति जानतः ॥२३॥

जो पुरुष सर्वव्यापी सनातन परब्रह्मको जान सकता है, सबको ब्रह्ममय जाननेसे उसके लिये कौनसी वस्तु अपवित्र रह सकती है ॥ २३ ॥

त्वं सर्वरूपिणी देवी सर्वेषां जननी परा ।
तुष्टायां त्वयि देवेशि ! सर्वेषां तोषणं भवेत् २४॥

हे देवि ! तुम सर्वस्वरूपिणी और सबकी प्रधान जननी हो, तुम्हारे संतुष्ट होनेसे सब संतुष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥

सृष्टेरादौ त्वमेकासीत्तमोरूपमगोचरम् ।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं परब्रह्मसिसृक्षया ॥ २५ ॥

तुम सृष्टिकी आदिमें तमरूपसे अदृश्य हो विराजमान थीं, तुम ही परब्रह्मकी सृष्टि करनेको इच्छारूपिणी हो, तुमसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है ॥ २५ ॥

महत्तत्त्वादिभूतान्तं त्वया सृष्टमिदं जगत् ।
निमित्तमात्रं तद्ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ २६ ॥

---

१ (तुम परब्रह्मकी सिसृक्षास्वरूपा--अर्थात् सृष्टि करनेकी इच्छास्वरूपा हो) परब्रह्मकी इच्छाशक्ति भगवती पार्वतीजी हैं । गोरक्षसंहितामें कहा है। "इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं गौरी ब्राह्मी तु वैष्णवी । त्रिधा शक्तिः स्थिता लोके तत्परं ज्योतिरोमिति" । परमब्रह्मकी शक्तिके तीन भाग हैं इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति । इच्छाशक्ति गौरी, क्रियाशक्ति ब्राह्मी, ज्ञानशक्ति वैष्णवी । यह तीन शक्तियां प्रणवकी प्रतिपाद्य हैं ।

महत्तत्त्वसे लेकर 'महाभूत' तक समस्त संसार तुमसे ही उत्पन्न हुआ है; सब कारणका कारण वह परब्रह्म केवल निमित्त मात्र है ॥ २६ ॥

सद्रूपं सर्वतोव्यापि सर्वमावृत्त्य तिष्ठति ।
सदैकरूपं चिन्मात्रं निर्लिप्तं सर्ववस्तुषु ॥ २७ ॥

ब्रह्म सत्त्वरूप और सर्वव्यापी है, उसने सब संसारको ढक रक्खा है, वह सदा एकभावसे रहता है, वह चिन्मय है और सब वस्तुओंसे अलग है ॥ २७ ॥

न करोति न चाश्नाति न गच्छति न तिष्ठति ।
सत्यं ज्ञानमनाद्यन्तमवाङ्मनसगोचरम् ॥ २८ ॥

वह कुछ नहीं करता, भोजन नहीं करता, गमन नहीं करता और स्थिति नहीं करता। वह सत्य और ज्ञानस्वरूप, आदि-अन्तहीन, वचन मनसे अगोचर है ॥ २८ ॥

तस्येच्छामात्रमालम्ब्य त्वं महायोगिनी परा ।
करोषि पासि हंस्यन्ते जगदेतच्चराचरम् ॥ २९ ॥

तुम परात्परा महायोगिनी हो, केवल तुम उस ब्रह्मकी इच्छा का सहारा लेकर इस चराचर जगत्को उत्पन्न, पालन और संहार करती हो ॥ २९ ॥

तव रूपं महाकालो जगत्संहारकारकः ।
महासंहारसमये कालः सर्वं ग्रसिष्यति ॥ ३० ॥

जगत्का संहार करनेवाला काल, तुम्हारा एकरूप है, यह महाकाल महाप्रलयमें समस्त पदार्थोंका ग्रास करेगा ॥३०॥

कलनात्सर्व्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः।
महाकालस्य कलनात्त्वमाद्या कालिका परा ॥३१॥

सर्वभूतोंको ग्रास करता है इस कारण उसका नाम महाकाल है; तुम महाकालको ग्रास करती हो इस कारणसे तुम्हारा नाम आद्या, परा, कालिका है ॥ ३१ ॥

कालसंग्रसनात्काली सर्वेषामादिरूपिणी।
कालत्वादादिभूतत्वादाद्याकालीति गीयते ॥ ३२॥

तुम कालको ग्रास करती हो इस कारण तुम्हारा नाम काली है, सबका कालत्व और आदिभूतत्व होनेसे लोग तुमको आद्या काली कहते हैं ॥ ३२ ॥

पुनः स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृतिः।
वाचातीतं मनोगम्यं त्वमेकैवावशिष्यसे ॥ ३३ ॥

तुम प्रलयके समयमें वाक्यके अतीत, मनके अगोचर, निराकारस्वरूप तमोमय रूप धारण कर अकेली विद्यमान रहती हो ॥ ३३ ॥

साकारापि निराकारा मायया बहुरूपिणी।
त्वं सर्व्वादिरनादिस्त्वं कर्त्री हर्त्री च पालिका॥३४॥

तुम साकार होकर भी निराकार हो; परन्तु मायाका आश्रय ग्रहण करके अनेक रूप धारण करती हो, तुम सबकी आदि हो; परन्तु तुम्हारा आदि कोई भी नहीं है, तुम सृष्टि उत्पन्न करनेवाली, पालन करनेवाली और संहार करनेवाली हो ॥ ३४ ॥

अतस्ते कथितं भद्रे ब्रह्ममन्त्रेण दीक्षितः ।
यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं तव साधनात् ॥ ३५॥

हे भद्रे ! मैंने इसी कारणसे कहा कि, ब्रह्मदीक्षित पुरुष जो फल पाता है तुम्हारी साधनासे भी वह फल पाया जाता है ३५

नानाचारेण भावेन देशकालाधिकारिणाम् ।
विभेदात्कथितं देवि कुत्रचिद् गुप्तसाधनम् ॥३६॥

मैंने देशभेदसे, कालभेदसे अनेक प्रकारके आचार और अनेक प्रकारके भाव प्रकाशित किये हैं, किसी किसी तन्त्रमें गुप्तसाधनकी कथा भी कही है ॥ ३६ ॥

ये यत्राधिकृता मर्त्यास्ते तत्र फलभागिनः ।
भविष्यन्ति तरिष्यन्ति मानुषा गतकिल्बिषाः॥३७

जो मनुष्य जैसे आचार, जैसे भाव और जैसे साधनके अधिकारी है, वैसा ही अनुष्ठान करनेसे फलभागी होते हैं,

---

१ 'तदत्र गुप्तसाधनम्' इति वा पाठः ।

और साधना करनेसे पापरहित हो संसारसमुद्रके पार हो जाता है ॥ ३७ ॥

बहुजन्मार्ज्जितैः पुण्यैः कुलाचारे मतिर्भवेत् ।
कुलाचारेण पूतात्मा साक्षाच्छिवमयो हि सः॥ ३८॥

जन्म जन्म में उपार्जित किये हुए पुण्यके प्रभावसे कुलाचार में जिनकी वासना होती है वे लोग कुलाचारके अवलम्बनसे आत्माको मग्न करके साक्षात् शिवमय हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

यत्रास्ति भोगबाहुल्यं तत्र योगस्य का कथा ।
योगेऽपि भोगविरहः कौलस्तूभयमश्नुते ॥ ३९ ॥

जहांपर भोगोंकी बहुतायत है, वहां योगकी संभावना कैसी ? जहांपर योग है, वहींपर भोगका अभाव है; परन्तु कुलाचारमें प्रवृत्त होनेपर भोग वा योग दोनों ही प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

एकश्चेत्कुलतत्त्वज्ञः पूजितो येन सुव्रते ।
सर्व्वे देवाश्च देव्यश्च पूजिता नात्र संशयः ॥४०॥

हे सुव्रते ! कुलतत्त्वका जाननेवाला पुरुष यदि एककी ही अर्चना करे तो समस्त देवदेवियोंकी पूजा हो जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ४० ॥

पृथिवीं हेमसम्पूर्णां दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात् ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं लभते कौलिकार्चनात्॥४१॥

सुवर्णपरिपूर्ण पृथ्वीके दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है कुलाचार सम्मत अथवा कुलाचारपरायण पुरुषकी अर्चना करनेपर उससे करोड़ गुणा फल मिलता है ॥ ४१ ॥

श्वपचोऽपि कुलज्ञानी ब्राह्मणादतिरिच्यते ।
कुलाचारविहीनस्तु ब्राह्मणः श्वपचाधमः ॥ ४२ ॥

यदि चाण्डालजाति कुलाचारपरायण हो, तो वह ब्राह्मण से श्रेष्ठ भी है, यदि ब्राह्मण कुलाचारसे रहित हो तो वह चाण्डालसे भी अधम होता है ॥ ४२ ॥

कौलधर्म्मात्परो धर्म्मो नास्ति ज्ञाने तु मामके ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण ब्रह्मज्ञानी नरो भवेत् ॥ ४३॥

मुझको जाननेके लिये कौलधर्मसे अधिक कोई धर्म श्रेष्ठ-तर नहीं है; इसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य ब्रह्मज्ञानी हो जाता है ॥ ४३ ॥

सत्यं ब्रवीमि ते देवि हृदि कृत्वावधारय ।
सर्वधर्म्मोत्तमात्कौलात्परो धर्म्मो न विद्यते ॥४४॥

हे देवि ! मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं, तुम हृदयमें इसको स्थिर करो कि सब धर्मोंमें उत्तम कौलधर्मसे अधिक उत्तम धर्म और नहीं है ॥ ४४ ॥

अयं तु परमो मार्गो गुप्तोऽस्ति पशुसंकटे ।
व्यक्तीभविष्यत्यचिरात्संवृत्ते प्रबले कलौ ॥४५॥

यह परममार्ग पशुसंकटसे ढका हुआ है, जब प्रबल कलि-युग आवेगा, तब यह प्रकाशित होगा ॥ ४५ ॥

कलिकाले प्रवृद्धे तु सत्यं सत्यं मयोच्यते ।

न स्थास्यन्ति विना कौलात्पशवो मानवा भुवि ४६

मैं सत्य ही सत्य कहता हूं, कि कलिकी प्रबलता होनेपर कौलाचारी मनुष्यके सिवाय पशुभावावलम्बी मनुष्य पृथ्वी पर नहीं रहेंगे ॥ ४६ ॥

यदा तु वैदिकी दीक्षा दीक्षा पौराणिकी तथा ।

न स्थास्यति वरारोहे ! तदैव प्रबलः कलिः ॥४७॥

हे वरारोहे ! जब वैदिक और पौराणिक दीक्षा पृथ्वीपर नहीं रहेंगी तब ही जान लेना कि प्रबल कलियुग लग गया४७

यदा तु पुण्यपापानां परीक्षा वेदसम्भवा ।

न स्थास्यति शिवे शान्ते तदैव प्रबलः कलिः४८॥

हे शिवे ! जिस समय संसारमें पापपुण्यकी वेदोक्त परीक्षाकी शक्ति न रहेगी तब ही जान लेना कि, अजीत कलियुग आ गया ॥ ४८ ॥

क्वचिच्छिन्ना क्वचिद्भिन्ना यदा सुरतरङ्गिणी ।

भविष्यति कुलेशानि ! तदैव प्रबलः कलिः ॥४९॥

हे कुलेश्वरि ! जब तुम देखोगी कि, सुरतरङ्गिणी गंगाजी स्थान स्थानमें छिन्न भिन्न हो गयी हैं, तब ही जान लेना कि प्रबल कलियुगकी अवाई हुई ॥ ४९ ॥

यदा तु म्लेच्छजातीया राजानो धनलोलुपाः ।
भविष्यन्ति महाप्राज्ञे ! तदैव प्रबलः कलिः ॥५०॥

हे महाप्राज्ञे ! जब तुम देखोगी कि, म्लेच्छजातिके राजा-लोग धनके अत्यन्त लोभी हुए हैं तब ही कलियुगकी प्रब-लता जान सकोगी ॥ ५० ॥

यदा स्त्रियोऽतिदुर्द्दान्ताः कर्कशाः कलहे रताः ।
गर्हिष्यन्ति च भर्तारं तदैव प्रबलः कलिः ॥५१॥

जिस समय स्त्रियें बहुत ही ढीठ हो जायँगी, कर्कश और क्लेशप्रिय होकर पतिकी निंदा करने लगेंगी तब ही जान लेना कि, प्रबल कलियुगकी अवाई हो गयी ॥ ५१ ॥

यदा तु मानवा भूमौ स्त्रीजिताः कामकिङ्कराः ।
द्रुह्यन्ति गुरुमित्रादींस्तदैव प्रबलः कलिः ॥५२॥

जिस कालमें मनुष्य कामके चेले और स्त्रैण होकर बन्धु-बान्धवोंके साथ विरुद्ध व्यवहार करेंगे उस समय घोर कलि-युगका आगमन समझना ॥ ५२ ॥

यदा क्षोणी स्वल्पफला तोयदाः स्तोकवर्षिणः ।
असम्यक्फलिनो वृक्षास्तदैव प्रबलः कलिः ॥५३॥

जिस कालमें पृथ्वीपर थोड़े फल होने लगेंगे, मेघ थोड़ा जल वर्षावेंगे, वृक्ष साधारण फलवान् होंगे तब जान लेना कि, कलियुगकी घोर स्वामिता हो गयी ॥ ५३ ॥

भ्रातरः स्वजनामात्या यदा धनकणेहया ।
मिथः सम्प्रहरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलिः ॥५४॥

जिस कालमें धनके लोभसे अन्धे हो माता, बन्धु, बान्धव, मंत्रिगण परस्पर क्लेश और झगड़ा करेंगे तब जान लेना कि, घोर कलियुग आ गया ॥ ५४ ॥

प्रकटे मद्यमांसादौ निन्दादण्डविवर्जिते ।
गूढपानं चरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलिः ॥ ५५ ॥

जिस समय प्रकटभावसे मद्य, मांस भोजन करनेपर भी कोई निन्दा नहीं करेगा, कोई दण्ड नहीं देगा, बरन् सर्व साधारण गुप्तभावसे शराब पीने लगेंगे तब जान लेना कि, बहुतायतसे कलियुगकी अवाई हुई ॥ ५५ ॥

सत्यत्रेताद्वापरेषु यथा मद्यादिसेवनम् ।
कलावपि तथा कुर्य्यात्कुलधर्म्मानुसारतः[1] ॥ ५६॥

सत्य, त्रेता और द्वापरयुगमें कुलधर्मके अनुसार जिस प्रकार सुरापानका नियम था, कलियुगमें भी यह नियम अन्यथा नहीं होगा ॥ ५६ ॥

ये कुर्वन्ति कुलाचारं सत्यपूता जितेन्द्रियाः ।
व्यक्ताचारा दयाशीला नहि तान्बाधते कलिः ५७॥

---

१ 'कुलवर्त्मानुसारतः' इत्यपि पाठः ।

सत्यकी महिमासे जो लोग पवित्र और जितेन्द्रिय हों कुलाचार मर्यादाकी रक्षा करेंगे उनके आचार सर्वत्र प्रकाशित हो जायँगे, सर्व प्राणियोंमें दया करनेका जिनको अभ्यास है उनके लिये विरुद्ध हो कलियुग कुछ नहीं कर सकेगा ॥ ५७ ॥

गुरुशुश्रूषणे युक्ता भक्ता मातृपदाम्बुजे ।
अनुरक्ताः स्वदारेषु नहि तान्बाधते कलिः ॥५८॥

जो लोग गुरुकी सेवा करते हैं, पिता माताके चरणोंमें भक्ति करते हैं, अपनी स्त्रीमें अनुरागी हैं उनपर कलियुग अपना प्रभाव प्रकट नहीं कर सकेगा ॥ ५८ ॥

सत्यव्रताः सत्यनिष्ठाः सत्यधर्मपरायणाः ।
कुलसाधनसत्या ये नहि तान्बाधते कलिः ॥५९॥

जो लोग सत्यव्रत, सत्यनिष्ठ, सत्यधर्मपरायण और कुलसाधनमें रत हैं उनके विरुद्ध कलियुग आचरण नहीं कर सकेगा ॥ ५९ ॥

कुलमार्गेण तत्त्वानि शोधितानि च योगिने ।
ये दद्युः सत्यवचसे नहि तान्बाधते कलिः ॥ ६०॥

जो लोग कुलधर्मके अनुसार शोधित मत्स्य मांसादि सत्यवादी योगीको देते हैं उनपर कलियुग आक्रमण नहीं कर सकता ॥ ६० ॥

हिंसामात्सर्य्यरहिता दम्भद्वेषविवर्ज्जिताः ।
कुलधर्म्मेषु निष्ठा ये नहि तान्बाधते कलिः॥६१॥

जो लोग हिंसा, दम्भ, द्वेष व मात्सर्यहीन हैं और जिनकी निष्ठा कुलधर्ममें है उनके विरुद्ध कलियुग आचरण नहीं कर सकता ॥ ६१ ॥

कौलिकैः सह संसर्गं वसतिं कुलसाधुषु ।
कुर्वन्ति कौलसेवां ये नहि तान्बाधते कलिः६२॥

जो लोग कौलिकोंके साथ रहते हैं, उनके निकट वसते हैं और उनकी सेवा करते हैं उनके प्रति कलियुग अपना सामर्थ्य प्रकाशित नहीं करेगा ॥ ६२ ॥

नानावेषधराः कौला कुलाचरेषु निश्चलाः ।
सेवन्ते त्वां कुलाचारैर्नहि तान्बाधते कलिः ॥६३॥

जो कुलाचारपरायण मनुष्य कुलमें रहकर अनेक वेष धारण करके कुलाचारसे तुम्हारी पूजा करते हैं कलियुग उनके विरुद्ध आचारण नहीं कर सकता ॥ ६३ ॥

स्नानं दानं तपस्तीर्थं व्रतं तर्पणमेव च ।
ये कुर्वन्ति कुलाचारैर्नहि तान्बाधते कलिः॥६४॥

जो लोग कुलाचारके मतसे, दान, तप, तीर्थ, दर्शन व्रत और तर्पणादि करते हैं उनपर कलियुग अपना आक्रमण नहीं कर सकता॥ ६४ ॥

जीवसेकादिसंस्काराः पितृश्राद्धादिकाः क्रियाः ।
ये कुर्वन्ति कुलाचारैर्नहि तान्बाधते कलिः॥ ६५॥

जो लोग कुलाचारके मतसे गर्भाधानादि संस्कार और पितृश्राद्धादि करते हैं, उनका कलियुग कुछ नहीं कर सकता

कुलतत्त्वं कुलद्रव्यं कुलयोगिनमेव च ।
नमस्कुर्वन्ति ये भक्त्या नहि तान्बाधते कलिः ६६॥

जो लोग भक्तिभावसे कुलद्रव्य, कुलतत्त्व और कुलयोगीकी पूजा करते हैं उनपर कलियुग चढ़ाई नहीं कर सकता ॥ ६६ ॥

कौटिल्यानृतहीनानां स्वच्छानां कुलमार्गिणाम् ।
परोपकारव्रतिनां साधूनां किंकरः कलिः ॥६७॥

जो लोग कुटिलता और मिथ्याचारसे रहित हैं, जो लोग परोपकार करते हैं, साधु हैं, जो लोग निर्मलस्वभाव हैं और कुलधर्मका अनुष्ठान करनेवाले हैं कलियुग उनका किङ्कर हो जाता है ॥ ६७ ॥

कलेर्दोषसमूहस्य महानेको गुणः प्रिये ।
सत्यप्रतिज्ञकौलानां श्रेयः संकल्पमात्रतः ॥ ६८ ॥

हे प्रिये! यद्यपि कलियुग समस्त दोषोंका आकर है; परन्तु इसमें विशेष एक गुण यह है कि, जो लोग सत्यप्रतिज्ञ और कुलाचारपरायण हैं, वे लोग संकल्पमात्रसे ही मंगल लाभ कर सकते हैं ॥ ६८ ॥

अपरे तु युगे देवि पुण्यं पापं च मानसम् ।
नृणामासीत्कलौ पुण्यं केवलं न तु दुष्कृतम्॥६९॥

हे देवि ! दूसरे युगोंमें पाप पुण्य मनके संकल्पसे ही होता था; परन्तु इस युगमें संकल्प करनेसे पुण्य ही प्राप्त होता है, पाप नहीं ॥ ६९ ॥

कुलाचारैर्विहीना ये सततासत्यभाषिणः ।
परद्रोहपरा ये च ते नराः कलिकिङ्कराः ॥ ७० ॥

जो लोग मिथ्यावादी, कुलाचाररहित और पराया अनिष्ट करनेवाले हैं वे ही कलियुगके किंकर हैं ॥ ७० ॥

कुलवर्त्मस्वभक्ता ये परयोषित्सु कामुकाः ।
द्वेष्टारः कुलनिष्ठानां ते ज्ञेयाः कलिकिङ्कराः ॥७१॥

जो लोग कुलमार्गसे घृणा करते हैं, जो लोग परायी स्त्रीके हरण करनेमें लोलुप हैं जो, लोग कुलाचारपरायण मनुष्योंसे द्वेष करते हैं वे ही कलियुगके किंकर कहलाते हैं॥७१॥

युगाचारप्रसंगेन कलेः प्राबल्यलक्षणम् ।
संक्षेपात्कथितं भद्रे ! प्रीतये तव पार्वति ॥ ७२ ॥

हे भद्रे पार्वति ! मैंने युगाचारके प्रसंगसे तुम्हारी प्रीतिके लिये संक्षेपसे कलियुगकी प्रबलताके लक्षण वर्णन किये७२॥

प्रकटेऽत्र कलौ देवि सर्वे धर्म्माश्च दुर्बलाः ।
स्थास्यत्येकं सत्यमात्रं तस्मात्सत्यमयो भवेत्७३॥

हे देवि ! कलियुगके आनेपर समस्त धर्म दुर्बल हो जायँगे, उस कालमें केवल एक सत्य ही रहेगा इस कारण सबको सत्यमय होना चाहिये ॥ ७३ ॥

सत्यधर्म्मं समाश्रित्य यत्कर्म्म कुरुते नरः ।
तदेव सफलं कर्म्म सत्यं जानीहि सुव्रते ॥ ७४ ॥

हे सुव्रते ! मनुष्यगण इस कालमें सत्यधर्मके आश्रयसे जो कर्म करेंगे वे अवश्य सिद्ध होंगे ॥ ७४ ॥

नहि सत्यात्परो धर्मो न पापमनृतात्परम् ।
तस्मात्सर्व्वात्मना मर्त्यः सत्यमेकं समाश्रयेत् ७५॥

सत्यके समान श्रेष्ठ धर्म और मिथ्याके समान कोई पाप नहीं है इस कारण एक सत्यका अवलम्बन करना सब मनुष्योंका कर्तव्य है ॥ ७९ ॥

सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो वृथा जपः ।
सत्यहीनं तपो व्यर्थमूषरे वपनं यथा ॥ ७६ ॥

सत्यरहित पूजा वृथा है, सत्यहीन जप वृथा है, सत्यहीन तप भी ऊषरमें बीज बोनेके समान व्यर्थ है ॥ ७६ ॥

सत्यरूपं परं ब्रह्म सत्यं हि परमं तपः ।
सत्यमूलाः क्रियाः सर्व्वाः सत्यात्परतरो नहि ७७॥

सत्य ही परब्रह्म है और सत्य ही प्रधान तपस्या है, समस्त क्रिया सत्यमूलक हैं, सत्यसे अधिक कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है ॥ ७७ ॥

अत एव मया प्रोक्तं दुष्कृते प्रबले कलौ ।
कुलाचारोऽपि सत्येन कर्त्तव्यो व्यक्तभावतः ७८॥

मैं इसी कारण तुमसे कहता हूं कि, दुष्कर्म प्रधान अजीत कलियुगके अधिकारमें सत्यका अनुगमन कर खुले तौरपर कुलाचरणका अनुष्ठान करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है ७८

गोपनाद्धीयते सत्यं न गुप्तिरनृतं विना ।
तस्मात्प्रकाशतः कुर्य्यात्कौलिकः कुलसाधनम् ७९॥

छिपानेसे सत्यका भी अपलाप हो जाता है, मिथ्याचारके सिवाय किसी बातका छिपाना सम्भव नहीं है अतएव कौल लोगोंको चाहिये कि वह प्रकटभावसे कुलसाधन करें ॥ ७९ ॥

कुलधर्म्मस्य गुप्त्यर्थं नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ।
यदुक्तं कुलतन्त्रेषु न शस्तं प्रबले कलौ ॥ ८० ॥

मैंने कुलतंत्रमें लिखा है कि, कुलधर्मकी रक्षाके लिये उसको छिपानेके लिये झूठ बोलना मिथ्या आचार नहीं होता, ऐसा होनेपर भी प्रबल कलियुगके अधिकारमें यह उपदेश ठीक नहीं है ॥ ८० ॥

कृते धर्म्मश्चतुष्पादस्त्रेतायां पादहीनकः ।
द्विपादो द्वापरे देवि पादमात्रं कलौ युगे ॥ ८१ ॥

सत्ययुगमें धर्मके चार चरण थे, त्रेतामें एक चरण हीन

हुआ। हे देवि ! द्वापरमें केवल धर्मके दो चरण बचे रहते हैं और कलियुगमें धर्मका केवल एक चरण है॥ ८१॥

तत्रापि सत्यं बलवत्तपः खञ्जं दयापि च।
सत्यपादे कृते लोपे धर्म्मलोपः प्रजायते ॥ ८२ ॥

(आश्चर्य है) उस एक चरण धर्ममेंसे भी तपस्या और दयाका अंश लँगड़ा हो गया है, इस समय केवल सत्य ही बलवान् है, यदि यह सत्यरूप चरण तोड़ दिया जाय तो फिर धर्मका चिह्न भी न रहे ॥ ८२ ॥

तस्मात्सत्यं समाश्रित्य सर्वकर्म्माणि साधयेत्।
कुलाचारं विना यत्र नास्त्युपायः कुलेश्वरि ॥८३॥

हे कुलेश्वरि ! मैं इसी लिये कहता हूं कि सत्यका आश्रय ग्रहण करके सब कर्मोंको साधन करना चाहिये, जिस कलियुगमें कुलाचारके सिवाय और कोई उपाय नहीं है॥ ८३ ॥

तत्रानृतप्रवेशश्चेत्कुतो निःश्रेयसं भवेत्।
सर्वथासत्यपूतात्मा मन्मुखेरितवर्त्मना ॥ ८४ ॥
सर्वकर्म्म नरः कुर्य्यात्स्वस्ववर्णाश्रमोदितम्।
दीक्षां पूजां जपं होमं पुरश्चरणतर्पणम् ॥ ८५ ॥

जो उसमें भी मिथ्याभाव प्रवेश कर जाय तो फिर किस प्रकारसे मोक्ष हो सकता है? इस कारण सदा सत्यके आश्रयसे पवित्र आत्मा होकर मेरे कहनेके अनुसार अपने

अपने वर्णाश्रमके योग्य दीक्षा, पूजा, जप, होम, पुरश्चरण और तर्पण करना सबको उचित है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

व्रतोद्वाहौ पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातकर्म्म तथा नामचूडाकरणमेव च ॥ ८६ ॥

विशेष करके व्रत अर्थात् उपनयन विवाह, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूडाकरण ॥ ८६ ॥

मृतक्रियां पितृश्राद्धं कुर्य्यादागमसम्मतम् ।
तीर्थश्राद्धं वृषोत्सर्गं शारदोत्सवमेव च ॥ ८७ ॥

अन्त्येष्टि, पितृश्राद्ध, आगमसम्मत तीर्थश्राद्ध, वृषोत्सर्ग, शारदीया पूजा ॥ ८७ ॥

यात्रागृहप्रवेशं च नववस्त्रादिधारणम् ।
वापीकूपतडागानां संस्कारं तिथिकर्म्म च ॥८८॥

यात्रा, गृहप्रवेश, नववस्त्रधारण, वापी, कूप और तडागादिका खोदना, संस्कार व तीर्थकृत्य ॥ ८८ ॥

गृहारम्भंप्रतिष्ठां च देवानां स्थापनं तथा ।
दिवाकृत्यं निशाकृत्यं पर्वकृत्यं तथैव च ॥ ८९ ॥
ऋतुमासवर्षकृत्यं नित्यं नैमित्तिकं च यत् ।
कर्त्तव्यं यदकर्त्तव्यं त्याज्यं ग्राह्यं च यद्भवेत् ९० ॥
मयोक्तेन विधानेन तत्सर्वं साधयेन्नरः ॥ ९१ ॥

गृहारम्भ और प्रतिष्ठा, दिनरातके कर्तव्य, पर्वकृत्य, ऋतु-कृत्य, मासकृत्य, वर्षकृत्य, नित्यनैमित्तिक जो कुछ करना चाहिये विचारके अनुसार विधिके क्रमसे उन सबको करना और त्याज्य है उसे न करना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१॥

न कुर्य्याद्यदि मोहेन दुर्म्मत्याश्रद्धयापि वा ।
विनष्टः सर्वकर्म्मभ्यो विष्ठायां स भवेत्कृमिः ॥९२॥

यदि मोह, दुर्बुद्धि वा अश्रद्धासे कोई इस साधनाको न करे तो उसको सर्व कर्मोंके बाहर हो विनष्ट और विष्ठाके कुण्डमें कीड़ा बनकर रहना पड़ेगा ॥ ९२ ॥

यदि मन्मतमुत्सृज्य महेशि प्रबले कलौ ।
यदा यत्क्रियते कर्म विपरीताय तद्भवेत् ॥ ९३ ॥

हे महेश्वरि ! कलियुगके प्रबल अधिकार कालमें यदि कोई मेरे मतकी उपेक्षा करके और मतको ग्रहण करके कोई कार्य करेगा, तो वह विपरीत हो जायगा ॥ ९३ ॥

मन्मतासम्मता दीक्षा साधकप्राणघातिनी ।
पूजापि विफला देवि हुतं भस्मार्पणं तथा॥९४॥

जो दीक्षा मेरे मतका विरोध करती है उसके ग्रहण करने से साधकका प्राण नष्ट हो जाता है ! हे देवि ! भस्ममें आहुति देनेके समान उसकी वह पूजा भी विफल हो जाती है॥९४॥

देवताः कुपितास्तस्य विघ्नस्तस्य पदेपदे ॥ ९५ ॥

(अधिक क्या कहा जाय) देवता उसके ऊपर कुपित हो जाते हैं और पग पगपर उसको विघ्न होता है ॥ ९५ ॥

कलिकाले प्रवृद्धे तु ज्ञात्वा मच्छास्त्रमम्बिके ।
योऽन्यमार्गैः क्रियां कुर्य्यात्स महापातकी भवेत् ९६॥

हे अम्बिके ! प्रबल कलियुगके आनेपर मेरे कहे हुए शास्त्रको जानकर भी जो पुरुष और किसी मार्गका अवलम्बन करके क्रिया सिद्ध करेगा वह पुरुष महापातकी होगा ९६

व्रतोद्वाहौ प्रकुर्व्वाणो योऽन्यमार्गेण मानवः ।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ९७ ॥

जो और मार्गका अवलम्बन करके कृत्य या विवाह करेगा तो जबतक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे, तबतक उसका वास नरकमें होगा ॥ ९७ ॥

व्रते ब्रह्मवधः प्रोक्तो व्रात्यो माणवको भवेत् ।
केवलं सूत्रवाहोऽसौ चाण्डालादधमोऽपि सः॥९८॥

मेरा मत छोड़ मतान्तरसे व्रत करनेपर ब्रह्महत्याका पाप होगा, इस प्रकार उपनयन करनेवाला भी पतित होगा, वह केवल सूत्रधारी होकर चाण्डालसे भी अधिक नीच होगा ॥

उद्वाहितापि या नारी जानीयात्तां तु गर्हिताम् ।
उद्वोढापि भवेत्पापी संसर्गात्कुलनायिके ॥ ९९ ॥

हे कुलनायिके ! यदि कोई स्त्री दूसरे नियमसे व्याही

जायगी तो उसको निन्दनीय समझना । उसका संग करनेसे पतिको भी पातकी होना पड़ेगा ॥ ९९ ॥

वेश्यागमनजं पापं तस्य पुंसो दिने दिने ।
तद्धस्तैदत्ततोयादि नैव गृह्णन्ति देवताः ॥ १००॥

वेश्यागमन करनेसे जो पाप होता है उस पातकिनीके संगसे भी वही पाप होता है; यदि वह नारी अपने हाथसे अन्न और जलादि दे तो उसको देवतालोग ग्रहण नहीं करते १००॥

पितरोऽपि न चाश्नन्ति यतस्तन्मलपूयवत् ।
तयोरपत्यं कानीनः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ १०१॥

पितृलोग मल व राध समझकर उसको नहीं छूते, यदि ऐसीके गर्भसे पुत्र हो तो वह कानीन और सर्वधर्मोंके बाहर होगा ॥ १०१ ॥

दैवे पैत्रे कुलाचारे नाधिकारोऽस्य जायते ।
अशाम्भवेन मार्गेण देवतास्थापनं चरेत्॥१०२॥

जो पुरुष शिवके नियत किये हुए मार्गको छोड़कर और मतसे देवता स्थापन करता है उसका अधिकार देवकर्म, पितृकार्य और कुलाचारमें नहीं रहेगा ॥ १०२ ॥

न सान्निध्यं भवेत्तत्र देवतायाः कथञ्चन ।
इहामुत्र फलं नास्ति कायक्लेशो धनक्षयः ॥१०३॥

---

१ ‘ तद्धस्तादन्नतोयादि ’ पाठोऽयमपि समीचीनः ।

उसकी की हुई देवप्रतिष्ठामें देवताकी स्थिति नहीं होगी और उसको इस लोक व परलोकमें किसी प्रकारका फल नहीं होगा। उसको केवल कायक्लेश होगा या वृथा धन खर्च होगा॥ १०३॥

आगमोक्तविधिं हित्वा यः श्राद्धं कुरुते नरः।
श्राद्धं तद्विफलं सोऽपि पितृभिर्नरकं व्रजेत् ॥१०४

जो पुरुष आगमकी कही हुई विधिको छोड़कर श्राद्ध करता है, उसका वह श्राद्ध निष्फल हो जाता है और श्राद्ध-कर्ता भी पितृपुरुषोंके साथ नरकगामी होता है॥ १०४॥

तत्तोयं शोणितसमं पिण्डो मलमयो भवेत्।
तस्मान्मर्त्यः प्रयत्नेन शाङ्करं मतमाश्रयेत्॥१०५॥

उसका दिया हुआ जल रुधिरके समान और पिण्ड मल-मय हो जाता है. इस कारण सर्वयत्नोंसे महादेवजीके मतका अनुसरण करना मनुष्यका कर्तव्य है॥ १०५॥

बहुनात्र किमुक्तेन सत्यं सत्यं मयोच्यते[1]।
अशाम्भवं कृतं कर्म सर्वं देवि निरर्थकम् ॥१०६॥

मैं अधिक न कहकर सत्य सत्य ही कहता हूं, हे देवि! जो लोग शम्भुकी उक्तिकी अवहेला करके कार्य करते हैं उन-का वह कार्य निष्फल हो जाता है॥ १०६॥

१ 'सत्यं सत्यं मयोदितम्' इति वा पाठः।

अस्तु तावत्परो धर्मः पूर्वधर्म्मोऽपि नश्यति ।
शाम्भवाचारहीनस्य नरकान्नैव निष्कृतिः॥१०७॥

दूसरे मतमें धर्मका संचय तो दूर रहे, वरन् संचित धर्म भी नाशको प्राप्त हो जाता है, जो पुरुष शैवाचारसे हीन है उसके लिये नरकसे निकलनेका कोई उपाय नहीं है ॥ १०७ ॥

मदुदीरितमार्गेण नित्यनैमित्तकर्मणाम् ।
साधनं यन्महेशानि ! तदेव तव साधनम् ॥१०८॥

हे महेश्वरि ! मैंने जिस मार्गका वर्णन किया है, उसके अनुसार नित्य नैमित्तिक कर्मका साधन करनेसे वह तुम्हारा ही साधन होता है ॥ १०८ ॥

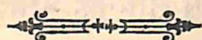
विशेषाराधनं तत्र मन्त्रयन्त्रादिसंयुतम् ।
भेषजं कलिरोगाणां श्रूयतां गदतो मम ॥१०९॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्ने पराप्रकृतिसाधनोपक्रमो नाम चतुर्थोल्लासः ॥४॥

जो आराधना कलिरोगके लिये महौषधिके समान है, जिसमें बहुतसे मन्त्रयन्त्रादिकोंका विधान है तुम मुझसे उस श्रेष्ठ आराधनाकी कथाको श्रवण करो ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्ने मुरादावादनिवासि पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां पराप्रकृतिसाधनोपक्रमो-नाम चतुर्थोल्लासः ॥ ४ ॥

पञ्चमोल्लासः ५.



श्रीसदाशिव उवाच ।

त्वमाद्या परमा शक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
तव शक्त्या वयं शक्ताः सृष्टिस्थितिलयादिषु ॥ १ ॥

सदाशिवजी बोले कि, तुम आद्य परमाशक्ति हो व सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो, तुम्हारी शक्तिकी सहायतासे हम सृष्टि, स्थिति और लयकार्यमें समर्थ होते हैं ॥ १ ॥

तव रूपाण्यनन्तानि नानावर्णाकृतीनि च ।
नानाप्रयाससाध्यानि वर्णितुं केन शक्यते ॥ २ ॥

तुम्हारा रूप अनन्त है और वर्ण व आकार अनेक हैं, सब रूपोंकी साधना भी बहुत श्रमसे होती है, कौन पुरुष इसके विशेष वर्णन करनेका सामर्थ्य रखता है ॥ २ ॥

तव कारुण्यलेशेन कुलतन्त्रागमादिषु ।
तेषामर्चासाधनानि कथितानि यथामति ॥ ३ ॥

तो भी तुम्हारे करुणाप्रभावसे कुलतन्त्र व दूसरे आगमोंमें तुम्हारे समस्त रूप और पूजा साधनादिका यथासाध्य वर्णन किया है ॥ ३ ॥

गुप्तसाधनमेतत्तु न कुत्रापि प्रकाशितम् ।
अस्य प्रसादात्कल्याणि मयि ते करुणेदृशी ॥ ४ ॥

मैंने किसी स्थानमें भी गुप्तसाधन विषयको प्रकाशित नहीं किया । हे कल्याणि ! इस साधनके प्रसादसे मेरे प्रति तुम्हारी ऐसी करुणा है ॥ ४ ॥

त्वया पृष्टमिदानीं तन्नाहं गोपयितुं क्षमः ।
कथयामि तव प्रीत्यै मम प्राणाधिकं प्रिये ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! इस समय तुम मुझसे पूँछती हो इस कारण तुमसे यह गुप्तसाधन मैं छिपा नहीं सकता. यह मुझको प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है, तुम्हारी प्रीतिके लिये कहता हूं ॥ ५ ॥

सर्वदुःखप्रशमनं सर्व्वापद्विनिवारकम् ।
त्वत्प्राप्तिमूलमचिरात्तव सन्तोषकारणम् ॥ ६ ॥

इसके द्वारा सब दुःख निवारित हो जाते हैं; सब आपत्तियें दब जाती हैं । यह तुम्हारे संतोषका मूल है और इसकी ही सहायतासे तुमको पाया जा सकता है ॥ ६ ॥

कलिकल्मषहीनानां नृणां स्वल्पायुषां प्रिये ।
बहुप्रयासासक्तानामेतदेव परं धनम् ॥७॥

हे प्रिये ! कलिकालके जीव पापके भारसे दबने और दीनभावसे युक्त हो अत्यन्त अल्पायु होंगे, उनसे बहुतसा परिश्रम न हो सकेगा बस उनके लिये यह साधन ही परम विधि है ॥ ७ ॥

न चात्र न्यासबाहुल्यं नोपवासादिसंयमः।
सुखसाध्यमबाहुल्यं भक्तानां फलदं महत् ॥ ८ ॥

इसमें बहुतसे न्यास वा उपासनादिकी संयमविधि नहीं है, यह अतिशय संक्षिप्त और श्रमसाध्य है, विशेषकरके यह साधन भक्तोंको बहुतसा फल देनेवाला है ॥ ८ ॥

तत्रादौ शृणु देवेशि मन्त्रोद्धारक्रमं शिवे।
यस्य श्रवणमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥ ९ ॥

हे देवेशि ! प्रथम इसके मन्त्रोद्धारका क्रम बतलाता हूं, श्रवण करो इसके सुनते ही जीव जीवन्मुक्त हो जाता है ॥९॥

प्राणेशस्तैजसारूढो भेरुण्डाव्योमबिन्दुमान्।
बीजमेतत्समुद्धृत्य द्वितीयमुद्धरेत्प्रिये ॥ १० ॥
सन्ध्या रक्तसमारूढा वामनेत्रेन्दुसंहिता।
तृतीयं शृणु कल्याणि ! दीपसंस्थः प्रजापतिः॥ ११॥

प्राणेश (ह) तैजस (र) में आरोहण करनेसे उसमें भेरुण्डा (ई) मिला व्योमबिन्दु (०) मिलावे। हे प्रिये ! इस प्रकार "ह्रीं" बीजोद्धार करके संध्या (श) रक्तके (र) के ऊपर आरोहण करके उसमें वामनेत्र (ई) बिन्दु अनुस्वार मिलानेसे दूसरा मन्त्र "श्रीं" होगा, हे कल्यणि ! अब तीसरा मन्त्र कहता हूं, श्रवण करो। प्रजापति अर्थात "क" दीप अर्थात् "र" के ऊपर है ॥ १० ॥ ११ ॥

गोविन्दबिन्दुसंयुक्तः साधकानां सुखावहः ।
बीजत्रयन्ते परमेश्वरि सम्बोधनं पदम् ॥ १२ ॥

इसमें गोविन्द अर्थात् "ई" और अनुस्वारमें संयोग करे यह "क्रीं" बीज साधकोंके लिये सुखदायी है, इन तीन बीजोंके पीछे "परमेश्वरि" पदका प्रयोग करे ॥ १२ ॥

वह्निकान्तावधिः प्रोक्तो दशार्णोऽयं मनुः शिवे ।
सर्वविद्यामयी देवी विद्येयं परमेश्वरि ॥ १३ ॥

इस मन्त्रके अन्तमें "वह्निकान्ता" अर्थात् "स्वाहा" पद बोला जायगा. हे शिवे ! इससे "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा" यह दशाक्षर मन्त्र होगा. यही सर्वविद्यामयी देवी परमेश्वरी विद्या है ॥ १३ ॥

आद्यत्रयाणां बीजानां प्रत्येकं त्रयमेव वा ।
प्रजपेत्साधकाधीशः सर्वकामार्थ सिद्धये ॥ १४ ॥

साधकोंमें उत्तम सर्व कामनासिद्धिके लिये: प्रथमके तीन बीजोंके मध्यमें सबका या एकका जप करता रहे ॥ १४ ॥

बीजमाद्यत्रयं हित्वा सप्तार्णापि दशाक्षरी ।
कामवाग्भवताराद्या सप्तार्णाष्टाक्षरी त्रिधा ॥१५॥

दशाक्षर मन्त्रके " ह्रीं श्रीं क्रीं " ये तीन प्रथम बीज छोड़ देनेसे " परमेश्वरि स्वाहा " यह सप्ताक्षर मन्त्र होता है इसके पहले " क्लीं " कामबीज " ऐं " वाग्बीज और प्रणव-

युक्त करनेसे " क्लीं परमेश्वरि स्वाहा " " ऐं परमेश्वरि स्वाहा " " ओं परमेश्वरि स्वाहा " ये अष्टाक्षरयुक्त तीन मंत्र होते हैं ॥ १५ ॥

दशार्णमन्त्रणपदात्कालिके पदमुच्चरेत् ।
पुनराद्यत्रयं बीजं वह्निजायां ततो वदेत् ॥ १६॥

दशाक्षर मन्त्रके संबोधन पदके अन्तमें " कालिके " पद उच्चारण करना चाहिये फिर " ह्रीं श्रीं क्लीं " ये प्रथमके तीन आदि बीज उच्चारण करके वह्निवधू अर्थात 'स्वाहा' पद उच्चारण करे ॥ १६ ॥

षोडशीयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
वध्वाद्या प्रणवाद्या चेदेषा सप्तदशी द्विधा ॥ १७॥

तब " ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा " यह षोडशाक्षर मन्त्र हो जायगा. यह सब तन्त्रोंमें गुप्त मैंने तुमसे कहा है । यदि इस मन्त्रके प्रथममें "स्त्रीं" अथवा प्रणव " ओं " मिल जाय तो दो सप्तदशाक्षर मन्त्र हो जायँगे ॥ १७ ॥

तव मन्त्रा ह्यसंख्याताः कोटिकोट्यर्बुदास्तथा ।
संक्षेपादत्र कथिता मन्त्राणां द्वादश प्रिये ॥१८॥

हे देवि ! तुम्हारे कोटि कोटि अर्बुद अर्बुद अथवा असंख्य मन्त्र हैं, संक्षेपसे यहांपर बारह मन्त्रोंका वर्णन किया१८

येषु येषु च तन्त्रेषु ये ये मन्त्राः प्रकीर्तिताः ।
ते सर्वे तव मन्त्राः स्युस्त्वमाद्या प्रकृतिर्यतः॥१९॥

जिस जिस तन्त्रमें जिस जिस मन्त्रका वर्णन है, वे सब ही तुम्हारे मन्त्र हैं क्योंकि तुम आद्या प्रकृति हो ॥ १९ ॥

एतेषां सर्वमन्त्राणा[1]मेकमेव हि साधनम् ।
कथयामि तव प्रीत्यै तथा लोकहिताय च ॥२०॥

सब मन्त्रोंकी साधना इस प्रकारसे है, मैं लोकके हितार्थ और तुम्हारी प्रीतिके लिये उस साधनाका वर्णन करता हूं२०॥

कुलाचारं विना देवि शक्तिमन्त्रो न सिद्धिदः ।
तस्मात्कुलाचारतो वै साधयेच्छक्तिसाधनम्॥२१॥

हे देवि ! कुलाचारके विना शक्तिमन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता इससे कुलाचारमें रत रहकर शक्तिका साधन करना चाहिये ॥ २१ ॥

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
शक्तिपूजाविधावाद्ये पञ्चतत्त्वं प्रकीर्तितम् ॥२२ ॥

हे आद्ये ! शक्तिपूजाप्रकरणमें मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन ये पांच तत्त्व साधनरूपमें कहे जाते हैं ॥ २२ ॥

पञ्चतत्त्वं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ।
नष्टा सिद्धिः साधकस्य प्रत्यूहाश्च पदे पदे॥ २३ ॥

विना पांचतत्त्वके पूजा करनेसे पूजा प्राणनाशकारिणी होती है। इससे साधका अभीष्ट सिद्ध होना तो दूर रहे बरन् उसको पग पग पर भयानक विघ्न होते हैं ॥ २३ ॥

---

१ 'तव मन्त्राणाम्'' इति क्वचित् पाठः ।

शिलायां सस्यवापे च यथा नैवाङ्कुरो भवेत् ।
पञ्चतत्त्वविहीनायां पूजायां न फलोद्भवः ॥ २४

जिस प्रकार शिलापर बीज बोनेसे अंकुर नहीं निकलता, वैसे ही पंचतत्त्वके विना पूजासे कोई फल नहीं निकलता २४॥

प्रातःकृत्यं विना देवि नाधिकारी तु कर्म्मसु ।
तस्मादादौ प्रवक्ष्यामि प्रातःकृत्यं यथोचितम् २५॥

हे देवि ! विना प्रातःकृत्य किये कार्यका आधिकार नहीं होता इस कारण प्रथम यथोचित प्रातःकृत्यकी विधि कहता हूं ॥ २५ ॥

रजनीशेषयामस्य शेषार्द्धमरुणोदयः ।
तदा साधक उत्थाय मुक्तस्वापः कृतासनः ।
ध्यायेच्छिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् २६॥

रातके पिछले पहरके शेष द्विकालमें अरुणोदयके समय निद्रा त्यागकर उठ आसनपर बैठ मस्तकपर श्वेतकमलमें द्विभुज द्विनेत्र गुरु बैठे हैं, ऐसा ध्यान शिष्यको चाहिये २६॥

श्वेताम्बरपरीधानं श्वेतमाल्यानुलेपनम् ।
वराभयकरं शान्तकरुणामयविग्रहम् ॥ २७ ॥

वे श्वेतवस्त्र पहिने हैं, शरीर श्वेतमाला और श्वेतचन्दन से चर्चित है, वे शान्त और करुणाके आधार हैं, हाथमें वर और अभय हैं ॥ २७ ॥

वामेनोत्पलधारिण्या शक्त्यालिङ्गितविग्रहम् ।
स्मेराननं सुप्रसन्नं साधकाभीष्टदायकम् ॥ २८ ॥

वामभागमें कमलफूल धारण किये, शक्ति उनको आलिंगन करती है, उनका मुखमण्डल मुसकानयुक्त और प्रसन्नतासे परिपूर्ण है । वे साधकके अभीष्टदायक हैं ॥ २८ ॥

एवं ध्यात्वा कुलेशानि मानसैरुपचारकैः ।
पूजयित्वा जपेन्मन्त्री वाग्भवं बीजमुत्तमम् ॥२९॥

हे परमेश्वरि ! मन्त्रका जाननेवाला पुरुष इस प्रकार ध्यानकर मानसोपचारसे अर्चना करके (ऐं) दिव्यमन्त्रका जप करे ॥ २९ ॥

यथाशक्ति जपं कृत्वा समर्प्य दक्षिणे करे ।
ततस्तु प्रणमेद्धीमान्मन्त्रेणानेन सद्गुरुम्॥ ३० ॥

इसके उपरान्त यथाशक्ति जप कर देवीजीके दाहिने हाथमें जप समर्पण कर वक्ष्यमाण मन्त्रसे सद्गुरुके चरणमें प्रणाम करे ॥ ३० ॥

भवपाशविनाशाय ज्ञानदृष्टिप्रदर्शिने ।
नमः सद्गुरवे तुभ्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ॥ ३१ ॥

हे गुरुदेव ! आप संसारके फन्दोंका नाश करनेवाले हैं, आप ज्ञानदृष्टिके दिखलानेवाले हैं । आपसे भोग मोक्ष प्राप्त होती है, इस कारण आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

नराकृतिपरब्रह्मरूपायाज्ञानहारिणे ।
कुलधर्मप्रकाशाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३२ ॥

आप नरदेहधारी है, परन्तु अज्ञानहारी परब्रह्ममूर्ति हैं। आपसे कुलधर्मने प्रकाश पाया है इस कारण हे श्रीगुरुदेव! आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

प्रणम्यैवं गुरुं तत्र चिन्तयेन्निजदेवताम् ।
पूर्ववत्पूजयित्वा तां मूलमन्त्रजपं चरेत् ॥ ३३ ॥

गुरुजीको इस प्रकारसे नमस्कार करके फिर अपने इष्ट देवताका ध्यान करे। पहलेके समान पूजा करके उस पूजाके अन्तमें फिर मूलमन्त्रका जप करे ॥ ३३ ॥

यथाशक्ति जपं कृत्वा देव्या वामकरेऽर्पयेत् ।
मन्त्रेणानेन मतिमान्प्रणमेदिष्टदेवताम् ॥ ३४

यथाशक्ति जप पूरा कर देवीके बांयें हाथमें उसको अर्पणकर वक्ष्यमाण मन्त्रसे इष्टदेवताको प्रणाम करे ॥ ३४ ॥

नमः सर्वस्वरूपिण्यै जगद्धात्र्यै नमोनमः ।
आद्यायै कालिकायै ते कर्त्र्यै हर्त्र्यै नमोनमः[1] ॥ ३५ ॥

आप सर्वस्वरूपिणी जगद्धात्री आदिशक्ति और कालिका हैं, आप जगत्को उत्पन्न करती, पालन करती हैं; आपको वारंवार नमस्कार है ॥ ३५ ॥

१ 'कर्त्र्यै हर्त्र्यै नमोऽस्तु ते' इति पाठान्तरम् ।

नमस्कृत्य बहिर्गच्छेद्वामपादपुरःसरम् ।
त्यक्त्वा मूत्रपुरीषं च दन्तधावनमाचरेत् ॥ ३६ ॥

नमस्कारके अन्तमें आगे बाँया पाँव रखके बाहर आवे फिर मल मूत्र त्यागकर दतोन करे ॥ ३६ ॥

ततो गत्वा जलाभ्याशे स्नानं कृत्वा यथाविधि[1] ।
आदावप उपस्पृश्य प्रविशेत्सलिले ततः ॥ ३७ ॥

फिर जलाशय अर्थात् वापी, कूप तडागादिके निकट जाकर यथाविधिसे स्नान करे, पहले आचमन करके फिर स्नान करे ॥ ३७ ॥

नाभिमात्रजले स्थित्वा मलानामपनुत्तये ।
सकृत्स्नात्वा तथोन्मज्ज्य मान्त्रमाचमनं चरेत् ३८॥

इसके उपरान्त नाभितक जलमें खड़ा हो, शरीरके मैलको दूर कर केवल एक बार स्नान करे, फिर गोता लगा तांत्रिक मन्त्रसे आचमन करे ॥ ३८ ॥

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैः स्वाहान्तैः साधकाग्रणीः ।
त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्ज्य त्वाचमेत्कुलसाधकः ३९॥

कुलसाधकको चाहिये कि, वह चतुर्थ्यन्त तथा स्वाहान्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वको अर्थात् 'आत्मतत्त्वाय स्वाहा' 'विद्यातत्त्वाय स्वाहा' एवं 'शिवतत्त्वाय स्वाहा'

---

१ 'स्नानं कुर्याद्यथाविधि' इति वा पाठः ।

इन मन्त्रोंका उच्चारण करके तीन वार जलपान करे,फिर दो बार आचमन करनेके उपरान्त आचमन करना उचित है ३९॥

कुलयन्त्रं मन्त्रगर्भं विलिख्य सलिले सुधीः ।
मूलमन्त्रं द्वादशधा तस्योपरि जपेत्प्रिये ॥ ४० ॥

इसके अनन्तर ज्ञानी पुरुष जलके उपरिभागमें कुलयंत्र लिखकर उसमें मूलमंत्र लिखे । हे प्रिये ! उसके ऊपर बारह अक्षरवाले मूलमंत्रका जप करना चाहिये ॥ ४० ॥

तेजोरूपं जलं ध्यात्वा सूर्य्यमुद्दिश्य देशिकः ।
तत्तोयैस्त्र्यञ्जलीन्दत्त्वा तेनैव पाथसा त्रिधा ।
अभिषिच्य स्वमूर्द्धानं सप्तच्छिद्राणि रोधयेत् ॥४१॥

फिर साधकको चाहिये कि, उस जलको तेजरूप समझकर सूर्यके लिये तीन अंजलि जल दे। उस जलको तीन बार अपने मस्तकपर छिड़के और मुख, नासिका, कान व नेत्र इन सात छिद्रोंको रोके ॥ ४१ ॥

ततस्तु देवताप्रीत्यै त्रिर्निमज्ज्य जलान्तरे ।
उत्थाय गात्रं सम्मार्ज्य पिदध्याच्छुद्धवाससी॥४२॥

फिर देवताके प्रसन्नताके लिये जलमें तीन बार गोता मारे, फिर उठकर शरीर मार्जन करनेके अन्तमें शुद्ध वस्त्र पहरे ॥४२॥

मृत्स्नया भस्मना वापि त्रिपुण्ड्रं[1] बिन्दुसंयुतम् ।
ललाटे तिलकं कुर्य्याद्गायत्र्या बद्धकुन्तलः ॥४३॥

१ 'त्रिपुण्ड्रं भस्मसंयुक्तम्' इति पाठान्तरम्।

अनन्तर गायत्री पढ़, केश बांध, शुद्ध मट्टी अथवा भस्मका माथेपर बिन्दुयुक्त तिलक लगावे और त्रिपुंड्र धारण करे ॥ ४३ ॥

वैदिकीं तान्त्रिकीश्चैव यथानुक्रमयोगतः ।
सन्ध्यां समाचरेन्मन्त्री तान्त्रिकीं शृणु कथ्यते ४४ ॥

फिर क्रमानुसार वैदिकी और तांत्रिकी संध्याका अनुष्ठान करे । अब मैं तांत्रिकी संध्याविधि कहता हूं, श्रवण करो ४४ ॥

आचम्य पूर्ववत्तोयैस्तीर्थान्यावाहयेच्छिवे ॥ ४५ ॥

हे शिवे! जलग्रहण कर पहिली कही हुई विधिके अनुसार तीर्थादिमें स्नान करे ॥ ४५ ॥

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्म्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ४६ ॥

साधक प्रार्थना करे कि, हे गंगे ! यमुने ! गोदावरि ! सरस्वति ! नर्मदे ! सिन्धु ! कावेरि ! तुम इस जलमें अधिष्ठान करो ॥ ४६ ॥

मन्त्रेणानेन मतिमान्मुद्रयाङ्कुशसंज्ञया ।
आवाह्य तीर्थं सलिले मूलं द्वादशधा जपेत् ॥ ४७ ॥

ज्ञानी पुरुष इस मन्त्रको पढ़कर अङ्कुशमुद्रासे जलमें सब तीर्थोंका आवाहन करके उसके ऊपर वारंवार मूलमन्त्र जपे ४७

ततस्तत्तोयतो बिन्दूंस्त्रिधा भूमौ विनिक्षिपेत् ।
मध्यमानामिकायोगान्मूलोच्चारणपूर्वकम् ॥ ४८ ॥

फिर मध्यमाके साथ अनामिका अंगुलीको मिला मूलमन्त्रका उच्चारण कर इस जलसे लेकर तीन बार थोड़ा थोड़ा जल पृथ्वीपर छोड़े ॥ ४८ ॥

सप्तवारं स्वमूर्द्धानमभिषिच्य ततो जलम् ।
वामहस्ते समादाय छादयेद्दक्षपाणिना ॥ ४९ ॥
ईशानवायुवरुणवह्नीन्द्रबीजपञ्चकम् ।
प्रजप्य सप्तधा तोयं दक्षहस्ते समानयेत् ॥५०॥

मूलमन्त्र उच्चारण करनेके समय ऐसे ही इन दोनों उंगलियोंके संयोगसे इस जलकी बूँदें सात बार अपने मस्तकपर छिड़के, फिर बायें हाथमें कुछ जल ग्रहण कर दायें हाथसे उसको ढक चार बार ईशान, वायु, वरुण, वह्नि और इन्द्र बीज जपकर दाहिने हाथमें ग्रहण करे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वीक्ष्य तेजोमयं ध्यात्वा चेडयाकृष्य साधकः ।
देहान्तःकलुषं तेन रेचयेत्पिङ्गलाख्यया ॥ ५१ ॥

इसके उपरान्त इस जलकी ओर निहार उसको तेजयुक्त रूप विचार इडानामक नाडीसे आकर्षण करके उससे शरीरके पापको धो उस पापको कृष्णवर्ण विचार पिंगला नाड़ीके द्वारा त्याग कर दे ॥ ५१ ॥

निष्कृष्य पुरतो वज्रशिलायामस्त्रमुच्चरन् ।
त्रिवारं ताडयेन्मन्त्री हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ॥५२॥
आचम्योक्तेन मन्त्रेण सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत्॥५३॥

अनन्तर (फट्) मन्त्रको उच्चारण कर सन्मुख स्थित हुई कल्पित वज्रशिलाके ऊपरके भागमें उस जलको तीन वार मारे और हाथ धो आचमन करके वक्ष्यमाण मन्त्रसे सूर्य भगवान्को अर्घ्य दे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

तारमायाहंस इति घृणिसूर्य्य ततः परम् ।
इदमर्घ्यं तुभ्यमुक्त्वा दद्यात्स्वाहेत्युदीरयन् ॥५४॥

सूर्य भगवान्को अर्घ्य देनेका यह मन्त्र है "ओं ह्रीं हंस घृणि सूर्य इदमर्घ्यं तुभ्यं स्वाहा" ॥ ५४ ॥

ततो ध्यायेन्महादेवीं गायत्रीं परदेवताम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने त्रिरूपां गुणभेदतः ॥ ५५ ॥

फिर प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सन्ध्याकालमें गुण-भेदके अनुसार परमदेवता गायत्रीकी त्रिविध मूर्तिका ध्यान करना उचित है ॥ ५५ ॥

प्रातर्ब्राह्मीं रक्तवर्णां द्विभुजां च कुमारिकाम् ।
कमण्डलुं तीर्थपर्णमक्षमालां च बिभ्रतीम् ।
कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढां शुचिस्मिताम्॥५६॥

---

१ 'वज्रशिलायां मन्त्रमुच्चरन्' इति वा पाठः ।

प्रातःकाल ही ब्रह्मशक्तिका ध्यान करना चाहिये, यह रक्तवर्ण, दो भुजा और कुमारी हैं, इनके हाथमें तीर्थके जल-से भरा हुआ कमण्डलु है, अक्षमाला शोभायमान है, कृष्ण वस्त्र पहिन रक्खे हैं, हंसपर सवार हैं और पवित्र मुसकानयुक्त मुख है ॥ ९६ ॥

मध्याह्ने तां श्यामवर्णां वैष्णवीं च चतुर्भुजाम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणीं गरुडासनाम् ॥ ५७ ॥

मध्याह्नकालमें सूर्यमण्डलमें स्थित हुई वैष्णवी शक्ति गायत्रीका ध्यान करना उचित है। यह शक्ति श्यामा और चतुर्भुजा है, गरुड़के आसनपर बैठी हुई, हाथमें शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए है ॥ ९७ ॥

पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वां वनमालाविभूषिताम् ।
युवतिं सततं ध्यायेन्मध्ये मार्त्तण्डमण्डले ॥ ५८ ॥

यह वनमालासे शोभायमान है, इसका वक्षस्थल पीन और उठे हुए कुचोंसे शोभित है, यह शक्ति यौवनशालिनी है, सूर्यभगवान्के मध्यभागमें आनेपर सदा इस प्रकार युवतीका ध्यान करे ॥ ९८ ॥

सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः ।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् ॥ ५९ ॥

यतीके लिये गायत्रीकी सायाह्न मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। यह शक्ति वरको देनेवाली, शुक्लवर्ण, श्वेतवस्त्रको धारण करनेवाली और वृषभपर सवार है ॥ ५९ ॥

त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलं च नृकरोटिकाम् ।
बिभ्रतीं करपद्मैश्च वृद्धां गलितयौवनाम् ॥ ६० ॥

इनके तीन नेत्र हैं, करकमलमें पाश है, शूल और नरकपाल है, यह गलितयौवना वृद्धा हैं ॥ ६० ॥

एवं ध्यात्वा महादेव्यै जलानामञ्जलित्रयम् ।
दत्त्वा जपेत्तु गायत्रीं दशधा शतधापि वा ॥६१॥

इस प्रकार ध्यान करनेके अन्तमें महादेवीको तीन वार जलकी अञ्जलि देकर सात वार या दश वार गायत्रीका जप करे ॥ ६१ ॥

गायत्रीं शृणु देवेशि वदामि तव भावतः ।
आद्यायै पदमुच्चार्य्य विद्महे तदनन्तरम् ॥ ६२ ॥

हे देवि ! मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये गायत्रीको कहता हूं, तुम श्रवण करो। पहले "आद्यायै" यह उच्चारण करके अन्तमें "विद्महे" पद उच्चारण करे ॥ ६२ ॥

परमेश्वर्य्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात् ।
एषा तु तव गायत्री महापापप्रणाशिनी[1] ॥ ६३ ॥

---

१ 'महापापविनाशिनी' इति पाठान्तरम् ।

इसके उपरान्त " परमेश्वर्य्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोद-यात् " यह पद उच्चारण करे–यही गायत्री है। " आद्यायै विद्महे परमेश्वर्य्यै धीमहि। तन्नः काली प्रचोदयात् " । यह तुम्हारी गायत्री महापापका नाश करनेवाली है ॥ ६३ ॥

त्रिसन्ध्यमेतां प्रजपन्सन्ध्यायाः फलमाप्नुयात् ।
ततस्तु तर्पयेद्भद्रे देवर्षिपितृदेवताः ॥ ६४ ॥

जो त्रिसन्ध्यामें इस गायत्रीका जप करते हैं वे अनुरूप फल पाते हैं. हे भद्रे ! इसके उपरान्त देवता,ऋषि और पितृगणों-का तर्पण करे ॥ ६४ ॥

प्रणवं सद्वितीयाख्यां तर्पयामि नमः पदम् ।
शक्तौ तु प्रणवे मायां नमःस्थाने द्विठं वदेत्॥६५॥

प्रथम ही प्रणवका उच्चारण कर शेषमें " तर्पयामि नमः" इस पदका उच्चारण करना चाहिये, शक्तिकी साधनामें प्रण-वके स्थानपर माया बीज लगा, नमःस्थानमें द्विठ अर्थात स्वाहा लगावे ॥ ६५ ॥

मूलान्ते सर्वभूतान्ते निवासिन्यै पदं वदेत् ।
सर्वस्वरूपां ङेयुक्तां सायुधायै तथा पठेत् ॥ ६६ ॥

प्रथम मूलमंत्र पढ़कर फिर "सर्वभूत" पदके पीछे "निवा-

---

१ 'ततस्तु तर्पयेद्देवि' इति वा पाठः ।

सिन्यै " पद उच्चारण करे, फिर "सर्वस्वरूपायै" पदका उच्चा-
रण करके अन्तमें "साधुधायै" पदको पढ़ना चाहिये ॥६६॥

सावरणां सचतुर्थीं तद्वदेव परात्पराम् ।
आद्यायै कालिकायै च इदमर्घ्यं ततो द्विठः॥६७॥

इसके उपरान्त "सावरणायै परात्परायै, आद्यायै, कालि-
कायै " उच्चारण करके "इदमर्घ्यं स्वाहा" पदका पाठ करना
चाहिये ॥ ६७ ॥

अनेनार्घ्यं महादेव्यै दत्त्वा मूलं जपेत्सुधीः ।
यथाशक्ति जपं कृत्वा देव्या वामकरेऽर्पयेत् ॥६८॥

ज्ञानी पुरुष महादेवीको अर्घ्य देकर यथाशक्ति मूलमंत्रका
जप करके उसे देवीके वामकरमें समर्पित करे ॥ ६८ ॥

प्रणम्य देवीं पूजार्थं जलमादाय साधकः ।
नत्वा तीर्थं पठन्स्तोत्रं देवताध्यानतत्परः ॥६९॥

इसके उपरान्त देवीको प्रणाम करके पूजाके लिये जल
ले तीर्थको नमस्कार करे, फिर स्तोत्र पढ़कर देवताकी आरा-
धना करने लगे ॥ ६९ ॥

यागमण्डपमागत्य पाणिपादौ विशोधयेत् ।
ततो द्वारस्य पुरतः सामान्यार्घ्यं प्रकल्पयेत्॥७०॥

यज्ञस्थलमें आकर साधकको चाहिये कि, हाथ पांव धो
डाले और द्वारके संमुखभागमें साधारण अर्घ्य स्थापित करे७०

२ 'आद्यायै कालिकायै ते' इत्यपि पाठः ।

त्रिकोणवृत्तभूबिम्बं मण्डलं रचयेत्सुधीः।
आधारशक्तिं सम्पूज्य तत्राधारं नियोजयेत्॥७१॥

फिर एक त्रिकोण वृत्त खींचे, उसके बाहर गोलाकार, उसके बाहर चौकोन मण्डल बनाकर आधारशक्तिकी पूजा करता हुआ आधारमें स्थापित करे॥ ७१॥

अस्त्रेण पात्रं प्रक्षाल्य हृन्मन्त्रेण प्रपूज्य च।
निक्षिप्य गन्धं पुष्पं च तीर्थान्यावाहयेत्ततः॥७२॥

पीछे "अस्त्राय फट्" इस मंत्रसे पात्रको धोकर उसमें जल भरे, फिर उसमें गंध पुष्प देकर तीर्थादिका आवाहन करे ७२

आधारपात्रतोयेषु वह्न्यर्कशशिमण्डलम्।
पूजयित्वा तद्दशधा मायाबीजेन मन्त्रयेत्॥७३॥

इसके उपरान्त आधारमें वह्नि, पात्रमें सूर्यमंडल और जलमें चन्द्रमण्डलकी पूजा कर "ह्रीं" शब्दसे उस जलको दश बार अभिमंत्रित करे॥ ७३॥

प्रदर्शयेद्धेनुयोनिं सामान्यार्घ्यमिदं स्मृतम्।
ततस्तज्जलपुष्पैश्च पूजयेद्द्वारदेवताः॥ ७४॥

फिर उसके ऊपर धेनु व योनिमुद्रा दिखावे। पश्चात् उस जल और उन फूलोंसे द्वारदेवताकी पूजा करे॥ ७४॥

(१) धेनुमुद्रा यथा--"अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः। तथाच तर्जनीमध्या धेनुमुद्रामृतप्रदा॥" अर्थात्--दाहिने हाथकी कनिष्ठाके-

गणेशं क्षेत्रपालं च बटुकं योगिनीं तथा ।
गङ्गां च यमुनां चैव लक्ष्मीं वाणीं ततो यजेत् ७५॥

गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक, योगिनी, गंगा, यमुना, लक्ष्मी और सरस्वतीका पूजा करे ॥ ७५ ॥

किञ्चित्स्पृशन्वामशाखां वामपादपुरःसरम् ।
स्मरन्देव्याः पदाम्भोजं मण्डपं प्रविशेत्सुधीः॥७६॥

फिर बांया पाँव आगे बढ़ा बांई शाखाका स्पर्श कर देवीके चरणकमलका स्मरण करे तब मण्डपमें प्रवेश करे ॥७६॥

नैर्ऋत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माणं च समर्चयन् ।
सामान्यार्घ्यस्य तोयेन प्रोक्षयेद्योगमन्दिरम् ॥७७॥

नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुपुरुष और ब्रह्माकी अर्चना करके कहे हुए अर्घ्य जलको छिड़क कर यज्ञमंदिरको प्रोक्षित करे ॥७७॥

—अग्रभागसे बायें हाथकी अनामिकाका अग्रभाग मिलावे। ऐसे ही बायें हाथकी कनिष्ठाके अग्रभागसे दाहिने हाथकी अनामिकाका अग्रभाग मिलावे। दाहिने हाथकी तर्ज्जनीके अग्रभागसे बायें हाथकी मध्यमाका अग्रभाग मिलावे। ऐसे ही बायें हाथकी तर्ज्जनीके अग्रभागसे दाहिने हाथकी मध्यमाके अग्रभागको मिलावे। अनामिकामूलके साथ अनामिकामूल और मध्यमामूलके साथ मध्यमाका मूल, व अंगूठेके साथ अंगूठा मिलावे। इसका नाम "धेनुमुद्रा" है।

अनन्तरं साधकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्यवलोकनैः।
दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्राद्भिश्चान्तरिक्षगान्॥७८॥

इसके उपरान्त साधकचूडामणि दिव्यदृष्टिसे दर्शन कर सब दिव्य विघ्नोंको दूर करता हुआ जल छिड़क कर अंतरिक्षके सब विघ्नोंको दूर करे॥ ७८॥

पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमानिति विघ्नान्निवारयेत्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैर्यागमण्डपम्॥ ७९॥

इसके उपरान्त तीन वार पाँवके आघातसे भूमिके विघ्नोंको दूरकर चन्दन, अगर, कस्तूरी और कपूरसे यागमण्डपको गन्धयुक्त करे॥ ७९॥

धूपयेत्स्वोपवेशार्थं चतुरस्रं त्रिकोणकम्।
विलिख्य पूजयेत्तत्र कामरूपाय हृन्मनुः॥८०॥

तदनन्तर अपने बैठनेके लिये बाहिरी चबूतरेमें त्रिकोणाकार मण्डल खींच अधिष्ठात्री देवता कामरूपाकी पूजा करे८०॥

तत्रासनं समास्तीर्य्य काममाधारशक्तितः।
कमलासनाय नमो मन्त्रेणैवासनं यजेत्॥ ८१॥

फिर मण्डलके ऊपर आसन फैला कामबीज "क्लीं" उच्चारण करके "आधारशक्तये कमलासनाय नमः" इस मन्त्रसे आसनकी पूजा करे॥ ८१॥

उपविश्यासने विद्वान् प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
बद्धवीरासनो मन्त्री विजयां परिशोधयेत्॥८२॥

इसके उपरान्त विद्वान् साधक पूर्वको या उत्तरको मुख कर वीरासनपर बैठ विजयाका शोधन करे ॥ ८२ ॥

तारं मायां समुच्चार्य्य अमृते अमृतोद्भवे ।
अमृतवार्षिणी ततोऽमृतमाकर्षय द्विधा ॥ ८३ ॥
सिद्धिं देहि ततो ब्रूयात् कालिकां मे ततः परम् ।
वशमानय ठद्वन्द्वं संविदाशोधने मनुः ॥८४॥

प्रथम " प्रणव " और ' माया ' बीज उच्चारण करके इसके अन्तमें " ओं ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवार्षिणि अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि कालिकां मे वशमानय स्वाहा " इस मन्त्रसे शोधन करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

मूलमन्त्रं सप्तवारं प्रजप्य विजयोपरि ।
आवाहन्यादिमुद्रां च धेनुयोनिं प्रदर्शयेत् ॥८५॥

इसके उपरान्त विजयाके ऊपर सात बार मूलमन्त्र जप कर आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापनी, सन्निरोधिनी, धेनु व योनिमुद्रा दिखावे * ॥ ८५ ॥

---

* दक्षिणामूर्त्तिसंहितामें कहा है:—"पुटाञ्जलिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत् । इयं तु विपरीतेन तदा वै स्थापनी भवेत् । उर्ध्वाङ्गुष्ठकमुष्टिभ्यां तदेयं सन्निधापनी । अन्ताङ्गुष्ठकमुष्टिभ्यां तदेयं सन्निरोधिनी ॥"इसका अर्थः—अंजलिपुट ऊंचे नीचेमें मिलाकर रखनेसे आवाहनीमुद्रा होगी । यह मुद्रा विपरीत होनेमें अर्थात् ऊपर संश्लिष्ट और नीचे विश्लिष्ट होनेसे-

गुरुं पद्मे सहस्रारे यथा संकेतमुद्रया ।
त्रिधैव तर्पयेद्देवि हृदि मूलं समुच्चरन् ॥ ८६ ॥

हे देवि ! इसके उपरान्त तत्त्वमुद्राकी सहायतासे सहस्र-दलकमलमें विजयाके द्वारा गुरुके लिये तीन बार तर्पण करे, अनन्तर हृदयमें मूलमन्त्र जपे ॥ ८६ ॥

वाग्भवं वद युग्मञ्च वाग्वादिनि पदं ततः।
मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशंकरि ।
स्वाहान्तेनैव मनुना जुहुयात्कुण्डलीमुखे ॥८७॥

तत्पश्चात् प्रथम "ऐं" उच्चारण कर "वद" शब्दको दो बार उच्चारण करना चाहिये. पीछे वाग्वादिनी पद उच्चा-रण करके "मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशंकरि स्वाहा"

—स्थापनमुद्रा होगी।दोनों हाथके अँगूठोंको ऊपर उठा बँधी हुई मुट्ठी मिलानेसे सन्निधापनी मुद्रा होगी । दोनो अँगूठेके बीचमें रखकर ऐसे ही दोनों हाथों-को मुट्ठी बांधनेसे सन्निरोधिनी मुद्रा होगी । दोनों अँगूठोंको मिलाकर दोनों मध्यमाओंके साथ दोनों तर्ज्जनियोंके मिलानेसे और दोनों अनामि-काओंके साथ दोनों कनिष्ठ अंगुलियोंके मिलानेसे धेनुमुद्रा होगी । अञ्ज-लिपुटके ऊपर विश्लिष्ट और नीचे संश्लिष्ट करके दोनों हाथोंकी अनामिकाके साथ तर्ज्जनियोंको परस्पर मिला दोनों मध्यम अंगुलियोंके अग्रभागके मिला-नेपर योनिमुद्रा होगी । दाहिने हाथकी अनामिकाके साथ बद्धाङ्गुष्ठको मिलानेसे तत्त्वमुद्रा होगी ।

इस मन्त्रका उच्चारण करे । इस मंत्रसे कुण्डलीके मुखमें विजयाके द्वारा आहुति दे ॥ ८७ ॥

स्वीकृत्य संविदां वामकर्णोर्द्धे श्रीगुरुं नमेत् ।
दक्षिणे च गणेशानमाद्यां मध्ये सनातनीम् ॥८८॥

इस प्रकार भंगका सेवन कर बांये कानके ऊपर "श्रीगुरवे नमः' यह मन्त्र पढ़ गुरुको नमस्कार करे; दायें कानके ऊपर 'गणेशाय नमः' कह गणेशजीको नमस्कार कर ललाटमें सनातनी कालिकाका नमस्कार करे ॥ ८८ ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा देवीध्यानपरायणः ।
पूजाद्रव्याणि सर्व्वाणि दक्षिणे स्थापयेत्सुधीः ।
वामे सुवासितं तोयं कुलद्रव्याणि यानि च ॥८९॥

फिर ज्ञानी पुरुष दाहिनी ओर समस्त पूजाकी सामग्री रखकर बांई ओर सुगन्धित जल व कुल सामग्री रखकर हाथ जोड़ देवीका ध्यान करे ॥ ८९ ॥

अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण सामान्यार्घ्योदकेन च ।
सम्प्रोक्ष्य सर्ववस्तूनि वेष्टयेज्जलधारया ।
वह्निबीजेन देवेशि वह्नेः प्राकारमाचरेत् ॥ ९० ॥

इसके उपरान्त मूलमन्त्रके अन्तमें " फट् " संयोगकर द्रव्यादिपर अर्घ्यका जल छिड़के और उनका जलसे वेष्टित करे, फिर वह्निबीज ' रं ' से वह्निका आवरण करे ॥ ९० ॥

पुष्पचन्दनसंयुक्तमादाय करयोर्द्वयोः ।
अस्त्रेण घर्षयित्वा तत्प्रक्षिपेत्करशुद्धये ॥ ९१ ॥

पश्चात् करशुद्धिके लिये चन्दन व कुसुम ग्रहण करके मूलमन्त्रका उच्चारण करनेके पीछे हाथोंको रगड़कर धो डाले ॥ ९१ ॥

तर्ज्जनीमध्यमाभ्यां च वामपाणितले शिवे ।
ऊर्ध्वोर्ध्वतालत्रितयं दत्त्वा दिग्बन्धनं ततः ।
अस्त्रेण छोटिकाभिश्च भूतशुद्धिमथाचरेत् ॥९२ ॥

हे शिवे! फिर दाहिने हाथकी तर्ज्जनी और मध्यमासे 'फट्' मन्त्रके द्वारा बांये करतलसे ऊँचेसे ऊंचेपर तीन तालियां बजाय दिग्बन्धन करे, फिर भूतशुद्धि करे ॥ ९२ ॥

स्वांके निधाय च करावुत्तानौ साधकोत्तमः ।
मनो निवेश्य मूले च हुंकारेणैव कुण्डलीम्॥९३ ॥
उत्थाप्य हंसमन्त्रेण पृथिव्या सहितां तु ताम् ।
स्वाधिष्ठानं समानीय तत्त्वं तत्त्वे नियोजयेत्॥९४॥

साधकश्रेष्ठको चाहिये कि, अपनी गोदमें उठे हुए दोनों हाथ स्थापित कर हुँकारसे कुण्डलिनीको उठावे और मनकी रक्षा मूलाधारचक्रमें कर 'हंस०' इस मन्त्रसे पृथ्वीके सहित उस कुण्डलिनीको अपने अधिष्ठानमें

स्थापित कर पृथिव्यादि समस्त तत्त्वोंको जलादि तत्त्वमें लीन करे ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

गन्धादिघ्राणसंयुक्तां पृथिवीमप्सु संहरेत् ।
रसादिजिह्वया सार्द्धं जलमग्नौ विलापयेत् ॥९५॥

गन्धादि घ्राणके साथ समस्त पृथ्वीको जलमें लीन करे, फिर रसनाके साथ रस जलको अग्निमें लीन करे ॥ ९५ ॥

रूपादिचक्षुषा सार्द्धमग्निं वायौ विलाप्य च ।
स्पर्शादित्वग्युतं वायुमाकाशे प्रविलापयेत् ॥ ९६॥

फिर रूपादि और दर्शनेन्द्रियोंके साथ अग्निको वायुमें लीन करे, फिर त्वगिन्द्रियके साथ स्पर्शादि-वायुको आकाशमें लीन करे ॥ ९६ ॥

अहंकारे हरेद्व्योम सशब्दं तन्महत्यपि ।
महत्तत्त्वं च प्रकृतौ तां ब्रह्मणि विलापयेत् ॥९७॥

फिर शब्दसहित आकाशको अहंकारतत्त्वमें लीन करके उसको बुद्धितत्त्वमें लीन करे, फिर बुद्धितत्त्वको प्रकृतिमें लय करके ब्रह्ममें प्रकृतिका लय करे ॥ ९७ ॥

इत्थं विलाप्य मतिमान्वामकुक्षौ विचिन्तयेत् ।
पुरुषं कृष्णवर्णं च रक्तश्मश्रुविलोचनम् ॥ ९८ ॥

ज्ञानी पुरुष इस प्रकार चौबीस तत्त्वका लय करके चिन्ता करे कि, बांई कुक्षिमें लाल नेत्र, लाल श्मश्रु, कृष्णवर्ण एक पुरुष अवस्थान करता है ॥ ९८ ॥

रक्त¹चर्म्मधरं क्रुद्धमंगुष्ठपरिमाणकम् ।
सर्वपापस्वरूपं च सर्वदाधोमुखस्थितम् ॥ ९९ ॥

इस पुरुषके हाथमें लाल चर्म है, स्वभाव अत्यन्त कुपित है; आकार अंगुष्ठके समान है, यह पापस्वरूप और सदा नीचेको मुख किये है ॥ ९९ ॥

ततस्तु वामनासायां यं बीजं धूम्रवर्णकम् ।
सञ्चिन्त्य पूरयेत्तेन वायुं षोडशमात्रया ॥
तेन पापात्मकं देहं शोधयेत्साधकाग्रणीः॥ १००॥

इसके उपरान्त वामनासिकामें "यं" इस धूम्रवर्ण बीजका ध्यान करके उसको सोलह बार जपे और बांई नासिकासे पवन खींचे फिर साधकको चाहिये कि, इस वायुसे पापात्मक शरीरको शुद्ध करे ॥ १०० ॥

नाभौ रं रक्तवर्णं च ध्यात्वा तज्जातवह्निना ।
चतुःषष्ट्या कुम्भकेन दहेत्पापरतां तनुम् ॥ १०१ ॥

इसके उपरान्त नाभिमें रक्तवर्ण वह्निके बीज (रं) का ध्यान कर कुम्भक करके चौंसठ वार जप करते करते उससे उत्पन्न अग्निमें अपने पापमय शरीरको दग्ध करे ॥ १०१ ॥

ललाटे वारुणं बीजं शुक्लवर्णं विचिन्त्य च ।
द्वात्रिंशता रेचकेन प्लावयेदमृताम्भसा ॥ १०२ ॥

१ 'खड्गचर्मधरम्' इति मुद्रितः पाठः ।

फिर ललाटमें शुक्लवर्ण वरुणबीजकी चिन्ता करके श्वासको छोड़ बत्तीस वार जप कर वरुणबीजसे उत्पन्न हुए अमृतवारिसे दग्ध देहको आप्लावित करे ॥ १०२ ॥

आपादशीर्षपर्य्यन्तमाप्लाव्य तदनन्तरम् ।
उत्पन्नं भावयेद्देहं नवीनं देवतामयम् ॥ १०३ ॥

इस प्रकार चरणसे लेकर मस्तकतक अमृतवारिसे छिड़ककर ऐसी चिन्ता करे कि; नूतन देवतामय शरीर उत्पन्न हुआ है ॥ १०३ ॥

पृथ्वीबीजं पीतवर्णं मूलाधारे विचिन्तयन् ।
तेन दिव्यावलोकन दृढीकुर्य्यान्निजांतनूम् ॥ १०४ ॥

फिर मूलाधारमें पीतवर्ण पृथ्वीबीज "लं" की चिन्ता करके दिव्यदृष्टिसे अपनी देहको दृढ़ करे ॥ १०४ ॥

हृदये हस्तमादाय आं ह्रीं क्रों हं समुच्चरन् ।
सोऽहंमन्त्रेण तद्देहे देव्याः प्राणान्निधापयेत् १०५ ॥

इसके उपरान्त हृदयमें हाथकी रक्षा कर "आं ह्रीं क्रौं हं सः सोऽहं" यह मंत्र पढ़कर अपने शरीरमें देवीके प्राणकी प्रतिष्ठा करे ॥ १०५ ॥

भूतशुद्धिं विधायेत्थं देवीभावपरायणः ।
समाहितमनाः कुर्य्यान्मातृकान्यासमम्बिके १०६ ॥

हे अम्बिके ! इस प्रकार भूतशुद्धि समाप्त करके देवीभावका आश्रय करके मातृकान्यास करे ॥ १०६ ॥

मातृकाया ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।
देवता मातृका देवी बीजं व्यञ्जनसंज्ञकम् ॥ १०७ ॥

मातृकाका[1] ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता मातृका सरस्वती, व्यञ्जन वर्ण बीज ॥ १०७ ॥

स्वराश्च शक्तयः सर्गः कीलकं परिकीर्तितम् ।
लिपिन्यासे महादेवि विनियोगः प्रयोजितः ।
ऋषिन्यासं विधायैवं कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥ १०८ ॥

स्वर, वर्णशक्ति, विसर्ग, कीलक, लिपिन्याससे विनियोग कीर्तन करे। हे महादेवि ! इस प्रकारसे ऋषिन्यास समाप्त करके कराङ्गन्यास करे ॥ १०८ ॥

---

१ मातृकान्यासके ऋष्यादिप्रयोगो यथा-अस्याः मातृकायाः ब्रह्माऋषिर्गायत्री छन्दो मातृका सरस्वतीदेवी देवता, हलो बीजं, स्वराः शक्तयः, विसर्गः कीलकं, धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोगः । शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदये मातृकायै सरस्वत्यै देव्यै देवतायै नमः । गुह्ये व्यञ्जनाय बीजाय नमः । पादयोः स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः । सर्वाङ्गेषु विसर्गाय कीलकाय नमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोगः ॥

अंआंमध्ये कवर्गं च इंईंमध्ये चवर्गकम् ।
उंऊंमध्ये टवर्गं तु एंऐंमध्ये तवर्गकम् ॥ १०९ ॥
ओंऔं मध्ये पवर्गं तु यादिक्षान्तं वरानने ।
विन्दुसर्गान्तराले च षडङ्गे मन्त्र ईरितः॥ ११०॥

हे सुन्दरि ! इसके बाद "अं आं" इन दोनों वर्णोंके मध्यमें कवर्ग, "इं ईं" इन दो वर्णोंके मध्यमें चवर्ग, "उं ऊं" इन वर्णोंके बीचमें टवर्ग, "एं ऐं" इन दो वर्णोंमें तवर्ग "ओं औं" इन दो वर्णोंमें पवर्ग बिन्दु और विसर्गके बीचमें 'य' से लेकर 'क्ष' तक इन कई वर्णोंका षडङ्गमें विन्यास करे❀ ॥ १०९ ॥ ११० ॥

विन्यस्य न्यासविधिना ध्यायेन्मातृसरस्वतीम् १११

इस प्रकारसे न्यासविधि समाप्त कर मातृकासरस्वती देवीका ध्यान करे ॥ १११ ॥

❀ प्रयोगो यथा—अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट् । एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम् । ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् । अङ्गन्यासो यथा—अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः । इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा । उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् । एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुं । ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् । अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् ।

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्यां च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ११२

मातृकाका ध्यान यह है–जिसके हस्त, पद, मुख और छाती पचास वर्णोंमें विभक्त हैं, जिसके मस्तकपर चन्द्रकला विराजित रहकर शोभा पा रही है, जिसके दोनों स्तन पीन और अति ऊंचे हैं, जिसके चारों हाथोंमें मुद्रा, अक्षमाला, सुधापूर्ण कलश और विद्या शोभायमान हो रही है, जिसकी प्रभा निर्मल है और जिसके तीन नेत्र हैं उस वाग्देवता (सरस्वती) का मैं आश्रयण करता हूं ॥ ११२ ॥

ध्यात्वैवं मातृकां देवीं षट्सु चक्रेषु विन्यसेत् ।
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे कण्ठे च षोडश स्वरान् ११३॥

इस प्रकार मातृकादेवीका ध्यान करके षट्चक्रमें मातृकान्यास करे; उनमें प्रथम ही भौंहोंके बीचके दलमें "ह" और "क्ष" इन दोनों वर्णोंका न्यास करके कण्ठमें स्थित हुए षोडशदलमें स्वरवर्णन्यास करे ॥ ११३ ॥

हृदम्बुजे कादिठान्तान्विन्यस्य कुलसाधकः ।
डादिफान्तान्नाभिदेशे बादिलान्तांश्च लिङ्गके ११४

फिर हृदयस्थित द्वादशदलमें "क" से लेकर "ठ" तक द्वादश वर्णविन्यास करे और नाभिदेशमें स्थित हुए

दशदलमें "ड" से लेकर "फ" तक दश वर्णविन्यास करके लिङ्गमूलमें षड्दलके मध्य "ब" से लेकर "ल" तक छः वर्णविन्यास करे❀ ॥ ११४ ॥

मूलाधारे चतुःपत्रे वादिसान्तान्प्रविन्यसेत् ।
इत्यन्तर्मनसा न्यस्य मातृकार्णान्बहिर्न्यसेत्११५॥

इसके उपरान्त मूलाधारमें चतुर्दलके मध्य 'व' से लेकर 'स' तक चार वर्णविन्यास करे, फिर मन ही मनमें मातृकावर्णन्यास करके बहिन्यास करे॥ ११५ ॥

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः ।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गस्य दोःपत्सन्ध्यग्रगेषु च११६॥

---

* षट्चक्रमें मातृकान्यासका क्रम यथा--भ्रूके बीच दो दल पद्ममें हं नमः। क्षं नमः। कंठस्थित आज्ञाख्य सोलहदलवाले कमलके सोलह दलों-में अं नमः। आं नमः। इं नमः। ईं नमः। उं नमः। ऊं नमः। ऋं नमः। ॠं नमः। ऌं नमः। ॡं २ नमः। एं नमः। ऐं नमः। ओं नमः। औं नमः। अं नमः। अः नमः। हृदयके अनाहत नामक बारह दलवाले पद्मके बारह दलमें कं नमः। खं नमः। गं नमः। घं नमः। ङं नमः। चं नमः। छं नमः। जं नमः। झं नमः। ञं नमः। टं नमः। ठं नमः। फिर नाभिके मणिपूर नामक पद्मके दश दलमें डं नमः। ढं नमः। णं नमः। तं नमः। थं नमः। दं नमः। धं नमः। नं नमः। पं नमः। फं नमः। लिंगमूलमें स्थित स्वाधिष्ठाननामक छः दलवाले पद्मके प्रत्येक दलमें बं नमः। भं नमः। मं नमः। यं नमः। रं नमः। लं नमः। फिर मूलाधारमें स्थित चार दलवाले पद्मके चार दलमें वं नमः। शं नमः। षं नमः। सं नमः। इस प्रकार षट् चक्रमें मातृकावर्णका न्यास करे।

पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयांसयोः ।
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे ततः ॥ ११७ ॥
जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान्यथाक्रमम् ।
इत्थं लिपिं प्रविन्यस्य प्राणायामं समाचरेत् ११८॥

माथा, मुख, नेत्र, कान, नासिका, गाल, अधर, दांत, उत्तमांग, मुखविवर, बाहोंके जोड़ और अग्रभागमें पाँवकी संधि और अग्रस्थान, बगल, पृष्ठ, नाभि, जठर, हृदय, दायां और बायां कन्धा, ककुद, हृदयसे आरम्भ करके बायां दायां हाथ पांव इस प्रकार जठर और मुखपर क्रमानुसार समस्त मातृकावर्णोंपर न्यास[1] करे, इस प्रकार लिपिन्यास करके प्राणायाम करे ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

---

१ मातृकान्यासका प्रयोग यथाः—अनामिका और मध्यमाङ्गुलिसे ललाटमें अं नमः । अनामिकातर्ज्जनी और मध्यमांगुलिसे मुखविवरमें चारों ओर आं नमः । अनामिका और अँगूठेको मिलकर दाहिने नेत्रमें इं नमः । ऐसे ही वामनेत्रमें ईं नमः । अँगूठेकी पीठसे दाहिने कानमें उं नमः । ऐसे ही बायें कानमें ऊं नमः । कनउंगली और अँगूठेको मिला-कर दाहिनी नासिकामें ऋं नमः । ऐसे ही वामनासिकामें ॠं नमः । तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिकासे दक्षिणगालमें ऌं नमः । ऐसे ही बांये गालमें ॡं २ नमः । मध्यमासे होठमें एं नमः। ऐसे ही अधरमें ऐं नमः। ऐसे ही अनामिकासे ऊपरके दांतोंकी पंक्तिमें ओं नमः । ऐसे ही अधरद-न्तपंक्तिमें औं नमः । मध्यम उंगलीसे उत्तमाङ्गमें अं नमः । अनामिकासे मुखविवरमें अः नमः । मुष्टी बांधकर मध्यमांगुलिसे बाहोंके मूलसे तीनों-

मायाबीजं षोडशधा जप्त्वा वामेन वायुना।
पूरयेदात्मनो देहं चतुःषष्टया तु कुम्भयेत् ॥११९॥

इस प्रकार मायाबीजका सोलहबार जप करते करते बायीं नासिकामें खेंचकर अपनी देहको पूर्ण करे, फिर चौंसठबार जप करते करते कुम्भक करे ॥ ११९ ॥

—सन्धियोंमें कं नमः । खं नमः । गं नमः । ऐसे ही उंगलीके मूलमें और उंगलीके अग्रभागमें घं नमः । ङं नमः । ऐसे ही बायें हाथके चार स्थानोंमें और उंगलीके अग्रभागमें चं नमः । छं नमः । जं नमः । झं नमः । ञं नमः । ऐसे ही दांये पांवकी तीन सन्धियोंमें उंगलियोंकी जड़में और उंगालियोंके पोरुओंमें टं नमः । ठं नमः । डं नमः । ढं नमः । णं नमः । ऐसे ही बायें पांवमें तं नमः । थं नमः । दं नमः । धं नमः । नं नमः । दाहिने पार्श्वमें मध्यमा, अनामिका और कनउंगलीसे पं नमः । ऐसे ही वामपार्श्वमें फं नमः । ऐसे ही पीठमें बं नमः । नाभिमें अंगूठे और कनको मिलाकर भं नमः । जठरमें सब उँगलियोंको मिलाकर मं नमः । हृदयमें हथेलीसे यं त्वगात्मने नमः।दाये कंधमें कनअङ्गुली और अंगूठेको मिलाकर रं असृगात्मने नमः। ऐसे ही ककुदमें लं मेदआत्मने नमः। ऐसे ही वामकन्धेमें वं मांसात्मने नमः । हथेली करके हृदयसे लगाकर दाहिने हाथतक, शं अस्थ्यात्मने नमः । ऐसे ही हृदयसे बायें हाथतक षं मज्जात्मने नमः । हृदयसे लेकर दाहिने चरणतक ऐसे ही सं शुक्रात्मने नमः। हृदयसे लेकर बांये पांवतक ऐसे ही हं प्राणात्मने नमः । हृदयसे उत्तरतक लं जीवात्मने नमः । हृदयसे मुखतक ऐसे ही क्षं परात्मने नमः । इस प्रकार सब मातृकावर्णोंका बहिर्न्यास करे । जो इस मुद्राके करनेमें असमर्थ हो तो फूलोंसे भी इन सब स्थानोंमें मातृकान्यास हो सकता है ।

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्धृत्वा नासाद्वयं सुधीः ।
द्वात्रिंशता जपन्बीजं वायुं दक्षेण रेचयेत् ॥ १२० ॥

फिर अंगुष्ठद्वारा दक्षिणनासिका अवरोध कर बत्तीसवार मायाबीजका जप करके क्रमसे वायु छोड़े। इस प्रकार दक्षिण नसिकामें भी पूरक कुम्भक और रेचक करे ॥ १२० ॥

पुनः पुनस्त्रिरावृत्त्या प्राणायाम इति स्मृतः ।
प्राणायामं विधायेत्थमृषिन्यासं समाचरेत् ॥ १२१ ॥

बार बार तीन बार ऐसा करे। इसका ही नाम प्राणायाम है। प्राणायामके अन्तमें ऋषिन्यास करे ॥ १२१ ॥

अस्य मन्त्रस्य ऋषयो ब्रह्मा ब्रह्मर्षयस्तथा ।
गायत्र्यादीनि छन्दांसि आद्या काली तु देवता १२२

इस मन्त्रके ऋषि ब्रह्मा और समस्त ब्रह्मर्षि हैं, गायत्री इत्यादि इसके छन्द हैं, आद्या काली इसकी देवता है १२२॥

आद्याबीजं बीजमिति शक्तिर्माया प्रकीर्तिता ।
कमला कीलकं प्रोक्तं स्थानेष्वेतेषु वै न्यसेत् ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादसर्व्वाङ्गकेषु च ॥ १२३ ॥

इसका बीज " क्रीं " शक्ति " ह्रीं " कीलक " श्रीं " इन मन्त्रोंसे शिरपर मुखमें हृदयमें गुह्य चरण और सर्वाङ्गमें न्यास करे ॥ १२३ ॥

---

१ 'पुनः पुनस्त्रिराचम्य' इति वा पाठः ।

(२) 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' इस मंत्रका ऋष्यादि न्यासप्रयोग यथा—"अस्य मंत्रस्य ब्रह्मा ब्रह्मर्षयश्च ऋषयः, गायत्र्यादीनि छन्दांसि आद्या-

मूलमन्त्रेण हस्ताभ्यामापादमस्तकावधि ।
मस्तकात्पादपर्य्यन्तं सप्तधा वा त्रिधा न्यसेत् ।
अयं तु व्यापकन्यासो यथोक्तफलसिद्धिदः १२४॥

इसके उपरान्त मूलमन्त्र पढ़कर दोनों हाथोंसे चरणों-से मस्तक और मस्तकसे, चरणतक सात या तीन वार जैसा फल चाहे वैसा न्यास करे॥ १२४ ॥

यद्बीजाद्या भवेद्विद्या तद्बीजेनाङ्गकल्पना ।
अथवा मूलमन्त्रेण षड्दीर्घेण विना प्रिये॥१२५॥
अङ्गुष्ठाभ्यां तर्जनीभ्यां मध्यमाभ्यां तथैव च ।
अनामिकाभ्यां कनिष्ठाभ्यां करयोस्तल पृष्ठयोः ।
नमः स्वाहा वषट् हुं च वौषट् फट्क्रमशःसुधीः १२६

हे प्रिये! जिस मूलमन्त्रके आदि अक्षरमें जो बीज होगा उसमें क्रमानुसार छः दीर्घ स्वरमें मिलाकर अथवा उनके सिवाय दो अंगुष्ठ, दो तर्जनी, दो मध्यमा, दो अनामिका,

---

—काली देवता क्रीं बीजं ह्रीं शक्ति श्रीं कीलकं धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये ऋषिन्यासे विनियोगः। शिरसि ब्रह्मणे ब्रह्मर्षिभ्यश्च ऋषिभ्यो नमः। मुखे गायत्र्यादिभ्यश्छन्दोभ्यो नमः। हृदये आद्यायै काल्यै देवतायै नमः। गुह्ये क्रीं बीजाय नमः। पादयोः ह्रीं शक्तये नमः। सर्वाङ्गेषु श्रीं कीलकाय नमः। धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये जपे विनियोगः" ॥

दो कनिष्ठा और करतलपृष्ठमें यथाक्रमसे "नमः" "स्वाहा" "वषट्" "हुं" "वौषट्" "फट्" इस मन्त्रसे कर[1]न्यास करे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

हृदयाय नमः पूर्वं मस्तके वह्निवल्लभा ।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् ॥ १२७ ॥
नेत्रत्रयाय वौषट् च अस्त्रायफडिति क्रमात् ।
षडङ्गानि विधायेत्थं पीठन्यासं समाचरेत् ॥ १२८ ॥

इसके उपरान्त "हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् और कवचाय हुं, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फट्" इस प्रकार षडे[2]ङ्गन्यास करके पीठन्यास करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

---

१ 'करन्यासका प्रयोग यथा—ह्रां अङ्गुष्ठाभ्या नमः । ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रुं मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रौं अनामिकाभ्यां हुँ। ह्रैं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। अङ्गुल्या ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अनामिकाभ्यां हुम् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

(२) षडङ्गन्यासप्रयोगो यथा—ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा । ह्रुं शिखायै वषट् । ह्रैं कवचाय हुम् । ह्रौं नेत्रयाय वौषट् । ह्रः अस्त्राय फट्।अथवा ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा हृदयाय नमः। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि-

आधारशक्तिं कूर्म्मं च शेषं पृथ्वीं तथैव च ।
सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं पारिजाततरुं ततः ॥ १२९ ॥
चिन्तामणिगृहं चैव मणिमाणिक्यवेदिकाम् ।
तत्र पद्मासनं वीरो विन्यसेद्धृदयाम्बुजे ॥ १३० ॥

इसके उपरान्त वीर हृदयपद्ममें आधारशक्ति, कूर्म, शेष, पृथ्वी, सुधाम्बुधि, मणिद्वीप, पारिजातवृक्ष, चिन्तामणि गृह, मणिमाणिक्यवेदी और पद्मासनका न्यास करे॥ १२९ ॥ १३० ॥

दक्षवामांसयोर्वामकटी दक्षकटी तथा ।
धर्म्मं ज्ञानं तथैश्वर्य्यं वैराग्यं क्रमतो न्यसेत् १३१ ॥

इसके उपरान्त दक्षिणस्कन्धमें, वामस्कन्धमें, वाम कटि और दक्षिणकटिमें धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य्य और वैराग्यका क्रमशः न्यास करे ॥ १३१ ॥

मुखपार्श्वे नाभिदक्षपार्श्वे साधकसत्तमः ।
नञ्पूर्व्वाणि च तान्येव धर्म्मादीनि यथाक्रमम् १३२

—स्वाहा शिरसे स्वाहा । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा शिखायै वषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा कवचाय हुम् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अस्त्राय फट् । इस प्रकार षडङ्ग-न्यास करे ।

(१) प्रयोगो यथा—हृदयाम्बुजे आधारशक्तये नमः । कूर्माय नमः । शेषाय नमः । पृथ्व्यै नमः । सुधाम्बुधये नमः । मणिद्वीपाय नमः । परि-जाततरवे नमः । चिन्तामणिगृहाय नमः । मणिमाणिक्यवेदिकायै नमः । पद्मासनाय नमः ।

फिर साधकश्रेष्ठ मुख, वामपार्श्व, नाभि और दक्षिण पार्श्वमें यथाक्रमसे नञ्पूर्वक इस सबका न्यास करे ॥१३२॥

आनन्दकन्दं हृदये सूर्यं सोमं हुताशनम् ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव बिन्दुयुक्तादिमाक्षरैः ।
केसरान्कर्णिकांश्चैव पत्रेषु पीठनायिकाः ॥१३३॥

फिर हृदयमें आनन्दकन्द सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वर्णमें अनुस्वार मिलाकर सत्त्व, रज और तम व केसरकर्णिका और समस्त पत्रोंमें पीठनायिकाओंका न्यास करे ॥ १३३ ॥

मङ्गला विजया भद्रा जयन्ती चापराजिता ।
नन्दिनी नारसिंही च वैष्णवीत्यष्टनायिकाः १३४॥

अष्टनायिका-मंगला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नन्दिनी, नारसिंही और वैष्णवी ॥ १३४ ॥

---

(१) प्रयोगो यथाः-दक्षस्कन्धे धर्माय नमः । वामस्कन्धे ज्ञानाय नमः । वामकटी ऐश्वर्याय नमः । दक्षकटी वैराग्याय नमः । मुखे अधर्माय नमः । वामपार्श्वे अज्ञानाय नमः । नाभौ अनैश्वर्याय नमः ।दक्षपार्श्वे अवैराग्याय नमः ।

(२) प्रयोगो यथाः-हृदये आनन्दकन्दाय नमः । सूर्याय नमः । सोमाय नमः । अग्नये नमः । सं सत्त्वाय नमः । रं रजसे नमः । तं तमसे नमः । केसरेभ्यो नमः । कर्णिकायै नमः ।

(३) प्रयोगो यथाः-पीठपद्मके पत्रोंमें क्रमानुसार मङ्गलायै नमः । विजयायै नमः । भद्रायै नमः । जयन्त्यै नमः । अपराजितायै नमः । नन्दिन्यै नमः । नारसिंह्यै नमः । वैष्णव्यै नमः ।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयंकरः।[१]
कपाली भीषणश्चैव संहारीत्यष्ट भैरवाः ॥
दलाग्रेषु न्यसेदेतान्प्राणायामं ततश्चरेत् ॥१३५॥

इसके उपरान्त अष्टदलके आगे असिताङ्ग, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण और संहारी इन आठ भैरवोंका न्यास करे, फिर प्राणायामविधि करे ॥ १३५ ॥[२]

गन्धपुष्पे समादाय करकच्छपमुद्रया।
हृदि हस्तौ समाधाय ध्यायेद्देवीं सनातनीम् १३६॥

तत्पश्चात् गन्ध पुष्प ग्रहण करके कच्छपमुद्रामें[३] धारण करके उसका हाथ हृदयमें स्थापन करके सनातनी देवीका ध्यान करे ॥ १३६ ॥

---

१ 'क्रोधोन्मत्ताख्यकस्तथा' इति प्रमादविजृम्भितो मुद्रितः पाठः।

(२) प्रयोगो यथा—अष्टपद्मपत्रके अग्रभागमें क्रमानुसार असिताङ्गाय भैरवाय नमः। रुरवे भैरवाय नमः। चण्डाय भैरवाय नमः। क्रोधोन्मत्ताय भैरवाय नमः। भयङ्कराय भैरवाय नमः। कपालिने भैरवाय नमः। भीषणाय भैरवाय नमः। संहारिणे भैरवाय नमः। इस प्रकार पीठन्यास करके प्राणायाम करे।

(३) कच्छपमुद्रा यथाः—बांयें करतलके ऊपर दायां हाथ स्थापित करके बांये हाथके अँगूठेके साथ—दांये हाथकी तर्ज्जनीको मिला, बांये हाथकी तर्ज्जनीके साथ दांये हाथकी कनिष्ठाको मिला, बाकी सब उंगलियें दोनों करतलोंके बीचमें बँधी हुई मुट्ठीके समान रोके रहे ॥

ध्यानं तु द्विविधं प्रोक्तं सरूपारूपभेदतः ।

अरूपं तव यद्ध्यानमवाङ्मनसगोचरम् ॥१३७॥

ध्यान यह है । ध्यान साकार और निराकार दो प्रकारका है उसमें निराकारका ध्यान वाणी और मनके अगोचर है॥१३७॥

अव्यक्तं सर्वतोव्याप्तमिदमित्थं विवर्जितम् ।

अगम्यं योगिभिर्गम्यं कृच्छ्रैर्बहुसमाधिभिः॥१३८॥

यह अव्यक्त और सर्वव्यापी है, 'यह ऐसा है' ऐसा नहीं कहा जाता, साधरणको वह अगम्य है, परन्तु योगीलोग दीर्घ-कालतक समाधिका आश्रय करके बहुतसे कष्टसे इसको हृद-यमें लाते हैं ॥ १३८ ॥

मनसो धारणार्थाय शीघ्रं स्वाभीष्टसिद्धये ।

सूक्ष्मध्यानप्रबोधाय स्थूलध्यानं वदामि ते१३९॥

इस समय मनकी धारणा शीघ्र अभीष्टसिद्धि होनेको और सूक्ष्मध्यानका बोध होनेको तुमसे स्थूल ध्यानका तत्त्व कहता हूं ॥ १३९ ॥

अरूपायाः कालिकायाः कालमातुर्महाद्युतेः ।

गुणक्रियानुसारेण क्रियते रूपकल्पना ॥ १४० ॥

अरूपा और कालमाता महाप्रकाशवती कालिका देवीके गुण और क्रियाके अनुसार रूपकी कलपना करते हैं ॥ १४०॥

मेघाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रक्ताम्बरं बिभ्रतीं
पाणिभ्यामभयं वरं च विलसद्रक्तारविन्दस्थिताम्।
नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं माध्वीकमद्यं महाकालं
वीक्ष्य विकासिताननवरामाद्यां भजे कालिकाम् १४१

जिनका वर्ण मेघतुल्य है, माथेपर चन्द्रमाकी रेखा जगमगा रही है, तीन नेत्र हैं, लाल वस्त्र पहिने हैं, जिनके दो हाथोंमें वर और अभय हैं, जो फूले हुए कमलपर बैठी हैं; जिनके सामने माध्वीक फूलसे उत्पन्न हुआ मधुर मद्यपान कर महाकाल नृत्य करता है, इस महाकालका दर्शन कर जिनका मुखकमल विकसित हुआ है, ऐसी आदिकालिकाका भजन करता हूं ॥ १४१ ॥

एवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा तु साधकः ।
पूजयेत्परया भक्त्या मानसैरुपचारकैः ॥ १४२ ॥

साधक अपने मस्तकपर फूल चढ़ाय इस प्रकार ध्यान कर परमभक्तिके सहित मानसोपचारसे पूजा करे ॥ १४२ ॥

हृत्पद्ममासनं दद्यात्सहस्रारच्युतामृतैः ।
पाद्यं चरणयोर्दद्यान्मनस्त्वर्घ्यं निवेदयेत् ॥ १४३ ॥

(मानस पूजामें) हृदयरूपी पद्मका आसन दे, सहस्रारच्युत अमृतसे देवीके दोनों चरणोंमें पाद्य दे, मनको अर्घ्य स्वरूपमें निवेदन करे ॥ १४३ ॥

तेनामृतेनाचमनं स्नानीयमपि कल्पयेत् ।
आकाशतत्त्वं वसनं गन्धं तु गन्धतत्त्वकम्॥१४४॥

पहले कहे हुए सहस्रारच्युत अमृतसे ही आचमनीय और स्नानीय जल कल्पित होगा। आकाशतत्त्व वस्त्र और गन्धतत्त्व गन्धरूपमें दिया जायगा ॥ १४४ ॥

चित्तं प्रकल्पयेत्पुष्पं धूपं प्राणान्प्रकल्पयेत् ।
तेजस्तत्त्वं तु दीपार्थे नैवेद्यं च सुधाम्बुधिम्॥१४५॥

मनको पुष्प और प्राणको धूप बनाये, तेजतत्त्वको दीप और सुधांबुधिको नैवेद्यार्थ दे ॥ १४५ ॥

अनाहतध्वनिं घण्टां वायुतत्त्वं च चामरम् ।
नृत्यमिन्द्रियकर्म्माणि चाञ्चल्यं मनसस्तथा १४६॥

हृदयमध्यकी अनाहत ध्वनिको घण्टा और वायुतत्त्वको चामर कल्पित करे, फिर इन्द्रियोंके समस्त कार्य और मनकी चंचलताको नृत्य कल्पना करे ॥ १४६ ॥

पुष्पं नानाविधं दद्यादात्मनो भावसिद्धये ।
अमायमनहंकारमरागममदं तथा ॥ १४७ ॥
अमोहकमदम्भं च अद्वेषाक्षोभके तथा ।
अमात्सर्य्यमलोभं च दशपुष्पं प्रकीर्तितम् ॥१४८॥

अपनी भाव शुद्धिके लिये अनेक प्रकारके फूल दे अमायिकता, निरहंकार, रोषशून्यता, मदशून्यता, मोहशून्यता,

दम्भशून्यता, द्वेषहीनता, क्षोभरहितता, मत्सरहीनता और निर्लोभता मानसपूजाके लिये ये दश प्रकारके फूल अच्छे हैं ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
दयाक्षमाज्ञानपुष्पं पञ्चपुष्पं ततः परम् ॥ १४९॥

फिर अहिंसास्वरूप परमपुष्प, दयारूप पुष्प, इन्द्रियनिग्रह, क्षमा और ज्ञान यह पंचपुष्प दे ॥ १४९ ॥

इति पञ्चदशैः पुष्पैर्भावरूपैः प्रपूजयेत् ।
सुधाम्बुधिं मांसशैलं भर्जितं मीनपर्वतम् ॥१५०॥
मुद्राराशिं सुभक्तं च घृताक्तं पायसं तथा ।
कुलामृतं च तत्पुष्पं पीठक्षालनवारि च ॥१५१॥

इस प्रकार पन्द्रह प्रकारके भावरूपी फूलोंसे पूजा करके फिर मनमें सुधासमुद्र मांसशैल भर्जितमत्स्यपर्वत मुद्राराशि, सुन्दर घृतकी पायस, कुलामृत, कुलपुष्प, पीठक्षालन वारि यह समस्त देवीको दे ॥ १५० ॥ १५१ ॥

कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत् ।
माला वर्णमयी प्रोक्ता कुण्डली सूत्रयन्त्रिता१५२॥

फिर विघ्नकर्ता काम और क्रोधको बलि देकर जप करना आरम्भ करे, इस प्रकार कुण्डलीसूत्रमें गुँथी हुई वर्णमाला ही श्रेष्ठ है ॥ १५२ ॥

सबिन्दुं मन्त्रमुच्चार्य्य मूलमन्त्रं समुच्चरेत् ।
अकारादिळकारान्तमनुलोम इति स्मृतः ॥१५३॥
पुनर्ळकारमारभ्य श्रीकण्ठान्तं मनुं जपेत् ।
विलोम इति विख्यातः क्षकारो मेरुरुच्यते॥१५४॥

पहले बिन्दुके सहित अकारादिसे उच्चारण करके, उसके पीछे मूलमन्त्र उच्चारण करे. इस प्रकारसे आरम्भ करके अन्त्य "ळ" कारतक अनुलोम क्रमसे जप करके पुनर्वार "ळ" से "क" तक विलोमक्रमसे जप करे, "क्ष" इसका मेरु होगा ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

अष्टवर्गान्तिमैर्वर्णैः सहमूलमथाष्टकम् ।
एवमष्टोत्तरशतं जप्त्वा चेमं समर्पयेत् ॥१५५॥

इसके पीछे आठ वर्गके आठ संख्यक शेष वर्णके सहित मूलतन्त्र मिला साकल्यमें १०८ एकसौ आठ जप करे. इस नियमसे एक शत आठ वार जप करके देवीके हाथमें समर्पण करे ॥ १५५ ॥

---

(१) वर्णमयी माला यथाः—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं २ एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं (क्षं) ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं २ ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं अनुलोम और विलोम इस एकशत वर्ण रूप मालामें एक शतवार जप करके फिर अष्टवर्गके.

सर्वान्तरात्मनि लये स्वान्तर्ज्योतिःस्वरूपिणी ।
गृहाणान्तर्जपं मातराद्ये कालि नमोऽस्तुते॥ १५६॥

जप समर्पण करनेका मन्त्र यह है–हे आद्यकालिके ! तुम सबकी आत्मामें विराजमान हो, तुम अन्तरात्माकी जननीस्वरूप हो. हे जननि ! हमारा यह जप ग्रहण करो ॥१५६॥

समर्प्य जपमेतेन साष्टाङ्गं प्रणमेद्धिया ।
इत्यन्तर्यजनं कृत्वा बहिःपूजां समारभेत् ॥१५७॥

इस प्रकार देवीके हस्तमें जप समर्पण करके मानससे साष्टांग प्रणाम करे. इस प्रकार मानसपूजा करके बाहरी पूजा आरम्भ करे ॥ १५७ ॥

विशेषार्घस्य संस्कारस्तत्रादौ कथ्यते शृणु ।
यस्य स्थापनमात्रेण देवता सुप्रसीदति ॥१५८ ॥

प्रथम तो विशेष प्रकारसे अर्घ्यका संस्कार कहता हूं सो तुम श्रवण करो. इसके स्थापित करते ही देवतागण प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १५८॥

–आठ पिछले अक्षरोंमे आठ वार जप करे।अष्ट अक्षर यथा:–अं ङं ञं णं नं मं वं ळं । इस सारी वर्ण मालाके प्रत्येक वर्णके सहित वीजमंत्रका जप करना चाहिये । यथा:--"अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा"इत्यादि वर्णमयी मालामें विना अनुस्वार मिलाये भी काम चल सकता है ।

दृष्ट्वार्घ्यपात्रं योगिन्यो ब्रह्माद्या देवतागणाः ।
भैरवा अपि नृत्यन्ति प्रीत्या सिद्धिं ददत्यपि ॥ १५९ ॥

ब्रह्मादि देवगण, योगिनी और भैरवगण अर्घ्यका पात्र देखकर नृत्य करते हैं और प्रसन्न हो सिद्धि देते हैं ॥ १५९ ॥

स्ववामे पुरतो भूमौ सामान्यार्घ्यस्य वारिणा ।
मायागर्भं त्रिकोणं च वृत्तं च चतुरस्रकम् ॥ १६० ॥

इसके उपरान्त अपनी बांई ओर सामनेकी भूमिमें अर्घ्यके जलसे एक गोलाकार मंडप बनावे, उसके बाहर एक चौकोन मण्डल लिखे ॥ १६० ॥

विलिख्य पूजयेत्तत्र मायाबीजपुरःसरम् ।
ङेन्तामाधारशक्तिं च नमःशब्दावसानिकाम् ॥ १६१ ॥

उसमें 'ह्रीं आधारशक्तये नमः' इस मन्त्रसे आधारशक्तिकी पूजा करे ॥ १६१ ॥

ततः प्रक्षालिताधारं विन्यस्य मण्डलोपरि ।
मं वह्निमण्डलं ङेन्तं दशकलात्मने ततः ॥ १६२ ॥

फिर इस मण्डलके ऊपर प्रक्षालित पात्र स्थापन करके उसमें 'मंवह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' ॥ १६२ ॥

नमोन्तेन च सम्पूज्य क्षालयेदर्घ्यपात्रकम् ।
अस्त्रेण स्थापयेत्तत्र आधारोपरि साधकः ॥ १६३ ॥

इस मन्त्रसे वह्निमण्डलकी पूजा करके फट्मन्त्रका उच्चारण करके अर्घ्यपात्र प्रक्षालित करे फिर आधारपर धरे १६३॥

अमर्कमण्डलायोक्त्वा द्वादशान्तकलात्मने ।
नमोऽन्तेन यजेत्पात्रं मूलेनैव प्रपूरयेत् ॥ १६४ ॥

फिर 'अं अर्कमण्डलाय नमः' इस मन्त्रसे अर्कमण्डलकी अर्चना करके मूलमन्त्रके उच्चारणसे अर्घ्यपात्र पूर्ण करे ॥ १६४ ॥

त्रिभागमलिनापूर्य्य शेषं तोयेन साधकः ।
गन्धपुष्पे तत्र दत्त्वा पूजयेदमुनाम्बिके ॥ १६५॥

इस समय साधक तीन भाग मद्य और एक भाग जल देकर उनमें गन्धपुष्प दान करे, हे अम्बिके ! वक्ष्यमाणमंत्रसे उसमें पूजा करे ॥ १६५ ॥

षष्ठस्वरं बिन्दुयुक्तं ङेन्तं वै चन्द्रमण्डलम् ।
षोडशान्ते कलाशब्दादात्मने नम इत्यपि ॥ १६६॥

षष्ठस्वर 'ऊ' में बिन्दु मिला 'ठाय' सहित 'षोडशकलात्मने नमः' अर्थात् "ऊँ ठाय षोडशकलात्मने नमः" इस मन्त्रसे पूजा करे ॥ १६६ ॥

ततस्तु श्रीफले पत्रे रक्तचन्दनचर्चितम् ।
दूर्व्वा पुष्पं साक्षतं च कृत्वा तत्र निधापयेत् १६७॥

फिर बेलपत्र, लालचन्दन, दूर्वादल, फूल, अक्षत इन सब-को अर्घ्यके विशेष भागमें स्थापित करे ॥ १६७ ॥

मूलेन तीर्थमावाह्य तत्र देवीं विभाव्य च ।
पूजयेद्गन्धपुष्पाभ्यां मूलं द्वादशधा जपेत् ॥ १६८ ॥

फिर मूलमन्त्रके द्वारा तीर्थ आवाहन करके उसमें देवीका ध्यान करे और गन्धपुष्पद्वारा पूजा करके बारह वार मूलमन्त्र जपे ॥ १६८ ॥

धेनुयोनी दर्शयित्वा धूपदीपौ प्रदर्शयेत् ।
तदम्बु प्रोक्षणीपात्रे किञ्चिन्निक्षिप्य साधकः ॥ १६९ ॥
आत्मानं देयवस्तूनि प्रोक्षयेत्तेन मन्त्रवित् ।
पूजासमाप्तिपर्य्यन्तमर्घ्यपात्रं न चालयेत् ॥ १७० ॥

फिर अर्घ्यविशेषके ऊपर धेनु व योनिमुद्रा दिखा धूपदीप दिखावे । इसके उपरान्त मन्त्रका जपनेवाला साधक अर्घ्य विशेषका थोड़ासा जल प्रोक्षणीपात्रमें डालकर उस जलसे अपनेको और पूजाके समस्त द्रव्यको प्रोक्षित करे । जबतक पूजा समाप्त न हो एक साथ अर्घ्यविशेषको दूसरे स्थानपर न ले जाय ॥ १६९ ॥ १७० ॥

विशेषार्घ्यस्य संस्कारः कथितोऽयं शुचिस्मिते ।
यन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि समस्तपुरुषार्थदम् ॥ १७१ ॥

हे सुन्दरि ! तुमसे विशेषार्घ्यका संस्कार वर्णन किया. अब समस्त पुरुषार्थके देनेवाले यन्त्रराजके लिखनेकी रीति कहता हूं ॥ १७१ ॥

मायागर्भं त्रिकोणं च तद्बाह्ये वृत्तयुग्मकम् ।
तयोर्मध्ये युग्मयुग्मक्रमात्षोडशकेसरान् ॥१७२॥

प्रथम एक त्रिकोणमण्डल खींच उसमें मायाबीज (ह्रीं) लिखे उसके बाहर गोलाकार दो मण्डल खींचे, उसके बाहर दो दोके क्रमसे सोलह केसर लिखे ॥ १७२ ॥

तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं तद्बहिर्भूपुरं लिखेत् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तसुरेखं सुमनोहरम् ॥ १७३ ॥

इस गोल मण्डलके बाहर अष्टदल पद्म बनावे, उसके बाहर चारद्वारयुक्त सरल रेखामय मनोहर भूपुर लिखे ॥ १७३ ॥

स्वर्णे वा राजते ताम्रे कुण्डगोलविलेपिते ।
स्वयम्भूकुसुमैर्य्युक्ते चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ १७४ ॥
कुशीदेनाथवा लिप्ते स्वर्णमय्या शलाकया ।
मालूरकण्टकेनापि मूलमन्त्रं समुच्चरन् ॥ १७५ ॥

कुंड गोलविलेपित चंदन, अगर, कुंकुम अथवा केवल लाल-चन्दन लगे हुए सुवर्ण, चांदी या ताम्रपात्रमें स्वर्णशलाका अथवा बिल्वकंटकसे मूलमंत्र उच्चारण करे ॥१७४॥१७५॥

विलिखेद्यन्त्रराजं तु देवताभावसिद्धये ।
अथवोत्कीलरेखाभिः स्फाटिके विद्रुमेऽपि वा १७६
वैदूर्य्ये कारयेद्यन्त्रं कारुकेण सुशिल्पिना ।
शुभप्रतिष्ठितं कृत्वा स्थापयेद्भवनान्तरे ॥ १७७ ॥
नश्यन्ति दुष्टभूतानि ग्रहरोगभयानि च ।
पुत्रपौत्रसुखैश्वर्य्यैर्म्मोदते तस्य मन्दिरम् ॥
दाता भर्त्ता यशस्वी च भवेद्यन्त्रप्रसादतः ॥ १७८ ॥

भावशुद्धिके लिये यंत्रराज लिखे अथवा स्फटिक, प्रवाल या वैदूर्यके बने हुए पात्रमें चतुर कारीगरसे यंत्रको खुदवाय प्रतिष्ठा करके गृहमें स्थापित करे. इससे ग्रह, रोग, भूत और दुष्ट भूतोपद्रव शान्त हो जाते हैं । साधकका गृह भी पुत्र, पौत्र सुख और ऐश्वर्यसे पूर्ण हो जाता है । अधिक क्या कहें इसके प्रसादसे साधक दाता और यशवाल हो जाता है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

एवं यन्त्रं समालिख्य रत्नसिंहासने पुरः ।
संस्थाप्य पीठन्यासोक्तविधिना पीठदेवताः ।
सम्पूज्य कर्णिकामध्ये पूजयेन्मूलदेवताम् ॥ १७९ ॥

इस प्रकार यंत्र लिखकर पुरास्थित रत्नमय सिंहासनपर स्थापित करे और पीठदेवताओंकी व उनके आवर्त्तमान कर्णिकामूलमें देवताओंकी पूजा करे ॥ १७९ ॥

कलशस्थापनं वक्ष्ये चक्रानुष्ठानमेव च ।
येनानुष्ठानमात्रेण देवता सुप्रसीदति ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नूनमिच्छासिद्धिः प्रजायते ॥ १८०

इस समय कलश स्थापन और मंत्रानुष्ठानका वर्णन करता हूं, इससे निश्चय ही इच्छासिद्धि मन्त्रसिद्धि होती है और देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १८० ॥

कलां कलां गृहीत्वा तु देवानां विश्वकर्म्मणा ।
निर्मितोऽयं स वै यस्मात्कलशस्तेन कथ्यते १८१॥

विश्वकर्माने देवताओंकी एक एक कला लेकर इसको बनाया है, इसी कारणसे इसका नाम कलश हुआ ॥ १८१ ॥

षट्त्रिंशदङ्गुलायामं षोडशाङ्गुलमुच्चकैः ।
चतुरङ्गुलकं कण्ठं मुखं तस्य षडङ्गुलम् ।
पञ्चाङ्गुलिमितं मूलं विधानं घटनिर्म्मितौ॥ १८२॥

इस कलशका विस्तार डेढ़ हाथका, सोलह अंगुल ऊँचा, गल चार अंगुल, मुख विस्तारमें छः अंगुल, तलपरिमाणमें पांच अंगुल ॥ १८२ ॥

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यजं मृत्तिकोद्भवम् ।
पाषाणं काचजं वापि घटमक्षतमव्रणम् ।
कारयेद्देवताप्रीत्यै वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥१८३॥

यह सुवर्ण, चांदी, कांसी, मट्टी वा कांचका बना हो; कहींसे टूटा न हो, न कोई छिद्र हो, देवताओंकी प्रीतिके लिये सुधाकलश बनानेमें किसी प्रकारकी कृपणता न हो॥ १८३॥

सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदायकम् ।
ताम्रं प्रीतिकरं ज्ञेयं कांस्यजं पुष्टिवर्द्धनम् ।
काचं वश्यकरं प्रोक्तं पाषाणं स्तम्भकर्म्मणि ।
मृन्मयं सर्वकार्य्येषु सुदृश्यं सुपरिष्कृतम् ॥ १८४॥

सुवर्णकलश भोगदायक, चांदीका मोक्षदायक, ताम्रका प्रीतिकर, कांसेका पुष्टिवर्द्धक, कांचपात्र वशीकरणकारक, पाषाणपात्र स्तम्भनोद्दीपक, मट्टीका पात्र सुदृश्य और स्वच्छ होनेसे सर्व कार्यमें श्रेष्ठ है ॥ १८४ ॥

स्ववामभागे षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम् ।
तद्बहिर्वृत्तमालिख्य चतुरस्रं ततो बहिः ॥ १८५॥

अपनी बांई ओर एक षट्कोण मण्डल लिखकर उसमें एक शून्य लगावे, उसके बाहर एक गोलाकार मण्डल खींचकर उसके बाहर एक चौकोन मण्डल खींचे ॥ १८५॥

सिन्दूररजसा वापि रक्तचन्दनकेन वा ।
निर्म्माय मण्डलं तत्र यजेदाधारदेवताम् ॥ १८६॥

उस मण्डलको रज, सिंदूर, या लालचन्दनसे लिखकर उसमें दूसरे देवताकी पूजा करे ॥ १८६ ॥

मायामाधारशक्तिं च ङेनमोऽन्तां समुद्धरेत् १८७॥

'ह्रीं आधारशक्तये नमः' इस मन्त्रसे पूजा करे ॥१८७॥

नमसा क्षालिताधारं स्थापयेन्मण्डलोपरि ।
अस्त्रेण क्षालितं कुम्भं तत्राधारे निवेशयेत् १८८॥

फिर 'अनन्ताय नमः' इस मन्त्रसे प्रक्षालित आधार उक्त मण्डलपर स्थापन करके 'फट्' मन्त्रसे प्रक्षालित कुंभ आधारपर स्थापित करे ॥ १८८ ॥

क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुसमायुतैः ।
मूलं समुच्चरन्मन्त्री कारणेन प्रपूरयेत् ॥ १८९ ॥

इसके उपरान्त मन्त्रका जाननेवाला साधक 'क्ष' से आरम्भ करके 'अ' कारतक वर्णपर बिन्दु लगाय मूलमन्त्र पढ़ते पढ़ते मद्यसे कुम्भको पूर्ण करे ॥ १८९ ॥

आधारकुम्भतीर्थेषु वह्न्यर्कशशिमण्डलम् ।
पूर्ववत्पूजयेद्विद्वान्देवीभावपरायणः ॥ १९० ॥

फिर देवीभावसे स्थिरमन हो आधारकुम्भ और उसमें रक्खे हुए मद्यके ऊपर पूर्वानुसार वह्निमण्डल, अर्कमण्डल, और चन्द्रमण्डलकी पूजा करे ॥ १९० ॥

रक्तचन्दनसिन्दूररक्तमाल्यानुलेपनैः ।
भूषयित्वा तु कलशं पञ्चीकरणमाचरेत् ॥ १९१॥

इसके उपरांत लालचन्दन, सिंदूर, लालमाला और अनुलेपनसे कलशको विभूषितकर पंचीकरण करे ॥१९१॥

फटा दर्भेण सन्ताड्य हुंबीजेनावगुण्ठयेत् ।
ह्रींदिव्यदृष्ट्या संवीक्ष्य नमसाभ्युक्षणं चरेत् ।
मूलेन गन्धं त्रिर्दद्यात्पञ्चीकरणमीरितम् ॥१९२॥

"फट्" मन्त्रसे कुशद्वारा कलशकी ताडना करे । 'हुं' मन्त्रका उच्चारण कर अवगुण्ठनमुद्रासे कलशको अवगुंठित करे । "ह्रीं" मन्त्रसे दिव्यदृष्टिद्वारा दर्शन कर "नमः" मंत्रसे जल लेकर कलशपर छिड़के । मूलमंत्रसे तीन बार कलशपर चंदन लगावे ॥ १९२ ॥

प्रणम्य कलशं रक्तपुष्पं दत्त्वा विशोधयेत् ॥१९३॥

इसके उपरान्त कलशको प्रणाम कर उसपर लाल चंदन चढ़ावे और मंत्रसे सुधाको शुद्ध करे ॥ १९३ ॥

एवमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥१९४॥

परब्रह्म स्थूल और सूक्ष्म है, वह अद्वितीय और अचल है, मैं उनके शुभागमनसे कचसे उत्पन्न हुई ब्रह्महत्याका नाश करता हूं ॥ १९४ ॥

सूर्य्यमण्डलमध्यस्थे[1] वरुणालयसम्भवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥१९५॥

---

१ 'सूर्य्यमण्डलसम्भूते' इति वा पाठः ।

हे देवि सुरे ! समुद्रके गर्भमेंसे तुम्हारी उत्पत्ति है, तुम सूर्यमंडलमें विराजमान हो, तुम अमाबीज-स्वरूपिणी हो, तुम शुक्रके शापसे छूटो ॥ १९५ ॥

वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्या व्यपोहतु ॥ १९६ ॥

वेदोंका प्रणव बीजरूप हो और ब्रह्मानंदमय हो, हे देवि ! उस सत्यसे तुम्हारी ब्रह्महत्या दूर हो ॥ १९६ ॥

ह्रींहंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता
वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतस-
द्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतंबृहत् १९७
वारुणेन च बीजेन षड्दीर्घस्वरभाजिना ।
ब्रह्मशापविशब्दान्ते मोचितायै पदं वदेत् ॥
सुधादेव्यै नमः पश्चात्सप्तधा ब्रह्मशापनुत् ॥१९८॥

'ह्रीं' बीजपूर्वक 'हं सः०" आदि मन्त्रको बोले, इसके उपरान्त वरुणबीजमें क्रमानुसार छः दीर्घस्वर मिलाय पश्चात् "ब्रह्मशापविमोचितायै" पद उच्चारण करे, फिर "सुधादेव्यै नमः" पदका प्रयोग करे ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

अङ्कुशं दीर्घषट्केण युतं श्रीमायया युतम् ।
सुधा पश्चाद्ब्रह्मशापं मोचयेति पदं ततः ।
अमृतं स्रावयद्वन्द्वं द्विठान्तो मनुरीरितः ॥१९९॥

और इस पदमें छैः दीर्घस्वर मिला फिर "श्रीं" और मायाबीज (ह्रीं) मिलावे, इसके पश्चात् सुधाशब्दका प्रयोग करके "ब्रह्मशापं मोचय" शब्द उच्चारण करे फिर "अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा" का उच्चारण करे ॥ १९९ ॥

एवं शापान्मोचयित्वा यजेत्तत्र समाहितः ।
आनन्दभैरवं देवमानन्दभैरवीं तथा ॥ २०० ॥

इस प्रकार शापमोचन करके सावधान हृदयसे आनन्द भैरव देव और आनंदभैरवी देवीकी पूजा करे ॥ २०० ॥

हसक्षमलशब्दान्ते वरयूं मिलितं वदेत् ।
आनन्दभैरवं ङेऽन्तं वषडन्तो मनुर्म्मतः ॥२०१॥
अस्यास्यं विपरीतं च श्रवणे वामलोचना ।
सुधादेव्यै वौषडन्तो मनुरस्याः प्रपूजने ॥ २०२॥

"हसक्षमलवरयूं" इसके प्रथमके दो अक्षर अलग करके "आनन्दभैरवाय वषट्" कहे फिर कर्णस्थलमें वामचक्षु और दीर्घ "ऊ" के स्थानमें दीर्घ "ई" धरे, फिर "सुधादेव्यै वौषट्" इस पदका प्रयोग करे ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

---

* मन्त्रोद्धारो यथाः—"क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः श्रीं ह्रीं सुधा कृष्णशापं मोचयामृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।" कृष्णशापमोचनमंत्र दूसरे प्रकारसे यथा- "ओं ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः । कृष्णशापं विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय" इति दशधा जपेत् । शुक्रशापमोचनमंत्र दूसरे तंत्रमें यथाः—"ओं शां शीं शूं शैं शों शौं शं शः शुक्रशापात् विमोचितायै सुधादेव्यै नमः ।"

सामरस्यं तयोस्तत्र ध्यात्वा तदमृतप्लुतम् ।
द्रव्यं विभाव्य तस्योर्ध्वे मूलं द्वादशधा जपेत् २०३॥

इसके उपरान्त कलशमें उक्त दोनों देवी देवताओंका सामरस्य (ऐक्य) का ध्यान करके यह भावना करे कि, अमृतमें सुरा संसिक्त हो गयी है फिर उसमें बारह बार मूलमंत्र जपे ॥२०३॥

मूलेन देवताबुद्धया दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं ततः ।
दर्शयेद्धूपदीपौ च घण्टावादनपूर्वकम् ॥ २०४ ॥

फिर देवबुद्धिसे मूलमंत्रके द्वारा मद्यके ऊपर तीन वार पुष्पाञ्जलि देवे, फिर घंटा बजाय धूप दिखावे ॥ २०४ ॥

इत्थं तीर्थस्य संस्कारः सर्वदा देवपूजने ।
व्रते होमे विवाहे च तथैवोत्सवकर्मणि ॥२०५॥

देवार्चना, व्रत, होम, विवाह और उत्सवोंमें भी पूर्वानुसार सुराका संस्कार करे ॥ २०५ ॥

आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीका ध्यान दूसरे तंत्रमें यथाः—

(१) सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् । अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम् । वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥ कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् । पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुसलधारिणम् ॥ खड्गाखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदण्डधृक् । विचित्रं खेटकं मुण्डं वरदाभयपाणिनम् । लोहितं देवदेवेशं भावयेत्साधकोत्तमः । भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकोटययुतप्रभाम् । हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम्। अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् । प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवेशसम्मुखीम् इति ।

मांसमानीय पुरतस्त्रिकोणमण्डलोपरि ।
फटाभ्युक्ष्य वायुवह्निबीजाभ्यां मन्त्रयेत्त्रिधा२०६॥

इसके उपरान्त मांस लाकर सामने त्रिकोणमंडलके ऊपर-के भागमें स्थापित करे "फट्" मंत्रसे अभ्युक्षित करके वायु-बीज और वह्निबीजसे उसको तीन वार अभिमन्त्रित करे२०६

कवचेनावगुण्ठ्याथ संरक्षेच्चास्त्रमन्त्रतः ।
धेन्वा वममृतीकृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २०७ ॥

फिर कवचसे अवगुंठित करके "फट्" मंत्रसे रक्षा करे फिर "वं" मंत्रोच्चारण कर धेनुमुद्रासे अमृतीकरण करके फिर इस मन्त्रका पाठ करे ॥ २०७ ॥

विष्णोर्वक्षसि या देवी या देवी शङ्करस्य च ।
मांसं मे पवित्रं कुरु तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२०८॥

जो देवीजी विष्णुजीके वक्षस्थलमें विराजमान हैं, जो शंकरजीकी छातीमें विराजमान हैं वे मेरे दिये हुए मांसको पवित्र करें और मुझको विष्णुजीके पदपर स्थापित करें २०८॥

इत्थं मीनं समानीय प्रोक्तमन्त्रेण संस्कृतम् ।
मन्त्रेणानेन मतिमांस्तं मीनमभिमन्त्रयेत् ॥२०९॥

बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकारसे मत्स्य ला उनको संशोधन कर इस मन्त्रसे मन्त्रपूत करे ॥ २०९ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् २१०॥

हम शिवजीकी आराधना करते हैं, उनके प्रसादसे यह मत्स्य गन्धयुक्त और पुष्टिशाली हो, यह हमको मृत्युके बन्धनसे छुटा मोक्षके मार्गमें प्रेरित करो ॥ २१० ॥

तथैव मुद्रामादाय शोधयेदमुना प्रिये ।
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥
ओं तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २११ ॥
अथवा सर्वतत्त्वानि मूलेनैव विशोधयेत् ।
मूले तु श्रद्दधानो यः किं तस्य दलशाखया॥२१२॥

हे प्रिये ! फिर मुद्रा लाकर ' तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः' इस मन्त्रसे अथवा केवल मूलमन्त्रसे पंचतत्त्व शोधन करे, जिनकी मूलमन्त्रमें श्रद्धा है उनको शाखा और पत्तोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २११ ॥ २१२ ॥

केवलं मूलमन्त्रेण यद्द्रव्यं शोधितं भवेत् ।
तदेव देवताप्रीत्यै सुप्रशस्तं मयोच्यते ॥ २१३ ॥

मैं कहता हूं कि केवल मूलमन्त्रसे जो द्रव्य शोधित होता है देवताकी प्रसन्नताके लिये वही श्रेष्ठ है ॥ २१३ ॥

यदा कालस्य संक्षेपात्साधकानवकाशतः ।
सर्वं मूलेन संशोध्य महादेव्यै निवेदयेत् ॥२१४॥

जब कालके संक्षेपसे साधकको अनवकाश हो तब ही मूल-
मन्त्रसे पंचतत्त्व शोधन करके देवीको निवेदन करे ॥ २१४ ॥

न चात्र प्रत्यवायोऽस्ति नाङ्गवैगुण्यदूषणम् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमिति शंकरशासनम् ॥ २१५ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मन्त्रोद्धारकलशस्थापनतत्त्व-
संस्कारो नाम पञ्चमोल्लासः ॥ ५ ॥

इससे कोई प्रत्यवाय या अंगहानि नहीं होगी, मैं यह
त्रिसत्यसे कहता हूं और यही महादेवकी आज्ञा है ॥ २१५ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादावादनिवासि पं० बलदेवप्रसाद-
मिश्रकृतभाषाटीकायां मन्त्रोद्धारकलशस्थापनत-
त्त्वसंस्कारो नाम पञ्चमोल्लासः ॥ ५ ॥

षष्ठोल्लासः ६.

श्रीदेव्युवाच ।

यत्त्वया कथितं पञ्चतत्त्वं पूजादिकर्म्मणि ।
विशिष्य कथ्यतां नाथ यदि तेऽस्ति कृपा मयि ॥ १ ॥

श्रीदेवीजीने पूछा हे नाथ ! पूजा इत्यादिके समय जिस
प्रकारसे पंचतत्त्व निवेदन करना चाहिये, वह आपने सब
कहा, अब यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा हो तो सबको भली-
भांति विशेषतासे कहिये ॥ १ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

गौडी पैष्टी तथा माध्वी त्रिविधा चोत्तमा सुरा
सैव नानाविधा प्रोक्ता तालखर्जूरसम्भवा ।
तथा देशविभेदेन नानाद्रव्यविभेदतः ।
बहुधेयं समाख्याता प्रशस्ता देवतार्चने ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा गौडी, पैष्टी और माध्वी यह तीन प्रकारकी उत्तम सुरा है । यह सुरा तालसे उत्पन्न होती है, खजूरसे उत्पन्न होती है व और वस्तुओंसे उत्पन्न होनेके कारण अनेक प्रकारकी होती है । इस कारण देशभेद और द्रव्यनामभेदसे यह सुरा अनेक प्रकारकी कही गयी है । यह सब सुरा देवपूजामें श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥

येन केन समुत्पन्ना येन केनाहृतापि वा ।
नात्र जातिविभेदोऽस्ति शोधिता सर्वसिद्धिदा॥३॥

यह सुरा जिस किसी प्रकारसे उत्पन्न हो, चाहे जिस देशसे चाहे कोई पुरुष लाया हो, शोधित होनेपर सब भांति की सिद्धियोंको देती है । सुराके विषयमें जातिका विचार नहीं है ॥ ३ ॥

मांसं तु त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम् ।
यस्मात्तस्मात्समानीतं येन तेन विघातितम् ।
तत्सर्वं देवताप्रीत्यै भवेदेव न संशयः ॥ ४ ॥

जलचर (मछली इत्यादि), थलचर (हरिणादि), आकाशचर (जंगली कपोतादि) यह तीन प्रकारका मांस है। यह मांस चाहे जिस स्थानसे आया हो, चाहे जो कोई पुरुष लाया हो, उससे अवश्य देवता प्रसन्न होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥

साधकेच्छा बलवती देये वस्तुनि दैवते ।
यद्यदात्मप्रियं द्रव्यं तत्तदिष्टाय कल्पयेत् ॥ ५ ॥

देवताको कोई मांस या किसी वस्तुके देनेमें साधककी इच्छा ही बलवती है, जो जो मांस या जो जो वस्तु अपनी प्यारी हो वही इष्ट देवताको देनी उचित है ॥ ५ ॥

बलिदानविधौ देवि विहितः पुरुषः पशुः ।
स्त्रीपशुर्न च हन्तव्यस्तत्र शाम्भवशासनात् ॥ ६ ॥

हे देवि ! बलिदानके समय पुरुषपशु ही (नर) शास्त्रमें कहा गया है। महादेवकी आज्ञा है कि, स्त्रीपशु (मादा) का बलिदान नहीं करे॥ ६ ॥

उत्तमास्त्रिविधा मत्स्याः शालपाठीनरोहिताः ॥७॥

शाल,पाठीन,व रोहित ये तीन प्रकारके मत्स्य उत्तम हैं७

मध्यमाः कण्टकैर्हीना अधमा बहुकण्टकाः ।
तेऽपि देव्यै प्रदातव्या यदि सुष्ठु विभर्ज्जिताः॥८॥

दूसरे मत्स्य भी, जिनमें कांटे नहीं हों उत्तमोत्तम हैं। शैल

आदि कि, जिनमें कांटे अधिकाईसे होते हैं—अधम हैं । परंतु बहुतसे कांटेवाला मत्स्य भी भलीभांतिसे भूनकर देवीको दिया जा सकता है ॥ ८ ॥

मुद्रापि त्रिविधा प्रोक्ता उत्तमादिविभेदतः ।
चन्द्रबिम्बनिभं शुभ्रं शालितण्डुलसम्भवम् ।
यवगोधूमजं वापि घृतपक्कं मनोरमम् ॥ ९ ॥

उत्तम, मध्यम, अधम यह तीन प्रकारकी मुद्रा भी होती हैं । जो चन्द्रमाके बिम्बके समान शुभ्र हो, शालिके चावलोंसे हो, अथवा जौ गेहूँके आटेकी बनी हो और जो घीमें पकी व मनोहर हो ॥ ९ ॥

मुद्रेयमुत्तमा मध्या भृष्टधान्यादिसम्भवा ।
भर्जितान्यन्यबीजानि अधमा परिकीर्त्तिता ॥ १० ॥

ऐसी मुद्रा ही उत्तम है जो भृष्टधान्य अर्थात् खील इत्यादिकी बनी हो वह मध्यम है । जो और प्रकारके नाजको भूनकर बनायी जाय वह अधम कहलाती है ॥ १० ॥

मांसं मीनश्च मुद्रा च फलमूलानि यानि च ।
सुधादाने देवतायै संज्ञैषां शुद्धिरीरिता ॥ ११ ॥

देवीको सुरादान करनेके समय जो मांस, मत्स्य, मुद्रा, फल इत्यादि देना हो उस सबका ही शुद्धि नाम होगा ॥ ११ ॥

विना शुद्ध्या हेतुदानं पूजनं तर्पणं तथा ।
निष्फलं जायते देवि देवता न प्रसीदति ॥ १२ ॥

विना इन शुद्धियोंके देवीजीको सुरादान करना, पूजा करना या तर्पण करना निष्फल हो जायगा और उससे देवता भी प्रसन्न नहीं होगा ॥ १२ ॥

शुद्धिं विना मद्यपानं केवलं विषभक्षणम् ।
चिररोगी भवेन्मन्त्री स्वल्पायुर्म्रियतेऽचिरात् ॥ १३ ॥

विना शुद्धिके सुरापान करना विष खानेके समान होता है, विशेष करके शुद्धिके विना सुरापान करनेसे सदा रोगी और अल्पायु होकर शीघ्र ही कालका कवल होना पड़ता है ॥

शेषतत्त्वं महेशानि निर्बीजे प्रबले कलौ ।
स्वकीया केवला ज्ञेया सर्वदोषविवर्जिता ॥ १४ ॥

हे महेश्वरि ! निर्वीर्य कलियुगके प्रबल होनेपर शेषतत्त्व (मैथुन) केवल सर्वदोषरहित अपनी स्त्रीसे ही सिद्ध होगा १४॥

अथवात्र स्वयम्भ्वादिकुसुमं प्राणवल्लभे ।
कथितं तत्प्रतिनिधौ कुसीदं परिकीर्त्तितम् ॥ १५ ॥

हे देवि ! अथवा मैंने जो स्वयंभु-आदिपुष्पका वर्णन किया है, उसके बदलेमें लालचंदन देना चाहिये ॥ १५ ॥

अशोधितानि तत्त्वानि पत्रपुष्पफलानि च ।
नैव दद्यान्महादेव्यै दत्वा वै नारकी भवेत् ॥ १६ ॥

उक्त पंचतत्त्व और फल, मूल, पत्र विना शोधन किये देवीको निवेदन न करे. करनेसे नरकगामी होना पड़ता है१६

श्रीपात्रस्थापनं कुर्य्यात्स्वीयया गुणशीलया ।
अभिषिञ्चेत्कारणेन सामान्यार्घ्योदकेन वा ॥१७॥

अपनी गुणशीला पत्नीसे श्रीपात्र स्थापन करावे और इस पत्नीके कारणद्वारा और साधारण अर्घ्यजलके द्वारा अभिषेक करे ॥ १७ ॥

आदौ बालां समुच्चार्य्य त्रिपुरायै ततो वदेत् ।
नमः शब्दावसाने च इमां शक्तिमुदीरयेत् ॥१८॥

(अभिषेकके समय जो मंत्र उच्चारण करना चाहिये उसका उद्धार किया जाता है) पहले "ऐं क्लीं सौः" उच्चारण करके, फिर "त्रिपुरायै नमः" उच्चारण करनेके अनंतर "इमां शक्तिं" पद कहे ॥ १८ ॥

पवित्रीकुरु शब्दान्ते मम शक्तिं कुरु द्विठः ॥१९॥

फिर " पवित्रीकुरु " शब्दके अन्तमें " मम शक्तिं कुरु स्वाहा" यह पद उच्चारण करना चाहिये। सबको मिला कर यह मंत्रोद्धार हुआ "ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम शक्तिं कुरु स्वाहा" ॥ १९ ॥

अदीक्षिता यदा नारी कर्णे मायां समुच्चरेत् ।
शक्तयोऽन्याः पूजनीया नार्य्यस्ताडनकर्माणि॥२०॥

---

२ 'नाद्यास्ताडनकर्मणि' इति, 'नार्य्यास्ताडनकर्म्मणि' इति च पाठान्तरम्।

यदि नारी दीक्षित न हुई हो, उसके कानमें मायाबीजका उच्चारण करे। उस स्थानमें मैथुनतत्त्वको पूर्ण करनेके लिये और जो परकीया शक्तियां रहे उनकी पूजाकी जाय ॥२०॥

अथात्मयन्त्रयोर्मध्ये मायागर्भं त्रिकोणकम्।
वृत्तं षट्कोणमालिख्य चतुरस्रं लिखेद्बहिः॥ २१॥

फिर अपने और पहले कहे हुए यन्त्रके बीचमें एक त्रिकोण मण्डल खींचकर उसके बीचमें मायाबीज लिखे, तदनन्तर इस त्रिकोणमण्डलके बाहर एक षट्कोण मण्डल खींचे-उसके बाहर एक और चतुष्कोण मण्डल बनावे॥ २१॥

अस्त्रकोणे पूर्णशैलमुड्डीयानं तथैव च।
जालन्धरं कामरूपं सचतुर्थीनमोऽन्तकम्।
निजनामादिबीजाढ्यं पूजयेत्साधकोत्तमः॥२२॥

फिर साधक श्रेष्ठ इस चतुष्कोणमण्डलके चारों कोनोंमें ' पूं पूर्णशैलाय पीठाय नमः, ऊं उड्डीयानाय पीठाय नमः, जां जालन्धराय पीठाय नमः, कां कामरूपाय पीठाय नमः " इन चार मन्त्रोंका पाठ करके " पूर्णशैल, उड्डीयान, जालन्धर, कामरूप " इन चार पीठोंकी पूजा करे॥ २२॥

षट्कोणेषु षडङ्गानि मूलेनैव त्रिकोणकम्।
मायामाधारशक्तिं च नमोऽन्तेन प्रपूजयेत्॥२३॥

फिर षट्कोणमण्डलके छः कोणोंमें " ह्रां नमः, ह्रीं नमः, ह्रूं नमः, ह्रैं नमः, ह्रौं नमः, ह्रः नमः " इन छः मन्त्रोंसे षट्कोणके अधिदेवताकी पूजा करे फिर त्रिकोण मण्डलमें ' ह्रीं

आधारशक्तये नमः ' यह मन्त्र पढ़कर आधार देवताकी पूजा करे ॥ २३ ॥

नमसा क्षालिताधारं संस्थाप्य तत्र पूर्ववत् ।
वृत्तोपरि यजेद्वह्नेः कलाः स्वस्वादिमाक्षरैः ॥२४॥

अनन्तर " नमः " पढ़कर पहलेके समान उस मण्डलके ऊपर धोये हुए आधार स्थापित करके उसमें अपना पहला अक्षर उच्चारणकर अग्निकी दशकलाका पूजन करे ॥ २४ ॥

धूम्रार्चिर्ज्वलिनीसूक्ष्माज्वालिनीविस्फुलिङ्गिनी ।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहा तथा ॥२५॥

दश कलाओंके नाम-धूम्रा अर्चिः, ज्वलिनी, सूक्ष्मा, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा और हव्यकव्यवहा ॥ २५ ॥

सचतुर्थीनमोऽन्तेन पूज्या वह्नेः कला दश ॥२६॥

इन शब्दोंमें चतुर्थीविभक्तिका प्रयोग करके अन्तमें 'नमः' शब्द लगा अग्निकी ऊपर कही दश कलाओंका पूजन करे* ॥ २६ ॥

मंवह्निमण्डलायेति दशान्ते च कलात्मने ।
अवसाने नमो दत्त्वा पूजयेद्वह्निमण्डलम् ॥ २७ ॥

---

* प्रयोगो यथा "धूं धूम्रायैनमः, अं अर्चिषे नमः, ज्वं ज्वलिन्यै नमः, सूं सूक्ष्मायै नमः, ज्वां ज्वालिन्यै नमः, विं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, सु सुश्रियै नमः, सुं सुरूपायै नमः, कं कपिलायै नमः, हं हव्यकव्यवहायै नमः" ॥

फिर 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' यह मन्त्र पढ़कर आधारमें अग्निमण्डलकी पूजा करे ॥ २७ ॥

ततोऽर्घ्यपात्रमानीय फट्कारेण विशोधितम् ।
आधारे स्थापयित्वा तु कलाः सूर्य्यस्य द्वादश ।
कभादिवर्णबीजेन ठडान्तेन प्रपूजयेत् ॥ २८ ॥

इसके उपरान्त फट्कारद्वारा शोधित किया हुआ पात्र लाकर आधारमें स्थापन करके "कभ" आदि "ठड" तक वर्ण-बीज पहले उच्चारण करके सूर्यकी बारह कलाओंको पूजे २८

तापिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
सुधूम्रा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा २९

बारह कलाओंके नाम–तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगप्रदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा है* ॥ २९ ॥

अं सूर्य्यमण्डलायेति द्वादशान्ते कलात्मने ।
नमोऽन्तेनार्घ्यपात्रे तु पूजयेत्सूर्यमण्डलम् ॥ ३० ॥

फिर अर्घ्यपात्रमें "अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः" यह मंत्र पढ़कर सूर्यमंडलकी पूजा करे ॥ ३० ॥

---

* प्रयोगो यथाः–कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं नं ज्वालिन्यै नमः, चं धं रुचये नमः, छं दं सुधूम्रायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, ञं णं बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नमः ।

विलोममातृकां तद्वन्मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
त्रिभागं पूरयेन्मन्त्री कलशस्थेन हेतुना ॥ ३१ ॥

इसके उपरान्त मन्त्रका जाननेवाला पुरुष क्षकारसे अकारतक विलोममातृकावर्ण और उसके अंतमें मूलमंत्र उच्चारण करते करते कलशमें रक्खी हुई सुरासे अर्घ्यपात्रके तीनों भाग पूर्ण करे * ॥ ३१ ॥

विशेषार्घ्यं जलैः शेषं पूरयित्वा समाहितः ।
षोडशस्वरबीजेन नाममन्त्रेण पूजयेत् ।
सचतुर्थीनमोऽन्तेन कलाः सोमस्य षोडश ॥ ३२ ॥

फिर चित्तको सावधान कर अर्घ्यविशेषके जलसे अर्घ्यपात्रके पिछले अंशको पूर्ण करके, सोलह स्वर बीजोंके अन्तमें चतुर्थ्यन्त नाम उच्चारण करके, अन्तमें "नमः" शब्द लगा चंद्रमाकी सोलह कलाओंको पूजे ॥ ३२ ॥

अमृता मानदा पूजा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः ।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ।
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः शशिनः कलाः ३३ ॥

* मन्त्रो यथा—'क्षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, ळं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, हं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' इस प्रकार 'सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं' इनमेंसे प्रत्येक वर्णके अन्तमें 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' यह बीज उच्चारण करना चाहिये ।

सोलह कलाओंके नाम—अमृता, मानदा, पूजा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता यह सोलह कला कामदायिनी हैं * ॥ ३३ ॥

ॐसोममण्डलायेति षोडशान्तं कलात्मने।
नमोऽन्तेन यजेन्मन्त्री पूर्ववत्सोममण्डलम् ॥३४॥

फिर इस अर्घ्यपात्रके जलसे "ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः" यह मंत्र पढ़कर सोममंडलकी पूजा करे ३४॥

दूर्वाक्षतं रक्तपुष्पं वर्वरामपराजिताम्।
मायया प्रक्षिपेत्पात्रे तीर्थमावाहयेदपि ॥ ३५ ॥

इसके उपरान्त दूब, अक्षत, लाल फूल, वर्वरापत्र (श्यामाघास) अपराजिताके फूल इन सबको ग्रहण करके "ह्रीं" मंत्रसे पात्रमें डालकर तीर्थ आवाहन करे ॥ ३५ ॥

कवचेनावगुण्ठ्यास्त्रमुद्रया रक्षणं चरेत्।
धेन्वा चैवामृतीकृत्य च्छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥३६॥

---

* प्रयोगो यथा:—अं अमृतायै नमः, आं मानदायै नमः, इं पूजायै नमः, ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रतये नमः, ऋं धृतये नमः, ॠं शशिन्यै नमः, ऌं चन्द्रिकायै नमः, ॡं कान्तये नमः, एं ज्योत्स्नायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीतये नमः, औं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः।

फिर " हूं " बीज पढ़कर अवगुण्ठन मुद्राके द्वारा अर्घ्य-पात्रकी सुरा अवगुण्ठित करके अस्त्रमुद्रासे रक्षा करे । फिर धेनुमुद्राद्वारा अमृतीकृत करके उसको मत्स्यमुद्रासे आच्छादन करे ॥ ३६ ॥

मूलं सञ्जप्य दशधा देवतावाहनं चरेत् ।
आवाह्य पुष्पाञ्जलिना पूजयेदिष्टदेवताम् ।
अखण्डाद्यैः पञ्चमन्त्रैर्मन्त्रयेत्तदनन्तरम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर अर्घ्यपात्रमें रखी हुई सुराके ऊपर दशवार मूलमंत्र जपे, उसमें इष्टदेवताका आवाहन करके पुष्पांजलि देवे । फिर अखंडादि पांच मंत्रोंसे सुराको अभिमंत्रित करे ३७

अखण्डैकरसानन्दाकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलरूपिणी ॥ ३८ ॥

(पांच मन्त्रोंके ये अर्थ हैं) हे कुलरूपिणी ! तुम इस केवल अखंड सान्द्ररस और सान्द्रानंद देनेवाली परमसुधामयी वस्तुमें स्वाधीनस्फूर्ति दो ॥ ३८ ॥

अनङ्गस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकलेवरे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन्वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥ ३९ ॥

तुम अनंगकी अमृतस्वरूप हो, शुद्ध ज्ञान ही तुम्हारा शरीर है । तुम क्लिन्नरूप इस वस्तुमें अमृतफल प्राप्त करो ॥ ३९ ॥

तद्रूपेणैकरस्यं च कृत्वार्घ्यं तत्स्वरूपिणी ।
भूत्वा कलामृताकारमपि विस्फुरणं कुरु ॥ ४० ॥

हे सुरास्वरूपिणि ! तुम प्रधान मधुरताके रसरूपसे इस मद्यको ऐकरस्य अर्थात् प्रधान माधुर्ययुक्त करके कलामृत स्वरूप हो, हमें स्फूर्ति देवो ॥ ४० ॥

ब्रह्माण्डरससम्भूतमशेषरससम्भवम् ।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावह ॥ ४१ ॥

सुरासे पूरित हुए इस महापात्रको ब्रह्मांडके रससे युक्त और अनंतरसका आकार करो ॥ ४१ ॥

अहंतापात्रभरितमिदंतापरमामृतम् ।
पराहंतामये वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम् ॥ ४२ ॥

मैं आत्मभावरूप पात्रमें पूरित हुए इदम्भावरूप परम अमृतका परात्मरूप अग्निमें होम करूंगा ॥ ४२ ॥

इत्यामंत्र्य ततस्तस्मिञ्छिवयोः सामरस्यकम् ।
विभाव्य पूजयेद्धूपदीपावपि च दर्शयेत् ॥ ४३ ॥

इन पांच मंत्रोंसे सुराको पढ़कर उसमें सदाशिव और भगवतीकी समरसताका ध्यान करनेके उपरान्त पूजा करके धूप दीप दिखावे ॥ ४३ ॥

इति श्रीपात्रसंस्कारः कथितः कुलपूजने ।
अकृत्वा पापभाङ्मन्त्री पूजा च विफला भवेत् ॥ ४४ ॥

कुलपूजाके विषयमें श्रीपात्रका संस्कार करना तुमसे कहा, मन्त्र जाननेवाला पुरुष यदि इस प्रकारसे संस्कार न करे तो पापका भागी होगा और उसकी पूजा विफल होगी ॥ ४४ ॥

घटश्रीपात्रयोर्मध्ये पात्राणि स्थापयेद्बुधः ।
गुरुपात्रं भोगपात्रं शक्तिपात्रमतः परम् ॥ ४५ ॥

घट और श्रीपात्रके बीचमें गुरुपात्र, भोगपात्र और शक्तिपात्र यह तीन पात्र रखे ॥ ४५ ॥

योगिनीवीरपात्रे च बलिपात्रं ततः परम् ।
पाद्याचमनयोः पात्रं श्रीपात्रेण नवक्रमात् ।
सामान्यार्घ्यस्यविधिनापात्राणां स्थापनं चरेत्४६॥

और योगिनीपात्र, वीरपात्र, वलिपात्र, आचमनपात्र, पाद्यपात्र, श्रीपात्रके सहित ये नौ पात्र, साधारण अर्घ्य स्थापन करनेकी विधिके अनुसार स्थापन करे ॥ ४६ ॥

कलशस्थामृतेनैव त्रिभागं परिपूर्य्य च ।
माषप्रमाणं पात्रेषु शुद्धिखण्डं नियोजयेत्॥ ४७ ॥

फिर इन सब पात्रोंके तीन अंश कलशमें रक्खी हुई सुधासे पूरित करके इन सब पात्रोंमें मासे मासे भर मांसादि डाले ॥ ४७ ॥

वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्याममृतं पात्रसंस्थितम् ।
गृहीत्वा शुद्धिखण्डेन दक्षया तत्त्वमुद्रया ।
सर्वत्र तर्पणं कुर्य्याद्विधिरेष प्रकीर्त्तितः ॥ ४८ ॥

अनन्तर बांये हाथके अँगूठे और अनामिकाके द्वारा पात्रमें रक्खा हुआ अमृत और मांसादि ग्रहण करके दाहिने हाथसे तत्त्वमुद्राके द्वारा सब पात्रोंमें तर्पण करे, तर्पणकी विधि आगे कही जाती है ॥ ४८ ॥

श्रीपात्रात्परमं बिंदुं गृहीत्वा शुद्धिसंयुतम् ।
आनन्दभैरवं देवं भैरवीं च प्रतर्पयेत् ॥ ४९ ॥

पहले श्रीपात्रसे मांसादिसहित एक बिन्दु सुधा ले 'हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट् आनन्दभैरवं तर्पयामि नमः' इस मन्त्रसे आनन्दभैरवका तर्पण करे और 'सहक्षमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वौषट् आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा' इस मन्त्रसे आनन्दभैरवीका तर्पण करे ॥ ४९ ॥

गुरुपात्रेऽमृतेनैव तर्पयेद्गुरुसंततिम् ।
सहस्रारे निजगुरुं सपत्नीकं प्रतर्प्य च ।
वाग्भवाद्यं स्वस्वनाम्ना तद्वद्गुरुचतुष्टयम् ॥ ५० ॥

फिर गुरुपात्रमें रखे हुए अमृतको ग्रहण करके गुरुपरम्पराका तर्पण करे । पहले ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित सहस्रदलकमलमें स्त्रीके साथ अपने गुरुका तर्पण करके, फिर परमगुरु

परेसे परे गुरु और परमेष्ठी गुरुका तर्पण करे[1] । इन चार गुरुओंका तर्पण करनेके समय पहले ' ऐं ' बीज और पीछे चारों गुरुओंका नाम लेवे ॥ ५० ॥

ततः स्वहृदयाम्भोजे भोगपात्रामृतेन च ।
आद्यां कालीं तर्पयामि निजबीजपुरःसरम् ॥५१॥

इसके उपरान्त अपने हृदयकमलमें भोगपात्रके अमृतसे अपना बीज उच्चारण करके ' आद्यां कालीं तर्पयामि ' इस मन्त्रको पढ़े ॥ ५१ ॥

स्वाहान्तेन त्रिधा मन्त्री तर्पयेदिष्टदेवताम् ।
शक्तिपात्रामृतैस्तद्वदङ्गावरणतर्पणम् ॥ ५२ ॥

अन्तमें " स्वाहा " यह मंत्र उच्चारण करके मन्त्र जाननेवाला पुरुष तीन वार इष्टदेवताका तर्पण करे । फिर इस शक्तिपात्रके अमृतसे अंगदेवता और आवरणदेवताओंका तर्पण करे ❀ ॥ ५२ ॥

---

१ गुरुतर्पणके मन्त्र-" ऐंसपत्नीकममुकानन्दनाथं श्रीगुरुं तर्पयामि नमः। ऐं सपत्नीकममुकानन्दनाथं परमगुरुं तर्पयामि नमः । ऐं सपत्नीकममुकानन्दनाथं परात्परगुरुं तर्पयामि नमः । ऐं सपत्नीकममुकानन्दनाथं परमेष्ठिगुरुं तर्पयामि नमः ।"

❀ आदिकालिकातर्पणमन्त्रो यथाः-"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । आद्यां कालीं तर्पयामि स्वाहा ।" अंगदेवताका तर्पणमन्त्र--यथा-"अङ्गदेवतास्तर्पयामि स्वाहा ।" आवरणदेवताका तर्पणमन्त्र यथाः--"आवरणदेवतास्तर्पयामि स्वाहा ।"

योगिनीपात्रसंस्थेन सायुधां सपरीकराम् ।
सन्तर्प्य कालिकामाद्यां बटुकेभ्यो बलिं हरेत् ५३॥

अनंतर योगिनीपात्रमें रखे हुए अमृतसे शस्त्रोंसे शोभायमान परिकर बांधे, भगवती आदि-कालिकाका तर्पण करके बटुकोंको बलि देना चाहिये ॥ ५३ ॥

स्ववामभागे सामान्यं मण्डलं रचयेत्सुधीः ।
सम्पूज्य स्थापयेत्तत्र सामिषान्नं सुधान्वितम् ५४॥

ज्ञानी पुरुष अपने वामभागमें एक साधारण चौकोन मंडल खींचकर उसमें मद्यमांसादिसहित अन्न स्थापन करे ॥५४॥

वाङ्मायाकमलावं च बटुकाय नमः पदम् ।
सम्पूज्य पूर्वभागे च बटुकस्य बलिं हरेत् ॥५५॥

पहले "वाङ्माया कमला" बीज और "वं" उच्चारण करके "बटुकाय नमः" यह पद उच्चारण करे और मंडलके पूर्वभागमें इस मंत्रसे बटुककी पूजा करे * ॥ ५५ ॥

ततस्तु यां योगिनीभ्यः स्वाहा याम्यां हरेद्बलिम् ५६

फिर (एष सुधामिषान्वितान्नबलिः यां योगिनीभ्यः

---

१ 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । सायुधां सपरिकरामाद्यां कालीं तर्पयामि स्वाहा ।' इस मन्त्रको पढ़कर कालीका तर्पण करे ॥

२ मन्त्रोद्धार यथा:-" एष सुधामिषान्वितबलिः ऐं ह्रीं श्रीं वं बटुकाय नमः" ।

स्वाहा) इस मन्त्रसे मंडलकी दाहिनी ओर योगिनियोंको बलि दे ॥ ५६ ॥

षड्दीर्घयुक्तं संवर्त्तं क्षेत्रपालाय हृन्मनुः ।
अनेन क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात्तु पश्चिमे ॥ ५७ ॥

फिर छः दीर्घस्वरयुक्त संवर्त अर्थात् "क्ष" उच्चारण करके (क्षेत्रपालाय नमः) यह शब्द कहकर जो मन्त्र उद्धृत होगा उस मंत्रसे मंडलके पश्चिम ओर क्षेत्रपालको बलि दे[1] ॥ ५७ ॥

खान्तबीजं समुद्धृत्य षड्दीर्घस्वरसंयुतम् ।
ङेऽन्तं गणपतिं चोक्त्वा वह्निजायां ततो वदेत् ५८॥

अनंतर " ख " वर्णका अन्त्यबीज उद्धार करके उसमें छः दीर्घस्वर मिलाय चतुर्थींका एकवचनान्त गणपतिशब्द पढ़कर उसके अन्तमें वह्निजाया अर्थात् " स्वाहा " पद उच्चारण करके[2] ॥ ५८ ॥

उत्तरस्यां गणेशाय बलिमेतेन कल्पयेत् ।
मध्ये तथा सर्वभूतबलिं दद्याद्यथाविधि ॥ ५९ ॥

इस मन्त्रसे मण्डलकी उत्तर ओर गणेशजीके अर्थ बलि

---

१ मन्त्रोद्धार यथाः—" एष सुधामिषान्वितान्नबलिः क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः " ।

२ मन्त्रोद्धार यथाः—"एष सुधामिषान्वितान्नबलिः गां गीं गूं गैं गौं गः गणपतये स्वाहा " ।

देना चाहिये और मण्डलके मध्यमें यथाविधानसे सर्व भूतोंको बलि दे ॥ ५९ ॥

ह्रीं श्रीं सर्वपदं चोक्त्वा विघ्नकृद्भ्यस्ततो वदेत् ।
सर्वभूतेभ्य इत्युक्त्वा हुं फट् स्वाहा मनुर्मतः॥६०॥

(सर्वभूतोंको बलि देनेका मन्त्र कहा जाता है) पहले 'ह्रीं श्रीं सर्व' पद उच्चारण करके फिर "विघ्नकृद्भ्यः" शब्दपाठ करना उचित है। अनन्तर 'सर्वभूतेभ्यः' उच्चारण करके 'हुं फट् स्वाहा' ऐसा उच्चारण करनेसे मन्त्रोद्धार[1] हो जायगा ॥ ६० ॥

ततः शिवायै विधिवद्बलिमेकं प्रकल्पयेत् ।
गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि ॥६१॥

अनन्तर (फेत्कारिका) शिवाको विधिविधानसे एक बलि दे। यह शिवाबलि देनेके समय इस मन्त्रका पाठ करे। हे देवि ! हे महाभागे ! हे शिवे ! हे कालाग्निरूपिणि! यह बलि ग्रहण करो ॥ ६१ ॥

शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव।
मूलमेष बलिः पश्चाच्छिवायै नम इत्यपि ।
चक्रानुष्ठानमेतत्तु तवाग्रे कथितं शिवे ॥ ६२ ॥

---

१ मन्त्रोद्धार यथाः--"एष सुधामिषान्वितान्नबलिः ह्रीं श्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट् स्वाहा" ॥

हमारे होनहार शुभ व अशुभ फलको व्यक्तरूपसे कहो । यह मूलमन्त्र पढ़कर पीछे " एष बलिः शिवायै नमः " यह मन्त्र कहकर शिवाबलि दे । हे शिवे ! यह चक्रका अनुष्ठान मैंने तुमसे कहा ॥ ६२ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीवासितं सुमनोहरम् ।
पुष्पं गृहीत्वा पाणिभ्यां करकच्छपमुद्रया ॥ ६३॥

इसके उपरान्त चन्दन, अगर कस्तूरीसे सुगन्धित मनोहर पुष्प दोनों हाथोंकी कच्छपमुद्रामें ग्रहण करके ॥ ६३ ॥

नीत्वा स्वहृदयाम्भोजे ध्यायेदाद्यां परात्पराम् ॥ ६४॥

उसे अपने हृदयकमलमें स्थापन करे, फिर परात्परा आदिकालीका ध्यान करना चाहिये ॥ ६४ ॥

सहस्रारे महापद्मे सुषुम्ना ब्रह्मवर्त्मना ।
नीत्वा सानन्दितां कृत्वा बृहन्निःश्वासवर्त्मना ।
दीपाद्दीपान्तरमिव तत्र पुष्पे नियोज्य च ॥ ६५॥

फिर सुषुम्नानाडीरूप ब्रह्ममार्गद्वारा हृदयकमलमें स्थित भगवतीको सहस्रारनामक सहस्रदल महापद्ममें ले जाकर निर्मल सुधासे उनको सन्तर्पित और आनन्दमयी करके नासिकाके

---

१ शिवाबलि देनेका मन्त्र यथाः-गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणी । शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ॥ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष बलिः शिवायै नमः ॥"

पुटमें स्थित श्वासरूप मार्गसे एक दीपकसे जले हुए दूसरे दीपकके समान भगवतीजीके हाथमें रखे हुए उन पुष्पोंमें संस्थापन करके ॥ ६५ ॥

यन्त्रे निधापयेन्मन्त्री दृढभक्तिसमन्वितः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ॥ ६६ ॥

दृढ़भक्तिके साथ यन्त्रमें स्थापन करे। मन्त्र जाननेवाला पुरुष फिर हाथ जोड़कर देवतासे प्रार्थना करे कि ॥ ६६ ॥

देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥६७॥

हे देवदेवि! हे भक्तिसुलभे! मैं जबतक तुम्हारी पूजा करूं तबतक तुम परिवारके सहित स्थित होकर रहो ॥६७॥

क्रीमाद्ये कालिके देवि परिवारादिभिः सह।
इहागच्छ द्विधा प्रोक्त्वा इह तिष्ठ द्विधा पुनः॥६८॥

पहले "क्रीं" बीज उच्चारण करके "आद्ये कालिके देवि! परिवारादिभिः सह इहागच्छ इहागच्छ" यह उच्चारण करके "इह तिष्ठ इह तिष्ठ" पाठ करे ॥ ६८ ॥

इहशब्दात्सन्निधेहि इहसन्निपदात्ततः।
रुध्यस्व पदमाभाष्य मम पूजां गृहाण च ॥६९॥

फिर "इह सन्निधेहि" यह पढ़कर "इह सन्निरुध्यस्व"

यह पद पाठ कर " मम पूजां गृहाण " यह पद पाठ करना चाहिये[१] ॥ ६९ ॥

इत्थमावाहनं कृत्वा देव्याः प्राणान्प्रतिष्ठयेत् ॥ ७० ॥

इस प्रकारसे देवीका आवाहन कर प्राणप्रतिष्ठा करे ॥ ७० ॥

आं ह्रीं क्रीं श्रीं वह्निजाया प्रतिष्ठामन्त्र ईरितः ।
अमुष्या देवतायाश्च प्राणा इह ततः परम् ।
प्राणा इति ततः पञ्च बीजानि तदनन्तरम् ॥ ७१ ॥

प्राणप्रतिष्ठाका मंत्र कहा जाता है, । "श्रीं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः" यह उच्चारण करके पीछे ऊपर कहे हुए पांच बीज उच्चारण करे ॥ ७१ ॥

अमुष्या जीव इह च स्थित इत्युच्चरेत्पुनः ।
पञ्चबीजान्यमुष्याश्च सर्वेन्द्रियाणि कीर्त्तयेत् ॥ ७२ ॥

इसके उपरान्त "आद्याकालीदेवतायाः जीव इह स्थितः" यह उच्चारण करके पांच बीजोंका उच्चारण करे "आद्याकाली देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि" यह शब्द उच्चारण करे ॥ ७२ ॥

पुनस्तत्पञ्चबीजानि अमुष्या वचनं ततः ।
वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्पदतो वदेत् ॥ ७३ ॥

---

१ "क्रीं आद्ये कालिके देवि परिवारादिभिः सह इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व मम पूजां गृहाण" इस मन्त्रसे भगवतीका आवाहन करे ।

फिर पंचबीज उच्चारणपूर्वक "आद्याकालीदेवताया वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रवत्क्" यह पाठ करे ॥ ७३ ॥

प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु ठद्वयम् ॥ ७४ ॥

फिर "प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा" पाठ करे[1] ॥ ७४ ॥

इति त्रिधा यन्त्रमध्ये लेलिहानाख्यमुद्रया ।
संस्थाप्य विधिवत्प्राणान्कृताञ्जलिपुटो वदेत् ॥ ७५ ॥

यन्त्रमें यह प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र तीन वार पढ़कर लेलिहान मुद्रासे (जीभ बाहर निकाल) उसमें देवीको प्राण प्रतिष्ठित कर हाथ जोड़के कहे ॥ ७५ ॥

आद्ये कालि स्वागतं ते सुस्वागतमिदं तव ।
आसनं चेदमत्र त्वयास्यतां परमेश्वरि ॥ ७६ ॥

हे आद्ये कालि ! तुम्हारा स्वागत, यहांपर यह आसन है, हे परमेश्वरि ! तुम विराजमान हो ॥ ७६ ॥

---

१ प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र यथाः—"आं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः, आं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः जीव इह स्थितः, आं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि, आं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः वाङ्मनोनयनत्राणश्रोत्रत्वक्प्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा" तीन बार यह मन्त्र पढ़कर यन्त्रमें प्राणप्रतिष्ठा करे ।

ततो विशेषार्घ्यजलैस्त्रिधा मूलं समुच्चरन् ।
प्रोक्षयेद्देवशुद्धयर्थं षडङ्गैः सकलीकृतिः ।
देवताऽङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।
ततः सम्पूजयेद्देवीं षोडशैरुपचारकैः ॥ ७७ ॥

फिर देवताशुद्धिके लिये मूलमन्त्र पढ़ते पढ़ते अर्घ्यविशेषके जलसे तीन वार देवीको स्नान करावे, फिर देवीके अंगमें सकलीकरण करे, देवताके अंगमें षडंगन्यास करनेका नाम सकलीकरण है। अनन्तर सोलह उपचारसे भगवतीकी पूजा करे[१] ॥ ७७ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयं च स्नानं वसनभूषणे ।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्याचमने तथा ॥ ७८ ॥

(षोडश उपचार कहे जाते हैं) पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप दीप, नैवेद्य, पुनराचमनीय ॥ ७८ ॥

अमृतं चैव ताम्बूलं तर्पणं च नतिक्रिया ।
प्रयोजयेदर्च्चनायामुपचारांश्च षोडश ॥ ७९ ॥

---

१ षडङ्गन्यासके मन्त्र । "ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् ।"

अमृत, पान, तर्पण, नमस्कार देवीकी पूजा करनेके समय वे षोडशोपचार चाहिये ॥ ७९ ॥

आद्याबीजमिदं पाद्यं देवतायै नमः पदम्।
पाद्यं चरणयोर्दद्याच्छिरस्यर्घ्यं निवेदयेत्।
स्वाहापदेन मतिमान्स्वधेत्याचमनीयकम् ॥ ८० ॥

पहले "आद्या" बीज क्रीं उच्चारण करके फिर 'इदं पाद्यमाद्याकालीदेवतायै नमः' यह मन्त्र पढ़कर देवीके दोनों चरणोंमें पाद्यप्रदान करे, फिर ऐसे स्वाहान्त अर्थात् "क्रीं इदं पाद्यमाद्याकालीदेवतायै नमः स्वाहा' इस मन्त्रसे मस्तकपर अर्घ्य निवेदन करे, फिर ऐसे स्वधान्त मन्त्रसे मुखमें आचमनीय दे ॥ ८० ॥

मुखे नियोजयेन्मन्त्री मधुपर्कं मुखाम्बुजे।
वं स्वधेति समुच्चार्य्य पुनराचमनीयकम् ॥ ८१ ॥

अनन्तर उक्त मन्त्रसे देवीके मुखमें मधुपर्क दे, फिर इस मन्त्रके अन्तमें "वं स्वधा" उच्चारण करके देवीके मुखकमलमें पुनराचमनीय दे ॥ ८१ ॥

स्नानीयं सर्वगात्रेषु वसनं भूषणानि च।
निवेदयामि मनुना दद्यादेतानि देशिकः ॥ ८२ ॥

अनन्तर साधक "निवेदयामि" मन्त्रके द्वारा देवीके सर्वशरीरमें स्नान करनेके योग्य वसन भूषण पहिरावे ॥ ८२ ॥

मध्यमानामिकाभ्यां च गन्धं दद्याद्धृदम्बुजे ।
नमोऽन्तेन च मन्त्रेण वौषडन्तेन पुष्पकम् ॥८३॥

फिर मन्त्रके अन्तमें "नमः" पद मिला मध्यमा और अनामिकासे देवीके हृदयकमलमें गन्ध दे। फिर मन्त्रके अन्तमें "वौषट्" पद उच्चारण कर पुष्प चढ़ावे ॥ ८३ ॥

धूपदीपौ च पुरतः संस्थाप्य प्रोक्षणादिभिः ।
निवेदयामि मन्त्रेण उत्सृज्य तदनन्तरम् ॥ ८४ ॥

इसके उपरान्त सम्मुख धूप, दीप जलाके सामने स्थापित कर प्रोक्षणादिसे शुद्ध कर मन्त्रके अन्तमें " निवेदयामि " पद उच्चारण कर उत्सर्ग करे ॥ ८४ ॥

जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति मन्त्रपूर्वकम् ।
सम्पूज्य घण्टां वामेन वादयन्दक्षिणेन तु ॥८५॥

फिर " जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा " यह मन्त्र पढ़ घंटेकी पूजा करे, उसको बायें हाथमें ग्रहण कर बजाते बजाते दाहिने हाथसे ॥ ८५ ॥

धूपं गृहीत्वा मतिमान्नासिकाधो नियोजयेत् ।
दीपं तु दृष्टिपर्य्यन्तं दशधा भ्रामयेत्पुरः ॥ ८६ ॥

ततः पात्रं च शुद्धिं च समादाय करद्वये ।
मूलं समुच्चरन्मन्त्री यन्त्रमध्ये निवेदयेत् ॥ ८७ ॥

धूप लेकर साधक पुरुष देवीकी नासिकाके नीचे निवेदन

करे और दीप ग्रहण करके देवीके सम्मुख चरणसे लेकर नेत्र-तक दशवार घुमावे[1]। फिर पानपात्र और शुद्धि अर्थात् मांसादि दोनों हाथोंमें ग्रहण करके मूलमन्त्र उच्चारण कर

---

(१) प्रयोगो यथाः-"ह्रां श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पाद्यमाद्याकालीदेवतायै नमः" इस मन्त्रसे देवीके चरणकमलमें पाद्य देवे। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदमर्घ्यमाद्यायै काल्यै स्वाहा" इस मन्त्रसे देवीके मस्तकपर अर्घ्य देवे। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदमाचमनीयमाद्यायै काल्यै स्वाहा" इस मंत्रसे देवीके मुखमें आचमनीय निवेदन करे। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष मधुपर्कः आद्यायै काल्यै स्वाहा" इस मंत्रसे देवीके मुखकमलमें मधुपर्क प्रदान करे। 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा पुनराचमनीयमाद्यायै काल्यै वं स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर देवीके मुखमें पुनराचमनीय देवे। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं स्नानीयमाद्यायै कालिकायै निवेदयामि" इस मन्त्रसे देवीके सब शरीरमें स्नानीय जल छिड़के। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं वसनमाद्यायै कालिकायै निवेदयामि" इस मन्त्रसे देवीके सर्वाङ्गमें वस्त्र पहिनावे। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतानि भूषणानि आद्यायै कालिकायै निवेदयामि" इस मन्त्रसे देवीके सर्वाङ्गमें गहने पहिनावे। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष गन्धः आद्यायै काल्यै नमः" यह मन्त्र पढ़कर मध्यमा और अनामिका अँगुलीसे देवीके हृदयकमलमें गन्ध देवे। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पुष्पमाद्यायै कालिकायै वौषट्" यह मन्त्र पढ़कर देवीके ऊपर फूल चढ़ावे। "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतौ धूपदीपौ आद्यायै कालिकायै निवेदयामि" इस मंत्रसे उत्सर्ग करके देवीको धूपदीप समर्पण करे॥ फिर इसमें गंध पुष्पसे "जय-ध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा" यह मंत्र पढ़ घंटा पूजकर बायें हाथसे घंटा बजाते बजाते दाहिने हाथमें धूप ले देवीकी नासिकाके नीचे समर्पण करे और दीप ले चरणसे नेत्रतक दश वार भ्रमण करावे।

यन्त्रमें देवी कालीको वह निवेदन करे ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

परमं वारुणीकल्पं कोटिकल्पान्तकारिणि ।

गृहाण शुद्धिसहितं देहि मे मोक्षमव्ययम् ॥८८॥

(फिर इस प्रकारसे प्रार्थना करे कि) मातः! तुम कोटि कोटि कल्पोंका अन्त करती हो। तुमको यह परम वारुणी-रूप कल्प अर्थात् मद्यशुद्धिके साथ अर्पण करता हूं, ग्रहण करके मुझको अक्षय मुक्ति दो ॥ ८८ ॥

ततः सामान्यविधिना पुरतो मण्डलं लिखेत् ।

तस्योपरि न्यसेत्पात्रं नैवेद्यपरिपूरितम् ॥ ८९ ॥

फिर साधारण विधानके अनुसार सामने चौकोन या तिकोन मण्डल खींच उसके ऊपर नैवेद्यपूरित पात्र स्थापित करे ॥ ८९ ॥

प्रोक्षणं चावगुण्ठं च रक्षणं चामृतीकृतम् ।

मूलेन सप्तधामन्त्र्य अर्घ्याद्भिर्विनिवेदयेत् ॥९०॥

फिर "फट्" मन्त्रसे नैवेद्य प्रोक्षित कर "हूं" बीजसे अव-गुंठित करे, अनंतर "फट्" मन्त्रके द्वारा उसकी रक्षा करे, "वं" बीज पढ़े और धेनुमुद्रासे उसका अमृतीकरण करे। फिर उसको मूलमन्त्रसे सात वार अभिमन्त्रित कर अर्घ्य जलसे वह देवीजीको निवेदन करे ॥ ९० ॥

---

१ मन्त्रो यथाः—"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं मद्यम् इमां शुद्धिं च आद्यायै कालिकायै निवेदयामि ।" इति ।

मूलमेतत्तु सिद्धान्नं सर्वोपकरणान्वितम् ।
निवेदयामीष्टदेव्यै जुषाणेदं हविः शिवे ॥ ९१ ॥

निवेदनका यह मन्त्र है कि, पहले मूलमन्त्र पढ़कर "सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टदेवतायै निवेदयामि " पाठ करे फिर "शिवे हविरिदं जुषाण " यह पाठ करे[1] ॥ ९१ ॥

ततः प्राणादिमुद्राभिः पञ्चभिः प्राशयेद्धविः ॥९२॥

अनन्तर (प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और व्यानाय स्वाहा इत्यादि मन्त्रोच्चारण करे) प्राणादि पांच मुद्रा दिखाके देवीजीको हवि दे ॥ ९२ ॥

वामनैवेद्यमुद्रां च विकचोत्पलसन्निभाम् ।
दर्शयेन्मूलमन्त्रेण पानार्थं तीर्थपूरितम् ॥ ९३ ॥

फिर बांये हाथसे प्रफुल्लकमलके समान नैवेद्यमुद्रा दिखा मूलमन्त्रका उच्चारण कर पान करनेके अर्थ मद्यसे भरा ॥ ९३ ॥

कलशं विनिवेद्याथ पुनराचमनीयकम् ।
ततः श्रीपात्रसंस्थेनामृतेन तर्पयेत्त्रिधा ॥ ९४ ॥

---

(१) मन्त्रो यथाः—"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतत्सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टदेवतायै निवेदयामि शिवे हविरिदं जुषाण" आमान्नस्थले " ओं आमान्नं " यह पदप्रयोग करना चाहिये ।

कलश निवेदन करके देवीको पुनराचमनीय जल दे। फिर श्रीपात्रमें रखे हुए अमृतसे तीन वार तर्पण करे॥९४॥

उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गकेषु च ।
पञ्च पुष्पाञ्जलीन्दत्त्वा मूलमन्त्रेण देशिकः ॥९५॥

इसके उपरान्त साधक पुरुष मूलमन्त्रका उच्चारण करके देवीके शिरपर हृदयके आधारमें, दोनों चरणोंमें और सब अंगोंमें पांच पुष्पाञ्जलि दे ॥ ९५ ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।
तवावरणदेवांश्च पूजयामि नमो वदेत् ॥ ९६ ॥

हाथ जोड़कर " इष्टदेवते ! तव आवरणदेवान् पूजयामि नमः " (अर्थात् तुम्हारे आवरण देवताओंकी पूजा करता हूं) यह वाक्य उच्चारण करके प्रार्थना करे ॥ ९६ ॥

अग्निर्निर्ऋतिवाय्वीशपुरतः पृष्ठतः क्रमात् ।
षडङ्गानि च सम्पूज्य गुरुपङ्क्तीः समर्चयेत्॥९७॥

यन्त्रके अग्निकोण नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशानकोण और सम्मुख देश व पश्चाद्भागमें क्रमानुसार चन्द्राकारमें (हां नमः हीं नमः हूं नमः हैं नमः हौं नमः हः नमः) इत्यादि मन्त्रोंसे षडङ्ग देवताकी पूजाविधि समाप्तकरके गुरुपंक्तिकी पूजाकरे९७

गुरुं च परमादिं च परात्परगुरुं तथा ।
परमेष्ठिगुरुं चैव यजेत्कुलगुरूनिमान् ॥९८॥

(ओं गुरुवे नमः, ओं परमगुरवे नमः । इत्यादि मन्त्र उच्चारण करके) गन्ध पुष्पादिके द्वारा क्रमानुसार गुरु, परमगुरु, परात्परगुरु और परमेष्ठिगुरु आदि कुलगुरुओंकी पूजा करे ॥ ९८ ॥

गुरुपात्रामृतेनैव त्रिस्त्रिस्तर्पणमाचरेत् ।
ततोऽष्टदलमध्ये तु पूजयेदष्टनायिकाः ॥ ९९ ॥
मंगला विजया भद्रा जयन्ती चापराजिता ।
नन्दिनी नारसिंही च कौमारीत्यष्टमातरः ॥ १०० ॥

फिर पात्रमें रखे हुए अमृतसे "ओं गुरुं तर्पयामि नमः" इत्यादि मंत्रोंसे तीन वार तर्पण विधान करके अष्टदलमें "ओं मङ्गलायै नमः, ओं विजयायै नमः" इत्यादि मन्त्र उच्चारण करके गंध पुष्पादिसे मंगला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नंदिनी, नारसिंही और कौमारी इन आठ नायिकाओंकी पूजा करे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

दलाग्रेषु यजेदष्टभैरवान्साधकोत्तमः ॥ १०१ ॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयंकरः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारोऽष्टौ च भैरवाः ॥ १०२ ॥

और प्रणवादि नमोन्त मन्त्र उच्चारण करके गंध पुष्पादिसे असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली,

भीषण और संहार इन आठ भैरवोंकी पूजा करे[1] १०१।१०२॥

इन्द्रादिदशदिक्पालान्भूपुरान्तः प्रपूजयेत् ।
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये पूजयेत्तर्पयेत्ततः ॥ १०३ ॥

इसके उपरान्त प्रणवादि नमोन्त मन्त्रोंके द्वारा भूपुरमें इंद्रादि दश दिक्पालोंकी पूजा करके उक्त प्रकारसे ही उसके बाहिरी भागमें दिक्पालोंके वज्रादि अस्त्रोंकी पूजा कर "ओं इन्द्रं तर्पयामि नमः" इस प्रकार दिक्पालोंका तर्पण करे १०३

सर्वोपचारैः सम्पूज्य बलिं दद्यात्समाहितः॥ १०४॥

इस प्रकार पाद्यादिक सर्वोपचारसे देवीकी पूजा समाप्त कर सावधान हो बलिदान करे ॥ १०४ ॥

मृगश्छागश्च मेषश्च लुलायः सूकरस्तथा ।
शल्लकी शशको गोधा कूर्म्मः खड्गो दश स्मृताः १०५

मृग, छाग, मेष, भैंसा, शूकर, शल्लकी (सेई), शशक, गोह, कछुआ और गंडार यह दश प्रकारके पशु ही बलिदानके लिये श्रेष्ठ हैं ॥ १०५ ॥

अन्यान्यपि पशून्दद्यात्साधकेच्छानुसारतः॥ १०६॥

---

१ मंत्रः—"ओं असिताङ्गाय भैरवाय नमः, ओं रुरवे भैरवाय नमः, ओं चण्डाय भैरवाय नमः, ओं क्रोधोन्मत्ताय भैरवाय नमः, ओं भयंकराय भैरवाय नमः, ओं कपालिने भैरवाय नमः, ओं भीषणाय भैरवाय नमः,ओं संहाराय भैरवाय नमः ।"

इनके सिवाय साधककी इच्छानुसार और पशुओंका भी बलि दिया जा सकता है ॥ १०६ ॥

सुलक्षणं पशुं देव्या अग्रे संस्थाप्य मन्त्रवित् ।
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य धेनुमुद्रामृतीकृतम् ॥१०७॥
कृत्वा छागाय पशवे नम इत्यमुना सुधीः ।
सम्पूज्य गन्धसिन्दूरपुष्पनैवेद्यपाथसा ।
गायत्रीं दक्षिणे कर्णे जपेत्पाशविमोचनीम्॥१०८॥

मंत्रका जाननेवाला विचक्षणसाधक रोगादिरहित श्रेष्ठलक्षणवाले पशुको देवीके सम्मुख स्थापन करके "फट्" मंत्रके द्वारा प्रोक्षित करे और धेनुमुद्रा करके "वं" बीजमंत्र उच्चारण कर अमृतीकरण करके "छागाय पशवे नमः, वा मेषाय पशवे नमः" ऐसे मन्त्रसे गंध सिन्दूर पुष्प नैवेद्य और जलके द्वारा पूजा करे, फिर पशुके दाहिने कानमें पाशविमोचिनी गायत्रीका जप करे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

पशुपाशायशब्दान्ते विद्महेपदमुच्चरेत् ।
विश्वकर्म्मणे च पदाद्धीमहीति पदं वदेत् ॥१०९॥
ततश्चोदीरयेन्मन्त्री तन्नो जीवः प्रचोदयात् ।
एषा तु पशुगायत्री पशुपाशविमोचिनी ॥ ११०॥

शास्त्रमें पशुपाशविमोचिनी गायत्रीका मन्त्र इस प्रकारसे कहा है कि साधक पुरुष पहले 'पशुपाशाय' शब्द उच्चा-

रण कर 'विद्महे' शब्द उच्चारण करे, फिर 'विश्वकर्मणे' इस पदका उच्चारण करके 'धीमहि' पदका प्रयोग करे, फिर 'तन्नो जीवः प्रचोदयात्' उच्चारण करे[१] ॥ १०९ ॥ ११० ॥

ततः खड्गं समादाय कूर्च्चबीजेन पूजयेत् ।
तदग्रमध्यमूलेषु क्रमतः पूजयेदिमान् ॥ १११ ॥
वागीश्वरीं च ब्रह्माणं लक्ष्मीनारायणौ ततः ।
उमामहेश्वरौ मूले पूजयेत्साधकोत्तमः ॥ ११२ ॥

फिर खड्ग लेकर कूर्चबीज अर्थात् 'हूं' मन्त्रका उच्चारण करके क्रमानुसार खड्गके आगे, बीचमें और मूलदेशमें वागीश्वरी, सरस्वती, ब्रह्मा, लक्ष्मी, नारायण और उमा व महेश्वरकी पूजा करे । खड्गके आगे वागीश्वरी और ब्रह्माके बीचमें लक्ष्मीनारायणकी मूलमें उमा व महेश्वरकी पूजा करे ॥ १११ ॥ ११२ ॥

अनन्तरं ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुताय च ।
खड्गाय नम इत्यन्तमनुना खड्गपूजनम् ॥ ११३ ॥

फिर 'ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुताय खड्गाय नमः' इस मन्त्रसे खड्गकी पूजा करे ॥ ११३ ॥

महावाक्येन चोत्सृज्य कृताञ्जलिपुटो वदेत् ।
यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् ॥ ११४ ॥

---

१ पशुपाशविमोचिनी गायत्री यथाः—"पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि । तन्नोः जीवः प्रचोदयात्"—यह पशुगायत्री पढे ।

इसके उपरान्त महावाक्य[1] उच्चारण कर पशुको उत्सर्ग करके देवीको समर्पण करे और हाथ जोड़ "यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समार्पितम्" इसका पाठ करे ॥ ११४ ॥

इत्थं निवेद्य च पशुं भूमिसंस्थं तु कारयेत्॥ ११५॥

इस प्रकार विधिके अनुसार निवेदन करके पशुको पृथ्वीपर खड़ा करे ॥ ११५ ॥

देवीभावपरो भूत्वा हन्यात्तीव्रप्रहारतः ।
स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा भ्रात्रा वा सुहृदैव वा ।
सपिण्डेनाथवा छेद्यो नारिपक्षं नियोजयेत् ११६॥

देवीकी भक्तिमें परायण हो तीक्ष्ण प्रहारसे पशुका वध करे । भ्राता, भतीजे, सुहृद् अथवा सपिण्ड पुरुषसे पशुका वध करावे या अपने आप करे, शत्रुपक्षसे कदापि पशुका वध न करावे ॥ ११६ ॥

ततः कवोष्णं रुधिरं बटुकेभ्यो बलिं हरेत् ।
सप्रदीपशीर्षबलिर्नमोदेव्यै निवेदयेत् ॥ ११७ ॥

फिर " एष कवोष्णरुधिरबलिः ओं बटुकेभ्यो नमः" यह मन्त्र पढ़कर बटुकजनोंको किंचित् गरम रुधिर बलिदे

---

१ महावाक्यं यथाः—विष्णुरोम् तत्सत् ओं अद्यामुकमासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकराशिस्थिते भास्करे समस्ताभीप्सितपदार्थसिद्धिकामः अमुकगोत्रः अमुकशर्माहमिष्टदेवतायै इमं पशुं सम्प्रददे ।

और 'एष सप्रदीपशीर्षबलिः ओं ह्रीं देव्यै नमः " यह कहकर देवीको शीर्ष बलिप्रदान करे ॥ ११७ ॥

एवं बलिविधिः प्रोक्तः कौलिकानां कुलार्चने ।
अन्यथा देवताप्रीतिर्जायते न कदाचन ॥११८॥

इस प्रकारसे कौलिकोंके कुलदेवताका पूजानुष्ठान और बलिकी विधि कही गयी अन्यथा (बलिविधिका अनुष्ठान न करनेसे) देवता कदापि प्रसन्न नहीं होती है ॥ ११८॥

ततो होमं प्रकुर्वीत तद्विधानं शृणु प्रिये ॥११९॥

हे प्रिये ! इसके उपरान्त होम करे, होमका नियम कहता हूं, श्रवण करो ॥ ११९ ॥

स्वदक्षिणे वालुकाभिर्मण्डलं चतुरस्रकम् ।
चतुर्हस्तपरिमितं कृत्वा मूलेन वीक्षणम् ।
अस्त्रेण ताडयित्वा च तेनैव प्रोक्षणं चरेत्॥१२०॥

साधकको चाहिये कि, अपने दक्षिणभागमें रेतेका चार हाथके प्रमाणका मंडल बनाकर, उसका मूलमन्त्रसे वीक्षण करे। और "फट्" मंत्र पढ़कर कुशसे ताडन करके उस मन्त्रसे ही प्रोक्षित करे ॥ १२० ॥

कूर्चबीजेनावगुण्ठ्य देवतानामपूर्वकम् ।
स्थण्डिलाय नम इति यजेत्साधकसत्तमः ॥१२१॥

साधकश्रेष्ठ "हूं" इस कूर्चबीजसे मंडलको घेर देवताका

नाम ले "स्थण्डिलाय नमः" यह मंत्र पढ़कर गंधपुष्पसे स्थंडिलकी पूजा करे ॥ १२१ ॥

प्रागग्रा उदगग्राश्च रेखाः प्रादेशसम्मिताः ।
तिस्रस्तिस्रो विधातव्यास्तत्र संपूजयेदिमान् १२२॥

फिर स्थंडिलमें प्रादेशके परिमाणानुसार तीन प्रागग्र और तीन उदग्ग्र रेखा खींचकर उनके ऊपर पीछे लिखे हुए देवताओंकी पूजा करे ॥ १२२ ॥

प्रागग्रासु च रेखासु मुकुन्देशपुरन्दरान् ।
ब्रह्मवैवस्वतेन्दूंश्च उत्तराग्रासु पूजयेत् ॥ १२३ ॥

प्रागग्र तीन रेखाओंपर क्रमानुसार विष्णु, शिव और इन्द्रकी और तीन उदग्ग्र रेखाओंपर ब्रह्मा, यम व चंद्रमाकी पूजा करे ॥ १२३ ॥

ततः स्थण्डिलमध्ये तु हसौर्गर्भं त्रिकोणकम् ।
षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तं ततोऽष्टदलपङ्कजम् ।
भूपुरं तद्बहिर्विद्वान्विलिखेद्यन्त्रमुत्तमम् ॥ १२४ ॥

फिर उस स्थंडिलमें त्रिकोणमंडलकी रचना करे, उस त्रिकोणमंडलमें "हसौः" शब्द लिखे। फिर त्रिकोणमंडलके बाहर षट्कोण और षट्कोणके आगे बाहर वृत्त खींचकर उसके बाहर अष्टदलपद्म खींचे और सबके बाहर चौकोर भूपुर लिखे, इस प्रकार बुद्धिमान साधक उत्तम यंत्र बनावे ॥ १२४ ॥

मूलेन पुष्पाञ्जलिना संपूज्य प्रणवेन तु ।
होमद्रव्याणि संप्रोक्ष्य कर्णिकायां यजेत्सुधीः ।
मायामाधारशक्त्यादीन्प्रत्येकं वा प्रपूजयेत् ॥ १२५ ॥

फिर मूलमंत्र पढ़कर लिखे हुए यन्त्रकी पूजा करके प्रणवके उच्चारणसे होमद्रव्योंको प्रोक्षित करे और अष्टदल पद्मके बीजकोशपर मायाबीज उच्चारण करके आधारशक्तियोंकी एक ही साथ या प्रत्येककी अलग अलग पूजा करे[1] ॥ १२५ ॥

अग्न्यादिकोणे धर्मं च ज्ञानं वैराग्यमेव च ।
ऐश्वर्य्यं पूजयित्वा तु पूर्वादिषु दिशां क्रमात् १२६ ॥
अधर्ममज्ञानमिति अवैराग्यमनन्तरम् ।
अनैश्वर्य्यं यजेन्मन्त्री मध्येऽनन्तं च पद्मकम् १२७ ॥

और यन्त्रके अग्निकोणसे क्रमानुसार चारों कोनोंमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे और पूर्वसे क्रमानुसार चारों ओर अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यकी पूजा करके मध्यस्थलमें अनन्त और पद्मकी पूजा करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

कलासहितसूर्य्यस्य तथा सोमस्य मण्डलम् ।
प्रागादिकेसरेष्वेषु मध्ये चैताः प्रपूजयेत् ॥ १२८ ॥
पीता श्वेतारुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा तथैव च ।
स्फुलिङ्गिनी च रुचिरा ज्वालिनीति तथा क्रमात् ॥

---

(१) मन्त्रो यथाः–"ह्रीं आधारशक्तिभ्यो नमः ।"

और "ओं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ओं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः" इस प्रकार मन्त्र पढ़कर यन्त्रमें कलासहित सूर्य और सोममण्डलकी पूजा करके प्रागादिकेसरमें क्रमानुसार पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिंगिनी, रुचिरा और ज्वलिनीकी पूजा करे ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

प्रणवादिनमोऽन्तेन सर्वत्र पूजनं चरेत् ।
रं वह्नेरासनायेति नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ॥ १३० ॥

सब जगह पूजापद्धतिमें देवदेवीके नाम उच्चारण करनेमें आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः शब्द मिलावे, बस, इस नियमके अनुसार ही यन्त्रमें 'ओं रं वह्नेरासनाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर अग्निके आसनकी पूजा करे ॥ १३० ॥

वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनाम् ।
वागीश्वरेण संयुक्तां ध्यात्वा मन्त्री तदासने ॥ १३१ ॥
मायया तौ प्रपूज्याथ विधिवद्वह्निमानयेत् ।
मूलेन वीक्षणं कृत्वा फटावाहनमाचरेत् ॥ १३२ ॥

फिर साधक ब्रह्मयुक्त कमलदलके समान नेत्रवाली ऋतुस्नाता वागीश्वरीका ध्यान करके पहले कहे हुए वह्निपीठमें इन दोनोंकी पूजा करे । पूजाके समय देवदेवीके नाम मन्त्रके आदिमें 'ह्रीं' मायाबीज और अन्तमें 'नमः' शब्द मिलावे,

अर्थात् ' ओं ह्रीं ब्रह्मणे नमः, ओं ह्रीं वागीश्वर्यै नमः ' इस प्रकार मन्त्र पढ़कर पूजा करनी चाहिये फिर विधानके अनुसार (सैरया अथवा कांसेके पात्रमें करके) अग्नि लाकर मूलमन्त्र पढ़कर ' अग्निवीक्षण ' और ' फट् ' मन्त्र पढ़ आवाहन क्रिया करे ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

प्रणवं च ततो वह्नेर्योगपीठाय हृन्मनुः ।
यन्त्रे पीठं पूजयित्वा दिक्षु चैताः प्रपूजयेत् ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री अम्बिकेति यथाक्रमात् १३३

आवाहनके अन्तमें प्रणवका उच्चारण करके ' वह्नेर्योगपीठाय नमः ' यह मन्त्र पढ़कर वह्निपीठकी पूजा करे, इसके उपरान्त पीठकी पूर्व ओरसे क्रमानुसार चारों ओर वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिकाकी पूजा करे ॥ १३३ ॥

ततोऽमुक्या देवतायाः स्थण्डिलाय नमः पदम् ।
इति स्थण्डिलमापूज्य तन्मध्ये मूलरूपिणीम् १३४

फिर ' अमुक्या देवतायाः स्थण्डिलाय नमः ' इस मंत्रसे स्थण्डिलकी पूजा करके उसमें मूलदेवतारूपिणी ॥ १३४ ॥

ध्यात्वा वागीश्वरीं देवीं वह्निबीजपुरःसरम् ।
वह्निमुद्धृत्य मूलान्ते कूर्चमन्त्रं समुच्चरन् ॥ १३५ ॥

वागीश्वरी देवीका ध्यान करके ' रं ' वह्निबीज उच्चारण करे और अग्निका उद्धार करे। फिर मूलमंत्र पढ़नेके अन्तमें

'हूं' कूर्चबीज और 'फट्' यह अंतबीज पढ़कर ॥ १३५ ॥

क्रव्यादेभ्यो वह्निजायां क्रव्यादांशं परित्यजेत् ।
अस्त्रेण वह्निं संवीक्ष्य कूर्चेनैवावगुण्ठयेत् ॥ १३६॥

"क्रव्यादेभ्यः" उच्चारण करके फिर वह्निजाया अर्थात् "स्वाहा" उच्चारण करके जो मंत्र उद्धृत हो उसको पढ़कर राक्षसोंका देने योग्य अंश दक्षिण ओरको फेंक दे[1] । फिर अस्त्रबीजसे अग्निवीक्षण कर कूर्चबीजसे वह्निवेष्टन करे १३६॥

धेन्वा चैवामृतीकृत्य हस्ताभ्यामग्निमुद्धरेत् ।
प्रादक्षिण्यक्रमेणाग्निं भ्रामयन्स्थण्डिलोपरि १३७॥
त्रिधा जानुस्पृष्टभूमिः शिवबीजं विचिन्तयन् ।
आत्मनोऽभिमुखीकृत्य योनियन्त्रे नियोजयेत् १३८

फिर धेनुमुद्रासे अमृतीकरण करके दोनों हाथोंसे अग्निको उठावे और प्रदक्षिणाके क्रमसे स्थण्डिलके ऊपरभागमें तीन-वार घुमावे व शम्भुके वीर्यरूप अग्निका ध्यान करे, फिर जानुसे पृथ्वीको छू उसे अपने मुखकी ओर करके योनियन्त्रके ऊपर स्थापन करे ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

ततो मायां समुच्चार्य्य वह्निमूर्तिं च ङेयुताम् ।
नमोऽन्तेन प्रपूज्याथ रंवह्निपरतः सुधीः ।
चैतन्याय नमो वह्नेश्चैतन्यं परिपूजयेत् ॥ १३९ ॥

---

१ मन्त्रो यथा:-" ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा हुं फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहा "

अनन्तर श्रेष्ठबुद्धिवाला साधक मायाबीज " ह्रीं " उच्चारण करके अन्तमें ' नमः ' शब्द लगा चतुर्थीविभक्तिका एकवचनान्त ' वह्निमूर्ति '[1] शब्दका उच्चारण करके वह्निमूर्तिकी पूजा करे और ' रंवह्नि ' उच्चारण करके 'चैतन्याय नमः'' अर्थात् 'रं वह्निचैतन्याय नमः' इस मंत्रसे वह्निचैतन्यकी पूजा करे ॥ १३९ ॥

नमसा वह्निमूर्तिं च चैतन्यं परिकल्प्य च ।
प्रज्वालयेत्ततो वह्निं मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् १४०॥

इसके उपरान्त मन्त्रका जाननेवाला साधक मन ही मनमें ' नमो ' मन्त्रसे ' वह्निमूर्ति' और वह्निचैतन्यकी परिकल्पना करके यह (वक्ष्यमाण) मन्त्र पढ़कर अग्नि जलावे ॥ १४० ॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य चित्पिङ्गलपदं तथा ।
हनद्वयं दह दह पचपचेति ततो वदेत् ॥ १४१ ॥

प्रथम ही प्रणवका उच्चारण करके ' चित् पिंगल ' पद, फिर 'हन हन ' उसके अन्तमें ' दह दह " और फिर 'पच पच ' पाठ करे ॥ १४१ ॥

सर्वज्ञाज्ञापयस्वाहावह्निप्रज्वालने मनुः ।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रकुर्य्यादग्निवन्दनम् ॥ १४२ ॥

---

१ "ह्रीं वह्निमूर्तये नमः ।"

तदन्तर 'सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' उच्चारण करके इसप्रकार अग्नि जलानेका मन्त्र कहा है, फिर हाथ जोड़कर अग्निकी वन्दना करे ॥ १४२ ॥

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ॥ १४३ ॥

(यह कहकर अग्निकी वन्दना करे कि) 'अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् । सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्' अर्थात् प्रज्वलित, सुवर्णतुल्य, निर्मल, प्रदीप्त और सर्वतोमुख, जातवेद, हुताशनका वन्दन करता हूं ॥ १४३ ॥

इत्युपस्थाय दहनं छादयेत्स्थण्डिलं कुशैः ।
स्वेष्टनाम्ना वह्निनाम कृत्वाभ्यर्चनमाचरेत् ॥ १४४ ॥

इस प्रकार अग्निकी वन्दना करके कुशोंसे स्थण्डिल ढाकके फिर अपने इष्टदेवताका नाम ले वह्निनाम उच्चारण करके अभ्यर्चना करे ॥ १४४ ॥

तारो वैश्वानरपदाज्जातवेदपदं वदेत् ।
इहावहावहेत्युक्त्वा लोहिताक्षपदान्तरम् ॥ १४५ ॥

(मंत्रका नियम यह है कि) प्रथममें प्रणव, उसके अंतमें "वैश्वानर" पद, फिर "जातवेद" पदका उच्चारण करे ।

(१) "ओंचित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा" यह मंत्र पढकर अग्नि जलावे ।

अनंतर "इहावहावह" कह फिर "लोहिताक्ष" पदका उच्चारण करे ॥ १४५ ॥

सर्वकर्माणि पदतः साधयान्तेऽग्निवल्लभा ।
इत्यभ्यर्च्य हिरण्यादिसप्तजिह्वाः प्रपूजयेत् १४६॥

फिर "सर्वकर्माणि" पदके अंतमें "साधय" पाठ करके अग्निवल्लभा "स्वाहा" का नाम ले[1] । इस प्रकार मंत्र पढ़कर अग्निकी अभ्यर्चना कर हिरण्यादि सप्त जिह्वाकी पूजा करे[2] ॥ १४६ ॥

सहस्रार्चिःपदं ङेऽन्तं हृदयाय नमो वदेत् ।
षडङ्गं पूजयेद्वह्नेस्ततो मूर्त्तीर्यजेत्सुधीः ॥ १४७ ॥

फिर श्रेष्ठबुद्धिवाला साधक चतुर्थीविभक्तिका एकवचनान्त "सहस्रार्च्चिः' शब्द उच्चारण करके " हृदयाय नमः" कह, अग्निके हृदयादि[3] षडंगकी पूजा करे, फिर वह्निमूर्तियोंकी पूजा करे ॥ १४७ ॥

---

१ मंत्रो यथाः--"ओं वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर अग्निकी पूजा करे ।

२ मन्त्रो यथाः--" ओं वह्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः " इस मन्त्रसे अग्निकी हिरण्यादि सप्त जिह्वाओंकी पूजा करे । सप्तजिह्वाके नाम यथाः--काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधुम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरूपिणी ।

३ " ओं सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः" इस मंत्रसे वह्निहृदयकी पूजा करे । " ओं वह्नेः षडङ्गेभ्यो नमः " इस मन्त्रसे अग्निके हृदयादि षडङ्गकी पूजा और " ओं वह्निमूर्तिभ्यो नमः " इस मंत्रसे अग्निमूर्तियोंकी पूजा करे ।

जातवेदप्रभृतयो मूर्त्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ १४८ ॥

"जातवेद" इत्यादि अग्निकी अष्ट मूर्तिसंज्ञा पहले ही कह आये हैं ॥ १४८ ॥

ततो यजेदष्टशक्तीर्ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम्।

पद्माद्यष्टनिधीनिष्ट्वा यजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् १४९॥

फिर ब्राह्मी इत्यादि अष्ट शक्तियोंकी पूजा करके और पद्मादि अष्ट निधियोंकी पूजा करके इन्द्रादि दिक्पालोंकी पूजा करे[1] ॥ १४९ ॥

वज्राद्यस्त्राणि सम्पूज्य प्रादेशपरिमाणकम्।

कुशपत्रद्वयं नीत्वा घृतमध्ये निधापयेत् ॥१५० ॥

और दिक्पालोंके वज्रादि अस्त्रोंकी पूजा करके[2] प्रादेशके परिमाणवाले कुशके दो पत्र ग्रहण कर घीमें (एक वामभागमें दूसरा दक्षिणभागमें) स्थापित करे ॥ १५० ॥

वामे ध्यायेदिडां नाडीं दक्षिणे पिङ्गलां तथा।

मध्ये सुषुम्नां संचिन्त्य दक्षभागात्समाहितः॥१५१॥

---

(१) "ओं ब्राह्म्यादिभ्योऽष्टशक्तिभ्यो नमः" इस मंत्रसे अष्टशक्तिकी और "ओं पद्माष्टनिधिभ्यो नमः" यह मत्र पढकर गन्धपुष्पादिसे आठ निधियोंकी पूजा करे।

२ अस्त्रोंके नाम यथाः-"वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, चक्र और पद्म।

घृतके बायें भागमें इडा, दाहिनेमें पिंगला और मध्यमें सुषुम्ना नाडीका ध्यान करे । फिर सावधानचित्त हो दक्षिण-भागसे ॥ १५१ ॥

आज्यं गृहीत्वा मतिमान्दक्षनेत्रे हुताशितुः ।
मन्त्रेणानेन जुहुयात्प्रणवान्तेऽग्नये पदम् ॥१५२॥

घृत ले सुसिद्ध साधक अग्निके दाहिने नेत्रमें इस मंत्रको पढ़कर आहुति दे । (मन्त्रका नियम यह है कि) प्रथम प्रणव उच्चारण करके 'अग्नये' पदका उच्चारण करे ॥१५२॥

स्वाहान्तो मनुराख्यातो वामभागाद्धविर्हरेत् ।
वामनेत्रे हुनेद्वह्नेरों सोमाय द्विठो मनुः ॥ १५३ ॥

फिर ' स्वाहा ' शब्द उच्चारण करे[1] । अनन्तर वाम-भागसे हविको ग्रहण करके 'ओं सोमाय स्वाहा' इस मंत्रको उच्चारण कर अग्निके वामनेत्रमें आहुति दे ॥ १५३ ॥

मध्यादाज्यं समानीय ललाटे हवनं चरेत् ।
अग्नीषोमौ सप्रणवौ तुर्य्यद्विवचनान्वितौ ॥१५४॥
स्वाहान्तोऽयं मनुः प्रोक्तः पुनर्दक्षिणतो हविः ।
गृहीत्वा नमसा मन्त्री प्रणवं पूर्वमुद्धरेत् ॥ १५५॥

फिर ध्यानसे आज्य ग्रहण करके अग्निके ललाटमें आहुति दे (ललाटमें आहुति देनेका मन्त्र ऐसा कहा है कि) ओंकारसहित चतुर्थी विभक्तिका द्विवचनान्त ' अग्नियोम '

---

१ "ओं अग्नये स्वाहा ।"

शब्द उच्चारण करके 'स्वाहा[1]' शब्द उच्चारण करे, फिर साधक 'नमः' शब्द उच्चारण करके पुनर्वार दक्षिण भागसे घृत लेकर प्रथम प्रणवका उच्चारण करे १५४॥१५५॥

अग्नये च स्विष्टकृते वह्निकान्तां ततो वदेत्।
अनेन वह्निवदने जुहुयात्साधकोत्तमः॥
भूर्भुवः स्वर्द्विठान्तेन व्याहृत्या होममाचरेत्॥१५६॥

फिर 'अग्नये' तदनन्तर 'स्विष्टकृते' और उसके उपरान्त वह्निजाया अर्थात् 'स्वाहा' शब्द उच्चारण करे[2]। यह मन्त्र उच्चारण करके साधक अग्निके मुखमें आहुति दे। फिर प्रणवादि और स्वाहान्त करके क्रमानुसार 'भूः, भुवः और स्वः' यह तीन पद उच्चारण करके होम करे[3]॥ १५६॥

तारो वैश्वानरपदाज्जातवेद इहावह।
वहलोहिपदान्ते च ताक्षसर्वपदं वदेत्।
कर्माणि साधय स्वाहा त्रिधानेनाहुतीर्हरेत्॥१५७॥

अनन्तर प्रथम प्रणव उच्चारण करके 'वैश्वानर' पद उच्चारण करके तदुपरान्त 'जातवेद इहावहावहलोहि' इसके अन्तमें "ताक्षसर्व' यह पद उच्चारण करे। फिर " कर्माणि

---

१ मंत्रः-"ओं अग्नीषोमाभ्याम् स्वाहा।"
२ मन्त्रः--"ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, ओं स्वः स्वाहा।"
३ मंत्रः--"ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा।"

साधय स्वाहा" उच्चारण करे । इस प्रकार मंत्र पढ़कर तीन वार आहुति दे[1] ॥ १५७ ॥

ततोऽग्नौ स्वेष्टमावाह्य पीठाद्यैः सहपूजनम् ।
कृत्वा स्वाहान्तमनुना मूलेन पञ्चविंशतीः॥ १५८॥

अनन्तर अग्निमें अपने इष्टदेवताका आवाहन करके (पहला कहा हुआ मन्त्र पढ़कर) पीठादिके साथ उसकी पूजा करे, फिर मूलमंत्र पढ़कर उसके अंतमें 'स्वाहा' शब्द उच्चारण करके अग्निमें पचीस ॥ १५८ ॥

हुत्वा वह्न्यात्मनोर्देव्या ऐक्यं सम्भावयन्धिया ।
एकादशाहुतीर्हुत्वा मूलेनैवाङ्गदेवताः ॥ १५९ ॥

आहुति देकर मनहीमनमें अग्नि, देवी और अपनी आत्मा इन तीनोंकी एकताकी चिन्ता करे । फिर मूलमंत्रसे ग्यारह आहुति देकर "ओं अङ्गदेवताभ्यः स्वाहा" इस मंत्रसे अंग-देवताके अर्थ ॥ १५९ ॥

हुत्वा स्वकाममुद्दिश्य तिलाज्यमधुमिश्रितैः॥ १६०॥

होम करे । फिर अपनी कामनाके लिये[2] मूलमन्त्र

१ मन्त्रोद्धारो यथाः--"ओं वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर तीन वार आहुति दे ।

२ कामनावाक्यं यथाः--विष्णुरोम् तत्सत् ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षे अमुकतिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकाभीष्टार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्रः श्रीअमुकशर्मा तिलाज्यादिमिश्रितैः पुष्पैर्बिल्वपत्रादिभिर्वा सार्द्धं वा वह्नावाहुतिमहं ददे ।"

पढ़कर उसके अन्तमें "स्वाहा" मिला (जो मन्त्रोद्धार होगा) उसको पढ़ता हुआ तिल, आज्य और मधु मिलावे ॥ १६० ॥

पुष्पैर्बिल्वदलैर्वापि यथाविहितवस्तुभिः ।
यथाशक्त्याहुतिं दद्यान्नाष्टन्यूनां प्रकल्पयेत् १६१॥

फूल अथवा बेलपत्र वा यथाविहित वस्तुसे शक्तिके अनुसार आहुति दे। आठसे कम आहुति न दे ॥ १६१ ॥

ततः पूर्णाहुतिं दद्यात्फलपत्रसमन्विताम् ।
स्वाहान्तमूलमन्त्रेण ततः संहारमुद्रया ।
तस्माद्देवीं समानीय स्थापयेद्धृदयाम्बुजे ॥१६२॥

फिर अन्तमें "स्वाहा" पद मिला मूलमंत्र पढ़कर अग्निमें फल और पानयुक्त पूर्णाहुति दे, फिर संहारमुद्राके द्वारा देवीको अग्निसे लाकर हृदयकमलमें स्थापन करे ॥ १६२ ॥

क्षमस्वेति च मन्त्रेण विसृजेत्तं हुताशनम् ।
कृतदक्षिणको मन्त्री अच्छिद्रमवधारयेत् ॥१६३॥

फिर मन्त्री "अग्नये क्षमस्व" मन्त्र पढ़कर अग्निका विसर्जन करे। फिर दक्षिणाविधि समाधान करके "कृतमिदं होमकर्माच्छिद्रमस्तु" यह कहकर अच्छिद्रावधारण करे १६३॥

हुतशेषं भ्रुवोर्मध्ये धारयेत्साधकोत्तमः ॥ १६४ ॥

फिर साधानश्रेष्ठ होमसे बची हुई सामग्री भ्रूयुगलके मध्यमें धारण करे । अर्थात् होमसे बची हुई भस्मका माथेमें तिलक लगावे ॥ १६४ ॥

एष होमविधिः प्रोक्तः सर्वत्रागमकर्मणि ।
होमकर्म समाप्यैवं साधको जपमाचरेत् ॥१६५॥

सर्वत्र आगमकर्ममें जिस प्रकारसे होमका अनुष्ठान होता है उसकी विधि कही । इस प्रकार साधक होमकों करके जपका अनुष्ठान करे ॥ १६५ ॥

विधानं शृणु देवेशि येन विद्या प्रसीदति ।
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयेद्धिया ॥ १६६ ॥

हे देवेशि ! जिससे विद्या प्रसन्न होती है उस जपके अनुष्ठानकी विधि कहता हूं, श्रवण करो । मनहीमनमें देवता, गुरु और मन्त्रकी एकताका चिंतन करे ॥ १६६ ॥

मन्त्राणां देवता प्रोक्ता देवता गुरुरूपिणी ।
अभेदेन यजेद्यस्तु तस्य सिद्धिरनुत्तमा ॥ १६७ ॥

मन्त्रवर्णदेवता, स्वरूपदेवता, गुरुरूपिणी, जो पुरुष देवतास्वरूप विचारकर अभेदसे मंत्रवर्णकी पूजा करे उसको ही सिद्धि मिलती है ॥ १६७ ॥

गुरुं शिरसि सञ्चिन्त्य देवतां हृदयाम्बुजे ।
रसनायां मूलविद्यां तेजोरूपां विचिन्त्य च ।
त्रयाणां तेजसात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥ १६८ ॥

शिरमें गुरुका ध्यान करे, हृदयकमलमें देवताको और रसनामें तेजरूप मूलमन्त्रात्मिका विद्याका ध्यान करे। फिर गुरु, देवता और मन्त्र इन तीनके तेजसे एक हुई आत्माको चिन्तन करे ॥ १६८ ॥

तारेण सम्पुटीकृत्य मूलमन्त्रं च सप्तधा।
जप्त्वा तु साधकः पश्चान्मातृकापुटितं स्मरेत् १६९॥

फिर प्रणवके द्वारा संपुटित करके सात वार मूलमन्त्रका जप करे, फिर मातृकापुटित करके सात वार स्मरण करे[1] ॥ १६९ ॥

मायाबीजं स्वशिरसि दशधा प्रजपेत्सुधीः।
वदने प्रणवं तद्वत्पुनर्मायां हृदम्बुजे।
प्रजप्य सप्तधा मन्त्री प्राणायामं समाचरेत्॥ १७०॥

फिर साधक अपने शिरमें 'ह्रीं' मायाबीजका दश वार जप करे, फिर अपने मुखमें दश वार प्रणवका जप करे, फिर

---

१ प्रणवसे मूलमंत्रका संपुटीकरण यथाः—ओं ह्रीं श्रीं क्रीं आद्ये कालिके स्वाहा। मातृकापुटितं यथाः—मूलमंत्रके आदि वा अन्तमें क्रमानुसार अकारादिसे लेकर क्षकारान्ततक इक्यावन वर्ण मिलानेका नाम मातृकापुटितकरण है।जैसे--"अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं ऍ एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ॥"

हृदयपद्ममें सात वार मायाबीजका जप करके पहलेके अनुसार प्राणायामका अनुष्ठान करे ॥ १७० ॥

ततो मालां समादाय प्रवालादिसमुद्भवाम् ।
माले माले महामाले[1] सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव १७१॥

इसके उपरान्त प्रवालादिकी माला ग्रहण करके 'हे माले हे महामाले!' तुम सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो। मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार वर्ग ही तुमको अर्पण करता हूं; तुम हमको सिद्धि देवो[2] ॥ १७१ ॥

इति सम्पूज्य मालान्तां श्रीपात्रस्थामृतेन च ।
त्रिधा मूलेन सन्तर्प्य स्थिरचित्तो जपंश्चरेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वाप्यथवाष्टोत्तरं शतम् ॥ १७२ ॥

यह मन्त्र पढ़कर मालाकी पूजा करे। फिर मूलमन्त्र पढ़कर श्रीपात्रमें रखे हुए अमृतसे तीन वार मालाका तर्पण करे[3], फिर साधक चित्तको स्थिर करके एक सहस्र आठ

---

१ 'महाभागे इति पाठान्तरम् ।

२ "माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव"

३ तर्पणमन्त्रः--प्रथम मूलमंत्रका उच्चारण करके "मालां सन्तर्पयामि स्वाहा" यह कहकर तर्पण करे ।

(१००८ अथवा एक शत आठ १०८) वार मूलमन्त्रका जप करे ॥ १७२ ॥

प्राणायामं ततः कृत्वा श्रीपात्रजलपुष्पकैः ।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् १७३॥
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।
इति मन्त्रेण मतिमान्देव्या वामकराम्बुजे॥ १७४॥
तेजोरूपं जपफलं समर्प्य प्रणमेद्भुवि ।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तोत्रं च कवचं पठेत् १७५॥

फिर प्राणायाम करके मतिमान् साधक श्रीपात्रमें रखे हुए जल और पुष्पादिसे देवीके कमलरूपी बाँये हाथमें तेजरूप जप फल समर्पण करे। समर्पण करनेका मन्त्र यह है कि:-'हे देवि ! हे महेश्वरि !' तुम गुह्या, अतिगुह्या और रक्षा करनेवाली हो, तुम हमारे किये जपको ग्रहण करो, तुम्हारे प्रसादसे मुझको सिद्धि प्राप्त हो। इस प्रकारसे जप समाप्त कर पृथ्वीमें दण्डके समान हो। प्रणाम करे, फिर हाथ जोड़ स्तुति वाक्य पढ़े ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य विशेषार्घ्येण साधकः ।
विलोमार्घ्यप्रदानेन कुर्य्यादात्मसमर्पणम् ॥१७६॥

---

१ "गुह्यातिगुह्यगोप्त्री--त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि" ।

इसके उपरांत साधक प्रदक्षिणा करके विलोममंत्रसे अर्घ्य विशेष देकर देवीको आत्मसर्पण करे ॥ १७६ ॥

इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्म्माधिकारतः ।
जाग्रत्स्वप्नसषुप्त्यन्ते अवस्थासु प्रकीर्त्तयेत् ॥ १७७॥

आत्मसमर्पण करनेका मंत्र कहा जाता है, पहले "इतः पूर्व्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति" यह पद उच्चारण करके "अवस्थासु" पद उच्चारण करे ॥ १७७ ॥

मनसान्ते वदेद्वाचा कर्म्मणा तदनन्तरम् ।
हस्ताभ्यां पदतः पद्भ्यामुदरेण ततः परम् १७८॥

फिर "मनसा" उसके अन्तमें "वाचा" तदनन्तर कर्मणा तदुपरान्त "हस्ताभ्यां" शब्दका उच्चारण करे । अनन्तर "पद्भ्यां" तदुपरान्त "उदरेण" पद पाठ करे ॥ १७८ ॥

शिस्नाथ यत्कृतं चोक्त्वा यत्स्मृतं पदतोवदेत् ।
यदुक्तं तत्सर्वमिति ब्रह्मार्पणमुदीरयेत् ।
भवत्वन्तेमां मदीयं सकलं तदनन्तरम् ॥ १७९ ॥

फिर "शिस्नाथ यत्कृतं" पद तच्चारण करके "यत्स्मृतं" कहे । फिर "यदुक्तं तत्सर्वं" पद पढ़े । अनन्तर "ब्रह्मार्पण" शब्द उच्चारण करे । फिर "भवतु" उसके अन्तमें "मां मदीयं सकलं" इस शब्दका उच्चारण करे ॥ १७९ ॥

आद्याकालीपदाम्भोजे अर्पयामिपदं वदेत् ।
प्रणवं तत्सदित्युक्त्वा कुर्यादात्मसर्पणम् ॥ १८० ॥

तदुपरान्त "आद्याकालीपदाम्भोजे अर्पयामि" पद पढ़, तदनन्तर 'प्रणव' उसके अंतमें "तत्सत्" उच्चारण करके कालीदेवीको आत्मसमर्पण करे[१] ॥ १८० ॥

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।
मायावीजं समुच्चार्य्य श्रीआद्ये कालिके वदेत् १८१

इसके उपरान्त मैत्री हाथ जोड़कर इष्टदेवतासे प्रार्थना करे। प्रथम 'मायाबीज' अर्थात् "ह्रीं" उच्चारण करके "श्री आद्ये कालिके" पद उच्चारण करे ॥ १८१ ॥

पूजितासि यथाशक्ति क्षमस्वेति विसृज्य च ।
संहारमुद्रया पुष्पमाघ्राय स्थापयेद्धृदि ॥ १८२ ॥

फिर "यथाशक्ति पूजितासि क्षमस्व" पद उच्चारण करके प्रार्थना करे। इस प्रकार इष्टदेवताको विसर्जन कर संहारमुद्रासे फूल ले सूँघे और अपने हृदयमें स्थापन करे ॥ १८२ ॥

---

१ मन्त्रोद्धारो यथाः--"इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिस्ना यत् कृतं यत् स्मृतं यत् उक्तं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु मां मदीयं सकलमाद्याकालीपदाम्भोजेऽर्पयामि ओं तत्सत्" यह मंत्र पढ़कर देवीको आत्मसमर्पण करे। प्रार्थनाका मंत्र-" ह्रीं श्रीं आद्ये कालिके यथाशक्ति पूजितासि क्षमस्व "।

ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा त्रिकोणं सुपरिष्कृतम् ।
तत्र संपूजयेद्देवीं निर्म्माल्यपुष्पवासिनीम् ।
ह्रींनिर्म्माल्यपदं चोक्त्वा वासिन्यै नम इत्यपि ॥१८३॥

फिर ईशानकोणमें परिष्कृत त्रिकोण मण्डल बना उसके ऊपर निर्मल पुष्प और जलसे निर्माल्यवासिनी देवीकी पूजा करे। प्रथम "ह्रीं निर्माल्य" पद उच्चारण करके फिर "वासिन्यै नमः" पद उच्चारण करे। इस उद्धृतमंत्रसे निर्माल्यवासिनी देवीकी पूजा करे[1] ॥ १८३ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादिभ्यः सर्व्वदेवेभ्य एव च ।
नैवेद्यं वितरेत्पश्चाद्गृह्णीयाच्छक्तिसाधकः ॥१८४॥

अनन्तर शक्तिसाधक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिको नैवेद्य अर्पण कर पीछेसे स्वयं ग्रहण करे ॥ १८४ ॥

स्वीयशक्तिं वामभागे संस्थाप्य पृथगासने ।
एकासनोपविष्टो वा पात्रं कुर्य्यान्मनोरमम्॥१८५॥

वामभागमें पृथक् आसनपर अपनी शक्तिको स्थापित कर अथवा उसके साथ एक आसनपर बैठ पान भोजनके लिये रमणीय पात्र स्थापन करे ॥ १८५ ॥

पानपात्रं प्रकुर्व्वीत न पञ्चतोलकाधिकम् ।
तोलकत्रितयान्न्यूनं स्वर्णं राजतमेव च ॥१८६॥

---

१ मन्त्रः--"ह्रीं निर्माल्यवासिन्यै नमः" ।

पानपात्रका परिमाण पाँच तोलेसे अधिक अथवा तीन तोलेसे कम न हो, सुवर्णका बना हो, या चाँदीका ॥१८६॥

अथवा काचजनितं नारिकेलोद्भवं च वा।
आधारोपरि संस्थाप्य शुद्धिपात्रस्य दक्षिणे १८७॥

अथवा कांचका वा नारियलसे उत्पन्न हुआ पात्र ही श्रेष्ठ है। पानपात्र शुद्धिपात्रके दाहिनी ओर आधारपर स्थापन करके ॥ १८७ ॥

महाप्रसादमानीय पात्रेषु परिवेषयेत्।
स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा ज्येष्ठानुक्रमतः सुधीः १८८॥

महाप्रसादको ला साधक अपने आप वा भ्रातृपुत्रों (भतीजों) के द्वारा ज्येष्ठानुक्रमसे पात्रमें परोसवावे[1] ॥ १८८॥

पानपात्रे सुधा देया शौद्धये शुद्ध्यादिकानि च।
ततः सामयिकैः सार्द्धं पानभोजनमाचरेत्॥१८९॥

पानपात्रमें मदिरा और शुद्धिपात्रमें मांसमत्स्यादि दे, फिर देवीजीकी पूजा प्रारम्भ विधिसे सब आये हुए मनुष्योंके साथ पान भोजनकी क्रियाको करे ॥ १८९ ॥

आदावास्तरणार्थाय गृह्णीयाच्छुद्धिमुत्तमाम्।
ततोऽतिहृष्टमनसा समस्तः कुलसाधकः ॥ १९० ॥

पहले मद्य आस्तरणके लिये उत्तम शुद्धि (मां-

---

[1] यहांपर जन्मग्रहण अथवा वयके अनुसार श्रेष्ठपन ग्राह्य नहीं है, अभिषेकके अनुसार ही ज्येष्ठपन अनुमानित होता है।

सादि) ग्रहण करे, फिर समस्त कुलसाधक आनन्दित चित्तसे ॥ १९० ॥

स्वस्वपात्रं समादाय परमामृतपूरितम् ।
मूलाधारादिजिह्वान्तां चिद्रूपां कुलकुण्डलीम् १९१॥

उत्तम मद्यसे भरे अपने अपने पात्रको ग्रहण कर मूलाधारसे जिह्वान्तव्यापिनी चैतन्यरूप कुलकुण्डलिनीका ॥ १९१ ॥

विभाव्य तन्मुखाम्भोजे मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
परस्पराज्ञामादाय जुहुयात्कुण्डलीमुखे ॥ १९२ ॥

ध्यान करके उसके मुखपद्ममें मूलमन्त्र उच्चारण करके परस्पर आज्ञा ले कुण्डलीमुखमें परमामृत दान करे ॥१९२॥

अलिपानं कुलस्त्रीणां गन्धस्वीकारलक्षणम् ।
साधकानां गृहस्थानां पञ्चपात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ १९३॥

कुलस्त्रियोंके लिये मद्यसम्बन्धी गन्धाङ्गीकरणस्वरूप मद्यपान ही कहा है। अर्थात् कुलस्त्रियें केवल मद्यकी गन्धको ग्रहण करें, उसे पियें नहीं और गृहस्थ साधकोंके लिये पंचपात्र परमित मद्यपान कहा है ॥ १९३ ॥

अतिपानात्कुलीनानां सिद्धिहानिः प्रजायते १९४॥

अधिक पान करनेसे कुलीनोंके सिद्धिकी हानि होती है॥

यावन्न चालयेद्दृष्टिं यावन्न चालयेन्मनः ।
तावत्पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम् ॥ १९५ ॥

(यदि पंचपात्रसे अधिक पान करे तो) जबतक दृष्टि

न घूमे, जबतक मन चलायमान न हो, तबतक पिये । इससे अधिक पान करना पशुपानके तुल्य है ॥ १९५ ॥

पाने भ्रान्तिर्भवेद्यस्य घृणी च शक्तिसाधके ।
स पापिष्ठः कथं ब्रूयादाद्यां कालीं भजाम्यहम् १९६

जिसको पीते पीते भ्रांति हो जाय और जो शक्तिसाधनसे घृणा करे वह पापी ऐसा कदापि नहीं कह सकता कि, मैं आदि कालिकाका भजन करता हूं ॥ १९६ ॥

यथा ब्रह्मार्पितेऽन्नादौ स्पृष्टिदोषो न विद्यते ।
तथा तव प्रसादेऽपि जातिभेदं विवर्जयेत् ॥१९७॥

ब्रह्मसमार्पित अन्नादिमें जिसप्रकार स्पर्शदोष नहीं है, वैसे ही तुम्हारे प्रसादमें जातिभेदको छोड़ देना चाहिये१९७

एवमेव विधानेन कुर्य्यात्पानं च भोजनम् ।
हस्तप्रक्षालनं नास्ति तव नैवेद्यसेवने ।
लेपावनोदनं कुर्य्याद्वस्त्रेण पाथसापि वा ॥१९८॥

इस प्रकार नियमानुसार पान भोजन करे, तुम्हारी नैवेद्य सेवन करके (शुद्धिके लिये) कदापि हाथ नहीं धोवे । वस्त्र या जलसे केवल हाथका लेप छुड़ा देना योग्य है ॥ १९८ ॥

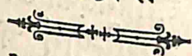
ततो निर्माल्यकुसुमं विधृत्य शिरसा सुधीः ।
यन्त्रलेपं कूर्चदेशे विहरेद्देववद्भुवि ॥ १९९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे श्रीपात्रस्थापनहोमचक्रानुष्ठानकथनं नाम षष्ठोल्लासः ॥ ६ ॥

फिर श्रेष्ठबुद्धिवाला साधक मस्तकपर निर्माल्य पुष्प धारण करे और यन्त्रमेंके पदार्थविशेषसे ललाटपर तिलक लगावे । (इस प्रकारसे जो साधक नियमानुसार पूजा करता है) वह देवताके समान हो पृथ्वीपर विचरण करता है ॥ १९९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादाबादनिवासि पं० बलदेवप्रसाद-मिश्रकृतभाषाटीकायां श्रीपात्रस्थापनहोमचक्रानुष्ठानकथनं नाम षष्ठोल्लासः ॥ ६॥

सप्तमोल्लासः ७.



श्रुत्वाद्याकालिकादेव्या मन्त्रोद्धारं महाफलम् ।
सौभाग्यमोक्षजननं ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ॥ १ ॥

(इस प्रकार प्राणियोंको) सौभाग्य और मोक्षका देनेवाला ब्रह्मज्ञानलाभका कारणस्वरूप, महाफलका देनेवाला आदि कालिकादेवीका मंत्रोद्धार सुनकर ॥ १ ॥

प्रातःकृत्यं तथा स्नानं संध्यां संविद्विशोधनम् ।
न्यासपूजाविधानं च बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥२॥

और प्रातःकृत्य, स्नान, सन्ध्या, संवित्शोधन, बाह्य व अन्तर भेदसे न्यास और पूजाविधान ॥ २ ॥

बलिप्रदानं होमं च चक्रानुष्ठानमेव च ।
महाप्रसादस्वीकारं पार्वती हृष्टमानसा ।
विनयावनता देवी प्रोवाच शंकरं प्रति ॥ ३ ॥

बलिदान, होम, चक्रानुष्ठान और महाप्रसादग्रहणादि क्रियाओंके मन्त्र और नियमावली सुनकर देवी पार्वतीजी आनन्दित व विनयावतन होकर महादेवजीसे पूछती हुईं॥ ३॥

श्रीदेव्युवाच ।

सदाशिव जगन्नाथ जगतां हितकारक ।
कृपया कथितं देव पराप्रकृतिसाधनम् ॥ ४ ॥

श्रीदेवीजी बोलीं:—हे सदाशिव! तुम जगत्के नाथ, जगत्के हितकारी हो, तुमने कृपायुक्त होकर मुझसे परात्परा प्रकृतिका साधन कहा ॥ ४ ॥

सर्वप्राणिहितकरं भोगमोक्षैककारणम् ।
विशेषतः कलियुगे जीवानामाशु सिद्धिदम् ॥ ५ ॥

यह प्रकृतिका साधन प्राणियोंका हित करनेवाला और भोगमोक्षका कारण है, विशेष करके कलियुगके जीव इस साधनसे ही शीघ्र सिद्धिको प्राप्त करेंगे ॥ ५ ॥

तव वागमृताम्भोधौ निमज्जन्मम मानसम् ।
नोत्थातुमीहते स्वैरं भूयः प्रार्थयतेऽचिरात् ॥ ६ ॥

हे देव ! मेरा मन आपके वचनरूप सुधासागारमें मग्न हुआ है, फिर इसमेंसे उठनेकी अभिलाषा नहीं वरन् मेरा मन फिर आपके वचनामृत पान करनेकी प्रार्थना करता है ॥ ६ ॥

पूजाविधौ महादेव्याः सूचितं न प्रकाशितम् ।
स्तोत्रं च कवचं देव तदिदानीं प्रकाशय ॥ ७ ॥

तुमने महादेवीकी पूजाविधिमें स्तोत्र और कवचपाठ करना कहा है; परन्तु उसको प्रकाशित नहीं किया, हे देव ! अब उसको विशेषतासे कहिये ॥ ७ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

शृणु देवि जगद्वन्द्ये स्तोत्रमेतदनुत्तमम् ।
पठनाच्छ्रवणाद्यस्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ८ ॥

श्रीसदाशिव बोले—हे जगद्वन्द्ये ! देवि ! इस अनुपम स्तोत्रको कहता हूं, श्रवण करो जिसके पढ़ने या श्रवण करनेसे सर्वसिद्धिप्राप्तिकी समर्थता होती है ॥ ८ ॥

असौभाग्यप्रशमनं सुखसम्पद्विवर्द्धनम् ।
अकालमृत्युहरणं सर्वापद्विनिवारणम् ॥ ९ ॥

इससे कुभाग्यका नाश व सुखसम्पत्तिकी वृद्धि होती है और अकालमृत्युका हरण तथा सब आपत्तियोंका निराकरण (दूर हो जाना) होता है ॥ ९ ॥

श्रीमदाद्याकालिकायाः सुखसान्निध्यकारणम् ।
स्तवस्यास्य प्रसादेन त्रिपुरारिरहं शिवे ॥ १० ॥

हे देवि! आदिकालिकाका यह स्तोत्र सुख उपजानेका कारण है, मैंने इस स्तोत्रके प्रसादसे ही (त्रिपुरासुरका संहार कर) त्रिपुरारि नाम धारण किया है ॥ १० ॥

स्तोत्रस्यास्य ऋषिर्देवि! सदाशिव उदाहृतः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताद्या कालिका परिकीर्तिता॥ ११॥

हे देवि! इस स्तोत्रके ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, आदिकालिका देवता और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इस चतुर्वर्गमें इसका विनियोग है ॥ ११ ॥

ह्रीं काली श्रीं कराली च क्रीं कल्याणी कलावती ।
कमला कलिदर्पघ्नी कपर्दीशकृपान्विता ॥ १२ ॥

(अब आद्या देवीका स्तोत्र कहा जाता है–) तुम "ह्रीं" स्वरूपा काली हो, "श्रीं" स्वरूपा कराली हो और 'क्रीं' स्वरूपा कल्याणी हो। तुम कलावती, कमला, कलिदर्पघ्नी और कपर्दीशकृपान्विता हो अर्थात् शिवपर कृपावती हो ॥ १२ ॥

कालिका कालमाता च कालानलसमद्युतिः ।
कपर्दिनी करालास्या करुणामृतसागरा ॥ १३ ॥

तुम कालिका, कालमाता और कालानलके समान द्युतिवाली अर्थात् तुम्हारा तेज कालानलके समान है, तुम कपर्दिनी और करालास्या अर्थात् करालवदना हो, तुम करुणामृतसागरा हो ॥ १३ ॥

कृपामयी कृपाधारा कृपापारा कृपागमा ।
कृशानुः कपिला कृष्णा कृष्णानन्दविवर्द्धिनी १४॥

कृपामयी और कृपाधारा हो, तुम कृपापारा और कृपागमा अर्थात् तुम जिसपर कृपा करती हो, वही तुमको जान सकता है । तुम कृशानु, कपिला, कृष्णा और कृष्णानन्द-विवर्द्धिनी हो ॥ १४ ॥

कालरात्रिः कामरूपा कामपाशविमोचिनी ।
कादम्बिनी कलाधारा कलिकल्मषनाशिनी॥ १५॥

तुम कालरात्री, कामरूपा और कामपाशविमोचिनी हो. तुम कादम्बिनी, कलाधारा और कलिकल्मषनाशिनी हो अर्थात् तुम ही कलियुगके पापका नाश करती हो ॥ १५ ॥

कुमारीपूजनप्रीता कुमारीपूजकालया ।
कुमारीभोजनानन्दा कुमारीरूपधारिणी ॥ १६ ॥

तुम कुमारीपूजनप्रीता, कुमारीपूजकालया, कुमारीभो-जनानन्दा और कुमारीरूपधारिणी हो अर्थात् कुमारीपूजा करनेसे तुमको प्रसन्नता होती है, जिस स्थानमें कुमारीकी पूजा होती है वहाँ तुम रहती हो, कुमारीभोजन करानेसे तुमको आनन्द होता है और तुम ही कुमारीरूपसे अवतीर्णा हो॥१६॥

कदम्बवनसञ्चारा कदम्बवनवासिनी ।
कदम्बपुष्पसन्तोषा कदम्बपुष्पमालिनी ॥ १७ ॥

तुम कदम्बवनसंचारा, कदम्बवनवासिनी, कदम्बपुष्पसं-
तोषा और कदम्बपुष्पमालिनी हो अर्थात् तुम कदम्बवनमें भ्रमण
करती हो, कदम्बवनमें वास करती हो, कदम्बके फूलसे
तुमको संतोष होता है और तुम कदम्बके फूलोंकी माला
धारण करती हो ॥ १७ ॥

किशोरी कलकण्ठा च कलनादनिनादिनी ।
कादम्बरीपानरता तथा कादम्बरीप्रिया ॥ १८ ॥

तुम किशोरि, तुम कलकण्ठा अर्थात् तुम्हारे कंठका
स्वर अतीव गम्भीर है. तुम कलनादनिनादिनी, कादम्बरी-
पानमें रत और कादम्बरीप्रिया हो अर्थात् गौडी मदिरा
तुमको अत्यन्त प्यारी है ॥ १८ ॥

कपालपात्रनिरता कङ्कालमाल्यधारिणी ।
कमलासनसन्तुष्टा कमलासनवासिनी ॥ १९ ॥

तुम कपालपात्रनिरता और कपालमालाधारिणी अर्थात्
शरीरकी हड्डियोंकी माला धारण करती हो, तुम कमलासन-
सन्तुष्टा और कमलासनवासिनी हो ॥ १९ ॥

कमलालयमध्यस्था कमलामोदमोदिनी ।
कलहंसगतिः क्लैब्यनाशिनी कामरूपिणी ॥ २० ॥

तुम कमलालयमध्यस्था और कमलामोदमोदिनी अर्थात्
कमलगन्धसे तुमको आनन्द होता है । तुम कलहंसगति

(कलहंसके समान मन्थरगामिनी) हो, तुम क्लैब्यनाशिनी (भक्तोंका दुःख दूर करती हो), तुम कामरूपिणी हो ॥ २० ॥

कामरूपकृतावासा कामपीठविलासिनी ।
कमनीया कल्पलता कमनीयविभूषणा ॥ २१ ॥

तुम कामरूपकृतावासा, कामपीठविलासिनी, कमनीया, कल्पलता और कमनीयविभूषणा हो ॥ २१ ॥

कमनीयगुणाराध्या कोमलाङ्गी कृशोदरी ।
कारणामृतसन्तोषा कारणानन्दसिद्धिदा ॥ २२ ॥

तुम कमनीयगुणाराध्या अर्थात् कमनीय गुणोंके द्वारा ही तुम्हारी आराधना की जाती है। तुम कोमलांगी, कृशोदरी और कारणामृतसन्तोषा अर्थात् मद्यसुधाद्वारा तुमको प्रसन्नता होती है, तुम कारणानन्दसिद्धिदा (कारणद्वारा जिसको आनन्द होता है) उसको सिद्धि देती हो ॥ २२ ॥

कारणानन्दजापेष्टा कारणार्च्चनहर्षिता ।
कारणार्णवसम्मग्ना कारणव्रतपालिनी ॥ २३ ॥

तुम कारणानन्दजापेष्टा और कारणार्चनहर्षिता हो, जो तुमको कारणसे पूजता है उसपर तुम प्रसन्न होती हो, तुम कारणरूपी समुद्रमें मग्न हो और कारणव्रतपालिनी हो ॥ २३ ॥

कस्तूरीसौरभामोदा कस्तूरीतिलकोज्ज्वला ।
कस्तूरीपूजनरता कस्तूरीपूजकप्रिया ॥ २४ ॥

तुम कस्तूरीसौरभामोदा (कस्तूरीके गन्धसे तुम आनन्दित होती हो), तुम कस्तूरीतिलकोज्ज्वला हो (कस्तूरीका तिलक धारण करनेसे अपूर्व दीप्ति प्राप्त करती हो), तुम कस्तूरीपूजनरता और कस्तूरीपूजकप्रिया हो अर्थात् जो कस्तूरीसे तुम्हारी पूजा करता है वह तुमको अत्यन्त प्यारा है ॥ २४ ॥

कस्तूरीदाहजननी कस्तूरीमृगतोषिणी ।
कस्तूरीभोजनप्रीता कर्पूरचन्दनोक्षिता ॥ २५ ॥

तुम कस्तूरीदाहजननी, कस्तूरीमृगतोषिणी, कस्तूरीं भोजनसे प्रसन्न, अर्थात् कर्पूरकी सुगन्धसे मुदित होती हो और कर्पूरचन्दनोक्षिता अर्थात् तुम्हारे अंगमें सदा कर्पूरसे मिला हुआ चन्दन लगा रहता है॥ २५ ॥

कर्पूरकारणाह्लादा कर्पूरामृतपायिनी ।
कर्पूरसागरस्नाता कर्पूरसागरालया ॥ २६ ॥

तुम कर्पूरकारणसे आनन्दित, कर्पूरामृतपायिनी, कर्पूरसागरमें स्नान करनेवाली और कर्पूरसागर तुम्हारा आलय है २६॥

कूर्चबीजजपप्रीता कूर्चजापपरायणा ।
कुलीना कौलिकाराध्या कौलिकप्रियकारिणी २७॥

तुम "हूं" बीजके जपमें प्रसन्न व कूर्च्चजापपरायणा हो, कुलीना, कौलिकाराध्या और कौलिकप्रियकारिणी हो ॥ २७ ॥

कुलाचारा कौतुकिनी कुलमार्गप्रदर्शिनी ।
काशीश्वरी कष्टहर्त्री काशीशवरदायिनी ॥ २८ ॥

तुम कुलाचारा, कौतुकिनी और कुलमार्गकी दिखानेवाली हो, तुम काशीश्वरी, कष्टहरण करनेवाली और काशीश्वरको वरदायिनी हो ॥ २८ ॥

काशीश्वरकृतामोदा काशीश्वरमनोरमा ॥ २९ ॥

तुम काशीश्वरको आनंद देनेवाली और काशीश्वरमनोरमा अर्थात् काशीश्वरके मनको मोहनेवाली हो ॥ २९ ॥

कलमञ्जीरचरणा क्वणत्काञ्चीविभूषणा ।
काञ्चनाद्रिकृतागारा काञ्चनाचलकौमुदी ॥ ३० ॥

तुम कलमंजीरचरणा अर्थात् तुम्हारे चरणयुगलके दोनों मंजीर गंभीर शब्दसे पूर्ण हैं । तुम क्वणत्कांचीविभूषणा अर्थात् तुम मधुरध्वनिपूर्ण कांचीगुणसे विभूषित हो, काञ्चन गिरिपर तुम्हारा वास है और तुम कांचनाचलकी चांदनी-स्वरूपिणी हो ॥ ३० ॥

कामबीजजपानन्दा कामबीजस्वरूपिणी ।
कुमतिघ्नी कुलीनार्तिनाशिनी कुलकामिनी ॥ ३१ ॥

तुम कामबीजजपानंदा अर्थात् "क्लीं" बीजके जपसे तुम-

को प्रसन्नता होती है तुम कामबीजस्वरूपिणी हो। तुम कुमति और कुलीनार्तिकी नाशिनी हो अर्थात् तुम्हारे प्रसादसे ही कुमतिका विनाश और कुलीनोंको दुःख दूर होता है और तुम ही कुलकामिनी हो ॥ ३१ ॥

क्रींह्रींश्रींमन्त्रवर्णेन कालकण्टकघातिनी ।
इत्याद्याकालिकादेव्याः शतनामप्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥
ककारकूटघटितं कालीरूपस्वरूपकम् ॥ ३३ ॥

क्रीं ह्रीं श्रीं यह तीन वर्ण तुम्हारे स्वरूप हैं। इससे तुम कालकण्टकघातिनी हो। (हे देवि !) ककारराशिसम्मिलित कालीरूपस्वरूप आदिकालिका देवीका शतनामस्तोत्र तुमसे कहा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पूजाकाले पठेद्यस्तु कालिकाकृतमानसः ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशु तस्य काली प्रसीदति ॥ ३४ ॥

जो पुरुष पूजाके समय कालिकादेवीमें चित्त लगाकर इस स्तोत्रका पाठ करेगा उसका मंत्र शीघ्र सिद्ध हो जायगा और कालिका उसपर प्रसन्न हो जाती हैं ॥ ३४ ॥

बुद्धिं विद्यां च लभते गुरोरादेशमात्रतः ।
धनवान्कीर्तिमान्भूयाद्दानशीलो दयान्वितः ॥ ३५ ॥

गुरुके आदेशमात्रसे उसको विद्या तथा बुद्धिकी प्राप्ति होती है और वह धनी, कीर्तिमान्, दाता और दयावान् होता है ॥ ३५ ॥

पुत्रपौत्रसुखैश्वर्य्यैर्मोदते साधको भुवि ॥ ३६ ॥

वह साधक ही पृथ्वीपर पुत्र, पौत्रादिके साथ सुख ऐश्वर्यके साथ आनन्दभोग करता है ॥ ३६ ॥

भौमामावास्यानिशाभागे पञ्चकसमन्वितः ।
पूजयित्वा महाकालीमाद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ ३७॥

जो पुरुष मंगलवारी अमावस तिथिमें महारात्रिके समय मद्यादि पंचसामग्रीयुक्त होकर त्रिभुवनेश्वरी आदिकालिकाकी पूजा करके ॥ ३७ ॥

पठेद्वै शतनामानि साक्षात्कालीमयो भवेत् ।
नासाध्यं विद्यते तस्य त्रिषु लोकेषु किञ्चन ॥३८॥

इस शतनाम स्तोत्रका पाठ करता है वह साक्षात् कालीमय हो जाता है, त्रिभुवनमें उसकी कोई बात असाध्य नहीं रहती ॥ ३८ ॥

विद्यायां वाक्पतिः साक्षाद्धने धनपतिर्भवेत् ।
समुद्र इव गाम्भीर्य्ये बले च पवनोपमः ॥ ३९ ॥

वह पुरुष विद्याके प्रभावमें साक्षात् वाक्पति, धनमें धनपति, गंभीरतामें समुद्र और बलमें पवनके समान हो जाता है॥

तिग्मांशुरिव दुष्प्रेक्ष्यः शशिवच्छुभदर्शनः ।
रूपे मूर्त्तिधरः कामो योषितां हृदयङ्गमः ॥ ४० ॥

उसका तेज सूर्यके समान तीक्ष्ण और चंद्रमाके समान

सौम्य हो जाता है तथा वह मूर्तिमान् कामदेवके समान रूपवान् हो कामिनियोंके हृदयको हरण करता है ॥ ४० ॥

सर्वत्र जयमाप्नोति स्तवस्यास्य प्रसादतः ।
यं यं कामं पुरस्कृत्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥ ४१ ॥

इस स्तोत्रके प्रसादसे वह सब जगह विजयको प्राप्त कर सकता है । जिस जिस कामनाको करके इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है ॥ ४१ ॥

तं तं काममवाप्नोति श्रीमदाद्याप्रसादतः ।
रणे राजकुले द्यूते विवादे प्राणसंकटे ॥ ४२ ॥

श्रीआदिकालिकाके प्रसादसे उसको वह सब कामनायें फलवती होती हैं । संग्राममें, राजाके समीपमें, जुआ खेलनेमें, झगड़ेमें, प्राणसंकटमें ॥ ४२ ॥

दस्युग्रस्ते ग्रामदाहे सिंहव्याघ्रावृते तथा ॥ ४३ ॥

चोरके आक्रमणमें, ग्रामके दाहमें, सिंहव्याघ्रादि हिंसक जन्तुओंसे पूर्ण ॥ ४३ ॥

अरण्ये प्रान्तरे दुर्गे ग्रहराजभयेऽपि वा ।
ज्वरदाहे चिरव्याधौ महारोगादिसङ्कुले ॥ ४४ ॥

वनमें, वृक्ष लतादिसे रहित मैदानमें, दुर्गमें, ग्रह और राजभयमें, ज्वरदाहमें, सदाके रोगमें, महारोगादिके घेर लेनेमें ॥

बालग्रहादिरोगे च तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
दुस्तरे सलिले वापि पोते वातविपद्गते ॥ ४५ ॥

बालग्रहादिरोगमें, बुरे स्वप्न देखनेमें, दुष्पार समुद्रमें अथवा प्रबल आँधीसे टकरायी हुई नावपर ॥ ४५ ॥

विचिन्त्य परमां मायामाद्यां कालीं परात्पराम् ।
यः पठेच्छतनामानि दृढभक्तिसमन्वितः ॥ ४६ ॥

इत्यादि विपत्तियोंमें जो पुरुष परात्परा परमामाया आदिकालिकाका ध्यान करके आन्तरिक भक्तिके साथ इस शतनामस्तोत्रका पाठ करता रहे तो ॥ ४६ ॥

सर्वापद्भ्यो विमुच्येत देवि सत्यं न संशयः ।
न पापेभ्यो भयं तस्य न रोगेभ्यो भयं क्वचित् ४७॥

हे देवि ! वह सत्य ही सत्य सब विपत्तियोंसे छूट जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं । उसको न पापका भय रहता और न कहीं रोगका भय रहता है ॥ ४७ ॥

सर्वत्र विजयस्तस्य न कुत्रापि पराभवः ।
तस्य दर्शनमात्रेण पलायन्ते विपद्गणाः ॥ ४८ ॥

पराभवकी शंका भी दूर हो जाती है, वह सर्वत्र विजय प्राप्त करता है । उसका दर्शन करते ही विपत्तियें दूर हो जाती हैं ॥ ४८ ॥

स वक्ता सर्वशास्त्राणां स भोक्ता सर्वसम्पदाम् ।
स कर्त्ता जातिधर्माणां ज्ञातीनां प्रभुरेव सः ॥ ४९ ॥

इस (स्तुतिके प्रसाद) से वह पुरुष सर्वशास्त्रका वक्ता

होता है, सर्व सम्पत्तियोंको भोगता है तथा वह जातिधर्मका कर्त्ता और जातीवालोंके ऊपर प्रभुता प्राप्त करता है ॥ ४९॥

वाणी तस्य वसेद्वक्त्रे कमला निश्चला गृहे।
तन्नाम्ना मानवाः सर्वे प्रणमन्ति ससम्भ्रमाः ५०॥

सरस्वतीजी सदा उसके मुखमें रहती हैं, लक्ष्मीजी अचल होकर उसके गृहमें वास करती हैं। मनुष्यगण उसका नाम सुनते ही सम्भ्रमसे प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

दृष्ट्या तस्य तृणायन्ते ह्यणिमाद्यष्ट सिद्धयः।
आद्याकालीस्वरूपाख्यं शतनाम प्रकीर्तितम्॥ ५१॥

अणिमादि आठ सिद्धियें उसका दर्शन करते ही तिनकेके समान जान पड़ती हैं। (हे देवि!) यह तुमसे आदिकालिकाका स्वरूपरूपी शतनामस्तोत्र कीर्त्तन किया ॥ ५१ ॥

अष्टोत्तरशतावृत्त्या पुरश्चर्यास्य गीयते।
पुरस्क्रियान्वितं स्तोत्रं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ ५२॥

इस स्तोत्रके पुरश्चरण करनेमें (१०८) एक शत आठ बार इसका पाठ करना चाहिये। ऐसी विधि कही है कि यह स्तोत्र पुरस्क्रियान्वित होनेसे अभीष्ट फल देता है ॥५२॥

शतनामस्तुतिमिमामाद्याकालीस्वरूपिणीम्।
पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेदपि ॥ ५३ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

जो पुरुष आद्या कालीस्वरूपिणी शतनामस्तुति अपने आप पढ़ता है वा और किसीको पढ़ाता है, स्वयं सुनता है अथवा और किसीको सुनाता है वह सब पापोंसे छूटकर मुक्त हो जाता है (इसमें सन्देह नहीं) ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

कथितं परमं ब्रह्मप्रकृतेः स्तवनं महत् ।
आद्यायाः श्रीकालिकायाः कवचं शृणु साम्प्रतम् ९५

श्रीसदाशिवने कहा हे देवि ! तुमसे परम ब्रह्मस्वरूप प्रकृतिका स्तोत्र प्रकाशित किया । अब आदिकालिकाका कवच कहता हूं, श्रवण करो ॥ ९५ ॥

त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च आद्याकाली प्रकीर्त्तिता ९६॥

इस त्रिलोकविजय करनेवाले कवचके ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप् और देवता आदि कालिका हैं ॥ ९६ ॥

मायाबीजं बीजमिति रमा शक्तिरुदाहृता।
क्रीं कीलकं काम्यसिद्धौ विनियोगः प्रकीर्तितः ९७

"ह्रीं" इसका बीज है, "श्रीं" इसकी शक्ति है, " क्रीं " इसका कीलक और कामसिद्धिमें इसका विनियोग कीर्तन करना पड़ता है * ॥ ९७ ॥

---

* ऋषिन्यासो यथा:-"अस्य कवचस्य सदाशिवः ऋषिः अनुष्टुपछन्दः आद्याकाली देवता ह्रीं बीजं श्रीं शक्तिः क्रीं कीलकं काम्यसिद्ध्यर्थे कवचपाठे

ह्रीमाद्या मे शिरः पातु श्रीं काली वदनं मम ।
हृदयं क्रीं परा शक्तिः पायात्कण्ठं परात्परा ५८॥

अब कवच कहा जाता है:–" ह्रीं " स्वरूपा आद्या मेरे शिरकी और " श्रीं " स्वरूपिणी काली मेरे वदनकी रक्षा करे । "क्रीं" स्वरूपा परा शक्ति मेरे हृदय और परात्परा मेरे कंठकी रक्षा करे ॥ ५८ ॥

नेत्रे पातु जगद्धात्री कर्णौ रक्षतु शंकरी ।
घ्राणं पातु महामाया रसनां सर्वमङ्गला ॥ ५९ ॥

जगद्धात्री मेरे दोनों नेत्रोंकी और शंकरी मेरे दोनों कानोंकी रक्षा करे । महामाया मेरी नासिकाकी रक्षा करें और सर्वमंगला मेरी रसना (जिह्वा) की रक्षा करें ॥ ५९ ॥

दन्तान्रक्षतु कौमारी कपोलौ कमलालया ।
ओष्ठाधरौ क्षमा रक्षेच्चिबुकं चारुहासिनी ॥ ६० ॥

कौमारी दन्तपंक्तियोंकी और कमलालया मेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें, क्षमा मेरे ओष्ठ व अधर और चारुहासिनी ठोडीकी रक्षा करें ॥ ६० ॥

विनियोगः । शिरसि ओं सदाशिवाय ऋषये नमः। मुखे ओं अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि ओं आद्याकालिकायै देवतायै नमः । गुह्ये ओं ह्रीं बीजाय नमः । पादयोः ओं श्रीं शक्तयेनमः । सर्वाङ्गे ओं क्रीं कीलकायै नमः । कास्यसिद्ध्यर्थे कवचपाठे विनियोगः ।

ग्रीवां पायात्कुलेशानी ककुत्पातु कृपामयी ।
द्वौ बाहू बाहुदा रक्षेत्करौ कैवल्यदायिनी ॥६१॥

कुलेशानी मेरी गर्दनकी और कृपामयी ककुदकी रक्षा करें । बाहुदा दोनों बांहोंकी और कैवल्यदायिनी मेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करें ॥ ६१ ॥

स्कन्धौ कपर्द्दिनी पातु पृष्ठं त्रैलोक्यतारिणी ।
पार्श्वे पायादपर्णा मे कटिं मे कमठासना ॥६२॥

कपर्द्दिनी दोनों कंधोंकी और त्रैलोक्यतारिणी मेरे पृष्ठदेशकी रक्षा करें । अपर्णा मेरे दोनों पार्श्वोंकी और कमठासना मेरी कटिकी रक्षा करें ॥ ६२ ॥

नाभौ पातु विशालाक्षी प्रजास्थानं प्रभावती ।
ऊरू रक्षतु कल्याणी पादौ मे पातु पार्वती ॥६३॥

विशालाक्षी मेरी नाभिकी और प्रभावती मेरे प्रजास्थानकी रक्षा करें । कल्याणी दोनों ऊरूकी और पार्वती मेरे दोनों पावोंकी रक्षा करें ॥६३॥

जयदुर्गावतु प्राणान्सर्वाङ्गं सर्वसिद्धिदा ।
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन च ॥ ६४ ॥

जयदुर्गा मेरे पंच प्राणोंकी और सर्वसिद्धिदा मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करें । जो जो स्थान कवचमें नहीं कहे हैं ॥ ६४ ॥

तत्सर्वं मे सदा रक्षेदाद्या काली सनातनी ।
इति ते कथितं दिव्यं त्रैलोक्यविजयाभिधम् ॥६५॥

उन मेरे सब अंगोंकी सनातनी आद्या काली रक्षा करें। (हे देवि!) तुमसे 'त्रैलोक्यविजय' नामक आद्या कालिका देवीका दिव्य कवच कहा ॥ ६५ ॥

कवचं कालिकादेव्या आद्यायाः परमाद्भुतम्।
पूजाकाले पठेद्यस्तु आद्याधिकृतमानसः ॥ ६६ ॥

जो पुरुष पूजाके समय देवीमें चित्त लगाकर आदिकालिकाके इस परम अद्भुत कवचका पाठ करता है॥ ६६ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति तस्याद्याशु प्रसीदति।
मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशु किङ्कराः क्षुद्रसिद्धयः ॥ ६७ ॥

उसकी सब कामनायें पूरी हो जाती हैं और उसपर आदिकालिकाजी शीघ्र प्रसन्न हो जाती हैं। और वह शीघ्र ही मन्त्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है तथा छोटी सिद्धियें उसकी किंकर हो जाती हैं॥ ६७ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी प्राप्नुयाद्धनम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां कामी कामानवाप्नुयात्६८

इस कवचके प्रसादसे अपुत्रक पुत्र, धनार्थी धन और विद्यार्थी विद्या प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है तथा कामीकी कामना पूर्ण होती है ॥ ६८ ॥

सहस्रावृत्तपाठेन वर्म्मणोऽस्य पुरस्क्रिया।
पुरश्चरणसंपन्नं यथोक्तफलदं भवेत् ॥ ६९ ॥

पुरश्चरण करनेमें सहस्र वार इस कवचका पाठ करना पड़ता है। जो इस कवचका पुरश्चरण हो जाता है तो यह यथोक्त फल देता है ॥ ६९ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमै रक्तचन्दनैः ।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि॥७०॥
शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा साधकः कटौ ।
तस्याद्या कालिका वश्या वाञ्छितार्थं प्रयच्छति ७१

जो साधक अगर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम अथवा लाल चंदनसे भोजपत्रपर यह कवच लिखकर सुवर्णकी गुटिकामें रख चोटीमें, दाहिनी भुजामें, कंठमें या कमरमें धारण करता है, आदिकालिका उसके निरन्तर वश होकर वांछित फल देती हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

न कुत्रापि भयं तस्य सर्वत्र विजयी कविः ।
अरोगी चिरजीवी स्याद्बलवान्धारणक्षमः ॥७२॥

उसको भयकी शंका कहीं नहीं रहती, वह सब जगह विजय पाता है और अरोगी, बलवान्, धारणक्षम और चिरंजीवी होकर समय बिताता है ॥ ७२ ॥

सर्वविद्यासु निपुणः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
वशे तस्य महीपाला भोगमोक्षौ करस्थितौ ॥७३॥

वह सर्वविद्याओंमें प्रवीण और सर्व शास्त्रोंके अर्थको जान

जाता है, राजालोग उसके वशमें रहते हैं, भोग मोक्ष उसकी हथेलीपर विद्यमान रहते हैं ॥ ७३ ॥

कलिकल्मषयुक्तानां निःश्रेयसकरं परम् ॥ ७४ ॥

(निःसन्देह) यह कवच कलिके पापसे कलुषित मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला है ॥ ७४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथितं कृपया नाथ स्तोत्रं कवचमेव च ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि पुरश्चर्य्याविधिं विभो ॥ ७५ ॥

श्रीदेवीजीने कहा-हे नाथ ! आपने कृपा करके मुझसे यह स्तोत्र व कवच कहा, हे प्रभो ! अब पुरश्चरणकी विधि श्रवण करनेकी मुझको इच्छा है ॥ ७५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

यो विधिर्ब्रह्ममन्त्राणां पुरश्चरणकर्म्मणि ।
स एवाद्यकालिकाया मन्त्राणां विधिरिष्यते ॥ ७६ ॥

श्रीसदाशिवने कहा-ब्रह्ममन्त्रके पुरश्चरणकर्ममें जो विधि है वही आदिकालिकाके मन्त्रकी विधि कही जाती है * ॥ ७६ ॥

---

* आदिकालिकामन्त्रके पुरश्चरणमें ३२००० जप, जपका दशवां अंश होम, होमका दशवाँ अंश तर्पण, तर्पणका दशवाँ अंश अभिषेक और अभिषेकका दशवाँ अंश ब्राह्मणभोजन करावे । होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मणभोजन जो इन चारोंमें असमर्थ हो तो नियत संख्यासे दूना जप करे ॥

अशक्ते साधके देवि जपपूजाहुतादिषु ।
पूजां संक्षेपतः कुर्य्यात्पुरश्चरणमेव च ॥ ७७ ॥

हे देवि ! जो साधकमें जप, पूजा व होमादि अनुष्ठान करनेकी सामर्थ्य न हो तो संक्षेपसे पूजा और पुरश्चरण करे ॥ ७७ ॥

यतो हि निरनुष्ठानात्स्वल्पानुष्ठानमुत्तमम् ।
संक्षेपपूजनं भद्रे तत्रादौ शृणु कथ्यते ॥ ७८ ॥

क्योंकि बिलकुल अनुष्ठान न करनेकी अपेक्षा थोड़ा भी अनुष्ठान करना उत्तम है। हे भद्रे ! पहले संक्षेपसे पूजाकी विधि कहता हूं; श्रवण करो ॥ ७८ ॥

आचम्य मूलमन्त्रेण ऋषिन्यासं समाचरेत् ।
करशुद्धिं ततः कुर्य्यान्न्यासं च करदेहयोः ॥७९॥

पहले तो मूलमन्त्रके द्वारा आचमन करके ऋषिन्यास करे। फिर करशुद्धि करके करन्यास और अंगन्यास करे ॥ ७९ ॥

सर्व्वाङ्गव्यापकं कृत्वा प्राणायामं चरेत्सुधीः ।
ध्यानं पूजां जपं चेति संक्षेपः पूजने विधिः ८०॥

फिर बुद्धिमान् साधक सर्वाङ्गव्यापक न्यास करके प्राणायामका आचरण करे। फिर ध्यान उसके अन्तमें पूजा और उसके पीछे जप करे। यह संक्षेपसे पूजाकी विधि कही॥८०॥

पुरस्क्रियायां मन्त्राणां यत्र यो विहितो जपः ।
तस्माच्चतुर्गुणजपात्पुरश्चर्य्या विधीयते ॥ ८१ ॥

मन्त्रके पुरश्चरण करनेमें जिस मन्त्रका जितना जप कहा है (होमादि न करके) उसका चौगुना जप करके ही पुरश्चरणकी विधि समाप्त की जाती है ॥ ८१ ॥

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य कौजे वा शनिवासरे ।
पञ्चतत्त्वं समानीय पूजयित्वा जगन्मयीम् ॥८२॥
महानिशायामयुतं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
भोजयित्वा ब्रह्मनिष्ठान्पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ ८३ ॥

अथवा और प्रकारसे पुरश्चरणके अनुष्ठानकी विधि कहता हूं–कृष्णपक्षमें मंगलवारी या शनिवारी चतुर्दशीको रातके समय पंचतत्त्वको लाकर जगन्मयीकी पूजा करे । और स्थिरचित्तसे महानिशाके भागमें दश हजार वार मन्त्रका जप करे, फिर ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पुरश्चरण कर्म समाप्त करे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

कुजवासरमारभ्य यावन्मङ्गलवासरम् ।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रपरिसंख्यया ॥ ८४ ॥

(हे देवि ! तीसरे प्रकारका पुरश्चरण कर्म कहता हूं सुनो –) एक मंगल वारसे आरम्भ करके दूसरे मंगलवार-तक प्रतिदिन एक सहस्र मन्त्रका जप करे ॥ ८४ ॥

वसुसंख्याजपेनैव भवेन्मन्त्रपुरस्क्रिया ॥ ८५ ॥

इस प्रकारसे आठ दिनमें आठ हजार मंत्रके जपसे मन्त्रकी पुरस्क्रिया होती है ॥ ८५ ॥

श्रीआद्यकालिकामन्त्राः सिद्धमन्त्राः सुसिद्धिदाः ।
सदा सर्वयुगे देवि कलिकाले विशेषतः ॥ ८६ ॥

हे देवि ! आदिकालिकाका मंत्र सर्वप्रकारसे सिद्धमन्त्र है। सब युगमें सिद्धिको देनेवाला है । विशेष करके कलियुगमें (शीघ्र) फलदायी होता है ॥ ८६ ॥

कालीरूपाणि बहुधा कलौ जाग्रति पार्वती ।
प्रबले कलिकाले तु रूपमेतज्जगद्धितम् ॥ ८७ ॥

हे पार्वति ! कलिकालमें कालीरूप अनेक प्रकारके देखे जाँयगे, सब रूपोंमें देवीजी जागरित रहेंगी, विशेष करके जब कलियुग प्राप्त होगा तब यह कालीरूप ही जगत्को कल्याणका देनेवाला होगा ॥ ८७ ॥

नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ।
नियमानियमौ नापि जपन्नाद्यां प्रसादयेत् ॥८८॥

इस मन्त्रमें सिद्ध असिद्धकी अपेक्षा नहीं है, यह मंत्र अरि मित्रादि दोषसे दूषित नहीं होता । इसमन्त्रमें (तिथि, नक्षत्र, राशि, गणना, कुल अकुलादि) नियमानियमकी आवश्यकता नहीं है। साधक इस मन्त्रका जप करके आदिकालिकाको प्रसन्न करे ॥ ८८ ॥

ब्रह्मज्ञानमवाप्नोति श्रीमदाद्याप्रसादतः ।
ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्यो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥८९॥

(इस मन्त्रका जप करनेपर) आदिकालिकाके प्रसादसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होजाता है,इसकारण ब्रह्मज्ञानी मनुष्यके जीवन्मुक्त होनेमें कोई सन्देह नहीं ॥ ८९ ॥

न च प्रयासबाहुल्यं कायक्लेशोऽपि न प्रिये ।
आद्यकालीसाधकानां साधनं सुखसाधनम् ॥९०॥

साधकलोग इस मन्त्रको सुखसे साधन कर सकते हैं । हे प्रिये ! न इस मन्त्रके अधिक साधनमें परिश्रम है, न काय क्लेश ही है ॥९०॥

चित्तसंशुद्धिरेवात्र मान्त्रिणां फलदायिनी ॥ ९१ ॥

इस आदिकालिकाके मंत्रमें चित्तकी शुद्धि होते ही साधक अभीष्ट फलको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ९१ ॥

यावन्न चित्तकलिलं हातुमुत्सहते व्रती ।
तावत्कर्म प्रकुर्वीत कुलभक्तिसमन्वितः ॥ ९२ ॥

जबतक चित्तकी कलुषता निवारण करनेमें सामर्थ्य न रखता हो उतने दिनतक साधक कुलभक्तिसे युक्त हो कर्मका अनुष्ठान करे ॥ ९२ ॥

यथावद्विहितं कर्म चित्तशुद्धेर्हि कारणम् ।
आदौ मन्त्रं गुरोर्वक्त्राद्गृह्णीयाद्ब्रह्ममन्त्रवत् ॥९३॥

क्योंकि यथाविधिसे कहा हुआ कर्मानुष्ठान ही चित्तकी शुद्धिका कारण है। पहले ब्रह्ममन्त्रके समान यह मंत्र भी गुरुके मुखसे श्रवण करै ॥ ९३ ॥

प्रातःकृत्यादिनियमान्कृत्वा कुर्य्यात्पुरस्क्रियाम् ।
चित्ते शुद्धे महेशानि ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।
ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने कृत्याकृत्यं न विद्यते ॥ ९४ ॥

इसके उपरान्त प्रातःकृत्यादि नियमानुष्ठान करके पुरश्चरण करे। हे महेशानि ! चित्तके शुद्ध होनेसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, इस कारण जब ब्रह्मज्ञान हो जाता है तब फिर कृत्याकृत्यकी आवश्यकता नहीं रहती ॥ ९४ ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

कुलं किं परमेशान कुलाचारश्च किं विभो ।
लक्षणं पञ्चतत्त्वस्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥९५॥

पार्वतीजीने कहा—हे परमेश्वर ! हे विभो ! कुल क्या है ? कुलाचार किसको कहते हैं ? और पंचतत्त्वके लक्षण कैसे हैं ? इन सब बातोंको सिद्धान्तरूपसे जाननेकी मेरी (अत्यन्त) अभिलाषा है ॥ ९५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

सम्यक्पृष्टं कुलेशानि साधकानां हितैषिणी ।
कथयामि तव प्रीत्यै यथावदवधारय ॥ ९६ ॥

श्रीसदाशिवने कहा—हे कुलेश्वरि ! तुम साधक लोगोंका हित करनेवाली हो; तुमने श्रेष्ठ विषय पूछा है । तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं सब बातें प्रकाशित करता हूं; तुम सुनो९६॥

जीवः प्रकृतितत्त्वं च दिक्कालाकाशमेव च ।
क्षित्यप्तेजोवायवश्च कुलमित्यभिधीयते ॥ ९७ ॥

जीव, प्रकृतितत्त्व, दिक्, काल, आकाश, पृथ्वी, अप (जल), तेज और वायु यह नव कुल कहे जाते हैं ॥ ९७॥

ब्रह्मबुद्ध्या निर्विकल्पमेतेष्वावरणं च यत् ।
कुलाचारः स एवाद्ये धर्म्मकामार्थमोक्षदः॥ ९८ ॥

हे आद्ये ! (इन जीवादि नव कुलोंमें) ब्रह्मविषयिणी बुद्धिसे नानाविध कल्पनाशून्य जो आवरण हैं, वही कुलाचार कहा जाता है । इस कुलाचारसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों फल मिलते हैं ॥ ९८ ॥

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैस्तपोदानदृढव्रतैः ।
क्षीणाघानां साधकानां कुलाचारे मतिर्भवेत्॥९९॥

जिन्होंने तप, दान और दृढ़व्रतादि करके जन्म जन्मान्तरमें बहुतसा पुण्य इकट्ठा किया है, उन्हीं सब पापरहित साधकोंकी मति कुलाचारमें लगती है ॥ ९९ ॥

कुलाचारगता बुद्धिर्भवेदाशु सुनिर्म्मला ।
तदाद्याचरणाम्भोजे मतिस्तेषां प्रजायते ॥ १००॥

कुलाचारमें लगनेपर बुद्धि अतिशीघ्र विमल हो जाती है। बुद्धिकी विमलता होनेपर आदिदेवीके चरणकमलमें मन लग जाता है ॥ १०० ॥

सद्गुरोः सेवया प्राप्य विद्यामेनां परात्पराम् ।
कुलाचाररता भूत्वा पञ्चतत्त्वैः कुलेश्वरीम् १०१॥

जो सद्गुरुकी सेवा करके परेसे परे मंत्ररूपी विद्याको प्राप्त करके कुलाचारमें निरत होकर पंचतत्त्वसे कुलेश्वरी ॥१०१॥

यजन्तः कालिकामाद्यां कुलज्ञाः साधकोत्तमाः ।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्व्रजन्त्यन्तेनिरामयम् १०२

आदिकालिकाकी पूजा करता है वही कुलज्ञ है, वही साधकोंमें श्रेष्ठ है और वही इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तकालमें मोक्षपदको पाता है ॥ १०२ ॥

महौषधं यज्जीवानां दुःखविस्मारकं महत् ।
आनन्दजनकं यच्च तदाद्यातत्त्वलक्षणम् ॥१०३॥

जो जीवात्माओंके दुःख दूर करनेमें महौषधरूप और अत्यन्त आनन्ददायक है वही आदितत्त्वका लक्षण है॥१०३॥

असंस्कृतं च यत्तत्त्वं मोहदं भ्रमकारणम् ।
विवादरोगजननं त्याज्यं कौलैः सदा प्रिये॥१०४॥

परन्तु आदितत्त्व शुद्ध न होनेपर केवल मोह और भ्रमका कारण हो उठता है तथा विवाद और रोगका कारण हो जाता

है, अतएव हे प्रिये ! कौलिकगण (संस्कार न किये हुए तत्त्व-को) सदा छोड़ दें ॥ १०४ ॥

ग्राम्यवायव्यवन्यानामुद्भूतं पुष्टिवर्द्धनम् ।
बुद्धितेजोबलकरं द्वितीयं तत्त्वलक्षणम् ॥१०५॥

ग्राम्य (छागादि), वायव्य-तित्तिरी (तीतर) आदि पक्षी वन्य-मृगादि इनकी देहसे उत्पन्न पुष्टिकर और बुद्धि, तेज और बलदाता, यही दूसरे तत्त्वका लक्षण है ॥ १०५ ॥

जलोद्भवं यत्कल्याणि कमनीयं सुखप्रदम् ।
प्रजावृद्धिकरं चापि तृतीयं तत्त्वलक्षणम् ॥१०६॥

हे कल्याणि ! जलमें उत्पन्न हुआ तीसरा तत्त्व वह है जो प्रजाओंकी वृद्धि करनेवाला और सुन्दर सुखदायी है १०६॥

सुलभं भूमिजातं च जीवानां जीवनं च यत् ।
आयुर्मूलं त्रिजगतां चतुर्थं तत्त्वलक्षणम् ॥१०७॥

पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ जीवका जीवनस्वरूप त्रिलोकीकी आयुका मूल कारण चौथा तत्त्व है ॥ १०७ ॥

महानन्दकरं देवि प्राणिनां सृष्टिकारणम् ।
अनाद्यन्तं जगन्मूलं शेषतत्त्वस्य लक्षणम् ॥१०८॥

हे देवि ! अत्यन्त आनन्दका करनेवाला, प्राणियोंकी उत्पत्तिका हेतु, आदि और अन्तरहित जगत्का मूलकारण है । इस प्रकार पिछले तत्त्वके लक्षण कहे हैं ॥ १०८ ॥

आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये ।
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवीं शिवे॥१०९॥

हे कल्याणस्वरूपे प्रिये ! तेज ही आदितत्त्व है, पवन दूसरा तत्त्व, तीसरा जल और चौथा तत्त्व पृथ्वीको जानो।१०९

पञ्चमं जगदाधारं वियद्विद्धि वरानने ॥११०॥

हे वरानने ! यह जगदाधार आकाशमण्डल ही पांचवाँ तत्त्व है ॥ ११० ॥

इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलं तत्त्वानि पञ्च च ।
आचारं कुलधर्म्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥१११॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे स्तोत्रकवचकुलतत्त्वलक्षणकथनं नाम सप्तमोल्लासः ॥ ७ ॥

हे कुलेश्वरि! जो मनुष्य इस प्रकारसे नव कुल, पंचतत्त्व और कुलधर्मके आचारको जानकर (कर्मानुष्ठान करता है) उसके जीवन्मुक्त होनेमें सन्देह नहीं ॥ १११ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादाबादानिवासि पं० बलदेव-प्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां स्तोत्रकवचकुलतत्त्वलक्षण-कथनं नाम सप्तमोल्लासः ॥ ७ ॥

अष्टमोल्लासः ८.

श्रुत्वा धर्मान्बहुविधान्भवानी भवमोचिनी ।
हिताय जगतां माता भूयः शङ्करमब्रवीत् ॥१॥

इसके उपरान्त भवपाशविमोचिनी जननी पार्वतीजीने इस प्रकार बहुविध धर्मविषय श्रवण करके जगत्के हितका अनुष्ठान करनेकी वासनासे फिर महादेवजीसे पूछा ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुतं बहुविधं धर्ममिहामुत्र सुखप्रदम् ॥
धर्मार्थकामदं विघ्नहरं निर्वाणकारणम् ॥२॥

श्रीदेवीजीने कहा–हे नाथ ! जो इस लोक और परलोकमें भी सुखका देनेवाला है, जिसके द्वारा धर्म, अर्थ और काम प्राप्त होता है । विघ्नोंके नाश करनेवाले और मुक्तिप्राप्तिके कारणस्वरूप बहुतसे धर्मविषय तुमसे सुने ॥ २ ॥

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि सर्वान् वर्णाश्रमान्विभो ।
तत्र ये विहिताचाराः कृपया वद तानपि ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! अब वर्ण और आश्रमके विषयको जाननेका अभिलाष करती हूं । आप कृपा करके वह सब और वर्णोंमें जैसा आचार विचार कहा गया है वह भली भाँतिसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

चत्वारः कथिता वर्णा आश्रमा अपि सुव्रते ।
आचाराश्चापि वर्णानामाश्रमाणां पृथक्पृथक् ॥ ४ ॥
कृतादौ कलिकाले तु वर्णाः पञ्च प्रकीर्तिताः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः सामान्य एव च ॥ ५ ॥

श्रीसदाशिव कहने लगे-हे सुव्रते ! सत्य युगादिमें चार वर्ण और आश्रम हैं और चारों वर्ण और आश्रमोंके आचार अलग अलग कहे गये हैं; परन्तु कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और साधारण यह पाँच प्रकारके वर्ण कहे हैं ४।५।

एतेषां सर्व्ववर्णानामाश्रमौ द्वौ महेश्वरि ।
तेषामाचारधर्मांश्च शृणुष्वाद्ये वदामि ते ॥ ६ ॥

हे आद्ये महेश्वरि ! इन समस्त ब्राह्मणादि वर्णोंके आश्रम दो प्रकारके हैं । तुमसे उन धर्म और आश्रमोंके आचार धर्मका वर्णन करता हूं; श्रवण करो ॥ ६ ॥

पुरैव कथितं तावत्कलिसम्भवचेष्टितम् ।
तपःस्वाध्यायहीनानां नृणामल्पायुषामपि ।
क्लेशप्रयासाशक्तानां कुतो देहपरिश्रमः ॥ ७ ॥

हे देवि ! कलिकालके मनुष्योंका विषय पहले ही तुमसे कह आया हूं कि वह तपरहित और वेदपाठसे विरत होंगे। वे दुर्बलताके कारण क्लेश परिश्रम करनेको असमर्थ होंगे

और अल्पायु होंगे, इस कारण उनसे दैहिक परिश्रमका होना किस प्रकारसे सम्भव है ?॥ ७ ॥

ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति वानप्रस्थोऽपि न प्रिये ।
गार्हस्थ्यो भैक्षुकश्चैव आश्रमौ द्वौ कलौ युगे ॥८॥

हे प्रिये ! कलियुगमें ब्रह्मचर्याश्रम नहीं है, वानप्रस्थाश्रम भी नहीं है, किंतु कलिकालमें मनुष्योंके गार्हस्थ्य और भैक्षुक नामक यह दो आश्रम निरूपित हुए हैं ॥ ८ ॥

गृहस्थस्य क्रियाः सर्व्वा आगमोक्ताः कलौ शिवे ।
नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः कदापि गृहमेधिनाम् ॥९॥

हे शिवे ! कलिकालमें गृहस्थलोग आगममें कही हुई विधिके अनुसार कर्मानुष्ठान करेंगे और किसी प्रकारकी विधिका सहारा ले क्रियानुष्ठान करनेसे गृहस्थगण किसी प्रकारसे सिद्धि प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ ९ ॥

भैक्षुकेऽप्याश्रमे देवि वेदोक्तं दण्डधारणम् ।
कलौ नास्त्येव तत्त्वज्ञ यतस्तच्छ्रौतसंस्कृतिः १०॥

हे तत्त्वके जाननेवाली देवि ! कलियुगके विषे भैक्षुकाश्रममें भी वेदोक्त दण्डधारण करनेकी विधि नहीं है, क्योंकि वह वैदिक संस्कार है ॥ १० ॥

शैवसंस्काराविधिनाऽवधूताश्रमधारणम् ।
तदेव कथितं भद्रे संन्यासग्रहणं कलौ ॥ ११ ॥

हे भद्रे ! कलिकालमें शैवसंस्कारकी विधिके अनुसार अवधूताश्रम धारण करनेको ही संन्यास ग्रहण करना कहते हैं ॥ ११ ॥

विप्राणामितरेषां च वर्णानां प्रबले कलौ ।
उभयत्राश्रमे देवि सर्व्वेषामधिकारिता ॥ १२ ॥

हे देवि ! प्रबल कलियुगमें ब्राह्मणादि सब वर्ण इन दोनों आश्रमोंके अधिकारी होंगे ॥ १२ ॥

सर्वेषामेव संस्काराः कर्म्माणि शैववर्त्मना ।
विप्राणामितरेषां च कर्म्मलिङ्गं पृथक्पृथक् ॥ १३ ॥

ब्राह्मणादि सर्व वर्ण ही शैवविधिके अनुसारसे संस्कार और दूसरे कर्मोंका अनुष्ठान करेंगे । परन्तु ब्राह्मण व और वर्णोंके कर्म चिह्न अलग अलग सम्पादित होंगे ॥ १३ ॥

जातमात्रो गृहस्थः स्यात्संस्कारादाश्रमी भवेत् ।
गार्हस्थ्यं प्रथमं कुर्याद्यथाविधि महेश्वरि ॥ १४ ॥

मनुष्यगण जन्म लेते ही गृहस्थ होते हैं, फिर संस्कार होनेपर आश्रमी होते हैं । हे महेश्वरि ! कलियुगमें प्रथम ही यथाविधानसे गृहस्थाश्रमका अवलम्बन करै ॥ १४ ॥

तत्त्वज्ञाने समुत्पन्ने वैराग्यं जायते यदा ।
तदा सर्वं परित्यज्य संन्यासाश्रममाचरेत् ॥ १५ ॥

फिर तत्त्वज्ञान होजानेपर जब हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होजाय तब सबको छोड़कर संन्यासाश्रमको धारण करे १५ ॥

विद्यामुपार्ज्जयेद्बाल्ये धनं दारांश्च यौवने।
प्रौढे धर्म्याणि कर्माणि चतुर्थे प्रव्रजेत्सुधीः॥१६॥

बालकपनमें विद्या पढ़े, जवानीमें धन उपार्जन करे और विवाह करे। प्रौढ़ समयमें धर्मकर्मका अनुष्ठान करे और बुढ़ापेमें संन्यास आश्रमको ग्रहण करे॥ १६॥

मातरं पितरं वृद्धं भार्य्यां चैव पतिव्रताम्।
शिशुं च तनयं हित्वा नावधूताश्रमं व्रजेत्॥१७॥

वृद्ध, पिता, माता, पतिव्रता भार्या, बाल्यावस्थायुक्त पुत्र इनको छोड़कर कभी अवधूताश्रमको ग्रहण न करे॥ १७॥

मातॄः पितॄञ्छिशून्दारान्स्वजनान्बान्धवानपि।
यः प्रव्रजति हित्वैतान्स महापातकी भवेत्॥१८॥

जो पुरुष माता, पिता, शिशु पुत्र, भार्या और संगी बन्धु बान्धवादिको छोड़कर संन्यासको ग्रहण करता है वह महापातकी होता है॥ १८॥

मातृहा पितृहा स स्यात्स्त्रीवधी ब्रह्मघातकः।
असंतर्प्य स्वपित्रादीन्यो गच्छेद्भिक्षुकाश्रमे॥१९॥

जो पुरुष विना अपने माता पिताको संतुष्ट किये भिक्षुकाश्रममें गमन करता है उसको माता पिता और स्त्रीहत्याका पाप लगता है और वह (निःसन्देह) ब्रह्महत्याके पापसे कलुषित होगा॥ १९॥

ब्राह्मणो विप्रभिन्नश्च स्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रियाम् ।
शैवेन वर्त्मना कुर्य्यादेष धर्मः कलौ युगे ॥ २० ॥

ब्राह्मणवर्ण और दूसरे वर्ण शैवमार्गके अनुसार ही अपने अपने वर्णकी क्रियाका अनुष्ठान करे । यह कलियुगका (सनातन) धर्म है ॥ २० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

को वा धर्म्मो गृहस्थस्य भिक्षुकस्य च किं विभो ।
विप्रस्य विप्रभिन्नानां संस्कारादीनि मे वद ॥ २१ ॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे विभो ! गृहस्थोंका धर्म क्या है ? भिक्षुकोंका धर्म किस प्रकारका है ? ब्राह्मण व दूसरे वर्णोंके संस्कारादि क्या हैं ? यह सब मुझसे भलीभाँति कहिये ॥ २१ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

गार्हस्थ्यं प्रथमं धर्मं सर्वेषां मनुजन्मनाम् ।
तदेव कथयाम्यादौ शृणु कौलिनि तत्त्वतः ॥ २२ ॥

श्रीसदाशिवने कहा—हे कौलिनि ! गृहस्थधर्म ही सब मनुष्योंका प्रथम धर्म कहा जाता है, अब पहले गृहस्थधर्मका वर्णन करता हूं, उसको सुनो ॥ २२ ॥

ब्रह्मनिष्ठो गृहस्थः स्याद्ब्रह्मज्ञानपरायणः ।
यद्यत्कर्म प्रकुर्वीत तद्ब्रह्मणि समर्पयेत् ॥ २३ ॥

गृहस्थोंको चाहिये कि ब्रह्मनिष्ठ हों, ब्रह्मज्ञानमें निरत हों

और वे जिस जिस कर्मका अनुष्ठान करें वह समस्त ब्रह्मको समर्पण करें ॥ २३ ॥

न मिथ्याभाषणं कुर्य्यान्न च शाठ्यं समाचरेत् ।
देवतातिथिपूजासु गृहस्थो निरतो भवेत्॥ २४ ॥

गृहस्थोंको मिथ्या वाक्य नहीं कहना चाहिये, कपटाचरणका छोड़ना और देवता व अतिथिका सत्कार करना चाहिये ॥ २४ ॥

मातरं पितरं चैव साक्षात्प्रत्यक्षदेवताम् ।
मत्वा गृही निषेवेत सदा सर्वप्रयत्नतः ॥ २५ ॥

अपने मातापिताको साक्षात् देवतास्वरूप जानकर गृहस्थोंको सदा उनकी सेवाका यत्न करना चाहिये ॥ २५ ॥

तुष्टायां मातरि शिवे तुष्टे पितरि पार्वति ।
तव प्रीतिर्भवेद्देवि परब्रह्म प्रसीदति ॥ २६ ॥

हे पार्वति ! हे शिवे ! जो पुरुष मातापिताको संतुष्ट करता है उसपर तुम प्रसन्न होती हो । हे देवि ! परब्रह्म भी उसपर प्रसन्न हो जाता है ॥ २६ ॥

त्वमाद्ये जगतां माता पिता ब्रह्म परात्परम् ।
युवयोः प्रीणनं यस्मात्तस्मात्किं गृहिणां तपः॥२७॥

हे आद्ये ! तुम्हीं जगत्की माता और परात्पर ब्रह्म ही जगत्के पिता हैं । इस कारण जो-गृहस्थलोग मातापितारूप

तुमको संतुष्ट करते हैं उनको तप करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ २७ ॥

आसनं शयनं वस्त्रं पानं भोजनमेव च ।
तत्तत्समयमाज्ञाय मात्रे पित्रे नियोजयेत् ॥२८॥

सुअवसर देखकर मातापिताके लिये आसन, सेज, वस्त्र, पानी और भोजनादि देना चाहिये ॥ २८ ॥

श्रावयेन्मृदुलां वाणीं सर्वदा प्रियमाचरेत् ।
पित्रोराज्ञानुसारी स्यात्सत्पुत्रः कुलपावनः॥ २९ ॥

कुलका पवित्र करनेवाला सुपुत्र उनसे मीठे मीठे वचन कहे ! सदा वह काम करे जो उन माता पिताको अच्छा लगे और सदा उनकी आज्ञामें रहे ॥ २९ ॥

औद्धत्यं परिहासं च तर्ज्जनं परिभाषणम् ।
पित्रोरग्रे न कुर्वीत यदीच्छेदात्मनो हितम्॥ ३०॥

जो अपना हित चाहे वह कदापि माता पिताके आगे ऊधम न मचावे और परिहास न करे तथा उनके निकट (सेवकादि किसीको) डाटे या बुरे वचन न कहे ॥ ३० ॥

मातरं पितरं वीक्ष्य नत्वोत्तिष्ठेत्ससंभ्रमः ।
विनाज्ञया नोपविशेत्संस्थितः पितृशासने॥ ३१ ॥

मातापिताको देखते ही साधक प्रणाम करके संभ्रमपूर्वक उठ बैठ और विना उनकी आज्ञा लिये आसनपर न बैठे; उनकी आज्ञाके वशमें रहे ॥ ३१ ॥

विद्याधनमदोन्मत्तो यः कुर्य्यात्पितृहेलनम् ।
स याति नरकं घोरं सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ३२ ॥

जो पुरुष विद्या और धनके मदसे मत्त होकर माता-पिताको कुछ नहीं समझता वह सब धर्मोंके बाहर होकर घोर नरकमें जाता है ॥ ३२ ॥

मातरं पितरं पुत्रं दारानतिथिसोदरान् ।
हित्वा गृही न भुञ्जीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि॥ ३३॥

यदि प्राण कण्ठमें आजायँ तो भी गृहस्थोंको चाहिये कि माता पिता, पुत्र, भाई, अतिथि और सहोदर विना इनको दिये कदापि भोजन न करै ॥ ३३ ॥

वञ्चयित्वा गुरून्बन्धून्यो भुङ्क्ते स्वोदरम्भरः ।
इहैव लोके गर्ह्योऽसौ परत्र नारकी भवेत् ॥३४॥

जो पुरुष माता, पिता, भ्राता, बन्धु बान्धवादि स्वजनोंको न देकर अपना ही पेट भरनेको भोजन करता है वह इस लोकमें महानिन्दित और परलोकमें घोर नरकमें पड़ता है३४

गृहस्थो गोपयेद्दारान्विद्यामभ्यासयेत्सुतान् ।
पोषयेत्स्वजनान्बन्धूनेष धर्मः सनातनः ॥ ३५ ॥

गृहस्थोंको अपनी भार्याकी रक्षा करनी चाहिये, पुत्रोंको विद्या पढ़ानी चाहिये, स्वजन और बन्धु-बान्धवोंका भरण पोषण करना चाहिये, यही उनका सनातन धर्म है ॥३५॥

जनन्या वर्द्धितो देहो जनकेन प्रयोजितः[1] ।
स्वजनैःशिक्षितःप्रीत्या सोऽधमस्तान्परित्यजेत् ३६॥

मातासे अपने शरीरकी पुष्टि होती है और जन्मदाता पितासे देहकी उत्पत्ति होती है। अपने सगे प्रीतिके कारण शिक्षा देते हैं, बस, इन सबका त्याग करदेनेवाला नराधम होता है (इसमें सन्देह नहीं है)॥ ३६ ॥

एषामर्थे महेशानि कृत्वा कष्टशतान्यपि ।
प्रीणयेत्सततं शक्त्या धर्मो ह्येष सनातनः ॥३७॥

हे महेशानि ! सैकडों कष्ट स्वीकार करके भी शक्तिपूर्वक इन लोगोंको संतुष्ट करे, यही सनातनधर्म है ॥ ३७ ॥

स धन्यः पुरुषो लोके स कृती परमार्थवित् ।
ब्रह्मनिष्ठः सत्यसन्धो यो भवेद्भुवि मानवः ॥३८॥

जो पुरुष, ब्रह्मनिष्ठ और सत्यप्रतिज्ञ होकर कर्मानुष्ठान करता है पृथ्वीमें वही महापुरुष धन्य है और वही कुशल पुरुष परमार्थज्ञानको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ३८ ॥

न भार्य्यां ताडयेत्क्वापि मातृवत्पालयेत्सदा ।
न त्यजेद्घोरकष्टेऽपि यदि साध्वी पतिव्रता ॥३९॥

गृहस्थोंको चाहिये कि वह कभी अपनी भार्याको ताडित न करे; किन्तु सदा माताके समान पालन करे। चाहे जैसा घोर कष्ट पड़जाय परंतु साध्वी भार्याको (कदापि) न छोड़े३९॥

[1] 'जनकेन प्रपोषितः ।' इति पाठान्तरम् ।

स्थितेषु स्वीयदारेषु स्त्रियमन्यां न संस्पृशेत्।
दुष्टेन चेतसा विद्वानन्यथा नारकी भवेत् ॥४०॥

अपनी भार्याके रहते कदापि दूसरी स्त्रीको नहीं स्पर्श करे। मनही मनमें परायी स्त्रीके स्पर्शकी कल्पना करलेनेसे मन विकारको प्राप्त होजाता है, अतः बुद्धिमान्‌को चाहिये कि मनमें भी परायी स्त्रीकी कामना न करे। क्योंकि ऐसा करनेसे घोरनरकमें गिरना पड़ता है ॥ ४० ॥

विरले शयनं वासं त्यजेत्प्राज्ञः परस्त्रिया।
अयुक्तभाषणं चैव स्त्रियं शौर्य्यं न दर्शयेत् ॥४१॥

बुद्धिमान् मनुष्योंको उचित है कि परायी स्त्रीके साथ एकान्तमें शयन या एकान्तमें वास न करे। किसी स्त्रीसे अनुचित बात न कहे और शूरता न दिखावे ॥ ४१ ॥

धनेन वाससा प्रेम्णा श्रद्धया मृदुभाषणैः।
सततं तोषयेद्दारान्नाप्रियं क्वचिदाचरेत् ॥ ४२ ॥

धन, वस्त्र, प्रेम, श्रद्धा और कोमल वचनोंद्वारा सदा अपनी भार्याको संतुष्ट करे, कभी उसको बुरा लगनेवाला आचरण न करे ॥ ४२ ॥

उत्सवे लोकयात्रायां तीर्थेष्वन्यनिकेतने।
न पत्नीं प्रेषयेत्प्राज्ञः पुत्रामात्यविवर्जिताम् ॥४३॥

श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुषको चाहिये कि उत्सवमें लोकयात्रामें,

तीर्थमें और पराये घरमें पुत्र अथवा और किसी सगेको विना साथ किये अकेली अपनी स्त्रीको कहीं न भेजे ॥ ४३ ॥

यस्मिन्नरे महेशानि तुष्टा भार्य्या पतिव्रता ।
सर्वो धर्मः कृतस्तेन भवति प्रिय एव सः ॥ ४४ ॥

हे महेशानि ! जिस पुरुषपर पतिव्रता भार्या संतुष्ट रहती है वह सब धर्मोंसे उत्पन्न हुए फलको प्राप्त करता है और वह तुम्हारा प्रीतिपात्र होता है ॥ ४४ ॥

चतुर्वर्षावधिसुतान् लालयेत्पालयेत्पिता ।
ततः षोडशपर्य्यन्तं गुणान्विद्यां च शिक्षयेत् ॥ ४५ ॥

पिताको चार वर्षतक पुत्रका लालन पालन करना चाहिये सोलह वर्षतक विद्या और गुण सिखाने चाहिये ॥ ४५ ॥

विंशत्यब्दाधिकान्पुत्रान्प्रेरयेद्गृहकर्मसु ।
ततस्तांस्तुल्यभावेन मत्वा स्नेहं प्रदर्शयेत् ॥ ४६ ॥

फिर बीसवर्षसे अधिक अवस्थावालेपुत्रको गृहकार्यमें लगादे, तदनन्तर अपने समान जानकर स्नेह दिखावे ॥ ४६ ॥

कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयातियत्नतः ।
देया वराय विदुषे धनरत्नसमन्विता ॥ ४७ ॥

इसीप्रकार कन्याका भी यत्नसे पालन करके उसको अत्यन्त यत्नके साथ शिक्षा दे। फिर धनरत्नसे शोभायमान करके ज्ञानवान् वरको दान कर देना चाहिये ॥ ४७ ॥

एवं क्रमेण भ्रातॄंश्च स्वसृभ्रातृसुतानपि ।
ज्ञातीन्मित्राणि भृत्यांश्च पालयेत्तोषयेद्गृही॥ ४८ ॥

इसी प्रकार गृहस्थोंको बन्धु, बान्धव, भानजा, भतीजा, अपने जातिवाले, मित्र और सेवकोंका भरण पोषण करना उचित है । और इनको संतुष्ट भी करना चाहिये ॥ ४८ ॥

ततः स्वधर्मनिरतानेकग्रामनिवासिनः ।
अभ्यागतानुदासीनान्गृहस्थः परिपालयेत् ॥४९॥

फिर गृहस्थके (समर्थ होनेपर, अपने धर्मके मनुष्योंका एक ग्रामवासी, अभ्यागत (पाहुने) व उदासियोंका प्रतिपालन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

यद्येवं नाचरेद्देवि गृहस्थो विभवे सति ।
पशुरेव स विज्ञेयः स पापी लोकगर्हितः ॥५०॥

हे देवि ! विभव होनेपर भी गृहस्थ यदि ऐसा आचरण न करे तो उसको घोर पापमें लिप्त लोकनिन्दित और पशुके समान मानना चाहिये ॥ ५० ॥

निद्रालस्यं देहयत्नं केशविन्यासमेव च ।
आसक्तिमशने वस्त्रे नातिरिक्तं समाचरेत् ॥५१॥

निद्रा, आलस्य, शरीरका यत्न, बाल काढ़ना, खाने पहरनेमें आसक्ति इन बातोंको अधिकाईसे न करे ॥ ५१ ॥

युक्ताहारो युक्तनिद्रो मितवाङ्मितमैथुनः ।
स्वच्छो नम्रः शुचिर्दक्षो युक्तः स्यात्सर्वकर्मसु ५२
शूरः शत्रौ विनीतः स्याद्बान्धवे गुरुसन्निधौ ।
जुगुप्सितान्न मन्येत नावमन्येत मानिनः ॥५३॥

गृहस्थोंको परिमित भोजन और परिमित निद्राका सेवन करना चाहिये । परिमाणसे बोलना चाहिये, परिमाणसे मैथुन करना चाहिये । कपट छोड़ देना चाहिये । सदा शुद्ध, सब कर्ममें निरालस्य और नम्र होकर समय बिताना चाहिये। शत्रुके निकट शूरता और बन्धु बान्धव व गुरुके समीप विनयका दिखाना योग्य है । निंदित जनोंका आदर करना योग्य नहीं है और मानीजनोंका सम्मान करना चाहिये॥५२॥५३॥

सौहार्दं व्यवहारांश्च प्रवृत्तिं प्रकृतिं नृणाम् ।
सहवासेन तर्कैश्च विदित्वा विश्वसेत्ततः ॥५४॥

साथ रहके और भलीभाँति शोच विचारके मनुष्यका सौहार्द, व्यवहारादि और स्वभाव व प्रवृत्ति जानकर तो उसका विश्वास करना चाहिये ॥ ५४ ॥

त्रसेद्द्विष्टुरपि क्षुद्रात्समयं वीक्ष्य बुद्धिमान् ।
प्रदर्शयेदात्मभावान्नैव धर्मं विलङ्घयेत् ॥५५॥

बुद्धिमान् पुरुषको लघु शत्रुसे भी भय करना चाहिये और समयानुसार अपना प्रभाव दिखावे, परन्तु कदापि धर्ममार्गको नहीं छोड़े ॥ ५५ ॥

स्वीयं यशः पौरुषं च गुप्तये कथितं च यत्।
कृतं यदुपकाराय धर्मज्ञो न प्रकाशयेत् ॥५६॥

धर्मवान् पुरुषको चाहिये कि पराया उपकार करके उसको प्रकाशित नहीं करे, अपने यश और पौरुषका बखान भी न करे। परायी गुप्त बात भी किसीसे न कहे ॥ ५६ ॥

जुगुप्सितप्रवृत्तौ च निश्चितेऽपि पराजये।
गुरुणा लघुना चापि यशस्वी न विवादयेत् ५७॥

यशस्वी पुरुषको उचित है कि निश्चय पराजयकी सम्भावना होनेपर भी कभी लोकगर्हित कार्य नहीं करे और छोटे या बड़े पुरुषके साथ कभी लड़ाई झगड़ा न करे ॥ ५७ ॥

विद्याधनयशोधर्मान्यतमान उपार्जयेत्।
व्यसनं चासतां सङ्गं मिथ्याद्रोहं परित्यजेत्॥५८॥

यत्नसे विद्या, धन, यश और धर्मका उपार्जन करे । व्यसन, असज्जनसंसर्ग, मिथ्यावचन, क्लेशादि छोड़ देना चाहिये ॥ ५८ ॥

अवस्थानुगताश्चेष्टाः समयानुगताः क्रियाः।
तस्मादवस्थां समयं वीक्ष्य कर्म समाचरेत् ॥५९॥

चेष्टा अवस्थाकी अनुगामिनी है, क्रिया समयकी अनुगामिनी है, अतएव अवस्था और समयके अनुसार ही कर्मानुष्ठान करे ॥ ५९ ॥

योगक्षेमरतो दक्षो धार्मिकः प्रियबान्धवः ।
मितवाङ्मितहासःस्यान्मान्या ये तु विशेषतः ॥६०॥

गृहस्थोंको योग और क्षेममें अनुरागी होना चाहिये, दक्ष (चतुर) धार्मिकके समान न्यायका आचरण करे। बन्धुओंपर सौहार्द (मित्रता) दिखावे, विशेष करके माननीयजनोंके निकट परिमित वचन कहे और उनके निकट बैठकर बहुत हँसे नहीं ॥६०॥

जितेंद्रियः प्रसन्नात्मा सुचिन्त्यः स्याद्दृढव्रतः ।
अप्रमत्तो दीर्घदर्शी मात्रास्पर्शान्विचारयेत् ॥६१॥

गृहस्थको जितेन्द्रिय, प्रसन्नचित्त, सुचिन्त्य, दृढव्रतधारी, अप्रमत्त और दीर्घदर्शी होना चाहिये। इन्द्रियोंकी वृत्तिके विषयमें भलीभाँति न विचार करके कोई काम न करे६१

सत्यं मृदु प्रियं धीरो वाक्यं हितकरं वदेत् ।
आत्मोत्कर्षं तथा निन्दां परेषां परिवर्जयेत्॥६२॥

धीर पुरुषको (सदा) सत्य, मृदु, प्रिय और हितकारी वचन कहना चाहिये। अपनी बड़ाई और परायी निन्दा करना उचित नहीं है ॥ ६२ ॥

जलाशयाश्च वृक्षाश्च विश्रामगृहमध्वनि ।
सेतुः प्रतिष्ठितो येन तेन लोकत्रयं जितम्॥६३॥

मार्गमें जो पुरुष तालाब खुदवाता है, वृक्ष लगवाता है, विश्रामगृह (सराय) बनवाता है और सेतुकी प्रतिष्ठा

कराता है. वह पुरुष (पुण्यके फलसे) त्रिलोकीको जीत लेता है ॥ ६३ ॥

सन्तुष्टौ पितरौ यस्मिन्ननुरक्ताः सुहृद्गणाः ।
गायन्ति यद्यशो लोकास्तेन लोकत्रयं जितम्॥६४॥

जिसपर माता पिता सन्तुष्ट हैं, सुहृद्गण जिसमें अनुराग करते हैं और मनुष्य जिसके यशको गाते हैं वह पुरुष (पुण्यके फलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६४ ॥

सत्यमेव व्रतं यस्य दया दीनेषु सर्वथा ।
कामक्रोधौ वशे यस्य तेन लोकत्रयं जितम्॥६५॥

सत्य ही जिसका सनातन व्रत है, जो पुरुष दीन(दरिद्र) पर दया दिखाता है, काम और क्रोध जिसके वशमें हैं वह पुरुष (पुण्यके फलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६६ ॥

विरक्तः परदारेषु निःस्पृहः परवस्तुषु ।
दम्भमात्सर्यहीनो यस्तेन लोकत्रयं जितम् ॥६६॥

और जो पुरुष परनारीसे विरागी रहता है, पराये द्रव्यकी इच्छा नहीं करता, जो पुरुष दम्भ और मात्सर्यसे हीन है, वह पुरुष (पुण्यफलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६६ ॥

न बिभेति रणाद्यो वै संग्रामेऽप्यपराङ्मुखः ।
धर्मयुद्धे मृतो वापि तेन लोकत्रयं जितम् ॥६७॥

और जो पुरुष रणसे डरता नहीं, समरसे विमुख नहीं

होता और जो पुरुष धर्मयुद्धमें प्राण त्याग देता है, वह पुरुष (पुण्यफलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६७ ॥

असंशयात्मा सुश्रद्धः शाम्भवाचारतत्परः ।
मच्छासने हितो यश्च तेन लोकत्रयं जितम् ॥ ६८ ॥

जिसकी आत्मा सन्दिग्ध नहीं है, जो पुरुष श्रद्धायुक्त और शैवाचारमें निरत होकर मेरे शासनके वश रहता है, वह पुरुष (अपने पुण्यफलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ६८ ॥

ज्ञानिना लोकयात्रायै सर्वत्र समदृष्टिना ।
क्रियन्ते येन कर्माणि तेन लोकत्रयं जितम् ॥ ६९ ॥

जो ज्ञानी पुरुष लोकयात्रा सिद्ध करनेके लिये शत्रु या मित्र सबके ऊपर बराबर दृष्टि रखकर कर्मका अनुष्ठान करता है वह पुरुष (पुण्यके फलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६९ ॥

शौचं तु द्विविधं देवि बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
ब्रह्मण्यात्मार्पणं यत्तच्छौचमान्तरिकं स्मृतम् ॥ ७० ॥

हे देवि ! बाहिरी और आभ्यन्तरिक ये दो प्रकारके शौच हैं । ब्रह्ममें आत्मसमर्पण करनेको आन्तरिक शौच कहते हैं ॥ ७० ॥

अद्भिर्वा भस्मना वापि मलानामपकर्षणम् ।
देहशुद्धिर्भवेद्येन बहिःशौचं तदुच्यते ॥ ७१ ॥

जलसे या भस्मसे मलको दूर करके जो देहकी शुद्धि की जाती है उसको बाहिरी शौच कहते हैं ॥ ७१ ॥

गङ्गा नद्यो ह्रदा वाप्यस्तथा कूपाश्च क्षुल्लकाः ।
सर्वं पवित्रजननं स्वर्णदीक्रमतः प्रिये ॥ ७२ ॥

हे प्रिये ! गंगा, नदी, कुण्ड, वापी, छोटे कूप, स्वर्णदी (मन्दाकिनी)ये यथाक्रम शरीरको पवित्र करनेवाली हैं७२॥

भस्मात्र याज्ञिकं श्रेष्ठं मृत्स्ना तु मलवर्ज्जिता ।
वासोऽजिनतृणादीनि मृद्वज्जानीहि सुव्रते ॥७३॥

हे सुव्रते ! बाहिरी शौचके विषयमें याज्ञिक भस्मके द्वारा ही स्नान श्रेष्ठ है । निर्मल मृत्तिकासे भी ऐसा स्नान हो सकता है । वस्त्र, मृगचर्म, तृणादि और मृत्तिका यह बराबर पवित्र हैं ॥ ७३ ॥

किमत्र बहुनोक्तेन शौचाशौचविधौ शिवे ।
मनः पूतं भवेद्येन गृहस्थस्तत्तदाचरेत् ॥ ७४ ॥

हे शिवे ! इस शौच और अशौचके विषयमें अधिक और क्या कहा जाय ! गृहस्थको वैसा आचरण करना चाहिये जिससे मन पवित्र होजाय ॥ ७४ ॥

निद्रान्ते मैथुनस्यान्ते त्यागान्ते मलमूत्रयोः ।
भोजनान्ते मले स्पृष्टे बहिःशौचं विधीयते ॥७५॥

निद्राके पश्चात्, स्त्रीभोगके पीछे, मल मूत्र त्यागनेपर,

भोजनके बाद, अथवा मलस्पर्श होनेपर बाहिरी शौच शास्त्रमें लिखा है ॥ ७५ ॥

सन्ध्या त्रैकालिकी कार्य्या वैदिकी तान्त्रिकी क्रमात्
उपासनाया भेदेन पूजां कुर्य्याद्यथाविधि ॥७६॥

त्रिकालिका वैदिकी और तांत्रिकी संध्या क्रमानुसार करनी चाहिये और उपासनाके भेदसे यथाविधान पूजा करे ॥७६॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकानां गायत्रीं जपतां प्रिये ।
ज्ञानाद्ब्रह्मेति तद्वाच्यं सन्ध्या भवति वैदिकी ७७॥

हे प्रिये ! जो लोग ब्रह्ममंत्रके उपासक हैं वे जिस समय गायत्री जप करें तो गायत्रीका प्रतिपाद्य ब्रह्मको समझें, ऐसे समझनेसे वैदिक संध्या हो जाती है ॥ ७७ ॥

अन्येषां वैदिकी सन्ध्या सूर्योपस्थानपूर्वकम् ।
अर्घ्यदानं दिनेशाय गायत्रीजपनं तथा ॥ ७८ ॥

जो ब्रह्मोपासक नहीं हैं उन लोगोंको सन्ध्योपासनाके समय सूर्यकी उपासना, सूर्यको अर्घ्य देना और (सूर्य भववानके अर्थ) गायत्रीका जप करना चाहिये ॥ ७८ ॥

अष्टोत्तरं सहस्रं वा शतं वा दशधापि वा ।
जपानां नियमो भद्रे सर्व्वत्राह्निककर्म्मणि ॥७९॥

हे भद्रे ! समस्त आह्निक कार्य करनेके समय एक सहस्र आठ (१००८), वा एक शत आठ (१०८) अथवा दश बार जप करनेका नियम है ॥ ७९ ॥

शूद्रसामान्यजातीनामधिकरोऽस्ति केवलम्।
आगमोक्तविधौ देवि सर्व्वसिद्धिस्ततो भवेत्॥८०॥

हे देवि! शूद्रजातिको और साधारण जातिको केवल तंत्रमें कहे हुए विधानमें ही अधिकार है। इससे ही उनको सब सिद्धि मिल जाती हैं॥ ८०॥

प्रातः सूर्योदयः कालो मध्याह्नस्तदनन्तरम्।
सायं सूर्य्यास्तसमयस्त्रिकालानामयं क्रमः॥८१॥

(त्रैकालिक संध्या करनेके निमित्त) सूर्य निकलनेके समय प्रातःकाल, तदुपरान्त मध्याह्नकाल, सूर्यके अस्तगमन समयमें सायंकाल, इस प्रकार त्रिकालका क्रम कहा है॥८१॥

श्रीदेव्युवाच।

विप्रादिसर्ववर्णानां विहिता तान्त्रिकी क्रिया।
त्वयैव कथिता नाथ सम्प्राप्ते प्रबले कलौ॥ ८२॥

श्रीदेवीजीने कहा–हे नाथ! आपने ही पहले कहा है कि जब कलियुग प्रबल होगा तब ब्राह्मणादि सब वर्णोंको केवल तांत्रिक अनुष्ठान ही करना चाहिये॥ ८२॥

तदिदानीं कथं देव विप्रान्वैदिककर्मणि।
नियोजयसि तत्सर्व्वं विशेषाद्वक्तुमर्हसि॥ ८३॥

हे देव! इस समय किस कारणसे तुम ब्राह्मणोंको वैदिक-कार्यमें लगाते हो, यह मुझसे भलीभाँति वर्णन करो॥ ८३॥

सत्यं ब्रवीषि तत्त्वज्ञे सर्वेषां तान्त्रिकी क्रिया ।
लोकानां भोगमोक्षाय सर्व्वकर्म्मसु सिद्धिदा ॥८४॥

श्रीसदाशिवने कहा—हे तत्त्वज्ञे ! तुमने यथार्थ कहा। कलियुगमें सब मनुष्योंके लिये केवल तान्त्रिक क्रिया श्रेष्ठ है, क्योंकि यह तांत्रिक अनुष्ठान भोग, मोक्ष और सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिको देता है ॥ ८४ ॥

इयं तु ब्रह्मसावित्री यथा भवति वैदिकी ।
तथैव तान्त्रिकी ज्ञया प्रशस्तोभयकर्म्मणि॥८५ ॥

पहली कही हुई ब्रह्मसावित्रीको भी जिस प्रकार वैदिकी कहा जाता है वैसे ही तान्त्रिकीको भी कहा जासकता है; यह गायत्री दोनों पक्षोंमें श्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥

अतोऽत्र कथितं देवि द्विजानां प्रबले कलौ ।
गायत्र्यामधिकारोऽस्ति नान्यमन्त्रेषु कर्हिचित्८६॥

हे देवि ! इसीसे मैंने इस स्थलमें कहा है कि, कलिके प्रबल होनेसे द्विजगणोंका गायत्रीमें अधिकार है, और किसी वैदिक मंत्रमें ऐसा अधिकार नहीं है ॥ ८६ ॥

ताराद्या कमलाद्या च वाग्भवाद्या यथाक्रमात् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां सावित्री कथिता कलौ॥८६॥

कलियुगमें ब्राह्मणोंकी गायत्रीके आगे "ओं" क्षत्रियोंकी गायत्रीके प्रथममें " श्रीं " वैश्योंकी गायत्रीके पहले 'ऐं" मिलाना चाहिये ॥ ८७ ॥

द्विजातीनां प्रभेदार्थं शूद्रेभ्यः परमेश्वरि।
सन्ध्येयं वैदिकी प्रोक्ता प्रागेवाह्निककर्मणाम् ८८॥

हे परमेश्वरि! शूद्रजातिसे द्विजातियोंको अलग रखनेके लिये उनका आह्निक करना प्रातःकालमें वैदिकसंध्याकी विधि कही है॥ ८८॥

अन्यथा शाम्भवैर्मार्गैः केवलैः सिद्धिभाग्भवेत्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतन्न संशयः॥८९॥

यदि वैदिक संध्याका अनुष्ठान न किया जाय तोभी केवल शिवजीके दिखाये हुए मार्गका अवलम्बन करनेसे ही सिद्धि प्राप्त होसकती है। यह निःसन्देह सत्य, सत्य और सब प्रकारसे सत्य है॥ ८९॥

कालात्ययेऽपि सन्ध्येयं कर्त्तव्या देववन्दिते।
ओंतत्सद्ब्रह्म चोच्चार्य मोक्षेच्छुभिरनातुरैः॥९०॥

हे सुरवन्दिते! जो लोग मुक्तिकी कामना करते हैं उनको संध्याका समय बीत जानेपर भी "ओंतत्सत् ब्रह्म" मंत्र पढ़ कर तांत्रिकी और वैदिकी संध्या कर लेनी चाहिये, परन्तु आतुरतामें कोई नियम नहीं है॥ ९०॥

आसनं वसनं पात्रं शय्यां पानं निकेतनम्।
गृह्यकं वस्तुजातं च स्वच्छात्स्वच्छं प्रशस्यते ९१

आसन, वस्त्र, पात्र, तेज, पान, गृह और गृहसामग्री यह वस्तुयें जितनी निर्मल हों उतनी ही अच्छी हैं॥ ९१॥

समाप्याह्निककर्म्माणि स्वाध्यायं गृहकर्म्म वा ।
गृहस्थो नियतं कुर्य्यान्नैव तिष्ठन्निरुद्यमः ॥ ९२ ॥

आह्निक कार्यको समाप्त करके गृहस्थको अध्ययन वा गृह-कर्म करना चाहिये, क्षणमात्र भी निरुद्यम होकर न रहे॥९२॥

पुण्यतीर्थे पुण्यतिथौ ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
जपं दानं प्रकुर्वाणः श्रेयसां निलयो भवेत् ॥९३॥

पुण्यतीर्थमें, पुण्यतिथिमें, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणमें जप और दान करनेसे मंगलको प्राप्त होता है ॥ ९३ ॥

कलावन्नगतप्राणा नोपवासः प्रशस्यते ।
उपवासप्रतिनिधावेकं दानं विधीयते ॥ ९४ ॥

कलिकालके मनुष्योंका प्राण अन्नमें है, अतएव इस युगमें उपवास श्रेष्ठ नहीं है, किन्तु कलियुगमें केवल दान देना ही उपवासका बदला कहा गया है ॥ ९४ ॥

कलौ दानं महेशानि सर्व्वसिद्धिकरं भवेत् ।
तत्पात्रं केवलं ज्ञेयो दरिद्रः सत्क्रियान्वितः॥९५॥

हे महेश्वरि ! कलियुगमें केवल दान करना ही सब सिद्धि-योंका कारण है, परन्तु केवल श्रेष्ठक्रियासे युक्त दीन दरिद्र पुरुष ही दानका पात्र कहा है ॥ ९५ ॥

मासवत्सरपक्षाणामारम्भदिनमम्बिके ।
चतुर्दश्यष्टमी शुक्ला तथैवैकादशी कुहूः॥ ९६ ॥

हे अम्बिके ! महीनेंके पहले दिन, वर्षके पहले दिन, पक्षके पहले दिन, चतुर्दशी, अष्टमी, शुक्लपक्षकी एकादशी, अमावास्या ॥ ९६ ॥

निजजन्मदिनं चैव पित्रोर्म्मरणवासरः ।
वेधोत्सवदिनं चैव पुण्यकालः प्रकीर्त्तितः ॥९७॥

अपना जन्म दिन, माता पिताका मरणदिन, वेध और उत्सवका ये सब दिन पुण्यकाल कहे जाते हैं ॥ ९७ ॥

गङ्गानदी महानद्यो गुरोः सदनमेव च ।
प्रसिद्धदेवता क्षेत्रं पुण्यतीर्थं प्रकीर्त्तितम् ॥ ९८ ॥

गंगानदी, महानदी, गुरुगृह, प्रसिद्धदेवता और क्षेत्र यह समस्त पुण्यतीर्थ कहे जाते हैं ॥ ९८ ॥

त्यक्त्वा स्वाध्ययनं पित्रोः शुश्रूषां दाररक्षणम् ।
नरकाय भवेत्तीर्थं तीर्थाय व्रजतां नृणाम् ॥९९॥

अध्ययन, माता पिताकी सेवा करना, तथा भार्याकी रक्षा करना इन सबको छोड़कर जो तीर्थमें जाता है उसके लिये तीर्थ नरकका कारण हो जाता है ॥ ९९ ॥

न तीर्थसेवा नारीणां नोपवासादिकाः क्रियाः ।
नैव व्रतानां नियमो भर्त्तुः शुश्रूषणं विना॥१००॥

स्त्रियोंके लिये पतिसेवाके सिवाय तीर्थयात्रा तथा उपवासका विधान नहीं है, न व्रत करनेके अनुष्ठानका विधान है१००॥

भर्त्तैव योषितां तीर्थं तपो दानं व्रतं गुरुः ।
तस्मात्सर्व्वात्मना नारी पतिसेवां समाचरेत् ॥ १०१

स्त्रियोंके लिये स्वामी ही तीर्थ, स्वामी ही तपस्या, स्वामी ही दान, स्वामी ही व्रत और स्वामी ही गुरु है । अतएव स्त्रीको स्वामिसेवा ही करना चाहिये ॥ १०१ ॥

पत्युः प्रियं सदा कुर्य्याद्वचसा परिचर्य्यया ।
तदाज्ञानुचरी भूत्वा तोषयेत्पतिबान्धवान् ॥ १०२॥

स्त्रियोंका कर्त्तव्य यही है कि वचनसे, सेवासे सदा स्वामीका प्रिय कार्य करे और सदा आज्ञामें रहकर पतिको और पतिके भाई बन्धुओंको सन्तुष्ट करे ॥ १०२ ॥

नेक्षेत्पतिं क्रूरदृष्ट्या श्रावयेन्नैव दुर्व्वचः ।
नाप्रियं मनसा वापि चरेद्भर्त्तुः पतिव्रता ॥ १०३॥

पतिको क्रूरदृष्टिसे नहीं देखे, न दुर्वाक्य सुनावे और पतिव्रता नारी मनसे भी स्वामीका अप्रिय कार्य न करे॥ १०३॥

कायेन मनसा वाचा सर्वदा प्रियकर्म्मभिः ।
या प्रीणयति भर्त्तारं सैव ब्रह्मपदं लभेत् ॥ १०४॥

जो स्त्री मन, वचन, कायसे और प्रियकार्य करके सदा स्वामीको संतुष्ट रखती है वह ब्रह्मपदको प्राप्त कर सकती है १०४

नान्यवक्त्रं निरीक्षेत नान्यैः सम्भाषणं चरेत् ।
नचाङ्गं दर्शयेदन्यान्भर्त्तुराज्ञानुसारिणी ॥ १०५॥

स्त्रियोंको और पुरुषका मुँह नहीं देखना चाहिये, औरके साथ बात नहीं करनी चाहिये, और पुरुषको शरीर नहीं दिखावे, किंतु सदा स्वामीकी आज्ञामें रहे ॥ १०५ ॥

तिष्ठेत्पित्रोर्वशे बाल्ये भर्त्तुः सम्प्राप्तयौवने।
वार्द्धक्ये पतिबन्धूनां न स्वतन्त्रा भवेत्क्वचित् १०६

बालकपनके समय पतिकी अधीनतामें जवानीके समय पतिकी अधीनतामें और बुढापेमें स्वामीके बंधुबान्धवोंकी अधीनतामें रहे, परंतु स्त्रीको कभी स्वाधीन नहीं होना चाहिये ॥ १०६ ॥

अज्ञातपतिमर्य्यादामज्ञातपातिसेवनाम्।
नोद्वाहयेत्पिता बालामज्ञातधर्म्मशासनाम्॥ १०७॥

जिस नारीने पतिकी मर्यादाको नहीं जाना है, जो स्त्री पतिकी सेवा करनेके योग्य नहीं है, जो स्त्री धर्मके शासनको नहीं जानती; पिताको चाहिये कि ऐसी बालिका कन्याका विवाह न करे ॥ १०७ ॥

नरमांसं न भुञ्जीयान्नराकृतिपशूंस्तथा।
बहूपकारकान्गाश्च मांसादान्नसवर्जितान् ॥१०८॥

नरमांस, नराकार पशुका मांस, महोपकारक गोजातिका मांस, गृध्रादिमांसभोजी जन्तुओंका नीरस मांस भक्षण न करे ॥ १०८ ॥

फलानि ग्राम्यवन्यानि मूलानि विविधानि च ।
भूमिजातानि सर्वाणि भोज्यानि स्वेच्छया शिवे १०९

हे शिवे ! पृथ्वीसे उत्पन्न हुए गाँवके और वनैले अनेक प्रकारके फल, मूल इच्छानुसार भक्षण करने चाहिये ॥१०९॥

अध्यापनं याजनं च विप्राणां व्रतमुत्तमम् ।
अशक्तौ क्षत्त्रियविशां वृत्तैर्निर्वाहमाचरेत् ॥११०॥

ब्राह्मणोंके लिये पढ़ाना और यज्ञ करना ये दो वृत्तियें श्रेष्ठ हैं । इनसे यदि जीविकाका निर्वाह न हो तो क्षत्रिय या वैश्यकी वृत्ति ग्रहण कर लें ॥ ११० ॥

राजन्यानां च सद्वृत्तं संग्रामो भूमिशासनम् ।
अत्राशक्तौ वणिग्वृत्तं शूद्रवृत्तमथाश्रयेत् ॥१११॥

संग्राम करना और प्रजापालन करना ये दो वृत्तियां क्षत्रियोंकी हैं, यदि इन वृत्तियोंसे जीविकाका निर्वाह न हो तो वैश्यकी वृत्तिको ग्रहण करें। यदि वैश्यकी वृत्तिसे जीविकाका निर्वाह न हो तब शूद्रकी वृत्तिका ग्रहण करना चाहिये १११

वाणिज्याशक्तवैश्यानां शूद्रवृत्तमदूषणम् ।
शूद्राणां परमेशानि सेवावृत्तिर्विधीयते ॥ ११२ ॥

जो वैश्यगण वाणिज्यसे जीविकाका निर्वाह नहीं कर सकते तो उनको दोषरहित शूद्रकी वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिये । शूद्रोंको सेवाके द्वारा अपनी जीविकाको निर्वाह करना चाहिये ॥ ११२ ॥

सामान्यानां तु वर्णानां विप्रवृत्त्यन्यवृत्तिषु ।
अधिकारोऽस्ति देवेशि देहयात्राप्रसिद्धये ॥११३॥

हे देवेश्वरि ! जो साधारण जातियें हैं उनका देहयात्रा निर्वाह करनेके लिये ब्राह्मणकी वृत्तिके सिवाय और सब वृत्तियोंका अधिकार है ॥ ११३ ॥

अद्वेष्टा निर्ममः शान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
निर्मत्सरो निष्कपटः स्ववृत्तौ ब्राह्मणो भवेत् ११४

ब्राह्मणोंका कर्त्तव्य है कि द्वेषरहित, ममतारहित, शान्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, मत्सरतारहित और कपटहीन होकर अपनी वृत्तिका अनुसरण करें ॥ ११४ ॥

अध्यापयेत्पुत्रबुद्ध्या शिष्यान्सन्मार्गवर्तिनः ।
सर्वलोकहितैषी स्यात्पक्षपातविनिर्मुखः ॥११५॥

वह सर्वलोकका हित करे और पक्षपातरहित होकर चेलोंको पुत्रके समान जानकर पढ़ावे । और ऐसा कार्य करे कि जिससे चेले श्रेष्ठ मार्गपर चलें ॥ ११५ ॥

मिथ्यालापमसूयां च व्यसनाप्रियभाषणम् ।
नीचैः प्रसक्तिं दम्भं च सर्वथा ब्राह्मणस्त्यजेत् ११६

ब्राह्मणका कर्तव्य है कि--मिथ्यावचन, दूसरोंकी निन्दा, व्यसन, अप्रियभाषण और नीच लोगोंमें अथवा नीच बातोंमें आसक्ति और दम्भ इन सबको छोड़ दें ॥ ११६ ॥

युयुत्सा गर्हिता सन्धौ सन्मानैः सन्धिरुत्तमा ।
मृत्युर्जयो वा युद्धेषु राजन्यानां वरानने ॥११७॥

हे वरानने ! क्षत्रियोंका कर्तव्य यह है कि, सन्धि स्थिर हो जानेपर फिर युद्धका अभिलाष नहीं करे । समानकी रक्षा करके सन्धिको स्थिर रक्खे । युद्धमें जय हो या मृत्यु हो दोनों ही उनको श्रेष्ठ हैं । (भाव यह कि उनको युद्धसे कभी नहीं भागना चाहिये) ॥ ११७ ॥

अलोभी स्यात्प्रजावित्ते गृह्णीयात्सम्मितं करम् ।
रक्षन्नङ्गीकृतं धर्मं पुत्रवत्पालयेत्प्रजाः ॥११८॥

वे प्रजाके धनका लोभ न करे, यथा समयमें नियत कर (महसूल) ग्रहण करे और अंगीकार किये हुए धर्मकी रक्षा करके पुत्रके समान प्रजाका पालन करे ॥ ११८ ॥

न्यायं युद्धं तथा सन्धिं कर्माण्यन्यानि यानि च ।
मन्त्रिभिः सह कुर्वीत विचार्य्य सर्वथा नृपः ११९॥

युद्धकार्य, सन्धिकार्य और सारे राजकार्योंको मंत्रियोंके साथ उत्तम विचार करके करने चाहिये ॥ ११९ ॥

धर्मयुद्धेन योद्धव्यं न्यायदण्डपुरस्क्रियाः ।
करणीया यथाशास्त्रं सन्धिं कुर्य्याद्यथाबलम् १२०

उनको धर्मानुसार युद्ध करना चाहिये, न्यायानुसार दंड और पुरस्कार देना चाहिये और अपना बल समझकर शास्त्रके अनुसार सन्धि करनी चाहिये ॥ १२० ॥

उपायैः साधयेत्कार्य्यं युद्धं सन्धिं च शत्रुभिः।
उपायानुगताः सर्वा जयक्षेमविभूतयः ॥ १२१ ॥

वे लोग उपायसे कार्यको सिद्ध करें और उपायसे शत्रुओंके साथ सन्धि विग्रह करें। जो कर्म उपायसे किये जाते हैं उनसे ही जय, ऐश्वर्य और मंगल होता है ॥ १२१ ॥

स्यान्नीचसङ्गाद्विरतः सदा विद्वज्जनप्रियः।
धीरो विपत्तौ दक्षश्च शीलवान्सम्मितव्ययी १२२॥

क्षत्रियोंको सदा ही पंडितोंको प्यारा होना चाहिये, कदापि नीचोंका संग करना योग्य नहीं। विपत्तिकालमें भी अपने स्वभावको सुशील और उचित खर्च करनेवाला रक्खे। विपत्तिके समयमें भी धैर्य तथा दक्षता प्रगट करना योग्य है ॥ १२२ ॥

निपुणो दुर्गसंस्कारे शस्त्रशिक्षाविचक्षणः।
स्वसैन्यभावान्वेषी स्याच्छिक्षयेद्रणकौशलम् १२३

उनको दुर्गके संस्कार करनेमें निपुण होना चाहिये और शस्त्रकी शिक्षामें चतुर होना चाहिये तथा अपनी सेनाके मनका भाव जानना चाहिये और सेनाको रणकौशल सिखानी चाहिये।

न हन्यान्मूर्छितान्युद्धे त्यक्तशस्त्रान्पराङ्मुखान्।
बलानीतान्रिपून्देवि रिपुदारशिशूनपि ॥ १२४ ॥

हे देवि ! संग्राममें मूर्च्छित हुओंको, अस्त्रका त्याग किये हुओंको, रणसे भागे हुओंको, युद्धसे विमुख हुओंको, बलपू-

र्वक लाये हुए शत्रुओंको और विपक्षके स्त्री पुत्रोंको नहीं मारना चाहिये ॥ १२४ ॥

जयलब्धानि वस्तूनि सन्धिप्राप्तानि यानि च ।
वितरेत्तानि सैन्येभ्यो यथायोग्यविभागतः १२५॥

जो वस्तुएँ जयद्वारा या सन्धिद्वारा प्राप्त हो जाँय उन सबका यथायोग्य विभाग करके सेनाको बाँट दे ॥ १२५ ॥

शौर्य्यं वृत्तं च योद्धृणां ज्ञेयं राज्ञा पृथक्कृतम् ।
बहुसैन्याधिपं नैकं कुर्य्यादात्महिते रतः ॥१२६॥

योधाओंका चरित्र और शूरपन राजाको पृथक् पृथक् जानना चाहिये । जो अपना हित चाहते हैं वे कभी एक पुरुषको बहुतसी सेनाका नायक नहीं करते ॥ १२६ ॥

नैकस्मिन्विश्वसेद्राजा नैकं न्याये नियोजयेत् ।
साम्यं क्रीडोपहासं च नीचैः सह विवर्ज्जयेत् १२७॥

एक ही पुरुषका राजाको भली भाँति विश्वास न करना चाहिये और एक ही पुरुषको विचार कार्यका भार न सौंपे । नीचलोगोंके साथ राजाको खेल या उपहास नहीं करना चाहिये तथा नीचलोगोंके संग प्रीति भी न करे ॥ १२७ ॥

बहुश्रुतः स्वल्पभाषी जिज्ञासुर्ज्ञानवानपि ।
बहुमानोऽपि निर्दम्भो धीरो दण्डप्रसादयोः १२८॥

राजा बहुश्रुत होकर भी स्वल्पभाषी, ज्ञानवान् होकर भी जिज्ञासु और बहुसन्मानयुक्त होकर भी दम्भरहित हो ।

राजाको दण्ड देनेके समय या प्रसन्नताके समय एक साथ अधीर न होना चाहिये ॥ १२८ ॥

स्वयं वा चरदृष्ट्या वा प्रजाभावान्विलोकयेत् ।
एवं स्वजनभृत्यानां भावान्पश्येन्नराधिपः ॥१२९॥

राजा अपने आप या चारचक्षुसे (दूतके द्वारा) प्रजाका भाव जाने और सेवक व बन्धुबान्धवोंके भावको भी जाने ॥ १२९ ॥

क्रोधाद्दम्भात्प्रमादाद्वा सम्मानं शासनं तथा ।
सहसा नैव कर्त्तव्यं स्वामिना तत्त्वदर्शिना॥१३०॥

तत्त्वदर्शी (विचारवान्) राजा क्रोध करके, दम्भ करके वा असावधानी करके सहसा किसीको सम्मान या शासन न करे ॥ १३० ॥

सैन्यसेनाधिपामात्यवनितापत्यसेवकाः ।
पालनीयाः सदोषाश्चेद्दण्ड्या राज्ञा यथाविधि १३१

सेनाका, सेनापतिका और मंत्रियोंका, स्त्री, पुत्र व सेवकोंका पालन करना राजाका कर्तव्य है। यदि उपरोक्त जनोंमें दोष हो तो यथाविधिसे दण्ड देना चाहिये ॥ १३१ ॥

उन्मत्तानसमर्थांश्च बालांश्च मृतबान्धवान् ।
ज्वराभिभूतान्वृद्धांश्च रक्षयेत्पितृवन्नृपः ॥ १३२ ॥

उन्मत्त, असमर्थ, बालक, मृतबान्धव, रोगी और वृद्धोंका पालन राजाको पितृवत् करना चाहिये ॥ १३२ ॥

वैश्यानां कृषिवाणिज्यं वृत्तं विद्धि सनातनम् ।
येनोपायेन लोकानां देहयात्रा प्रसिद्ध्यति॥ १३३॥

जिस प्रकारके खेती और वाणिज्य करनेसे शरीरयात्रा निर्वाह हो सकता है वैसी ही खेती और वैसा ही वाणिज्य करना वैश्योंका सनातन व्यापार है ॥ १३३ ॥

अतः सर्व्वात्मना देवि वाणिज्यकृषिकर्म्मसु ।
प्रमादव्यसनालस्यं मिथ्याशाठ्यं विवर्ज्जयेत् १३४

हे देवि ! इस कारणसे ही वाणिज्य और कृषिकार्यमें प्रमाद, व्यसन, आलस्य, मिथ्यापन और शठता इन सबको सर्वप्रकारसे छोड देना वैश्योंका कर्तव्य है ॥ १३४ ॥

निश्चित्य वस्तु तन्मूल्यमुभयोः सम्मतौ शिवे ।
परस्पराङ्गीकरणं क्रयसिद्धिस्ततो भवेत् ॥१३५॥

हे शिवे ! क्रेता और विक्रेताकी सम्मतिसे जब वस्तु और उसका मोल ठीक हो जाय और दोनों उसको अंगीकार कर लें तब क्रय (विक्रय) सिद्ध होगा ॥ १३५ ॥

मत्तविक्षिप्तबालानामरिग्रस्तनृणां प्रिये ।
रोगविभ्रान्तबुद्धीनामसिद्धौ दानविक्रयौ ॥१३६॥

हे प्रिये ! जो मतवाले हैं, पागल हैं, बाल हैं या शत्रु करके बंदी कर लिये गये हैं अथवा रोग होनेसे जिनकी बुद्धि बिगड़ गयी है ये यदि दान करें या कुछ बेंचें तो बेंचना और वह दान देना असिद्ध है ॥ १३६ ॥

क्रयसिद्धिरदृष्टानां गुणश्रवणतो भवेत्।
विपर्य्यये तद्गुणानामन्यथा भवति क्रयः १३७॥

न देखी हुई वस्तुका गुण सुनकर ही क्रय (मोल लेना) सिद्ध होता है, परन्तु वर्णन किये हुए गुणका व्यतिक्रम होनेसे विक्रय असिद्ध होगा। जैसा–हाथी, घोड़ा और ऊंट इनके गुण सुनकर ही मोल लेना बेंचना सिद्ध होता है परन्तु यदि वर्णन किये हुए गुण न हों तो वह क्रय असिद्ध होगा॥ १३७॥

कुञ्जरोष्ट्रतुरङ्गाणां गुप्तदोषप्रकाशनात्।
वर्षातीतेऽपि तत्क्रेयमन्यथा कर्तुमर्हति॥१३८॥

यदि हाथी, घोड़े और ऊंटके गुप्त दोष प्रकाशित हो जाँय तो एक वर्षके पीछे भी वह क्रयविक्रय अन्यथा हो सकता है॥ १३८॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनं मानवं वपुः।
अतः कुलेशि तत्क्रेयो न सिद्ध्येन्मम शासनात्॥

हे कुलेश्वरि! मनुष्योंका शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन है, अत एव मेरी आज्ञा है कि इस शरीरको कोई खरीद या बेंच नहीं सकेगा, अर्थात् यदि कोई ऐसा करेगा तो वह खरीदना बेंचना असिद्ध होगा १३९॥

यवगोधूमधान्यानां लाभो वर्षे गते प्रिये।
युक्तश्चतुर्थो धातूनामष्टमः परिकीर्तितः॥ १४०॥

हे प्रिये ! जौ, गेहूँ, धान्य (इनको यदि उधार ले लिया जाय) तो वर्षमें केवल मूलका चौथाई अंश लाभ अर्थात् बढ़ोतरीमें देना पड़ेगा, धातु-द्रव्य (रुपया पैसा इत्यादि) उधार लेनेसे एक वर्षमें मूलका आठवाँ अंश कुसीद (सूद) देनेका नियम है ॥ १४० ॥

ऋणकृषौ च वाणिज्ये तथा सर्व्वेषु कर्म्मसु ।
यद्यदङ्गीकृतं मर्त्यैस्तत्कार्य्यं शास्त्रसम्मतम् १४१॥

ऋण, खेती, वाणिज्य और सारे कार्य, मनुष्य जिस किसीको अंगीकार करे उसे करना चाहिये, यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ १४१ ॥

दक्षः शुचिः सत्यभाषी जितनिद्रो जितेन्द्रियः ।
अप्रमत्तो निरालस्यः सेवावृत्तौ भवेन्नरः ॥१४२॥

सेवावृत्ति ग्रहण करनेवालोंको दक्ष अर्थात् अपने कार्यमें चतुर, विशुद्धाचार, सत्यवादी, निद्राके वशमें न रहना, जितेन्द्रिय, प्रमादरहित और आलस्यहीन होना चाहिये ॥ १४२॥

प्रभुर्विष्णुसमोऽमात्यैस्तज्जाया जननीसमा ।
मान्यास्तद्बान्धवा भृत्यैरिहामुत्र सुखेप्सुभिः १४३॥

इसलोकमें और परलोकमें सुखकी कामना करनेवाले मंत्री भृत्योंको स्वामीको विष्णुके समान जानकर सम्मान करना और उसकी भार्याको जननीके समान जानना चाहिये और स्वामीके बन्धु बान्धव जो हैं उनके संमानकी भी रक्षा करनी चाहिये ॥ १४३ ॥

भर्त्तुर्मित्राणि मित्राणि जानीयात्तदरीनरीन् ।
सभीतिः सर्व्वदा तिष्ठेत्प्रभोराज्ञां प्रतीक्षयन् ॥ १४४ ॥

प्रभुके मित्रोंको अपना मित्र समझे । स्वामीके शत्रुओंको अपना शत्रु समझे । सब समयमें स्वामीकी आज्ञाको परखते हुए सभयहृदय रहना चाहिये ॥ १४४ ॥

अपमानं गृहच्छिद्रं गुह्यर्थं कथितं च यत् ।
भर्तुर्ग्लानिकरं यच्च गोपयेदतियत्नतः ॥ १४५ ॥

अपमान, गृहच्छिद्र, गुप्तवाक्य अथवा जिससे प्रभुको ग्लानि हो ऐसी बात अतियत्नसे छिपानी योग्य है॥ १४५॥

अलोभः स्यात्स्वामिधनसे सदा स्वामिहिते रतः ।
तत्सन्निधावसद्भाषां क्रीडां हास्यं परित्यजेत् १४६ ॥

सदा ही स्वामीके धनमें लोभ न करे, स्वामीके हितमें सदा तत्पर रहे और स्वामीके निकट असत् वाक्यका कहना, क्रीडा और हँसना इन सबको छोड़ देना योग्य है ॥ १४६ ॥

न पापमनसा पश्येदपि तद्गृहकिङ्करीः ।
विविक्तशय्यां हास्यं च ताभिः सह विवर्जयेत् १४७ ॥

स्वामीके गृहकी दासियोंको पापकी दृष्टिसे न देखे । उनके साथ एकान्त स्थानमें एक सेजपर शयन न करे, हास परिहास भी न करे ॥ १४७ ॥

प्रभोः शय्यासनं यानं वसनं भाजनानि च ।
उपानद्भूषणं शस्त्रं नात्मार्थं विनियोजयेत् ॥ १४८ ॥

स्वामीकी शय्या, आसन, सवारी, वसन, भाजन, पादुका, भूषण तथा शस्त्रको स्वयं अपने व्यवहारमें न लावे ॥ १४८ ॥

क्षमां कृतापराधश्चेत्प्रार्थयेदग्रतः प्रभोः ।
प्रागल्भ्यं प्रौढवादं च साम्याचारं विवर्जयेत् ॥ १४९ ॥

यदि कोई अपराध हो जाय तो स्वामीसे सेवकको क्षमा मांगना चाहिये । प्रभुके समीप धृष्टता, प्रौढता और प्रभुत्व न दिखावे ॥ १४९ ॥

सर्वे वर्णाः स्वस्ववर्णैर्ब्राह्मोद्वाहं तथाशनम् ।
कुर्व्वीरन्भैरवीचक्रात्तत्त्वचक्रादृते शिवे ॥ १५० ॥

हे शिवे! यदि तत्त्वचक्रका अनुष्ठान न हो तो सब जातियोंके मनुष्योंको अपने अपने वर्णके साथ ब्रह्मविवाह और भोजन भैरवीचक्रके द्वारा ही करना चाहिये ॥ १५० ॥

उभयत्र महेशानि शैवोद्वाहः प्रकीर्त्तितः ।
तथादने च पाने च वर्णभेदो न विद्यते ॥ १५१ ॥

हे महेश्वरि ! तत्त्वचक्र और भैरवीचक्र दोनोंके विधानमें शैवविवाह हो सकता है । इन दोनों चक्रोंमें पानभोजनके समय वर्णभेदका विचार नहीं करे ॥ १५१ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

किमिदं भैरवीचक्रं तत्त्वचक्रं च कीदृशम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कृपया वक्तुमर्हसि ॥ १५२ ॥

श्रीभगवतीजीने कहा–भैरवीचक्र कैसा है ? और तत्त्वचक्र किस प्रकारका है ? मैं इन सबको श्रवण करनेकी अभिलाषा करती हूं, कृपा करके मुझसे कहिये ॥ १५२ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

कुलपूजाविधौ देवि चक्रानुष्ठानमीरितम् ।
विशेषपूजासमये तत्कार्य्यं साधकोत्तमैः ॥ १५३॥

श्रीसदाशिवने कहा, हे देवि ! कुलपूजाविधान कहनेके समय मैंने चक्रका अनुष्ठान कहा है । जो लोग उत्तम साधक हैं वे विशेषपूजाके समय वैसे ही चक्रका अनुष्ठान करें १५३

भैरवीचक्रविषये न तादृङ्नियमः प्रिये ! ।
यथासमयमासाद्य कुर्य्याच्चक्रमिदं शुभम् ॥१५४॥

हे प्रिये ! भैरवीचक्रके विषय ऐसा कोई नियम नहीं है । चाहे जिस समयमें इस शुभ भैरवीचक्रका अनुष्ठान किया जा सकता है ॥ १५४ ॥

विधानमस्य वक्ष्यामि साधकानां शुभावहम् ।
आराधिता येन देवी तूर्णं यच्छति वाञ्छितम्॥ १५५

इस समयमें भैरवीचक्रका विधान कहता हूं। इस भैरवी-चक्रसे साधकोंका मंगल होता है । इस भैरवीचक्रमें भगवतीकी आराधना करनेसे वह शीघ्रतासे अभीष्टको सिद्ध करती है ॥ १५५ ॥

कुलाचार्य्यो रम्यभूमावास्तीर्य्यासनमुत्तमम् ।
कामाद्येनास्त्रबीजेन संशोध्योपविशेत्ततः ॥१५६॥

कुलाचार्य रमणीयस्थानमें उत्तम आसन बिछा "क्लीं फट्" इस मंत्रसे इस आसनको शुद्ध करके उसपर बैठे १५६॥

सिन्दूरेण कुसीदेन केवलेन जलेन वा ।
त्रिकोणं चतुरस्रं च मण्डलं रचयेत्सुधीः ॥१५७॥

ज्ञानवान् साधक सिन्दूरसे, लालचंदनसे अथवा केवल जलसे त्रिकोण और चौकोण मण्डलको बनावे ॥ १५७ ॥

विचित्रघटमानीय दध्यक्षतविमूक्षितम् ।
फलपल्लवसंयुक्तं सिन्दूरतिलकान्वितम् ॥ १५८ ॥

फिर उस चित्रित घटको स्थापन करके उसमें दही और अक्षत दान करे और उस घड़ेमें सिन्दूरका तिलक लगाकर उसमें फल और पल्लव संयुक्त करे ॥ १५८ ॥

सुवासितजलैः पूर्णं मण्डले तत्र साधकः ।
प्रणवेन तु संस्थाप्य धूपदीपौ प्रदर्शयेत् ॥ १५९ ॥

फिर साधक इस घड़ेको सुगन्धित जलसे परिपूर्ण करे । फिर प्रणवपाठ करके उसके इस मण्डलपर स्थापनपूर्वक धूप दीप दिखावे ॥ १५९ ॥

सम्पूज्य गन्धपुष्पाभ्यां चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।
संक्षेपपूजाविधिना तत्र पूजां समाचरेत् ॥१६०॥

फिर गन्धपुष्पसे अर्चना करके उसमें इष्टदेवताका ध्यान करे और पूजाके संक्षेप विधानानुसार उसमें इष्टदेवताकी पूजा करे ॥ १६० ॥

विशेषमत्र वक्ष्यामि शृणुष्वामरवन्दिते ।
गुर्वादिनवपात्राणां नात्र स्थापनमिष्यते ॥१६१॥

हे सुरवन्दिते ! इस पूजामें जो विशेष है, उसको कहता हूं, श्रवण करो । इस पूजामें गुरुपात्रादि नौ पात्रोंके स्थापन करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ १६१ ॥

यथेष्टं तत्त्वमादाय संस्थाप्य पुरतो व्रती ।
प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रेण दिव्यदृष्ट्यावलोकयेत् ॥१६२॥

साधक इस पूजाके समय अभिलाषानुसार तत्त्वका सम्मुख स्थापन करके "फट्" मन्त्र पढ़ प्रोक्षित कर दिव्य-दृष्टिसे देखे ॥ १६२ ॥

अलियन्त्रे गन्धपुष्पं दत्त्वा तत्र विचिन्तयेत् ।
आनन्दभैरवीं देवीमानन्दभैरवन्तथा ॥ १६३ ॥

फिर मध्य पात्रमें गन्ध पुष्प डालकर उसमें देवी आनन्दभैरवी और आनन्दभैरवका ध्यान करे ॥ १६३ ॥

नवयौवनसम्पन्नां तरुणारुणविग्रहाम् ।
चारुहासामृताभासोल्लसद्वदनपङ्कजाम् ॥ १६४ ॥

जो नवयौवनयुक्त हैं, जिनका शरीर तरुण अरुणके समान कान्तिमान है, जिनका अति मनोहर हास्यामृतकी कान्ति द्वारा वदनकमल विकसित हुआ है ॥ १६४ ॥

नृत्यगीतकृतामोदां नानाभरणभूषिताम् ।
विचित्रवसनान्ध्यायेद्वराभयकराम्बुजाम् ॥१६५॥

जो नृत्यगीतमें सदा आनन्दको प्रकाशित किया करती हैं, जो अनेक प्रकारके भूषणोंसे शोभायमान हैं, जो विचित्र वस्त्र पहर रहीं हैं, जो एक हाथसे वर और एक हाथसे अभय दे रही हैं, ऐसी आनन्दभैरवीका ध्यान करे ॥ १६५ ॥

इत्यानन्दमयीं ध्यात्वा स्मरेदानन्दभैरवम्॥ १६६॥

इस प्रकार आनन्दभैरवीका ध्यान करके आनन्दभैरवका ध्यान करे ॥ १६६ ॥

कर्पूरपूरधवलं कमलायताक्षं
दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम्।
वामेन पाणिकमलेन सुधाक्षपात्रं
दक्षेण शुद्धिगुटिकान्दधतं स्मरामि ॥१६७॥

जो कपूरके ढेरके समान श्वेतवर्ण हैं, जिनके नेत्र कमलदलके समान दीर्घ हैं, जिनका शरीर दिव्य वसन और दिव्य भूषणोंसे भूषित होकर शोभायमान हो रहा है, जो बायें करकमलसे मद्यपात्र और दाहनेसे शुद्धि अर्थात् मांस, मत्स्य और मुद्रा धारण किये हुए हैं ऐसे आनन्दभैरवका स्मरण करना योग्य है ॥ १६७ ॥

ध्यात्वैवमुभयं तत्र सामरस्यं विचिन्तयन्।
प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण देशिकः।
संपूज्य गन्धपुष्पाभ्यां शोधयेत्कारणं ततः॥ १६८॥

इस प्रकारसे साधक आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीका ध्यान करके उस सुरापात्रमें दोनोंका सामरस्य विचार पहले "प्रणव" फिर "नाम" तदुपरान्त " नमः " उच्चारण करके गन्धपुष्पद्वारा पूजा कर पीछेसे सुराका शोधन करे ॥१६८॥

पाशादित्रिकबीजेन स्वाहान्तेन कुलार्चकः ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या जपन्हेतुं विशोधयेत् ॥१६९॥

कुलपूजक, "आं ह्रीं क्रीं स्वाहा"इस मन्त्रका एक शत आठ वार जप करके सुराका शोधन करे ॥ १६९ ॥

गृहकाम्यैकचित्तानां गृहिणां प्रबले कलौ ।
आद्यतत्त्वप्रतिनिधौ विधेयं मधुरत्रयम् ॥ १७० ॥

कालिकाल प्रबल होनेके समय सर्व गृहस्थलोग केवल कार्यमें ही चित्त लगावेंगे,उस कालमें उनके अर्थ आद्यतत्त्वके प्रतिनिधिरूप तीन मधुर विधान करने होंगे ॥ १७० ॥

दुग्धं सिता माक्षिकं च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ।
अलिरूपमिदं मत्वा देवतायै निवेदयेत् ॥ १७१॥

दूध, चीनी, शहद इन तीनों द्रव्योंका नाम मधुर त्रय है, इस मधुरत्रयको मद्यरूप समझकर देवताके निकट निवेदन करे ॥ १७१ ॥

स्वभावात्कलिजन्मानः कामविभ्रान्तचेतसः ।
तद्रूपेण न जानन्ति शक्तिं सामान्यबुद्धयः ॥१७२॥

कलिकालके मनुष्योंकी बुद्धि अतिसामान्य है, उनका मन स्वभावसे ही कामदेवके द्वारा उद्भ्रान्त होगा । वह स्त्रीको शक्तिरूप नहीं विचार सकेंगे ॥ १७२ ॥

अतस्तेषां प्रतिनिधौ शेषतत्त्वस्य पार्वति ! ।
ध्यानं देव्याः पदाम्भोजे स्वेष्टमन्त्रजपस्तथा १७३॥

हे देवि ! इस कारण कलियुगके मनुष्योंके लिये शेष तत्त्वके बदले देवीके चरणका ध्यान और इस मन्त्रका जप करना है ॥ १७३ ॥

ततस्तु प्राप्ततत्त्वानि पललादीनि यानि च ।
प्रत्येकं शतधानेन मनुना चाभिमन्त्रयेत् ॥१७४॥

फिर मांसादि जो तत्त्व उपस्थित हों उनमेंसे प्रत्येक तत्त्वको "आं ह्रीं क्रौं स्वाहा" इस मंत्रसे अभिमंत्रित करे ॥ १७४ ॥

सर्वं ब्रह्ममयं ध्यात्वा निमील्य नयनद्वयम् ।
निवेद्य पूर्ववत्काल्यै पानभोजनमाचरेत् ॥१७५॥

फिर सबको ब्रह्ममय भावना करके दोनों नेत्र मूँद वह सब कालीको निवेदन करके पान और भोजन करे ॥ १७५ ॥

इदन्तु भैरवीचक्रं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
तवाग्रे कथितं भद्रे ! सारात्सारं परात्परम् १७६॥

हे भद्रे ! यह भैरवीचक्र सारका भी सार है, श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है । यह सब तन्त्रोंमें गुप्त है, प्रकाशित नहीं हुआ, आज यह तुमसे प्रकाशित कर कहा ॥ १७६ ॥

विवाहो भैरवीचक्रे तत्त्वचक्रेऽपि पार्वति ।
सर्वथा साधकेन्द्रेण कर्त्तव्यः शैववर्त्मना ॥१७७॥

हे पार्वति ! शिवका दिखाया हुआ मार्ग अवलम्बन करनेसे भैरवीचक्र और तत्त्वचक्रमें परिणय सिद्ध करना सब प्रकारसे साधकको उचित है ॥ १७७ ॥

विना परिणयं वीरः शक्तिसेवां समाचरन् ।
परस्त्रीगामिनां पापं प्राप्नुयान्नात्र संशयः॥१७८॥

यदि कोई वीर पुरुष विवाहके विना शक्तिकी सेवा करता है तब उसको परस्त्रीगमनके पापमें निश्चय लिप्त होना पड़ता है ॥ १७८ ॥

सम्प्राप्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमाः ।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ॥१७९॥

जब भैरवीचक्रका आरम्भ होता है तब सब जातिके पुरुष द्विजाति ही गिने जाते हैं। जब भैरवीचक्र निवृत्त हो जाता है, तब सब वर्ण अलग २ गिने जाते हैं ॥ १७९ ॥

नात्र जातिविचारोऽस्ति नोच्छिष्टादिविवेचनम् ।
चक्रमध्यगता वीरा मम रूपा न चान्यथा॥१८०॥

भैरवीचक्रमें जातिका विचार नहीं है, जूँठनआदिका विचार भी नहीं है; चक्रमें बैठे हुए वीरगण मेरा ही रूप हैं। यह अन्यथा नहीं है ॥ १८० ॥

न देशकालनियमो न वा पात्रविचारणम् ।
येन केनाहृतं द्रव्यं चक्रेऽस्मिन्विनियोजयेत्॥१८१॥

भैरवीचक्रमें देशकालका नियम नहीं है, पात्रापात्रका विचार भी नहीं है, जो कोई पुरुष चक्रके लायक जो कोई वस्तु ले आवे उसका व्यवहार चक्रमें करना चाहिये ॥१८१॥

दूरदेशात्समानीतं पक्वं वापक्वमेव वा ।
वीरेण पशुना वापि चक्रमध्यगतं शुचि ॥१८२॥

यदि कोई द्रव्य दूरदेशसे लाया हुआ हो, पका हुआ हो, कच्चा हो, वीर लाया हो या पशु लाया हो, वह सब द्रव्य चक्रमें आते ही पवित्र हो जायगा ॥ १८२ ॥

चक्रारम्भे महेशानि ! विघ्नाः सर्वभयाकुलाः ।
विभीतास्ते पलायन्ते वीराणां ब्रह्मतेजसा ॥१८३॥

हे महेश्वरि ! जब भैरवीचक्रका आरम्भ होता है तब चक्रमें बैठे हुए वीरोंके ब्रह्मतेजसे भयभीत होकर सब विघ्न भाग जाते हैं ॥ १८३ ॥

पिशाचा गुह्यका यक्षा वेतालाः क्रूरजातयः ।
श्रुत्वात्र भैरवीचक्रं दूरं गच्छन्ति साध्वसम् १८४

पिशाच, गुह्यक, यक्ष, वेतालगण, और भी समस्त क्रूर जातियां भैरवीचक्रका वृत्तान्त सुनते ही भीत होकर वहांसे दूर भाग जाती हैं ॥ १८४ ॥

तत्र तीर्थानि सर्वाणि महातीर्थानि यानि च ।
सेन्द्रामरगणाः सर्वे तत्रागच्छन्ति सादरम् १८५॥

जहांपर भैरवीचक्र होता है उस स्थानमें समस्त तीर्थ,

महातीर्थादि और देवराजके साथ सब देवता आदरपूर्वक आते हैं ॥ १८५ ॥

चक्रस्थानं महातीर्थं सर्वतीर्थाधिकं शिवे ! ।
त्रिदशा यत्र वाञ्छन्ति तव नैवेद्यमुत्तमम् १८६॥

हे शिवे ! चक्रस्थान महातीर्थ और सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ होता है, इस चक्रमें देवतालोग भी तुम्हारे उत्तम नैवेद्यकी आशा करते हैं ॥ १८६ ॥

म्लेच्छेन श्वपचेनापि किरातेनापि हूणना ।
आमं पक्वं यदानीतं वीरहस्तार्पितं शुचि॥१८७॥

म्लेच्छ, श्वपच, किरात अथवा हूण कोई जाति कच्चा या पक्का द्रव्य लाकर देवे, वीरके हाथमें आते ही वह पवित्र हो जायगा ॥ १८७ ॥

दृष्ट्वा तु भैरवीचक्रं मम रूपांश्च साधकान् ।
मुच्यन्ते पशुपाशेभ्यः कलिकल्मषदूषिताः १८८॥

जो कलियुगमें पापोंसे दूषित हैं वे लोग भी भैरवीचक्र और मेरे स्वरूप साधकोंका दर्शन करते ही पशुपाससे छूट जाते हैं ॥ १८८ ॥

प्रबले कलिकाले तु न कुर्य्याच्चक्रगोपनम् ।
सर्वत्र सर्वदा वीरः साधयेत्कुलसाधनम् ॥१८९॥

कलिकाल प्रबल होनेके समय चक्रानुष्ठानका छिपाना ठीक नहीं, वीर पुरुषको सब समय और सब स्थानोंमें कुल-साधन करना चाहिये ॥ १८९ ॥

चक्रमध्ये वृथालापं चाञ्चल्यं बहुभाषणम् ।
निष्ठीवनमधोवायुं वर्णभेदं विवर्जयेत् ॥ १९० ॥

चक्रमें वृथा न बोले, चपलता प्रकाश न करे, वाचाल न हो, थूके नहीं, अधोवायुका त्याग नहीं करे, वर्णका विचार भी नहीं करे ॥ १९० ॥

क्रूरान्खलान्पशून्पापान्नास्तिकान्कुलदूषकान् ।
निन्दकान्कुलशास्त्राणां चक्राद्दूरतरं त्यजेत् १९१

जो लोग क्रूर, खल, पशु, पापात्मा, नास्तिक, कुलदूषक, वा कुलशास्त्रके निन्दा करनेवाले हैं, उनको चक्रसे निकाल देना चाहिये ॥ १९१ ॥

स्नेहाद्भयादानुरक्त्या पशूंश्चक्रे प्रवेशयन् ।
कुलधर्म्मात्परिभ्रष्टो वीरोऽपि नरकं व्रजेत् १९२॥

यदि कोई वीरपुरुष स्नेह, भय या अनुरागके वश हो किसी पशुको चक्रमें ले आवे तो वह कुलधर्मसे भ्रष्ट होकर नरकको जाता है ॥ १९२ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राः सामान्यजातयः ।
कुलधर्म्माश्रिता ये वै पूज्यास्ते देववत्सदा॥ १९३॥

जिन्होंने कुलधर्मका आश्रय लिया है; वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा साधारण जाति हो तो भी सदा देवताके समान पूज्य होंगे ॥ १९३ ॥

वर्णाभिमानाच्चक्रे तु वर्णभेदं करोति यः ।
स याति घोरनिरयमपि वेदान्तपारगः ॥ १९४ ॥

जो जातिका अभिमान करके चक्रमें जातिभेदका विचार करेगा वह वेदान्तमें पारदर्शी होनेपर भी घोर नरकमें जायगा ॥ १९४ ॥

चक्रान्तर्गतकौलानां साधूनां शुद्धचेतसाम् ।
साक्षाच्छिवस्वरूपाणां पापाशङ्का भवेत्कुतः १९५॥

जो लोग चक्रमें कौल हैं, वे विशुद्धहृदय साधु और साक्षात् शिवस्वरूप हैं, उनमें किस प्रकारसे पापकी शंका हो सकती है ॥ १९५ ॥

यावद्वसन्ति चक्रेषु विप्राद्याः शैवमार्गिणः ।
तावत्तु शाम्भवाचारांश्चरेयुः शिवशासनात् १९६॥

शिवके दिखाये हुए मार्गपर चलनेवाले ब्राह्मण क्षत्रियादि सब जातियोंके मनुष्य जबतक चक्रमें विराजमान रहते हैं तबतक उनको शिवप्रदर्शित आचारका अनुष्ठान करना चाहिये ऐसी शिवजीकी आज्ञा है ॥ १९६ ॥

चक्राद्विनिःसृताः सर्व्वे स्वस्ववर्णाश्रमोदितम् ।
लोकयात्राप्रसिद्ध्यर्थं कुर्युः कर्म पृथक्पृथक् १९७॥

जिस समय चक्रसे निकले तब सब ही लोकयात्राका निर्वाह करनेके लिये अपने अपने आश्रममें कहे हुए कर्म पृथक् पृथक् २ करें ॥ १९७ ॥

पुरश्चर्य्याशतेनापि शवमुण्डचितासनात् ।
चक्रमध्ये सकृज्जप्त्वा तत्फलं लभते सुधीः॥१९८॥

शत शत पुरश्चरण करनेसे जो फल होता है, शवमुण्डमें और चिताके आसनपर बैठकर जप करनेसे जो फल होता है, ज्ञानी पुरुष केवल एकवार चक्रमें जप करनेसे उस फलको प्राप्त कर लेता है ॥ १९८ ॥

भैरवीचक्रमाहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ।
सकृदेतत्प्रकुर्व्वाणः सर्व्वैः पापैः प्रमुच्यते ॥१९९॥

भैरवीचक्रका माहात्म्य कहनेको कोई पुरुष समर्थ नहीं है क्योंकि एकवार इसका अनुष्ठान करनेसे सब पाप दूर हो सकते हैं ॥ १९९ ॥

षण्मासे भूमिपालः स्याद्वर्षे मृत्युञ्जयः स्वयम् ।
नित्यं समाचरन्मर्त्यो ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् २००

केवल छः महीनेतक भैरवीचक्रका अनुष्ठान करनेसे राजा हो सकता है, एक वर्षतक अनुष्ठान करनेसे मृत्युञ्जय होता है, नित्य ही भैरवीचक्रका अनुष्ठान करनेवाला महानिर्वाणको प्राप्त हो जाता है ॥ २०० ॥

बहुना किमिहोक्तेन सत्यं जानीहि कालिके ।
इहामुत्र सुखावाप्त्यै कुलमार्गो हि नापरः॥२०१॥

हे कालिके ! इस विषयमें और अधिक क्या कहूं ? मैं सत्य सत्य कहता हूं कि, कुलाचारके सिवाय इस लोकमें और परलोकमें सुखप्राप्तिका दूसरा उपाय नहीं है ॥ २०१ ॥

कलेः प्राबल्यसमये सर्व्वधर्म्मविवर्जिते ।
गोपनात्कुलधर्म्मस्य कौलोऽपि नारकी भवेत्२०२

कलियुगके प्रबल होनेपर जब और दूसरे धर्मरहित हो जावेंगे, तब यदि कौलिक पुरुष कुलधर्मको छिपावेगा तो नरकको जायगा ॥ २०२ ॥

कथितं भैरवीचक्रं भोगमोक्षैकसाधनम् ।
तत्त्वचक्रं कुलेशानि साम्प्रतं वच्मि तच्छृणु२०३॥

भोग और मोक्षके प्राप्त करानेवाले भैरवीचक्रका विवरण कहा. हे कुलेश्वरि ! अब तत्त्वचक्रका वर्णन करता हूं, श्रवण करो ॥ २०३ ॥

तत्त्वचक्रं चक्रराजं दिव्यचक्रं तदुच्यते ।
नात्राधिकारः सर्व्वेषां ब्रह्मज्ञान्साधकान्विना २०४

सब चक्रोंमें तत्त्वचक्र श्रेष्ठ है । इसको दिव्यचक्र भी कहते हैं । ब्रह्मज्ञ साधकके अतिरिक्त इसमें सबका अधिकार नहीं है ॥ २०४ ॥

परब्रह्मोपासका ये ब्रह्मज्ञा ब्रह्मतत्पराः ।
शुद्धान्तःकरणाः शान्ताः सर्व्वप्राणिहिते रताः२०५

जो लोग परब्रह्मके उपासक हैं, जो लोग ब्रह्मज्ञानमें तत्पर हैं, जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं, जो लोग सर्वप्राणियोंका हित करनेमें रत और शान्त हैं ॥ २०५ ॥

निर्विकारा निर्विकल्पा दयाशीला दृढव्रताः ।
सत्यसङ्कल्पका ब्राह्मयास्त एवात्राधिकारिणः २०६

जो लोग विकाररहित, विकल्परहित, दयाशील और दृढव्रत हैं, जो लोग सत्यसंकल्प और ब्राह्म हैं, वही इस तत्त्वचक्रके अधिकारी हैं ॥ २०६ ॥

ब्रह्मभावेन तत्त्वज्ञे ये पश्यन्ति चराचरम् ।
तेषां तत्त्वविदां पुंसां तत्त्वचक्रेऽधिकारिता ॥ २०७ ॥

हे तत्त्वज्ञे ! जो लोग इस चराचर जगत्को ब्रह्ममय अवलोकन करते हैं, उन तत्त्वज्ञानसम्पन्न पुरुषोंका ही इस तत्त्वचक्रमें अधिकार है ॥ २०७ ॥

सर्व्वब्रह्ममयो भावश्चक्रेऽस्मिंस्तत्त्वसंज्ञके ।
येषामुत्पद्यते देवि त एव तत्त्वचाक्रिणः ॥ २०८ ॥

हे देवि ! इस तत्त्वचक्रमें उन तत्त्वज्ञानसम्पन्न पुरुषोंका ही अधिकार है, जो सबको ब्रह्ममय समझते हैं ॥ २०८ ॥

न घटस्थापनात्रास्ति न बाहुल्येन पूजनम् ।
सर्व्वत्र ब्रह्मभावेन साधयेत्तत्त्वसाधनम् ॥ २०९ ॥

इस तत्त्वचक्रमें घटस्थापन नहीं है, पूजाकी बहुतायत भी नहीं है, सब स्थानमें ही ब्रह्मभावसे इस तत्त्वका साधन करना चाहिये ॥ २०९ ॥

ब्रह्ममन्त्री ब्रह्मनिष्ठो भवेच्चक्रेश्वरः प्रिये ।
ब्रह्मज्ञैः साधकैः सार्द्धं तत्त्वचक्रं समारभेत् २१० ॥

हे प्रिये ! ब्रह्ममंत्रोपासक और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको चक्रेश्वर होना चाहिये, वह ब्रह्मज्ञानयुक्त साधक पुरुषोंके साथ तत्त्व-चक्रका अनुष्ठान करे ॥ २१० ॥

रम्ये सुनिर्मले देशे साधकानां सुखावहे ।
विचित्रासनमानीय कल्पयेद्विमलासनम् ॥२११॥

उत्तम, साफ, सुथरा, निर्मल और रमणीय स्थान साधक-जनोंको उत्तम सुखका देनेवाला है । उस स्थानमें विचित्र आसन बिछाकर साधक उसपर बैठनेका स्थान बनाये २११

तत्रोपाविश्य चक्रेशः सहितो ब्रह्मसाधकैः ।
आसादयेत्तु तत्त्वानि स्थापयेदग्रतः शिवे॥२१२॥

हे शिवे ! स्थानमें चक्रेश्वर सब साधकोंके साथ बैठकर सब तत्त्वोंको मँगाकर संमुख रक्खे ॥२१२॥

तारादिप्राणबीजान्तं शतावृत्त्या जपन्मनुम् ।
सर्व्वतत्त्वेषु चक्रेश इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२१३॥

सब तत्त्वोंके ऊपर चक्रेश्वरको "ओं हंस" मंत्र शतवार पढ़कर यह मंत्र पढ़ना चाहिये कि ॥ २१३ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २१४ ॥

जिसके द्वारा अर्पण करता हूं वह ब्रह्म है, जिसमें अर्पण करता हूँ वह भी ब्रह्म है, जो अर्पण करता है वह भी ब्रह्म है,

इस प्रकार ब्रह्ममय कर्मकी समाधिसे साधक ब्रह्ममें ही लय हो जाता है ॥ २१४ ॥

सप्तधा वा त्रिधा जप्त्वा तानि सर्व्वाणि शोधयेत् २१५

इस मंत्रको सात वार या तीन वार जप करके सब तत्त्वोंका शोधन करे ॥ २१५ ॥

ततो ब्राह्मेण मनुना समर्प्य परमात्मने ।
ब्रह्मज्ञैः साधकैः सार्धं विदध्यात्पानभोजनम् २१६

फिर "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" इस मंत्रसे सब तत्त्वोंको ब्रह्ममें समर्पित कर ब्रह्मज्ञानी साधकोंके साथ पान और भोजन करे ॥ २१६ ॥

ब्रह्मचक्रे महेशानि वर्णभेदं विवर्जयेत् ।
न देशकालनियमो न पात्रनियमस्तथा ॥२१७॥

हे महेश्वरि ! इस ब्रह्मचक्रमें जातिभेदका विचार नहीं करे, इसमें देशकालका नियम नहीं है, न पात्रापात्रका नियम है ॥२१७॥

ये कुर्वन्ति नरा मूढा दिव्यचक्रे प्रमादतः ।
कुलभेदं वर्णभेदं ते गच्छन्त्यधमां गतिम् ॥२१८॥

जो मूढ़ पुरुष प्रमादके वश होकर इस दिव्यचक्रमें जातिभेद या कुलभेदका विचार करता है वह अधमगतिको प्राप्त होता है ॥ २१८ ॥

अतः सर्व्वप्रयत्नेन ब्रह्मज्ञैः साधकोत्तमैः ।
तत्त्वचक्रमनुष्ठेयं धर्मकामार्थमुक्तये ॥ २१९ ॥

अतएव जो लोग ब्रह्मज्ञ और श्रेष्ठ साधक हैं उनको धर्म, अर्थ, काम और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये सर्वयत्नसे तत्त्वचक्रका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २१९ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

गृहस्थानामशेषेण धर्म्मानकथयत्प्रभो ! ।
संन्यासविहितान्धर्म्मान्कृपया वक्तुमर्हसि ॥ २२०॥

श्रीदेवीजीने कहा—हे प्रभो ! आपने सम्पूर्ण गृहस्थधर्म कहा, अब कृपा करके सन्यासधर्म कहिये ॥ २२० ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

अवधूताश्रमो देवि ! कलौ संन्यास उच्यते ।
विधिना येन कर्त्तव्यस्तत्सर्वं शृणु साम्प्रतम् २२१॥

श्रीसदाशिवेन कहा—हे देवि ! कालियुगमें अवधूताश्रमको ही संन्यास कहते हैं । अब वह कहता हूं कि, जिस प्रकारसे संन्यास-आश्रमका अवलम्बन करना चाहिये ॥२२१॥

ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने विरते सर्व्वकर्म्मणि ।
अध्यात्मविद्यानिपुणः संन्यासाश्रममाश्रयेत् ॥२२२॥

जब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाय, जब समस्त काम्यकर्म-रहित हो जाय उस कालमें अध्यात्मविद्याविशारद पुरुष संन्यासाश्रमको ग्रहण करे ॥ २२२ ॥

विहाय वृद्धौ पितरौ शिशुं भार्य्यां पतिव्रताम् ।
त्यक्त्वाऽसमर्थान्बन्धूंश्च प्रव्रजन्नारकी भवेत् ॥२२३

बूढे मा-बाप, शिशु-पुत्र, पतिव्रता भार्या, असमर्थ पोषण करनेके योग्योंको छोड़ जो संन्यासी होता है वह नरकको जाता है ॥ २२३ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः सामान्य एव च ।
कुलावधूतसंस्कारे पञ्चानामधिकारिता ॥ २२४ ॥

कुलावधूतसंस्कारमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और साधारण जाति इन पांच वर्णोंका ही अधिकार है ॥ २२४ ॥

सम्पाद्य गृहकर्म्माणि परितोष्य परानपि ।
निर्म्ममो निलयाद्गच्छेन्निष्कामो विजितेन्द्रियः २२५

गृहके सारे कार्य सिद्ध करके सब आत्मीय स्वजनोंको सन्तुष्ट कर ममतारहित, कामनारहित और जितेन्द्रिय होकर साधक पुरुष घरसे बाहर निकले ॥ २२५ ॥

आहूय स्वजनान्बन्धून्ग्रामस्थान्प्रतिवासिनः ।
प्रीत्यानुमतिमन्विच्छद्गृहाज्जिगमिषुर्जनः ॥ २२६ ॥

जो गृहस्थाश्रमको छोड़कर गमन करना चाहे वह निजजनों, बन्धुबान्धवोंको, पड़ोसियोंको और ग्रामवासियोंको बुलाकर प्रीतिपूर्ण हृदयसे अनुमति माँगे ॥ २२६ ॥

तेषामनुज्ञामादाय प्रणम्य परदेवताम् ।
ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य निरपेक्षो गृहादियात् ॥ २२७ ॥

फिर सबकी अनुमति ले अभीष्टदेवताको प्रणामकर ग्रामकी प्रदक्षिणा लगा निरपेक्षहृदय हो घरसे बाहर निकले ॥ २२७ ॥

मुक्तः संसारपाशेभ्यः परमानन्दनिर्वृतः ।
कुलावधूतं ब्रह्मज्ञं गत्वा संप्रार्थयेदिदम् ॥ २२८॥

फिर संसारबन्धनसे छूट परमानन्दहृदयमें परितृप्त हो कुलावधूत ब्रह्मज्ञपुरुषके निकट जाय प्रार्थना करे ॥२२८ ॥

गृहाश्रमे परब्रह्मन् ममैतद्विगतं वयः ।
प्रसादं कुरु मे नाथ ! संन्यासग्रहणं प्रति॥२२९॥

हे परब्रह्मन् ! मेरी यह उमर गृहस्थाश्रममें बीती है, हे नाथ ! मैं इस समय संन्यास ग्रहण करनेके लिये आया हूं, मुझसे प्रसन्न हो ॥ २२९ ॥

निवृत्तगृहकर्म्माणं विचार्य विधिवद् गुरुः ।
शान्तं विवेकिनं वीक्ष्य द्वितीयाश्रममादिशेत्२३०

फिर गुरु यह देखकर कि उसके गृहस्थाश्रमके समस्त कार्य निर्वाह हुए हैं या नहीं और उसे शान्त व विवेकवान् निहारकर दूसरे आश्रममें दीक्षित करें ॥ २३० ॥

ततः शिष्यः कृतस्नानो यतात्मा विहिताह्निकः ।
ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं देवर्षीनर्चयेत्पितॄन् ॥ २३१ ॥

फिर स्नान कर आत्माको जीत शिष्यको आह्निक कार्य समाप्त करना चाहिये फिर तीन ऋणसे छूटनेके लिये देव-गण, पितृगण और ऋषिगणोंका तर्पण करे ॥ २३१ ॥

देवा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्च स्वगणैः सह ।
ऋषयः सनकाद्याश्च देवब्रह्मर्षयस्तथा ॥ २३२ ॥

देवगण, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रके अनुचर, सनक, सनन्दन, सनातनादि ऋषिगण, नारदादिक देवर्षिगण, भृगुआदि महर्षिगण ॥ २३२ ॥

अत्र ये पितरः पूज्या वक्ष्यामि शृणु तानपि ।
पिता पितामहश्चैव प्रपितामह एव च ॥ २३३ ॥
माता पितामही देवि ! तथैव प्रपितामही ।
मातामहादयोऽप्येवं मातामह्यादयोऽपि च॥ २३४॥

और जिन पितरोंकी संन्यास ग्रहण करनेके समय पूजा करनी चाहिये उन्हें तुमसे कहता हूं, श्रवण करो. हे देवि ! पिता, माता, पितामह (दादा), पितामही (दादी), प्रपितामह (परदादा), प्रपितामही (परदादी), मातामह (नाना) मातामही (नानी), प्रमातामह (परनाना), प्रमातामही (परनानी), वृद्धप्रमातामह (सरनाना), वृद्धप्रमातामही (सरनानी), (पितृऋणसे छूटनेके लिये उनका और वृद्धप्रपितामह, वृद्धप्रपितामही अतिवृद्धप्रमातामह इत्यादि) की पूजा करनी होगी ॥ २३३ ॥ ३४ ॥

प्राच्यामृषीन्यजेद्देवान्दक्षिणस्यां पितॄन्यजेत् ।
मातामहान्प्रतीच्याञ्च पूजयेन्न्यासकर्मणि ॥ २३५॥

संन्यास ग्रहण करनेके समय पूर्वदिशाओंमें देवताओंकी और ऋषिगणोंकी पूजा करे । दक्षिणदिशामें पितृपक्षकी पूजा करनी योग्य है; पश्चिमादिशामें मातामहपक्षकी पूजा करनी चाहिये ॥ २३६ ॥

पूर्व्वादिक्रमतो दद्यादासनानां द्वयं द्वयम् ।
देवादीन्क्रमतस्तत्रावाह्य पूजां समाचरेत् ॥२३६॥

पूर्वदिशासे आरम्भ करके सबके लिये दो दो आसन स्थापन करे इन आसनोंपर क्रमानुसार देवादिकोंका आवाहन करके पूजा करनी आरम्भ करे ॥ २३६ ॥

समर्च्य विधिवत्तेभ्यः पिण्डान्दद्यात्पृथक्पृथक् ।
पिण्डप्रदानविधिना दत्त्वा पिण्डं यथाक्रमम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्पितृदेवताः॥ २३७ ॥

फिर यथाविधानसे सबकी पूजा करके पृथक् २ पिंडदान करे। इस प्रकार पिण्डदानकी विधिके अनुसार क्रमानुसार पिण्डदान कर पितृ और देवताओंसे प्रार्थना करे ॥ २३७ ॥

तृप्यध्वं पितरो देवा देवर्षिमातृकागणाः ।
गुणातीतपदे यूयमनृणीकुरुताचिरात् ॥ २३८ ॥

हे पितृगण,मातृगण, देवर्षिगण! मैं गुणातीतपदपर गमन करता हूं. आप लोग शीघ्र मुझको ऋणसे छुडावें ॥ २३८ ॥

इत्यानृण्यमर्थयित्वा प्रणम्य च पुनःपुनः ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्त आत्मश्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥२३९॥

इस प्रकार अनृणी होनेको वारंवार प्रणाम करके तीन ऋणसे छूटनेके लिये अपना श्राद्ध करना चाहिये ॥२३९॥

पिता ह्यात्मैव सर्व्वेषां तत्पिता प्रपितामहः ।

आत्मन्यात्मार्पणार्थायकुर्य्यादात्मक्रियांसुधीः२४०

पिता, पितामह, प्रपितामह यह आत्मासे अलग नहीं हैं। अतएव ब्रह्ममें आत्मसमर्पण करनेके निमित्त ज्ञानी पुरुषको अपना श्राद्ध करना चाहिये ॥ २४० ॥

उत्तराभिमुखो भूत्वा पूर्व्ववत्कल्पितासने ।
आवाह्यात्मपितॄन्देवि! दद्यात्पिण्डं समर्चयन् २४१॥

हे देवि ! पहलेके समान परिकल्पित आसनपर उत्तरकी ओरको मुख करके बैठे और अपने पितृगणोंका आवाहन कर अर्च्चनापूर्वक पिण्डदान करे ॥ २४१ ॥

प्रागग्रान्दक्षिणाग्रांश्च पश्चिमाग्रान्यथाक्रमात् ।
पिण्डार्थमास्तरेद्दर्भानुदगग्रान्स्वकर्मणि ॥ २४२ ॥

देवता, ऋषि और पितृगणोंका (पिण्डदानके निमित्त) यथाक्रमसे पूर्व दक्षिण और पश्चिमकी ओर मुख करके कुश बिछा अपनेको पिण्ड देनेके लिये कुशोंको उत्तरकी ओर-को मुख करके बिछावे ॥ २४२ ॥

समाप्य श्राद्धकर्माणि गुरुदर्शितवर्त्मना ।
मुमुक्षुश्चित्तशुद्ध्यर्थमिमं मन्त्रं शतं जपेत् ॥२४३॥
ह्रीं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥२४४॥

मोक्षके अभिलाषी पुरुषको गुरुकी बतायी पद्धतिका

अवलम्बन करके श्राद्धकर्मको समाप्त कर चित्तशुद्धिके लिये शतवार "ह्रीं त्र्यंबकं" मन्त्रका जप करना चाहिये २४३॥२४४

उपासनानुसारेण वेद्यां मण्डलपूर्वकम्।
संस्थाप्य कलशं तत्र गुरुः पूजां समारभेत्॥२४५॥

फिर गुरुको उचित है कि, पूजाकी विधिके अनुसार वेदी पर मण्डल बना उसके ऊपर कलश स्थापित कर पूजाका आरम्भ करे॥ २४५॥

ततस्तु परमं ब्रह्म ध्यात्वा शाम्भववर्त्मना।
विधाय पूजां ब्रह्मज्ञो वह्निस्थापनमाचरेत्॥२४६॥

फिर ब्रह्मज्ञानी गुरुष शिवकी दिखाई पद्धतिके अनुसार परब्रह्मका ध्यान करके पूजा करे और अग्निस्थापन करे२४६

प्रागुक्तसंस्कृते वह्नौ स्वकल्पोक्ताहुतिं गुरुः।
दत्त्वा शिष्यं समाहूय साकल्यं हावयेत्तु तम्॥२४७॥

तदुपरान्त संस्कार की हुई अग्निमें स्वकल्पोक्त आहुति देकर गुरु शिष्यको बुलाकर साकल्य होम करावे॥ २४७॥

आदौ व्याहृतिभिर्हुत्वा प्राणहोमं प्रकल्पयेत्।
प्राणापानौ समानश्चोदानव्यानौ च वायवः॥२४८॥

पहले व्याहृतिहोम करके प्राणहोम करे, प्राणहोमके समय प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इन पांचों वायुओं-मेंसे प्रत्येकका होम करना चाहिये॥ २४८॥

तत्त्वहोमं ततः कुर्य्याद्देहात्माध्यासमुक्तये ।
पृथिवी सलिलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ॥ २४९ ॥

फिर देहसे आत्माका अध्यास छुटानेके लिये तत्त्वहोम करना चाहिये । पृथ्वी, जल, अग्नि,वायु, आकाश ॥२४९॥

गन्धो रसश्च रूपं च स्पर्शः शब्दो यथाक्रमम् ।
ततो वाक्पाणिपादाश्च पायूपस्थौ ततः परम् २५०

गन्ध, जल, रूप, स्पर्श, शब्द, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ॥ २५० ॥

श्रोत्रं त्वङ्नयनं जिह्वा घ्राणं बुद्धीन्द्रियाणि च ।
मनो बुद्धिश्च चित्तश्चाहङ्कारो देहजाःक्रियाः॥२५१॥

कान, त्वक्, नयन, जीभ, घ्राण यह सब ज्ञानेंद्रिय हैं । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार देहके समस्त कार्य हैं ॥ २५१॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि यानि च॥२५२॥
एतानि मे पदान्ते च शुद्ध्यन्तां पदमुच्चरेत् ।
ह्रींज्योतिरहं विरजाविपाप्माभूयासमित्यपि २५३॥

इन्द्रियोंके समस्त कार्य, प्राणोंके समस्त कार्य्य इन समस्त पदोंको उच्चारण करके "मे शुध्यन्ताम्" अर्थात् शुद्ध हो पद उच्चारण करे तदुपरान्त "ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासम्" यह भी पढ़े (१) ॥ २५२ ॥ २५३ ॥

(१) मन्त्रोद्धारः "प्राणापानसमानोदानव्याना मे शुध्यन्तां ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा" इस प्रकार सब जगह योजना करे ।

चतुर्विंशतितत्त्वानि कर्म्माणि दैहिकानि च।
हुत्वाग्नौ निष्क्रियो देहं मृतवच्चिन्तयेत्ततः॥२५४॥

इस प्रकार चौबीस तत्त्व और समस्त कर्मोंको अग्निमें होम कर कर्मसे निकलनेके पीछे अपने शरीरको मृतकतुल्य समझे ॥ २५४ ॥

विभाव्य मृतवत्कायं रहितं सर्व्वकर्मणा।
स्मरंस्तत्परमं ब्रह्म यज्ञसूत्रं समुद्धरेत् ॥ २५५ ॥

इस प्रकार अपने शरीरको मृतकतुल्य और सब कर्मोंसे रहित विचार कर परब्रह्मका स्मरण कर गलेमेंसे यज्ञसूत्र निकाल ले ॥ २५५ ॥

ऐंक्लींहंस इति मन्त्रेण[1] स्कन्धादुत्तार्य्य तत्त्ववित्।
यज्ञसूत्रं करे कृत्वा पठित्वा व्याहृतित्रयम्।
वह्निजायां समुच्चार्य्य घृताक्तमनले क्षिपेत्॥२५६॥

तत्त्वका जाननेवाला पुरुष "ऐं क्लीं हंसः" मंत्र पढ़कर कंधेसे यज्ञसूत्र निकाल हाथमें धारण करे और तीन व्याहृति पढ़ कर 'स्वाहा' पद उच्चारण करे और घृतसंयुक्त यह यज्ञोपवीत अग्निमें डाल दे ॥ २५६ ॥

हुत्वैवमुपवीतञ्च कामबीजं समुच्चरन्।
छित्त्वा शिखां करे कृत्वा घृतमध्ये नियोजयेत्२५७

---

१ 'ऐं क्लींहू इती मंत्रेण' इति पाठान्तरम्।

इस प्रकार यज्ञोपवीत होमकर "क्लीं" बीज उच्चारण करके चुटियाको काटकर हाथमें ले घृतमें स्थापन करे ॥ २५७ ॥

ब्रह्मपुत्रि ! शिखे ! त्वं हि बालरूपा तपस्विनी ।
दीयते पावके स्थानं गच्छ देवि ! नमोऽस्तु ते ॥ २५८

फिर यह मंत्र पढ़े कि, हे ब्रह्मपुत्रि शिखे ! तुम केशरूपा तपस्विनी हो। हे देवि ! तुमको अग्निमें स्थान देता हूं, तुम गमन करो, तुमको नमस्कार हो ॥ २५८ ॥

कामं मायां कूर्चमन्त्रं वह्निजायामुदीरयन् ।
तस्मिन्सुसंस्कृते वह्नौ शिखाहोमं समाचरेत् ॥ २५९ ॥

फिर " क्लीं ह्रीं हूं फट् स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर उस संस्कारित अग्निमें शिखाका होम करे ॥ २५९ ॥

शिखामाश्रित्य पितरो देवा देवर्षयस्तथा ।
सर्वाण्याश्रमकर्माणि निवसन्ति शिखोपरि ॥ २६० ॥

पितृगण, देवगण, देवर्षिगण और समस्त आश्रमोंके कार्य इस शिखाका आश्रय करके इसमें रहते हैं ॥ २६० ॥

अतः सन्तर्प्य ताः सर्वा देवर्षिपितृदेवताः ।
शिखासूत्रपरित्यागाद्देही ब्रह्ममयो भवेत् ॥ २६१ ॥

इस कारण देवगण, ऋषिगण, पितृगण, देवतागण, सबका ही तर्पण करके, देही शिखा और यज्ञोपवीतको छोड़ते ही ब्रह्ममय हो जाता है ॥ २६१ ॥

यज्ञसूत्रशिखात्यागात्संन्यासः स्याद्द्विजन्मनाम् २६२ ॥

द्विजगण शिखा और यज्ञोपवीतके छोड़ते ही द्विजोंका संन्यास होता है अर्थात् वे ब्रह्ममय हो जाते हैं ॥ २६२ ॥

शूद्राणामितरेषां च शिखां हुत्वैव संस्क्रिया।
ततो मुक्तशिखासूत्रः प्रणमेद्दण्डवद्गुरुम्।
गुरुरुत्थाप्य तं शिष्यं दक्षकर्णे वदेदिदम् ॥२६३॥

शूद्र वा साधारण जातियोंका शिखा काटकर होम करते ही संस्कार हो जाता है फिर शिखासूत्रको छोड़कर गुरुको दण्डवत् प्रणाम करे। शिष्यको उठाकर गुरु उसके दाहिने कानमें यह मंत्र कहे ॥ २६३ ॥

तत्त्वमसि महाप्राज्ञ! हंसः सोऽहं विभावय।
निर्म्ममो निरहङ्कारः स्वभावेन सुखं चर॥२६४॥

कि, हे महाप्राज्ञ! तुम ही वह ब्रह्म हो, तुम हंस और सोहं की चिन्ता करो। तुम स्वभावसे ही अहंकार व ममताको छोड़कर सुखसे विचरण करो ॥ २६४ ॥

ततो घटञ्च वह्निञ्च विसृज्य ब्रह्मतत्त्ववित्।
आत्मस्वरूपं तं मत्वा प्रणमेच्छिरसा गुरुः॥२६५॥

फिर ब्रह्मज्ञानी पुरुष घट और अग्निका विसर्जन कर चेलेको अपना स्वरूप विचार मस्तक झुकाकर प्रणाम करे (और यह मंत्र पढ़े कि) ॥ २६५ ॥

नमस्तुभ्यं नमो मह्यं तुभ्यं मह्यं नमोनमः।

त्वमेव तत्तत्त्वमेव विश्वरूप ! नमोऽस्तु ते॥२६६॥

तुमको नमस्कार है, मुझको नमस्कार है। तुमको और मुझको वारंवार नमस्कार है। हे विश्वरूप ! तुम ही यह जगत् हो और यह जगत् ही तुम हो, तुमको नमस्कार करता हूं २६६

ब्रह्ममन्त्रोपासकानां तत्त्वज्ञानां जितात्मनाम् ।
स्वमंत्रेण शिखाच्छेदात्संन्यासग्रहणं भवेत्॥२६७॥

जो लोग ब्रह्ममंत्रके उपासक, जितेन्द्रिय और तत्त्वज्ञान-सम्पन्न हैं वे यदि अपना मंत्र पढ़कर चोटीको काटें तो उनका संन्यासग्रहण करना हो गया ॥ २६७ ॥

ब्रह्मज्ञानविशुद्धानां किं यज्ञैः श्राद्धपूजनैः ।
स्वेच्छाचारपराणान्तु प्रत्यवायो न विद्यते॥२६८॥

जो लोग ब्रह्मज्ञानसे शुद्ध हुए हैं, उनको यज्ञ, पूजा और श्राद्धादि करनेकी आवश्यकता नहीं । वे स्वेच्छाचारी हों तो भी कुछ बुराई नहीं है ॥ २६८ ॥

ततो निर्द्वन्द्वरूपोऽसौ निष्कामः स्थिरमानसः ।
विहरेत्स्वेच्छया शिष्यःसाक्षाद्ब्रह्ममयो भुवि॥२६९॥

फिर शिष्य सुख दुःखादिरूप द्वन्द्वरहित; कामनारहित, स्थिरचित्त और साक्षात् ब्रह्ममय होकर पृथ्वीपर इच्छानुसार विचरण करे ॥ २६९ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं सद्रूपेण विभावयन् ।

विस्मरन्नामरूपाणि ध्यायन्नात्मानमात्मनि॥२७०॥

वह आब्रह्मस्तम्बतक सब विश्वको मेरा स्वरूप समझे, नाम व रूपको भूलनेकी चेष्टा करे, आत्मामें आत्माका ध्यान करे २७०

अनिकेतः क्षमावृत्तो निःशङ्कः सङ्गवर्जितः।
निर्म्ममो निरहंकारः संन्यासी विहरेत्क्षितौ॥२७१॥

वह वासगृहशून्य, क्षमाशील, निःशंकहृदय, संसर्गरहित, ममतारहित, अहंकाररहित और संन्यासी होकर पृथ्वीपर विचरण करे॥ २७१॥

मुक्तो विधिनिषेधेभ्यो निर्योगक्षेम आत्मवित्।
सुखदुःखसमो धीरो जितात्मा विगतस्पृहः॥२७२॥

वह शास्त्रीय विधिनिषेधसे मुक्त होगा, उसको लब्ध विषयकी रक्षा और अलब्ध विषयके लाभ करनेकी चेष्टा न करनी चाहिये। वह सुखदुःखमें समान, धीर, जितेन्द्रिय और स्पृहादिरहित होकर आत्मतत्त्वज्ञानमें रत रहे॥ २७२॥

स्थिरात्मा प्राप्तदुःखोऽपि सुखे प्राप्तेऽपि निःस्पृहः।
सदानन्दःशुचिःशान्तो निरपेक्षो निराकुलः॥२७३॥

दुःख उपस्थित होनेपर भी उसका अन्तःकरण स्थिर रहे, विचलित न हो, सुख उपस्थित होनेपर भी उसमें स्पृहा नहीं करे। सदा आनन्दयुक्त, पवित्र, शान्त, निरपेक्ष और निराकुल हो॥ २७३॥

नोद्वेजकः स्याज्जीवानां सदा प्राणिहितेरतः।

विगतामर्षभीर्द्दान्तो निःसंकल्पो निरुद्यमः ॥२७४॥

वह सदा सब प्राणियोंका हित करनेमें तत्पर रहे, किसीके मनमें उद्वेग न जन्मावे, क्रोधरहित, भयरहित, संकल्परहित और उद्यमरहित होवे ॥ २७४ ॥

शोकद्वेषविमुक्तः स्याच्छत्रौ मित्रे समो भवेत् ।
शीतवातातपसहः समो मानापमानयोः ॥ २७५ ॥

शोक और द्वेष रहित शत्रु मित्रको समान देखे. मान, अपमानको समान समझे तथा शीत, वात, आतपादिके कष्टको सहनमें समर्थ हो ॥ २७५ ॥

समः शुभाशुभे तुष्टो यदृच्छाप्राप्तवस्तुना ।
निस्त्रैगुण्यो निर्विकल्पो निर्लोभः स्यादसञ्चयी २७६

वह शुभाशुभमें सम और इच्छाप्राप्त वस्तुमें ही संतुष्ट रहे, त्रिगुणातीत, निर्विकल्प, लोभशून्य और संचयरहित हो ॥२७६॥

यथासत्यमुपाश्रित्य मृषा विश्वं प्रतिष्ठति ।
आत्माश्रितस्तथा देही जानन्नेवं सुखी भवेत् २७७॥

जगत् मिथ्यास्वरूप होकर भी जैसे एकमात्र सत्यस्वरूप परमात्माको आश्रय करके सत्यके समान मालूम होता है उसके समान आत्माको आश्रय करके मिथ्याभूत यह देह आत्मवत् प्रतीत होता है, संन्यासी यह जानकर सुखी हो २७७

इन्द्रियाण्येव कुर्वन्ति स्वं स्वं कर्म्म पृथक्पृथक् ।
आत्मासाक्षीविनिर्लिप्तो ज्ञात्वैवं मोक्षभाग्भवेत् २७८

इन्द्रियां ही पृथक् २ अपने कर्मको पृथक् २ निर्वाह करती हैं; आत्मा साक्षी और निर्लिप्त है अर्थात् वह उन कर्मोंमें बद्ध नहीं होता, संन्यासी यह जानकर मोक्षका भागी होता है ॥ २७८ ॥

धातुप्रतिग्रहं निन्दामनृतं क्रीडनं स्त्रिया ।
रेतस्त्यागमसूयाञ्च संन्यासी परिवर्ज्जयेत् ॥ २७९ ॥

धातुद्रव्य ग्रहण करना, पराई निन्दा करना, मिथ्या व्यवहार, स्त्रियोंके साथ क्रीडा, शुक्रत्याग और असूया संन्यासीको चाहिये कि इन सबको छोड़ दे ॥ २७९ ॥

सर्वत्र समदृष्टिः स्यात्कीटे देवे तथा नरे ।
सर्वं ब्रह्मेति जानीयात्परिव्राट् सर्वकर्म्मसु ॥ २८० ॥

परिव्राट् संन्यासीका कर्त्तव्य यह है कि–देवता, मनुष्य या कीड़ा, मकोड़ा सबको समदृष्टिसे देखे, सब कार्योंमें सबको ब्रह्म जाने ॥ २८० ॥

विप्रान्नं श्वपचान्नं वा यस्मात्तस्मात्समागतम् ।
देशं कालं तथा पात्रमश्नीयादविचारयन् ॥ २८१ ॥

संन्यासीका कर्तव्य यह है कि, ब्राह्मणका अन्न हो वा चाण्डालका अन्न हो जिस किसी मनुष्यसे प्राप्त करे, उस अन्नको देश, काल और पात्रका विचार न करके अनायास भोजन कर जाय ॥ २८१ ॥

अध्यात्मशास्त्राध्ययनैः सदा तत्त्वविचारणैः ।
अवधूतो नयेत्कालं स्वेच्छाचारपरायणः ॥२८२॥

अवधूत पुरुष स्वेच्छाचारी होकर भी वेदान्तादि अध्यात्मशास्त्र पढ़कर सदा आत्मतत्त्वका विचार करके समय बितावे ॥ २८२ ॥

संन्यासिनां मृतं कायं दाहयेन्न कदाचन ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्निखनेद्वाप्सु मज्जयेत् २८३॥

संन्यासियोंके मृतदेहका कभी दाह नहीं करना चाहिये। यह देह गंधपुष्पादिसे अर्चित करके पृथ्वीमें दाब दे अथवा जलमें विसर्जन करे ॥ २८३ ॥

अप्राप्तयोगमर्त्यानां सदाकामाभिलाषिणाम् ।
स्वभावाज्जायते देवि ! प्रवृत्तिः कर्म्मसङ्कुले२८४॥

हे देवि ! जो लोग योग और ब्रह्मज्ञानको प्राप्त नहीं हुए, जो सदा भोगके अभिलाषी हैं, उनकी स्वभावसे ही कर्मकाण्डमें प्रवृत्ति होती है ॥ २८४ ॥

तत्रापि ते सानुरक्ता ध्यानार्च्चाजपसाधने ।
श्रेयस्तदेव जानन्तु यत्रैव दृढनिश्चयः ॥ २८५ ॥

कर्मकाण्डमें अनुरागी होकर भी वे ध्यान, पूजा और जपादिका साधन किया करते हैं और वे जिस साधनमें दृढ निश्चय हो उसको ही श्रेष्ठ समझें ॥ २८५ ॥

अतः कर्म्मविधानानि प्रोक्तानि चित्तशुद्धये ।
नामरूपं बहुविधं तदर्थं कल्पितं मया ॥२८६॥

इसी कारणसे मैंने चित्तशुद्धिके लिये कर्मकाण्डका विधान कहा है। इसी कारणसे मैंने अनेक प्रकारके नाम, रूप कलपना किये हैं ॥ २८६ ॥

ब्रह्मज्ञानादृते देवि ! कर्म्मसंन्यसनं विना ।
कुर्वन्कल्पशतं कर्म्म न भवेन्मुक्तिभाग्जनः॥२८७॥

हे देवि ! ब्रह्मज्ञानके विना और कर्मसंन्यासके विना शत शत कल्पतक पूजा जपादि कर्म करनेपर भी कोई मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सकता ॥ २८७ ॥

कुलावधूतस्तत्त्वज्ञो जीवन्मुक्तो नराकृतिः ।
साक्षान्नारायणं मत्वा गृहस्थस्तं प्रपूजयेत्॥२८८॥

ब्रह्मज्ञानसम्पन्न कुलावधूत मनुष्याकार होकर भी जीवन्मुक्त है । गृहस्थ उसको साक्षात् नारायण समझ उसकी पूजा करे ॥ २८८ ॥

यतेर्दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्वपातकात् ।
तीर्थव्रततपोदानसर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२८९॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे वर्णाश्रमाचारधर्मकथनं नाम अष्टमोल्लासः ॥ ८ ॥

यतीका दर्शन करते ही सब पापोंसे छूट जाता है । जो पुरुष यतीका दर्शन करता है वह तीर्थगमन, व्रतानुष्ठान, तप, दान और सब यज्ञोंके फलको प्राप्त कर लेता है ॥ २८९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादाबादनिवासि पं॰ बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां वर्णाश्रमाचारकथनं नाम अष्टमोल्लासः ॥ ८ ॥

नवमोल्लासः ९.

श्रीसदाशिव उवाच ।

वर्णाश्रमाचारधर्माः कथितास्तव सुव्रते ।
संस्कारान्सर्ववर्णानां शृणुष्व गदतो मम ॥ १ ॥

श्रीसदाशिवने कहाः—हे सुव्रते ! सब वर्ण वा आश्रमोंका आचार और धर्म मैंने तुमसे कहा; इस समय सब वर्णोंका संस्कार कहता हूं, श्रवण करो ॥ १ ॥

संस्कारेण विना देवि ! देहशुद्धिर्न जायते ।
नासंस्कृतोऽधिकारी स्याद्दैवे पैत्र्ये च कर्माणि ॥२॥

हे देवि ! संस्कारके विना किसीका देह शुद्ध नहीं होता; जिस पुरुषका संस्कार नहीं हुआ, वह कभी दैव और पैत्र कर्मका अधिकारी नहीं हो सकता है ॥ २ ॥

अतो विप्रादिभिर्वर्णैः स्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रिया ।
कर्त्तव्या सर्वथा यत्नैरिहामुत्र हितेप्सुभिः ॥ ३ ॥

जो इस लोक और परलोकमें हितकी कामना करते हैं उन समस्त ब्राह्मणादि वर्णोंका यह कर्तव्य है कि, उनको सर्वप्रकार और सर्वयत्नसे अपने अपने वर्णोंका संस्कार करना चाहिये ॥ ३ ॥

जीवसेकः पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातनाम्नी निष्क्रमणमन्नाशनमतः परम् ।
चूडोपनयनोद्वाहाः संस्कारा कथिता दश ॥ ४ ॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, घरके बाहर होना, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन, विवाह यह दश संस्कार कहे गये हैं ॥ ४ ॥

शूद्राणां शूद्रभिन्नानामुपवीतं न विद्यते ।
तेषां नवैव संस्कारा द्विजातीनां दश स्मृताः ॥५॥

शूद्र और साधारण जातिका उपनयन नहीं होता इसी कारणसे उनके नौ संस्कार और द्विजातियोंके दश संस्कार कहे हैं ॥ ५ ॥

नित्यानि सर्वकर्म्माणि तथा नैमित्तिकानि च ।
काम्यान्यपि वरारोहे ! कुर्य्याच्छाम्भववर्त्मना ॥६॥

हे वरारोहे ! सब नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म और काम्यकर्म महादेवजीकी दिखायी हुई पद्धतिके अनुसार करे ॥ ६ ॥

यानि यानि विधानानि येषु येषु च कर्म्मसु ।
पुरैव ब्रह्मरूपेण तान्युक्तानि मया प्रिये ! ॥ ७ ॥

हे प्रिये ! जिस २ कर्मका जो जो विधान नियत है मैंने पहले ही पितामहरूपसे उसको कहा है ॥ ७ ॥

संस्कारेषु च सर्वेषु तथैवान्येषु कर्म्मसु ।
विप्रादिवर्णभेदेन क्रमान्मन्त्राश्च दर्शिताः ॥ ८ ॥

दशविध संस्कारमें और नित्य नैमित्तिकादि कर्मोंके विषयमें ब्राह्मणादि वर्णमें जो मन्त्र नियत हैं उनको भी कह चुका हूं ॥ ८ ॥

सत्यत्रेताद्वापरेषु तत्तत्कर्म्मसु कालिके ! ।
प्रणवाद्यांस्तु तान्मन्त्रान्प्रयोगेषु नियोजयेत् ॥९॥

हे कालिके ! सत्य, त्रेता और द्वापरयुगमें उपरोक्त सब कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय मन्त्रप्रयोग करनेके निकट ही पहले प्रणवको मिलावे ॥ ९ ॥

कलौ तु परमेशानि ! तैरेव मनुभिर्नराः ।
मायाद्यैः सर्वकर्म्माणि कुर्युः शंकरशासनात् ॥१०॥

हे परमेश्वरि ! महादेवजीकी आज्ञा है कि, कलियुगमें मनुष्य इन सब मन्त्रोंके पहले मायाबीज 'ह्रीं' मिलाकर नित्य नैमित्तिकादि कर्मोंको करें ॥ १० ॥

निगमागमतन्त्रेषु वेदेषु संहितासु च ।
सर्वे मन्त्रा मयैवोक्ताः प्रयोगो युगभेदतः ॥११॥

निगम, आगम, तन्त्र, वेद, संहिताओंमें जो मन्त्र हैं। वे निगम कह चुके;परंतु युगभेदसे उनके प्रयोगमें भेद है॥११॥

कलावन्नगतप्राणा मानवा हीनतेजसः ।
तेषां हिताय कल्याणि ! कुलधर्मो निरूपितः ॥ १२ ॥

हे कल्याणि ! कलियुगी मनुष्योंके प्राण अन्नमें होंगे. वे निस्तेज होंगे, मैंने उनका हित करनेको कुलधर्म निरूपण किया है ॥ १२ ॥

कलिदुर्बलजीवानां प्रयासाशक्तचेतसाम् ।
संस्कारादिक्रियास्तेषां संक्षेपेणापि वच्मि ते ॥ १३ ॥

कलियुगके जीवगण अत्यन्त दुर्बल होंगे । उनपर परिश्रम और क्लेश नहीं सहा जायगा । इस कारण मैं उनकी दशविध संस्कारादि समस्त क्रिया तुमसे संक्षेप करके कहता हूं ॥ १३ ॥

सर्वेषां शुभकार्य्याणामादिभूता कुशण्डिका ।
तस्मादादौ प्रवक्ष्यामि शृणु तां देववन्दिते ! ॥ १४ ॥

हे सुरवन्दिते ! कुशण्डिका सब शुभ कर्मोंकी मूलरूप है अतएव पहले कुशण्डिकाको कहता हूं, श्रवण करो ॥ १४ ॥

रम्ये परिष्कृते देशे तुषाङ्गारादिवर्ज्जिते ।
हस्तमात्रप्रमाणेन स्थण्डिलं रचयेत्सुधीः ॥ १५ ॥

तुष अङ्गारादि रहित उत्तम रमणीय साफ स्थानमें ज्ञानी-पुरुष एक हाथके परिमाणका स्थण्डिल रेतीका बना हुआ होमकी अग्निका स्थान बनावे ॥ १५ ॥

तिस्रो रेखा विधातव्याः प्रागग्रास्तत्र मण्डले ।
कूर्चेनाभ्युक्ष्य ताः सर्व्वा वह्निना वह्निमाहरेत् ॥ १६ ॥

फिर उस मण्डलके ऊपरी हिस्सेमें पूर्वकी ओर तीन रेखा खींच कर "हूं," मन्त्र पढकर उसे अभ्युक्षित करके वह्नि बीज (रं) पढकर अग्नि लावे ॥ १६ ॥

आनीय वह्निं तत्पार्श्वे स्थापयेद्वाग्भवं स्मरन् १७॥

फिर अग्नि लाकर " ऐं" बीजका स्मरण कर उसको मण्डलके पार्श्वमें स्थापित करे ॥ १७ ॥

ततस्तस्माज्ज्वलद्दारु गृहीत्वा दक्षपाणिना ।
ह्रींक्रव्यादेभ्यो नमःस्वाहा क्रव्यादांशं परित्यजेत् १८

फिर दहिने हाथके द्वारा उसमेंसे एक जलता हुआ काठ ले "ह्रीं क्रव्यादेभ्यो नमः स्वाहा" यह मंत्र पढ़ दक्षिणकी ओर राक्षसका अंश छोड़ दे ॥ १८ ॥

इत्थं प्रतिष्ठितं वह्निं पाणिभ्यामात्मसम्मुखम् ।
उद्धृत्य तासु रेखासु मायाद्यां व्याहृतिं स्मरन् १९॥

इस प्रकार प्रतिष्ठित अग्निको दोनों हाथोंसे उठा मायाबीजका उच्चारण कर व्याहृति पढ़े और अपने सामने इन तीन रेखाओंके ऊपर ॥ १९ ॥

संस्थाप्य तृणदारुभ्यां प्रबलीकृत्य पावकम् ।
समिधे द्वे घृताक्ते च हुत्वा तस्मिन्हुताशने ।
स्वकर्म्मविहितं नाम कृत्वा ध्यायेद्धनञ्जयम् २०॥

यह अग्निस्थापन करके तृण काष्ठसे उसको उज्ज्वल करे। फिर उस अग्निमें दो घृतयुक्त समिध आहुति देकर इस

अग्निका अपने कर्मके अनुसार नाम रखकर धनञ्जयनामक अग्निका ध्यान करे ॥ २० ॥

बालार्कारुणसंकाशं सप्तजिह्वं द्विमस्तकम् ।
अजारूढं शक्तिधरं जटामुकुटमण्डितम् ॥ २१ ॥

जो बालसूर्यके समान अरुण वर्ण हैं, जिनके सात जीभ हैं, दो मस्तक हैं, जो छागपर सवार हैं, जिनकी शक्तिका परिमाण नहीं, जिनका मस्तक जटा और मुकुटसे शोभायमान है (उन धनञ्जय नामक अग्निका ध्यान करता हूं) २१॥

ध्यात्वैवं प्राञ्जलिर्भूत्वावाहयेद्धव्यवाहनम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार ध्यान कर हाथ जोड़ आगे कहा हुआ मंत्र पढकर अग्निका आवाहन करे ॥ २२ ॥

मायामेह्येहि पदतः सर्वामर वदेत्प्रिये ! ।
हव्यवाहपदान्ते च मुनिभिः स्वगणैः सह ।
अध्वरं रक्ष रक्षेति नमः स्वाहा ततो वदेत्॥२३॥

पहले मायाबीज ' ह्रीं' उच्चारण करके ' एह्येहि' पद पढ़कर ' सर्वामर' पद उच्चारण करे । हे प्रिये ! फिर 'हव्यवाह' पदके पश्चात् " मुनिभिः स्वगणैः सह अध्वरं रक्ष रक्ष नमः स्वाहा" इन सब पदोंका उच्चारण करे (१) ॥ २३ ॥

इत्यावाह्य हव्यवाहमयं ते योनिरुच्चरन् ।
यथोपचारैः सम्पूज्य सप्त जिह्वान्प्रपूजयत् ॥२४॥

(१) मंत्रोद्धार यथाः—"ह्रीं" एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिभि :स्वगणैः सहाध्वरं रक्ष रक्ष नमः स्वाहा"

इस प्रकार आवाहन करके " वह्ने अयं ते योनिः " पदका उच्चारण करके पाद्यादि उपचारसे पूजन करके सप्त जिह्वाओंकी अर्चना करे ॥ २४ ॥

कालो कराली च मनोजवा च सुलोहिता चैव सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वनिरूपिणी च लेलायमानेति च सप्तजिह्वाः ॥ २५ ॥

सप्त जिह्वाओंके नाम यथा–काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रा, स्फुलिङ्गिनी, विश्वनिरूपिणी, लेलायमाना ये सात अग्निकी जीभें हैं ॥ २५ ॥

ततोऽग्नेः पूर्वमारभ्य सह कीलालपाणिना ।
उत्तरान्तं महेशानि ! त्रिधा प्रोक्षणमाचरेत् ॥२६॥

हे महेश्वरि ! फिर अग्निकी पूर्वदिशासे आरम्भ करके उत्तरदिशातक तीन वार अग्निको प्रोक्षित करे ॥ २६ ॥

तथैव याम्यमारभ्य कौबेरान्तं हुताशितुः ।
त्रिधा पर्य्युक्षणं कुर्य्यात्ततो यज्ञीयवस्तुनः ॥२७॥

तदनन्तर अग्निकी दक्षिणदिशासे आरम्भ करके उत्तरदिशातक तीन वार प्रोक्षित कर सब उपकरणोंको भी तीन वार प्रोक्षित करे ॥ २७ ॥

परिस्तरेत्ततो दर्भैः पूर्वस्मादुत्तरावधि ।
उदक्संस्थैरुत्तराग्रैः प्रागग्रैरन्यदिक्स्थितैः ॥२८॥

फिर मंडलकी पूर्वदिशासे आरम्भ करके उत्तरदिशातक कुशसे आच्छादन करे, उत्तरदिशाके कुशोंका मुख उत्तरकी ओर करके और दिशाओंके कुशोंका मुख पूर्वकी ओरको स्थापन करे ॥ २८ ॥

अग्निं दक्षिणतः कृत्वा गत्वा ब्रह्मासनान्तिकम् ।
वामाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां ब्रह्मणः कल्पितासनात् २९॥

फिर अग्निको दक्षिणदिशामें रख ब्रह्मासनके निकट जाय बाँये हाथसे अँगूठे और कनिष्ठ अंगुलीसे ब्रह्माके निमित्त कल्पित आसनसे ॥ २९ ॥

गृहीत्वा कुशपत्रैकं ह्रीं निरस्तः परावसुः ।
इत्युक्त्वाग्नेर्दक्षिणस्यां निक्षिपेदुत्करादिना ॥ ३० ॥

एक कुशपत्र ग्रहण करके " ह्रीं निरस्तः परावसुः" मंत्र पढ़कर अग्निकी दाहिनी ओर उसको डाल दे ॥ ३० ॥

सीद यज्ञपते ! ब्रह्मन्निदन्ते कल्पितासनम् ।
सीदामीति वदन्ब्रह्मा विशेत्तत्रोत्तरामुखः ॥ ३१ ॥

फिर कहे कि, हे यज्ञपते ! हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे लिये यह आसन बनाया है, इसपर बैठो । ब्रह्मा 'बैठता हूं' यह कहकर उत्तरमुख हो उसपर बैठ जावे ॥ ३१ ॥

सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्ब्रह्माणं प्रार्थयेदिदम् ॥ ३२ ॥

फिर गन्धपुष्पादिसे ब्रह्माकी पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे कि ॥ ३२ ॥

गोपाय यज्ञं यज्ञेश ! यज्ञं पाहि बृहस्पते ! ।
माञ्च यज्ञपतिं पाहि कर्मसाक्षिन्नमोऽस्तुते ॥ ३३॥

हे यज्ञेश्वर! इस यज्ञकी रक्षा करो! हे बृहस्पते ! इस यज्ञकी रक्षा करो ! हे यज्ञपते ! मेरी रक्षा करो, हे कर्मसाक्षिन् ! तुमको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

गोपायामि वदेद्ब्रह्मा ब्रह्माभावे स्वयं वदेत् ।
तत्र दर्भमयं विप्रं कल्पयेद्यज्ञसिद्धये ॥ ३४ ॥

फिर ब्रह्मा कहे कि, 'रक्षा करता हूं' ब्रह्माके न होनेसे स्वयं यह वाक्य कहना चाहिये और यज्ञकी सिद्धिके अर्थ उस ब्रह्माके स्थानमें दर्भमय ब्राह्मणकी कल्पना करे ॥ ३४ ॥

ततो ब्रह्मन्निहागच्छागच्छेत्यावाह्य साधकः ।
पाद्यादिभिश्च सम्पूज्य यावद्यज्ञसमापनम् ।
तावद्भवद्भिः स्थातव्यमिति प्रार्थ्य नमेत्ततः ॥ ३५॥

इसके उपरान्त साधक आवाहन करे कि "हे ब्रह्मन्! इहागच्छ २" फिर पाद्यादिसे उनकी पूजा करके प्रार्थना करे कि, जबतक यज्ञकी समाप्ति न हो तबतक आप यहां रहें फिर साधक नमस्कार करे ॥ ३५ ॥

सोदकेन करेणाग्नेरीशानाद्ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।
त्रिधा पर्य्युक्ष्य वह्निञ्च त्रिःप्रोक्ष्य तदनन्तरम्॥ ३६॥

फिर हाथसे जल ग्रहण कर अग्निके ईशान कोणसे आरम्भ करके ब्रह्माके निकटतक तीनवार जल छिड़के, इस प्रकार तीन वार अग्निको प्रोक्षित करे ॥ ३६ ॥

आगत्य वर्त्मना तेन सूपविश्य निजासने ।
स्थण्डिलस्योत्तरे दर्भानुदगग्रान्परिस्तरेत् ॥ ३७ ॥

फिर पहले जिस मार्गसे ब्रह्माके आसनके निकट गमन किया था उस मार्गसे लौटकर अपने आसनपर बैठ और मण्डलकी उत्तरादिशामें थोड़ेसे कुश उत्तरकी ओरको मुख करके फैलावे ॥ ३७ ॥

तेषु यज्ञीयवस्तूनि सर्वाण्यासादयेत्सुधीः ।
सोदकं प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीसमित्कुशान् ३८॥

फिर साधकको उचित है कि, जलसहित प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली और समिध कुशादि यज्ञकी सामग्री दर्भके बिछौनेपर रक्खे ॥ ३८ ॥

आसाद्य स्रुक्स्रुवादीनि ह्रांह्रींह्रूमितिमन्त्रकैः ।
दिव्यदृष्ट्या प्रोक्षणेन संस्कृत्य तदनन्तरम् ॥ ३९ ॥

फिर स्रुक् स्रुवा आदि यज्ञके सब पात्र दर्भके इस बिछौने पर स्थापन करके " ह्रां ह्रीं ह्रूं " यह मन्त्र पढ़कर दिव्यदृष्टि (विना पलक मारे देखने) से और प्रोक्षणसे उन सबको शुद्ध करे ॥ ३९ ॥

पृथिव्यां दक्षिणं जानु पातयित्वा स्रुवे स्रुचा ।
घृतमादाय मतिमांश्चिन्तयन्हितमात्मनः ।
ह्रीं विष्णवे द्विठान्तेन प्रपद्यादाहुतित्रयम् ॥ ४० ॥

फिर ज्ञानी साधक पृथ्वीमें दाहिनी जाँघ झुका स्रुक्से स्रुवानामक यज्ञीयपात्रमें घृत ग्रहण करके अपनी मंगल कामना करते २ "ह्रीं विष्णवे स्वाहा" मन्त्र पढ़कर तीन वार आहुति दे ॥ ४० ॥

तथैव घृतमादाय ध्यायन्देवं प्रजापतिम् ।
वायव्यादग्निकोणान्तं जुहुयादाज्यधारया ॥ ४१ ॥

इस प्रकार दुबारा स्रुक्द्वारा स्रुवनामक यज्ञपात्रमेंसे घृत लेकर देव प्रजापतिका ध्यान करके "ह्रीं प्रजापतये स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर वायुकोंणसे आरम्भ करके अग्निकोणतक घृतद्वारा होम करे ॥ ४१ ॥

पुनराज्यं समादाय ध्यायन्देवं पुरन्दरम् ।
नैर्ऋतादीशकोणान्तं जुहुयादाज्यधारया ॥ ४२ ॥

ऐसे ही फिर घृतको ग्रहण करके पुरन्दर देवका ध्यान करते २ "ह्रीं पुरन्दराय स्वाहा" इस मन्त्रको पढ़कर नैर्ऋत कोण से आरम्भ करके ईशान कोणतक घृतसे आहुति दे ॥४२॥

ततोऽग्नेरुत्तर याम्ये मध्ये च परमेश्वरि ! ।
अग्निं सोममग्नीषोमौ समुल्लिख्य यथाक्रमात् ४३॥

हे परमेश्वरि ! तदनन्तर फिर ऐसे ही घृतको ग्रहण करके अग्निके उत्तर दक्षिणमें और मध्येमें क्रमानुसार अग्नि सोम-और अग्नीषोमके अर्थ ॥ ४३ ॥

सचतुर्थीनमोऽन्तेन मायाद्येनाहुतित्रयम् ।
हुत्वा विधेयकर्मोक्तं होमं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥४४॥

"ह्रीं अग्नये नमः ह्रीं सोमाय नमः ह्रीं अग्नीषोमाभ्यां नमः" यह मन्त्र पढ़कर तीन वार आहुति दे, ज्ञानी पुरुष इस प्रकारसे धारा होम करके ऋतुसंस्कारादि कर्मका होम करे ४४

आहुतित्रयदानान्तं धाराहोमं प्रचक्षते ॥ ४५ ॥

तीन आहुति देनेतकको धाराहोम कहते हैं ॥ ४५ ॥

यदुद्दिश्याहुतिं दद्याद्देयोद्देशोऽपि तत्कृतं।
समाप्य प्रकृतं कर्म स्विष्टकृद्धोममाचरेत् ॥ ४६ ॥

जिस देवताके अर्थ आहुति दी जाय उस देवताके अर्थ दी हुई वस्तुका नाम लेना भी उचित है, यथाः—"ह्रीं विष्णवे स्वाहा हविरिदं विष्णवे" इस प्रकार यथार्थ होमकर्म समाप्त करके स्विष्टकृत् होम अर्थात् उत्तम अभीष्टदायक होम करे ॥ ४६ ॥

प्रायश्चित्तात्मको होमः कलौ नास्ति वरानने!।
स्विष्टकृता व्याहृतिभिः प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ४७॥

हे वरानने! कलिकालमें प्रायश्चित्तहोमका अनुष्ठान नहीं है, इस कारण स्विष्टकृत् और व्याहृतिहोमसे प्रायश्चित्त होता है ॥ ४७ ॥

पूर्ववद्धविरादाय ब्रह्माणं मनसा स्मरन्।
अस्मिन्कर्मणि देवेश प्रमादाद्भ्रमतोऽपि वा॥ ४८॥
न्यूनाधिकं कृतं यच्च सर्वं स्विष्टकृतं कुरु।
मायाद्येनामुना देवि! स्वाहान्तेनाहुतिं हुनेत् ॥ ४९॥

फिर स्रुक् नामक यज्ञपात्रके द्वारा स्रुवानामक यज्ञपात्रमें से पहलेके अनुसार घृत ग्रहण करके मनहीमनमें ब्रह्माजीका

स्मरण करे और मायाबीजका उच्चारण करके यह मन्त्र पढ़े कि हे देवदेव ! प्रमाद या भ्रमके कारण इस कर्ममें जो कुछ न्यूनाधिक हो गया है वह मुझको उत्तम फलदायक कर दो. हे देवि ! यह मन्त्र पढ़ "स्वाहा" पद उच्चारण करके आहुति दे (१) ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

त्वमग्ने ! सर्वलोकानां पावनः स्विष्टकृत्प्रभुः ।
यज्ञसाक्षी क्षेमकर्त्ता सर्वान्कामान्प्रपूरय ।
अनेन हवनं कुर्य्यान्मायया वह्निजायया ॥ ५० ॥

हे अग्ने ! तुम सर्वलोकोंको पवित्र करते हो, तुम सबको अभीष्ट फल देते हो और प्रभु हो, तुम यज्ञके साक्षी और मंगलकारी हो, तुम हमारी सर्व कामना पूर्ण करो । प्रथम मायाबीज 'ह्रीं' और फिर 'स्वाहा' पद उच्चारण करके इस मंत्रसे आहुति दे (२) ॥ ५० ॥

इत्थं स्विष्टकृतं होमं समाप्य क्रतुसाधकः ।
कर्मणोऽस्य परब्रह्मन्नयुक्तं विहितञ्च यत् ॥ ५१ ॥

इस प्रकारसे यज्ञकर्त्ता स्विष्टकृत् होमको सिद्धि कर ऐसी प्रार्थना करे कि, हे परब्रह्मन् ! इस यज्ञमें जो कुछ अयुक्त कर्म हुआ है ॥ ५१ ॥

---

(१) " ह्रीं अस्मिन् कर्माणि देवेश प्रमादाद्भ्रमतोऽपि वा । न्यूनाधिकं यच्च कृतं सर्वं स्विष्टकृतं कुरु स्वाहा " ।

(२) " ह्रीं त्वमग्ने सर्वलोकानां पावनं स्विष्टकृत् प्रभुः । यज्ञासाक्षी क्षेमकर्ता सर्वान्कामान्प्रपूरय स्वाहा "

तच्छान्त्यै यज्ञसम्पत्त्यै व्याहृत्याहूयते विभो।
मायादिवह्निजायान्तैर्भूर्भुवःस्वरिति त्रिभिः ॥५२॥

उसकी शांतिके लिये और यज्ञसम्पत्तिके लिये व्याहृति-होम करता हूं फिर " ह्रीं भूः स्वाहा, ह्रीं भुवः स्वाहा, ह्रीं स्वः स्वाहा" इन तीन मंत्रोंसे ॥ ५२ ॥

आहुतित्रितयं दद्यात्त्रितयेन तथैव च।
हुत्वाशौ यजमानेन दद्यात्पूर्णाहुतिं बुधः ॥ ५३ ॥

तीन वार आहुति दे. फिर " ह्रीं भूर्भुवःस्वःस्वाहा " इस मन्त्रसे एक वार आहुति देकर यज्ञकर्त्ता यजमानके साथ यज्ञेश्वरके लिये फिर आहुति दे ॥ ५३ ॥

स्वयं चेत्कर्मकर्त्ता स्यात्स्वयमेवाहुतिं क्षिपेत्।
अभिषेकविधानानामेवमेव विधिः स्मृतः ॥ ५४ ॥

यदि यजमान स्वयं कर्मकर्त्ता हो तो स्वयम् आहुति दे। अभिषेकविधानस्थलमें भी ऐसी ही विधि कही है ॥ ५४ ॥

आदौ मायां समुच्चार्य्य ततो यज्ञपते ! वदेत्।
पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञदेवताः।
फलानि सम्यग्यच्छन्तु वह्निकान्तावधिर्मनुः ५५॥

प्रथम मायाबीज उच्चारण करके फिर " यज्ञपते " पद उच्चारण करे। फिर कहे कि, यह मेरा यज्ञ पूर्ण हो, यज्ञदेवतागण संतुष्ट होकर इस यज्ञका संपूर्ण फल दें, फिर इस मंत्रके अन्तमें "स्वाहा" पद लगावे ॥ ५५ ॥

मन्त्रेणानेन मतिमानुत्थाय सुसमाहितः ।
फलताम्बूलसहिताहुतिं दद्याद्धुताशने ॥ ५६ ॥

ज्ञानी पुरुष खड़ा होकर सावधान हो इस मन्त्रसे फल और पानके साथ अग्निमें आहुति देवे ॥ (१) ॥ ५६ ॥

दत्तपूर्णाहुतिर्विद्वाञ्छान्तिकर्म समाचरेत् ।
प्रोक्षणीपात्रतोयेन कुशैः सम्मार्जयेच्छिरः ॥५७॥

विद्वान् पुरुष पूर्णाहुति देकर शान्तिकर्म करे । पहले तो कुशकरके प्रोक्षणीपात्रसे जल लेकर मस्तकपर डाले ॥५७॥

आपः सुमित्रियाः सन्तु भवन्त्वोषधयो मम ।
आपो रक्षन्तु मां नित्यमापो नारायणः स्वयम् ५८

(इसका मन्त्र यह है कि) जल मेरा श्रेष्ठ मित्रस्वरूप हो, जल मेरे लिये औषधिस्वरूप हो, जल नारायणस्वरूप है, जल सदा हम लोगोंकी रक्षा करे ॥ ५८ ॥

आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्जेदधातन ।
इत्याभ्यां मार्जनं कृत्वा भूमौ बिन्दून्विनिक्षिपेत् ५९

हे जल ! तुम सुख देते हो, तुम हमको ऐहिक विषय दान करो। इस मन्त्रसे मस्तक गीलाकर 'आग्रिम येद्विष' इत्यादि मन्त्रसे पृथ्वीपर जलकी बूँदें डाले ॥ ५९ ॥

---

(१) पूर्णाहुतिका मन्त्र-" ह्रीं यज्ञपते पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञदेवताः । फलानि सम्यक् यच्छन्तु स्वाहा" ।

ये द्विषन्ति च मां नित्यं यांश्च द्विष्मो नरान्वयम् ।
आपो दुर्मित्रियास्तेषां सन्तु भक्षन्तु तानपि॥६०॥

जो लोग सदा हमसे द्वेष करते हैं, हम लोग जिनसे द्वेष करते हैं उनके लिये जल शत्रुस्वरूप होकर उनका भक्षण करें ॥ ६० ॥

अनेनेशानदिग्भागे बिन्दून्प्रक्षिप्य तान्कुशान् ।
हित्वा कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेद्धव्यवाहनम् ॥६१॥

यह मन्त्र पढ़कर कुशसे ईशानकोणमें जलकी बूँदें डालकर कुशोंको छोड़देवे फिर हाथ जोड़कर अग्निके निकट प्रार्थना करे कि ॥ ६१ ॥

बुद्धिं विद्यां बलं मेधां प्रज्ञां श्रद्धां यशः श्रियम् ।
आरोग्यं तेज आयुष्यं देहि मे हव्यवाहन ! ६२॥

हे हुताशन ! मुझको बुद्धि अर्थात् शास्त्रादितत्त्वज्ञान, बल अर्थात् शक्ति, मेधा अर्थात् धारणशक्ति, प्रज्ञा अर्थात् सारासारविवेककी निपुणता, श्रद्धा, यश, श्री, आरोग्य, तेज, आयु इन सबको प्रदान करो ॥ ६२ ॥

इति प्रार्थ्य वीतिहोत्रं विसृजेदमुना शिवे ! ॥६३॥

हे शिवे ! अग्निके निकट इस प्रकार प्रार्थना करके इस मन्त्रसे विसर्जन करे कि ॥ ६३ ॥

यज्ञ ! यज्ञपतिं गच्छ यज्ञं गच्छ हुताशन ! ।
स्वां योनिं गच्छ यज्ञेश ! पूरयास्मन्मनोरथम् ६४

हे यज्ञ ! तुम यज्ञपुरुष विष्णुमें गमन करो । हे हुताशन ! तुम यज्ञमें प्रवेश करो । हे यज्ञेश्वर ! तुम अपने स्थानमें गमन करो और मेरे मनोरथको पूर्ण करो ॥ ६४ ॥

अग्ने ! क्षमस्व स्वाहेति मन्त्रेणाग्नेरुदग्दिशि ।
दत्त्वा दध्नाहुतिं वह्निं दक्षिणस्यां विचालयेत् ॥ ६५ ॥

'अग्ने ! क्षमस्व स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर अग्निकी उत्तर ओरमें दधिसे आहुति देकरके अग्निको दक्षिण ओर चालित करे ॥ ६५ ॥

ब्रह्मणे दक्षिणां दत्त्वा भक्त्या नत्वा विसर्जयेत् ।
ततस्तु तिलकं कुर्य्यात्स्रुवसंलग्नभस्मना ॥ ६६ ॥

फिर ब्रह्माको दक्षिणा देकर भक्तिके साथ नमस्कार करके विसर्जन करे. फिर स्रुवनामक यज्ञपात्रमें लगी हुई भस्मसे तिलक करे ॥ ६६ ॥

मायां कामं समुच्चार्य्य सर्वशान्तिकरो भव ।
ललाटे तिलकं कुर्य्यान्मन्त्रेणानेन याज्ञिकः ॥ ६७ ॥

"ह्रीं क्लीं सर्वशान्तिकरो भव" इस मन्त्रसे यज्ञकर्त्ताको ललाटमें तिलक धारण करना चाहिये ॥ ६७ ॥

शान्तिरस्तु शिवं चास्तु वासवाग्निप्रसादतः ।
मरुतां ब्रह्मणश्चैव वसुरुद्रप्रजापतेः ॥ ६८ ॥

इन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, वसुगण, रुद्रगण और मरुद्गणोंके प्रसादसे शांति हो ॥ ६८ ॥

अनेन मनुनायुष्यं धारयन्मस्तकोपरि ।
स्वशक्त्या दक्षिणां दद्याद्धोमप्रकृतकर्मणोः ॥६९॥

इस मन्त्रको पढ़कर मस्तकके ऊपर आयुर्वृद्धिकारी तिलक लगा होमकी और प्रकृतकर्मकी दक्षिणा दे ॥ ६९ ॥

इति ते कथिता देवि ! सत्कर्मकुशकण्डिका ।
प्रयोज्या शुभकर्मादौ यत्नतः कुलसाधकैः ॥७०॥

हे देवि ! यह मैंने तुमसे सब सत्कर्मोंकी कुशकण्डिका कही। जो लोग कुलसाधक हैं, उनको शुभकर्म करनेके पहले यत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ७० ॥

प्रकृते कर्मणि शिवे ! चरुर्येषां कुलागमः ।
सिद्ध्यर्थं कर्मणान्तेषां चरुकर्म निगद्यते ॥ ७१ ॥

हे शिवे ! वंशके क्रमसे प्रकृतकर्ममें जिनका चरु करनेका नियम है उनकी कर्मसिद्धिके लिये चरुकर्म कहता हूं॥७१॥

चरुस्थाली प्रकर्त्तव्या ताम्री वा मृत्तिकोद्भवा॥७२॥

पहले तो ताँबेकी या मिट्टीकी चरुस्थाली बनावे ॥७२॥

कुशण्डिकोक्तविधिना द्रव्यसंस्करणावधि ।
कृत्वा कर्म चरुस्थालीमानयेदात्मसम्मुखे ॥ ७३ ॥

फिर कुशकण्डिकामें कही हुई विधिके अनुसार द्रव्यसंस्कार तक सर्व कर्म करके अपने सम्मुख चरुस्थालीको लावे ॥ ७३ ॥

अक्षतामव्रणां दृष्ट्वा प्रादेशपरिमाणकम् ।
पवित्रकुशमेकञ्च स्थालीमध्ये नियोजयेत् ॥७४॥

फिर इस चरुस्थालीको अक्षत और व्रणरहित देखकर प्रादेशके प्रमाणका एक पवित्र कुश उसस्थालीमें रक्खे ७४॥

आनीय तण्डुलांस्तत्र संस्थाप्य स्थण्डिलान्तिके ।
यस्मिन्कर्म्मणि ये देवा पूजनीयाः सुरार्चिते ७५॥

हे सुरवन्दिते ! उसके पीछे यज्ञके स्थानमें चावल लाकर स्थंडिलके निकट स्थापित करके ऋतुसंस्कारादि जिस कर्मसे जिस देवताकी पूजा करनेकी रीति है ॥ ७५ ॥

तत्तन्नाम चतुर्थ्यन्तमुक्त्वा त्वाजुष्टमीरयन् ।
गृह्णामि निर्वपामीति प्रोक्षामीति क्रमाद्वदन्॥७६॥

चतुर्थी विभक्तिके अन्तमें उन उनका नाम लेकर "त्वा जुष्टम्"(प्रीतिपूर्वक) यह कहकर क्रमशः-"गृह्णामि"(लेता हूं) "निर्वपामि" (स्थालीमें रखता हूं) "प्रोक्षामि" (जल छिड़कता हूं) कहकर ॥ ७६ ॥

गृहीत्वा निर्वपेत्स्थाल्यां प्रोक्षयेज्जलबिन्दुना ।
प्रत्येकञ्चतुरो मुष्टीन्देवमुद्दिश्य तण्डुलान् ॥ ७७ ॥

प्रत्येक देवताके लिये चार चार मुट्टी चावल ग्रहण करे और स्थालीमें रखकर जल छिड़के (१) ॥ ७७ ॥

(१) मंत्रा यथाः-"अमुकदेवाय त्वा जुष्टं गृह्णामि" इस मंत्रसे चावल ग्रहण करके "अमुकदेवाय त्वा जुष्टं निर्वापामि" इस मंत्रसे उस स्थालीमें स्थापन करे फिर "अमुकदेवाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" यह पढ़कर इन चावलोंमें जल डाले ।

ततो दुग्धं सिताञ्चैव दत्त्वा पाकविधानतः ।
सुपचेत्संस्कृते वह्नौ सावधानेन सुव्रते ! ॥ ७८ ॥

हे सुव्रते ! फिर उसमें दूध और बूरा डालकर सावधान-हृदयसे शोधित अग्निमें पाकविधिके अनुसार उसको उत्तम-रूपसे पकावे ॥ ७८ ॥

सुपक्वं कोमलं ज्ञात्वा दद्यात्तत्र घृतस्रुवम् ॥ ७९ ॥

फिर जब जाने कि, यह अन्न सुपक्व और कोमल हुआ है तब उसमें घृतपूर्ण स्रुव डाले ॥ ७९ ॥

अग्नेरुत्तरतः पात्रं विनिधाय कुशोपरि ।
पुनस्त्रिधा घृतं दत्त्वा स्थालीमाच्छादयेत्कुशैः ॥ ८० ॥

फिर अग्निकी उत्तरदिशामें कुशोंके ऊपर चक्र स्थापन करके फिर उसमें तीन वार घृत डालकर कुशोंसे चरुस्थालीको ढक देवे ॥ ८० ॥

ततः स्रुवे चरुस्थाल्या घृताधारणपूर्वकम् ।
किञ्चिच्चरुं समादाय जानुहोमं समाचरेत् ॥ ८१ ॥

तदुपरांत चरुस्थालीसे स्रुवनामक यज्ञपात्रमें थोड़ासा चरु ले उसमें घृत डालकर जानुहोम करे (१) ॥ ८१ ॥

(१) दहिनी जानु नवाकर जो होम किया जाता है, उसका नाम "जानुहोम" है।

धाराहोमं ततः कृत्वा प्रधानीभूतकर्म्मणि ।
यत्र ये विहिता देवास्तन्मन्त्रैराहुतीर्हुनेत् ॥८२॥

अनंतर धाराहोम करके जिस प्रधान कर्मके जिस जिस स्थानमें जो जो देवता पूज्य हैं; उन्हें उसी उसी देवताके मंत्रसे आहुति दे ॥ ८२ ॥

समाप्य प्रकृतं होमं स्विष्टकृद्धोमपूर्वकम् ।
प्रायश्चित्तात्मकं हुत्वा कुर्य्यात्कर्म्मसमापनम् ॥८३॥

इस प्रकार वास्तविक होम समाप्त करके स्विष्टकृत् होम पूर्ण कर फिर प्रायश्चित्तहोम करके कर्म समाप्त करे ॥ ८३ ॥

संस्कारेषु प्रतिष्ठासु विधिरेष प्रकीर्तितः ।
विधेयः शुभकर्म्मादौ कर्म्मसंसिद्धिहेतवे ॥ ८४ ॥

दशविधि संस्कारके समय और प्रतिष्ठामें इस प्रकारकी विधि है, शुभकर्मके पहले कर्मसिद्धिके लिये इस प्रकारकी विधिके अनुसार अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अथोच्यन्ते महामाये ! गर्भाधानादिकाः क्रियाः ।
तत्रादावृतुसंस्कारः कथ्यते क्रमतः शृणु ॥८५॥

हे महामाये ! अब गर्भाधानादि क्रियाकलापका वर्णन करता हूं, उसमें पहले क्रमके अनुसार ऋतुसंस्कार कहा जाता है, उसे तुम श्रवण करो ॥ ८५ ॥

कृतनित्यक्रियः शुद्धः पञ्च देवान्समर्च्चयेत् ।
ब्रह्मा दुर्गा गणेशश्च ग्रहा दिक्पतयस्तथा ॥ ८६ ॥

नित्यकर्म समाप्त करके शुद्धशरीर हो, पहले पंचदेवताकी पूजा करे। फिर ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, ग्रह, दिक्पाल ॥८६॥

स्थण्डिलस्थेन्द्रदिग्भागे घटेष्वेतान्प्रपूजयेत् ।

ततस्तु मातृकाः पूज्या गौर्य्याद्याः षोडश क्रमात्८७

इन देवताओंको स्थण्डिलकी पूर्व ओर घटके ऊपर पूजे, क्रमानुसार गौरी आदि षोड़श मातृकाकी पूजा करे ॥८७ ॥

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।

देवसेना स्वधा स्वाहा शान्तिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा ।

आत्मनो देवता चैव तथैव कुलदेवता ॥ ८८ ॥

गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया. देवसेना, स्वधा, स्वाहा, शान्ति, पुष्टि, धृति, क्षमा, आत्मदेवता और कुलदेवता ॥ ८८ ॥

आयान्तु मातरः सर्वास्त्रिदशानन्दकारिकाः ।

विवाहव्रतयज्ञानां सर्वाभीष्टं प्रकल्प्यताम् ॥ ८९ ॥

इन देवताओंको आनन्द देनेवाली ये सब मातृका आवें, ये विवाह, व्रत और यज्ञमें अभिप्रायानुसार फल दें॥ ८९ ॥

यानशक्तिसमारूढाः सौम्यमूर्तिधराः सदा ।

आयान्तु मातरः सर्वा यज्ञोत्सवसमृद्धये ॥ ९० ॥

अपनी अपनी सवारियोंपर और शक्तिपर आरूढ़ हुई ये मातृकाएँ यज्ञोत्सवकी समृद्धिके लिये आवें ॥ ९० ॥

इत्यावाह्य मातृगणान्स्वशक्त्या परिपूज्य च ।
देहल्यां नाभिमात्रायां प्रादेशपरिमाणतः ।
सप्त वा पञ्च वा बिन्दून्दद्यात्सिन्दूरचन्दनैः॥९१॥

इस मन्त्रको पढ़ मातृकाओंका आवाहन कर यथाशक्ति उनकी पूजा करें। फिर देहलीके मध्य नाभिपरिमाणके ऊँचे स्थानमें प्रादेशके परिमाणाके स्थानमें सिंदूर और चंदनसे सात या पांच बिन्दु अंकित करे ॥ ९१ ॥

प्रत्येकबिन्दुं मतिमान्कामं मायां रमां स्मरन् ।
घृतधारामविच्छिन्नां दत्वा तत्र वसुं यजेत्॥९२॥

ज्ञानीपुरुष "क्लीं ह्रीं श्रीं" इन तीन बीजोंको स्मरण करते करते प्रत्येक बिन्दुके ऊपरकी ओर लगातार घृतकी धार देकर उसमें गन्धपुष्पादिसे ऊपरके वसुकी पूजा करे ॥९२॥

वसुधारां प्रकल्प्यैवं मयोक्तेनैव वर्त्मना ।
विरच्य स्थण्डिलं धीरो वह्निस्थापनपूर्वकम् ।
होमद्रव्याणि संस्कृत्य पचेच्चरुमनुत्तमम् ॥ ९३ ॥

मेरी कही हुई पद्धातिके अनुसार इस प्रकार वसुधारा बना स्थण्डिल रचना करके उसमें वह्निस्थापन करे फिर होमद्रव्यका संस्कार करके श्रेष्ठ चरुपाक करे ॥ ९३ ॥

प्राजापत्यश्चरुश्चात्र वायुनामा हुताशनः ।
समाप्य धाराहोमान्तं कृत्यमार्त्तवमारभेत् ॥९४॥

इस ऋतुसंस्कारके कार्यमें जो चरु बनाया जाता है, उसका नाम प्राजापत्य है । इसमें स्थापित हुई अग्निका नाम वायु है । धाराहोमतक सब कार्योंको करके ऋतुकर्मका आरम्भ करे ॥ ९४ ॥

ह्रीं प्रजापतये स्वाहा चरुणैवाहुतित्रयम् ।
प्रदायैकाहुतिं दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयन् ॥९५॥

" ह्रीं प्रजापतये स्वाहा " यह मन्त्र पढ़कर चरुसे तीन आहुति दे । फिर आगे कहे हुए मन्त्रका पाठ करते करते एक आहुति दे ॥ ९५ ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ९६ ॥

(मंत्रार्थ) विष्णु उत्पादक हों, त्वष्टा रूपविधान करें, प्रजापति निषेक करें, धाता गर्भसम्पादन करें ॥ ९६ ॥

आज्येन चरुणा वापि साज्येन चरुणापि वा ।
सूर्य्यं प्रजापतिं विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमुत्सृजेत् ९७॥

फिर सूर्य प्रजापति विष्णुजीका ध्यान करते करते घृत, चरु, वा घृतसहित चरुसे उक्त सूर्यादिदेवताओंके लिये आहुति दे ॥ ९७ ॥

गर्भं धेहि सिनीवाली गर्भं धेहि सरस्वती ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥९८॥

तुम देवी सिनीवालीरूप होकर गर्भधारण करो । तुम सरस्वती होकर गर्भधारण करो । कमलकी माला पहिरे दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारा गर्भाधान करें ॥ ९८ ॥

ध्यात्वा देवीं सिनीवालीं सरस्वत्यश्विनौ तथा ।
स्वाहान्तमनुनानेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ॥ ९९ ॥

देवी सिनीवाली, सरस्वती और दोनों अश्विनीकुमारोंको स्मरण करके उक्त (१) मन्त्र पढ़ "स्वाहा" उच्चारण कर उत्तम आहुति दे ॥ ९९ ॥

ततः कामं वधूं मायां रमां कूर्चं समुच्चरन् ।
अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहि सद्विठम् ।
उक्त्वा ध्यात्वा रविं विष्णुं जुहुयात्संस्कृतेऽनले १००

फिर "क्लीं श्रीं ह्रीं श्रीं हूं अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहि स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर सूर्य और विष्णुका ध्यान करके संस्कारित अग्निमें आहुति दे ॥ १०० ॥

यथेयं पृथिवी देवी ह्युत्ताना गर्भमादधे ।
तथा त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतये ।
स्वाहान्तेनामुना विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमाचरेत् १०१

यह विस्तारवाली पृथ्वी जिस प्रकारसे गर्भधारण करती है वैसे ही दशममासमें प्रसव होनेके लिये तुम गर्भधारण करो।

---

(१) "ह्रीं गर्भं धेहि सिनीवाली गर्भं धेहि सरस्वती । गर्भं ते अश्विनी देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ स्वाहा"।

यह मन्त्र पढ़ "स्वाहा" पद उच्चारण करे और विष्णुजीका ध्यान करके आहुति दे ॥ १०१ ॥

पुनराज्यं समादाय ध्यात्वा विष्णुं परात्परम् ।
विष्णो ज्येष्ठेन रूपेण नार्य्यामस्यां वरीयसम् ।
सुतमाधेहि च द्वन्द्वमुक्का वह्नौ हविस्त्यजेत् १०२॥

फिर घृत ले परात्पर विष्णुजीका ध्यान करके "हे विष्णो" तुम श्रेष्ठरूप करके इस नारीमें श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करो । यह मंत्र पढ़ "स्वाहा" पद उच्चारण करके अग्निमें आहुति दे ॥ १०२ ॥

कामेन पुटितां मायां मायया पुटितां वधूम् ।
पुनःकामं च मायां च पठित्वास्याःशिरःस्पृशेत् १०३

फिर कामपुटित और मायापुटित वधू और काममाया(१) पढ़कर उस कामिनीका मस्तक-स्पर्श करे ॥ १०३ ॥

पतिपुत्रवतीभिश्च नारीभिः परिवेष्टितः ।
शिरश्चालभ्य हस्ताभ्यां वध्वाःक्रोडाञ्चले पतिः १०४
विष्णुं दुर्गां विधिं सूर्य्यं ध्यात्वा दद्यात्फलत्रयम् ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा प्रायश्चित्त्या समापयेत् १०५॥

फिर कुछ पतिपुत्रवाली स्त्रियोंके साथ स्वामी अपने दोनों हाथोंसे वधूका मस्तक छूकर विधि, विष्णु, दुर्गा और सूर्यका

(१) "क्लीं ह्रीं क्लीं ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं" यह मंत्र हुआ ॥

ध्यान करनेके पश्चात् उसकी गोदीके अंचलमें तीन फल देकर स्विष्टकृत् होम और प्रायश्चित्तहोम करके कर्मको समाप्त करे ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

यद्वा प्रदोषसमये गौरीशंकरपूजनात् ।
भास्करार्घ्यप्रदानाच्च दम्पत्योः शोधनं भवेत् १०६

अथवा सायंकालमें गौरीशंकरकी पूजा करके सूर्यभगवान्को अर्घ्य देनेसे दम्पति (स्त्रीपुरुष) का शोधन हो सकता है ॥ १०६ ॥

आर्त्तवं कथितं कर्म्म गर्भाधानमथो शृणु॥ १०७॥

ऋतुशोधन कर्म तुमसे कहा, अब गर्भाधान कहता हूं, श्रवण करो ॥ १०७ ॥

तद्रात्रावन्यरात्रौ वा युग्मायां निशि भार्यया ।
सदनाभ्यन्तरं गत्वा ध्यात्वा देवं प्रजापतिम् १०८॥

उस ऋतुसंस्कारकी रात्रिमें अथवा और किसी युग्म रात्रिमें भार्याके साथ गृहके भीतर जाय देव प्रजापतिका ध्यान करके ॥ १०८ ॥

स्पृशन्पत्नीं पठेद्भर्त्ता मायाबीजपुरःसरम् ।
आवयोः सुप्रजायै त्वं शय्ये ! शुभकरी भव १०९॥

स्त्रीका स्पर्श कर स्वामी मायाबीजका उच्चारण करनेके पीछे यह मंत्र पढ़े । हे शय्ये ! हमारी उत्तम संतानोत्पत्तिके लिये तुम शुभकरी होवो ॥ १०९ ॥

आरुह्य भार्य्यया शय्यां प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
उपविश्य स्त्रियं पश्यन्हस्तमाधाय मस्तके।
वामेन पाणिनालिङ्ग्य स्थाने स्थाने मनुं जपेत् ११०

फिर भार्याके साथ बिस्तरेपर आरोहण करे और पूर्वमुख वा उत्तरमुख हो बैठे, भार्याका दर्शन करके उसके मस्तकपर हाथ रखे। फिर बायें हाथसे भार्याका आलिंगन कर स्थान स्थानमें मंत्र जपे॥ ११०॥

शीर्षे कामं शतं जह्वा चिबुके वाग्भवं शतम्।
कण्ठे रमां विंशतिधा स्तनद्वन्द्वे शतं शतम्॥ १११॥

मस्तकपर एक शतवार कामबीज "क्लीं" जपकर, चिबुकपर एक शतवार वाग्भव "ऐं" का जप करे। फिर कंठमें रमा अर्थात् "श्रीं" बीजको बीस वार जप कर दोनों स्तनोंमें "ऐं श्रीं" बीज एक एक शत जपे॥ १११॥

हृदये दशधा मायां नाभौ तां पञ्चविंशतिम्।
जह्वा योनौ करं दत्त्वा कामेन सह वाग्भवम् ११२॥

हृदयमें दशवार मायाबीजका जप कर नाभिमें "ऐं ह्रीं" बीज पचीसवार जप करे। फिर योनिमें हाथ लगाकर "क्लीं ऐं" मन्त्र॥ ११२॥

शतमष्टोत्तरं जह्वा लिङ्गेऽप्येवं समाचरन्।
विकाश्य मायया योनिं स्त्रियं गच्छेत्सुतात्तये ११३॥

एकशत आठवार जप करके ऐसे ही उपस्थमें "क्लीं ऐं" मंत्र एकशत आठवार जप करे । फिर "ह्रीं" मंत्र पढ़ योनिमें मोचनकर सन्तानकी कामनासे पत्नीका गमन करे ॥ ११३॥

रेतःसम्पातसमये ध्यात्वा विश्वकृतं पतिः ।
नाभेरधस्ताच्चित्कुण्डे रक्तिकायां[1] प्रपातयेत् ११४॥

फिर वीर्य स्खलित होनेके समय स्वामी प्रजापतिका ध्यान करके नाभिके नीचे चित्कुण्डके बीच रक्तिका नाडीमें वीर्य डाले ॥ ११४ ॥

शुक्रसेकान्तरे विद्वानिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ११५॥

परंतु शुक्रत्याग करनेके समय स्वामी इस मंत्रका पाठ करे कि ॥ ११५ ॥

यथाग्निना सगर्भा भूर्द्यौर्यथा वज्रधारिणा ।
वायुना दिग्गर्भवती तथा गर्भवती भव ॥ ११६ ॥

जैसे पृथ्वी अग्नि धारण करके गर्भवती हुई है, द्यौ(आकाश) जैसे इन्द्रको धारण करके गर्भवती हुई है, दिशा जिस प्रकार वायुको धारण करके गर्भवती हुई है, वैसे ही तुम भी गर्भवती होवो ॥ ११६ ॥

जाते गर्भे ऋतौ तस्मिन्नन्यस्मिन्वा महेश्वरि ।
तृतीये गर्भमासे तु चरेत्पुंसवनं गृही ॥ ११७ ॥

हे महेश्वरि ! ऋतुमें अथवा और ऋतुमें गर्भसंचार होने-

[1] 'रक्तिमायाम्' इति वा पाठः ।

पर गृहस्थ पुरुष गर्भाधानसे तीसरे मासमें पुंसवननामक संस्कार करे ॥ ११७ ॥

कृतनित्यक्रियो भर्त्ता पञ्चदेवान्समर्च्चयेत् ।
गौर्य्यादिमातृकाश्चैव वसोर्धारां प्रकल्पयेत्॥ ११८॥

पुंसवनके समय स्वामीको चाहिये कि नित्यक्रियाको समाप्त करके पंचदेवताकी पूजा करे । फिर गौर्य्यादि षोड़श मातृकाओंकी पूजा करके वसुधारा दे ॥ ११८ ॥

वृद्धिश्राद्धं ततः कृत्वा पूर्व्वोक्तविधिना सुधीः ।
धाराहोमान्तमापाद्य कुर्य्यात्पुंसवनक्रियाम् ११९॥

इसके उपरांत ज्ञानी पुरुष वृद्धिश्राद्ध करके पहली कही हुई विधिके अनुसार धाराहोम करनेपर पुंसवन क्रियाको समाप्त करे ॥ ११९ ॥

प्राजापत्यश्चरुस्तत्र चन्द्रनामा हुताशनः ॥१२०॥

पुंसवनसंस्कारके चरुका नाम प्राजापत्य चरु और अग्निका नाम चन्द्र है ॥ १२० ॥

गव्ये दध्नि यवञ्चैकं द्वौ माषावपि निक्षिपेत् ।
पतिः पृच्छेत्स्त्रियं भद्रे ! किं त्वं पिबसि त्रिःकृतम्

फिर स्वामी गायके दहीमें एक यव (जौ) और दो माष (उड़द) डालकर भार्यासे तीन वार पूछे कि हे भद्रे ! तुम क्या पान करती हो ? ॥ १२१ ॥

ततः सीमन्तिनी ब्रूयान्मायापुंसवनं त्रिधा ।
प्रसृतींस्त्रीन्पिबेन्नारी यवमाषयुतं दधि ॥ १२२ ॥

तदनन्तर भार्या तीनवर कहे कि "ह्रीं पुंसवनम्" अर्थात् पुत्रप्रसवकी कारणीभूत वस्तु पान करती हूं । फिर नारी यव (जौ) और माष (उड़द) युक्त दहीको तीनवार पिये ॥१२२॥

जीवत्सुताभिर्वनितां यागस्थानं समानयेत् ।
संस्थाप्य वामभागे तां चरुहोमं समाचरेत् १२३॥

फिर पतिपुत्रवती कुलकामिनियें इस स्त्रीको यज्ञस्थानमें लाकर स्वामीकी बाईं ओर बैठाकर स्वामीको चरुहोम आरंभ करना चाहिये ॥ १२३ ॥

पूर्ववच्चरुमादाय मायां कूर्चं समुच्चरन् ।
ये गर्भविघ्नकर्त्तारो ये च गर्भविनाशकाः॥१२४॥

आगे पहलेके समान चरु ले "ह्रीं हूं" उच्चारण करके (यह मन्त्र पढ़े कि) जो गर्भके विघ्न करनेवाले हैं, जो गर्भके नाशक हैं ॥ १२४ ॥

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बालघातकाः ।
तान्सर्वान्नाशयद्वन्द्वं गर्भरक्षां कुरु द्विठः ॥१२५॥

जो भूत, प्रेत, पिशाच और वेताल बालकसंहारक हैं उन सबका नाश करके गर्भकी रक्षा करो । फिर "स्वाहा" पद उच्चारण करना चाहिये (१)॥ १२५ ॥

---

(१) "ह्रीं हूं ये गर्भविघ्नकर्तारो ये च गर्भविनाशकाः । भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बालघातकाः ॥ तान् सर्वान् नाशय नाशय गर्भरक्षां कुरु कुरु स्वाहा ॥" उद्धार करनेसे यह मंत्र हुआ ।

मन्त्रेणानेन रक्षोघ्नं चिन्तयित्वा हुताशनम्।
रुद्रं प्रजापतिं ध्यायन्प्रदद्याद्द्वादशाहुतीः॥१२६॥

यह मन्त्र पढकर रक्षोघ्न हुताशनका ध्यान करके रुद्र और प्रजापतिका ध्यान करे और बारह आहुति दे ॥ १२६ ॥

ततो मायाचन्द्रमसे स्वाहेत्याहुतिपञ्चकम्।
दत्त्वा भार्य्यां हृदि स्पृष्ट्वा मायालक्ष्मीं शतं जपेत् १२७

फिर " ह्रीं चन्द्रमसे स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर पांच आहुति दे और भार्याका स्पर्श करके एकशतवार " ह्रीं श्रीं" मन्त्रका जप करे ॥ १२७ ॥

ततः स्विष्टकृतं हुत्वा प्रायश्चित्त्या समापयेत्।
ततस्तु पञ्चमे मासि दद्यात्पञ्चामृतं स्त्रियै ॥१२८॥

अनन्तर स्विष्टकृतहोम समाप्त करके प्रायश्चित्त होमको करे फिर गर्भके पंचममासमें भार्याको पंचामृत दे ॥ १२८ ॥

शर्करामधुदुग्धञ्च घृतं दधि समांशकम्।
पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं देहशुद्धौ विधीयते ॥ १२९ ॥

बूरा, शहद, दुग्ध, घृत, दही इन पांचों पदार्थोंका बराबर करके देहशुद्धिके लिये दे ॥ १२९ ॥

वाग्भवं मदनं लक्ष्मीं मायां कूर्चं पुरन्दरम्।
पञ्चद्रव्योपरि शिवे ! प्रजप्य पञ्चपञ्चधा।
एकीकृत्यामृतान्यत्र प्राशयेदपि तां पतिः॥१३०॥

हे शिवे ! स्वामी पहले कहे हुए पांच द्रव्योंमेंसे प्रत्येकके ऊपर पांच वार " ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं हूं लं " इन बीजोंको जप पंचामृत इकट्ठाकर भार्याको पिलावे ॥ १३० ॥

सीमन्तोन्नयनं कुर्य्यान्मासि षष्ठेऽष्टमेऽपि वा ।
यावन्न जायतेऽपत्यं तावत्सीमन्तनक्रिया ॥ १३१ ॥

गर्भके छठे या आठवें मासमें सीमन्तोन्नयन कर्म करे । जबतक सन्तान उत्पन्न न हो, उसके बीचमें सीमंतोन्नयन संस्कारकी विधि है ॥ १३१ ॥

पूर्वोक्तधाराहोमान्तं कर्म्म कृत्वा स्त्रिया सह ।
उपविश्यासने प्राज्ञः प्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥
विष्णवे भास्वते धात्रे वह्निजायां समुच्चरन् १३२॥

ज्ञानवान् स्वामी पहले कही हुई धारातक होम करके भार्याके सहित आसनपर बैठ " विष्णवे स्वाहा, भास्वते स्वाहा, धात्रे स्वाहा " यह मन्त्र उच्चारण करके तीन वार आहुति दे ॥ १३२ ॥

ततश्चन्द्रमसं ध्यात्वा शिवनाम्नि हुताशने ।
सप्तधा हवनं कुर्य्यात्सोममुद्दिश्य मानवः ॥ १३३ ॥

फिर चन्द्रमाका ध्यान करके चन्द्रमाके लिये शिवनामक हुताशनमें सात वार आहुति दे ॥ १३३ ॥

अश्विनौ वासवं विष्णुं शिवं दुर्गां प्रजापतिम् ।
ध्यात्वा प्रत्येकतो दद्यादाहुतीः पञ्चधा शिवे १३४॥

हे शिवे! फिर दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्र, विष्णु, शिव, दुर्गा, प्रजापति इनका ध्यान करके प्रत्येकको पांच आहुतिदे १३४॥

स्वर्णकङ्कतिकां भर्त्ता गृहीत्वा दक्षिणे करे ।
सीमन्ताद्बद्धकेशान्तः केशपाशे निवेशयेत् १३५॥

अनंतर भर्ता दक्षिण (दायें) हाथमें कंकतिका (कंघी) ग्रहण कर सीमन्तसे लेकर बँधे हुए केशतक समस्त केशोंको केशपाशमें मिलाकर बांधे ॥ १३५ ॥

शिवं विष्णुं विधिं ध्यायन्मायाबीजं समुच्चरन् १३६॥

इस सीमन्तोन्नयनके समय शिव, विष्णु और विधिका ध्यान करके " ह्रीं " बीजका उच्चारण करे ॥ १३६ ॥

भार्य्ये कल्याणि सुभगे दशमे मासि सुव्रते ।
सुप्रसूता भव प्रीता प्रसादाद्विश्वकर्म्मणः ॥ १३७॥

(और यह मन्त्र पढ़े कि) हे कल्याणि ! सुभगे ! सुव्रते ! भार्ये ! तुम दशममासमें उत्तम सन्तान प्रसव करके विश्वकर्माके प्रसादसे हृदयमें प्रसन्न हो ॥ १३७ ॥

आयुष्मती कङ्कतिका वर्चस्विनी शुभं कुरु ।
ततः समापयेत्कर्म स्विष्टकृद्धवनादिभिः ॥१३८॥

आयुष्मती कंघी तुम्हारे तेज व आयुको बढ़ानेवाली हो तुम शुभकार्यका अनुष्ठान करो यह मन्त्र पढ़कर सीमन्तोन्नयन करके स्विष्टकृत् होमादिद्वारा कर्म समाप्त करे ॥ १३८ ॥

जातमात्रं सुतं दृष्ट्वा दत्त्वा स्वर्णं गृहान्तरे ।
पूर्वोक्तविधिना धीरो धाराहोमं समापयेत् ॥ १३९ ॥

सन्तान उत्पन्न होते ही ज्ञानी पुरुष सुवर्ण देकर पुत्रका मुख देख सूतिकागारके सिवाय और गृहमें पहली कही हुई विधिके अनुसार धाराहोम करे ॥ १३९ ॥

ततः पञ्चाहुतीर्दद्यादग्निमिन्द्रं प्रजापतिम् ।
विश्वान्देवांश्च ब्रह्माणमुद्दिश्य तदनन्तरम् ॥ १४० ॥

फिर अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, विश्वेदेवगण और ब्रह्मा इनके लिये पांच आहुति दे फिर ॥ १४० ॥

मधु सर्पिः कांस्यपात्रे समानीयासमांशकम् ।
वाग्भवं शतधा जप्त्वा प्राशयेत्तनयं पिता ॥ १४१ ॥

पिता कांसके पात्रमें मधु और घृत असमान अंश लेकर उसके ऊपर "ऐं" बीज एकशतवार जप करके पुत्रको उसका प्राशन करावे ॥ १४१ ॥

दक्षहस्तानामिकया मन्त्रमेनं समुच्चरन् ।
आयुर्वर्च्चो बलं मेधा वर्द्धन्तां ते सदा शिशो १४२ ॥

हे शिशो ! तुम्हारी आयु, तेज, बल और मेधा निरन्तर वृद्धिको प्राप्त हों । यह मन्त्र पढ़ते पढ़ते दक्षिण हाथकी अनामिकासे वह शिशुको चखावे ॥ १४२ ॥

इत्यायुर्जननं कृत्वा गुप्तं नाम प्रकल्पयेत् ।
कृतोपनयने पुत्रे तेन नाम्ना समाह्वयेत् ॥ १४३ ॥

इस प्रकार आयुष्करः कार्य करके बालकका एक गुप्त नाम रखे, फिर जब इस पुत्रका उपनयन हो, तब उसको इस गुप्त नामसे आवाहन करे ॥ १४३ ॥

प्रायश्चित्तादिकं कृत्वा जातकर्म्म समापयेत् ।
नालच्छेदं ततो धात्री कुर्य्यादुत्साहपूर्वकम् ॥ १४४ ॥

फिर प्रायश्चित्त करके जातकर्म समाप्त करे फिर धायी उत्साहके साथ नालको काटे ॥ १४४ ॥

यावन्न च्छिद्यते नालं तावच्छौचं न बाधते ।
प्रागेव नाडिकाच्छेदाद्दैवीं पैत्रीं क्रियां चरेत् १४५ ॥

जबतक नाल न कटे तबतक अशौच नहीं होता. इस कारण नाल कटनेसे पहले देव और पैतृककर्म किया जाता है ॥ १४५ ॥

कुमार्य्याश्चापि कर्त्तव्यमेवमेवममन्त्रकम् ।
षष्ठे वा चाष्टमे मासि नाम कुर्य्यात्प्रकाशतः १४६ ॥

जो कुमारी उत्पन्न हो तो यह समस्त कर्म विना मन्त्र पढ़नेके करे । छठे या आठवें महीनेमें प्रकट भावसे नामकरण करे ॥ १४६ ॥

स्नापयित्वा शिशुं माता परिधाप्याम्बरे शुभे ।
भर्त्तुः पार्श्वं समागत्य प्राङ्मुखं स्थापयेत्सुतम् १४७

नामकरणके समय माताको चाहिये कि शिशुको स्नान करा उत्तम वस्त्रयुगल पहरा, स्वामीके निकट लाकर पूर्वमुख करके बैठावे ॥ १४७ ॥

अभिषिञ्चेच्छिशोर्मूर्ध्नि सहिरण्यकुशोदकैः ।
जाह्नवी यमुना रेवा सुपवित्रा सरस्वती ॥१४८॥

अनन्तर पिता सुवर्णसहित कुशोदकके द्वारा बच्चेके मस्तकपर जल डाले और यह मन्त्र पढ़े कि जाह्नवी, यमुना, रेवा, सुपवित्रा, सरस्वती ॥ १४८ ॥

नर्म्मदा वरदा कुन्ती सागराश्च सरांसि च ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्म्मकामार्थसिद्धये ॥१४९॥

नर्मदा, वरदा, कुन्ती, सागर, सरोवर ये सब धर्म, काम, अर्थसिद्धिके लिये तुमको अभिषिक्त करें ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं आपोहिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे
दधातन ॥ महेरणाय चक्षसे ॥ १५० ॥

हे जल ! तुम सकल सुखदाता हो अतएव हमारे इस कालका अन्नसंस्थान करो और परकालमें हमारे लिये परम ब्रह्मके साथ मिलाना ॥ १५० ॥

ओं यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः ।
उशतीरिव मातरः । ओं तस्मा अरङ्गमामवो यस्य
क्षयाय जिन्वथ । आपोजनयथाच नः ॥१५१॥

हे जल ! तुम सकल माताके समान स्नेहयुक्त हो इसीलिये हमको उत्तम मंगलमें रस प्रदान करो। हे जल ! तुम सकल

जिस रससे संसारमंडलको संतुष्ट करते हो, वही रस हमको सम्भोग कराओ. हम उससे परितृप्त होंगे ॥ १५१ ॥

अभिषिच्य त्रिभिर्मन्त्रैः पूर्ववद्वह्निसंस्क्रियाम् ।
कृत्वा सम्पाद्य धारान्तं दद्यात्पञ्चाहुतीः सुधीः १५२॥

ज्ञानवान् पिता, इन दो मंत्रोंसे बालकको अभिषेक करके पहिलेके समान अग्निसंस्कार करे और धाराहोमतक समस्त कार्य करके पञ्च आहुति दे ॥ १५२ ॥

अग्नये प्रथमां दत्त्वा वासवाय ततः परम् ।
ततः प्रजानांपतये विश्वेदेवेभ्य एव च ।
ब्रह्मणे चाहुतिं दद्याद्वह्नौ पार्थिवसंज्ञके ॥ १५३ ॥

पार्थिवनामक अग्निमें उक्त पंच आहुति देनेके समय पहले अग्निको फिर वासवको, तदुपरांत प्रजापतिको, तदनंतर विश्वेदेवोंको उसके उपरांत ब्रह्माको आहुति दे ॥ १५३ ॥

ततोऽङ्के पुत्रमादाय श्रावयेद्दक्षिणश्रुतौ ।
स्वल्पाक्षरं सुखोच्चार्य्यं शुभं नाम विचक्षणः १५४॥

फिर विचक्षण पुरुष पुत्रको गोदीमें ले उसके दायें कानमें स्वल्पाक्षर सुखसे उच्चारण करनेके योग्य इसका शुभ नाम श्रवण करावे ॥ १५४ ॥

श्रावयित्वा त्रिधा नाम ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य च ।
ततः समापयेत्कर्म्म कृत्वा स्विष्टकृदादिकम् १५५

इस प्रकार नाम तीनवार सुनाकर स्विष्टकृत् होमादि कर ब्राह्मणोंको नाम जनाकर उनकी अनुमति ले कर्मको समाप्त करे ॥ १९९ ॥

कन्याया निष्क्रमो नास्ति वृद्धिश्राद्धं न विद्यते ।
नामान्नप्राशनं चूडां कुर्य्याद्धीमानमन्त्रकम् १५६॥

कन्या उत्पन्न हो तो उसका निष्क्रमण संस्कार नहीं है, न वृद्धिश्राद्ध है. बुद्धिमान् पुरुष विना मंत्र पढ़े, उसका नामकरण, अन्नप्राशन और चूड़ाकरण करे ॥ १९६ ॥

चतुर्थे मासि षष्ठे वा कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोः १५७॥

चतुर्थमासमें या छठे मासमें बालकका निकलनेका संस्कार सिद्ध करे ॥ १९७ ॥

कृतनित्यक्रियः स्नातः सम्पूज्य गणनायकम् ।
स्नापयित्वा तु तनयं वस्त्रालंकारभूषितम् ।
संस्थाप्य पुरतो विद्वानिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ १५८॥

बाहर निकलनेके संस्कारके समय पिता स्नान कर नित्यक्रिया सम्पादनपूर्वक गणेशजीकी पूजा करे । फिर विद्वान् पुरुष बालकको स्नान करा वस्त्र और अलंकारोंसे भूषित करके सामने रख यह मंत्र पढ़े ॥ १९८ ॥

ब्रह्मा विष्णुः शिवो दुर्गा गणेशो भास्करस्तथा ।
इन्द्रो वायुः कुवेरश्च वरुणोऽग्निर्बृहस्पतिः ।
शिशोः शुभं प्रकुर्वन्तु रक्षन्तु पथि सर्वदा॥ १५९॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, गणेश, दिवाकर, इन्द्र, वायु, कुबेर, वरुण, अग्नि, बृहस्पति ये सब ही बालकका मंगल करें और मार्गमें सदा इसकी रक्षा करें ॥ १५९ ॥

इत्युक्त्वाऽङ्के समादाय गीतवाद्यपुरःसरम् ।
बहिर्निष्क्रामयेद्बालं सानन्दैः स्वजनैः सह॥ १६०॥

पिता यह मन्त्र पढ़ बच्चेको गोदमें ले आनन्दसे पूर्ण अपने परिवारवालोंके साथ गीत गाय बाजे बजा बालकको बाहर ले जावे ॥ १६० ॥

गत्वाध्वानि कियद्दूरं शिशुं सूर्य्यं निरीक्षयेत् १६१

मार्गमें कुछ एक दूर जाकर बालकको सूर्य दिखावे । (और इस वैदिक मन्त्रका पाठ करे कि) ॥ १६१ ॥

ओं ह्रीं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ १६२॥

शुक्रको अतिक्रम करके जो देवताओंका भी हितकारी सूर्यरूप नेत्र वर्तमान है उसको हम एक शत वर्षतक देखें और उसका दर्शन करके हम एक शत वर्षतक बचे रहें १६२॥

इत्यादित्यं दर्शयित्वा समागत्य निजालयम् ।
अर्घ्यं दत्त्वा दिनेशाय स्वजनान्भोजयेत्पिता १६३॥

इस प्रकार पिता कुमारको सूर्य दिखाकर अपने गृहमें लौटाकर सूर्यको अर्घ्य देकर कुटुम्बियोंको भोजन करावे १६३

षष्ठे मासि कुमारस्य मासि वाप्यष्टमे शिवे ।
पितृभ्राता पिता वापि कुर्य्यादन्नाशनक्रियाम् १६४

हे शिवे ! कुमारके जन्मकालसे छः मासमें पिता वा पितृभ्राता (चचा या ताऊ) उसका अन्नप्राशनसंस्कार करे १६४

पूर्ववद्देवपूजादिवह्निसंस्करणं तथा ।
एवं धारान्तकर्म्माणि सम्पाद्य विधिवत्पिता १६५॥

पिता वा पितृभ्राता पहलेके समान देवपूजादि और अग्निसंस्कार करके यथाविधानसे धाराहोमतक कर्म करे १६५॥

दद्यात्पञ्चाहुतीस्तत्र शुचिनाम्नि हुताशने ।
अग्निमुद्दिश्य प्रथमां द्वितीयां वासवं स्मरन् १६६॥

फिर शुचिनामक अग्निमें पांच आहुति दे । अग्निके लिये प्रथम आहुति, इन्द्रके लिये दूसरी आहुति ॥१६६॥

ततः प्रजापतिं देवं विश्वान्देवांस्ततः परम् ।
ब्रह्माणञ्च समुद्दिश्य पञ्चमीमाहुतिं त्यजेत् १६७॥

देव प्रजापतिके लिये तीसरी आहुति, विश्वेदेवोंके लिये चौथी आहुति, ब्रह्माके लिये पांचवीं आहुति दे ॥ १६७ ॥

ततोऽग्नावन्नदां ध्यात्वा दत्तपञ्चाहुतिः पिता ।
तत्राथवा गृहेऽन्यस्मिन्वस्त्रालंकारशोभितम् ।
क्रोडे निधाय तनयं प्राशयेत्पायसामृतम् ॥१६८॥

इसके उपरांत पिता अग्निमें अन्नदा देवीका ध्यान करके

उसके लिये पांच आहुति दे, उस गृहमें वा दूसरे गृहमें वस्त्रालंकारभूषित कुमारको गोदमें ले खीररूपी अमृतपान करावे ॥ १६८ ॥

पञ्चप्राणाहुतैर्मन्त्रैर्भोजयित्वा तु पञ्चधा।

ततोऽन्नव्यञ्जनादीनां दत्त्वा किञ्चिच्छिशोर्मुखे १६९

प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा यह पांच मंत्र पढ़कर बालकके मुखमें पांच वार पायसामृत देकर पीछे समस्त अन्नव्यंजनादि कुछ कुछ लेकर बालकके मुखमें दे ॥ १६९ ॥

शङ्खतूर्य्यादिघोषेण प्रायश्चित्त्या समापयेत्।

इत्यन्नप्राशनं प्रोक्तं चूडाविधिमतः शृणु॥ १७० ॥

फिर शंख, तुरही आदिकी ध्वनि करके प्रायश्चित्त-होम समाप्त करनेके पीछे क्रिया समाप्त करे। यह तुमसे अन्न-प्राशनसंस्कारकी विधि कही, अब चूडाकरणविधि कहता हूं, श्रवण करो ॥ १७० ॥

तृतीये पञ्चमे वर्षे कुलाचारानुसारतः।

चूडाकर्म शिशोः कुर्य्याद्बालसंस्कारसिद्धये॥ १७१ ॥

जन्मकालसे तीसरे वर्षमें या पांचवें वर्षमें संस्कारसिद्धिके लिये कुलाचारके अनुसार बालकका चूडाकरण करे ॥ १७१ ॥

देवपूजादिधारान्तं कर्म निष्पाद्य साधकः।

सत्याग्नेरुत्तरे देशे वृषगोमयपूरितम् ॥ १७२ ॥

विचक्षण साधक देवपूजासे धाराहोमतक सब कर्म करके सत्यनामस्थापित अग्निकी उत्तर ओर वृषके गोबरसे पूरित १७२

तिलगोधूमसंयुक्तं शरावं स्थापयेद् बुधः ।
कवोष्णं सलिलञ्चापि क्षुरमेकं सुशाणितम्॥ १७३॥

तिल और गोधूमसंयुक्त एक नयी सरैयामें थोड़ासा गरम जल और एक तीक्ष्ण उस्तरा स्थापन करे ॥ १७३ ॥

आसाद्य तनयं तत्र जनकः स्वीयवामतः ।
संस्थाप्य जननीक्रोडे कवोष्णसलिलैश्च तैः १७४॥

फिर पिता उस स्थानमें अपनी बायीं ओर उसकी माता अर्थात् अपनी स्त्रीकी गोदमें बालकको रखकर इस गरम जलसे ॥ १७४ ॥

वारुणं दशधा जप्त्वा सम्मार्ज्य शिशुमूर्द्धजान् ।
मायया कुशपत्राभ्यां जुष्टिमकां प्रकल्पयेत् १७५॥

"वं" वरुणबीजको दशवार जप करनेके पीछे बालकके बालोंको मार्जित करके "ह्रीं" मंत्र पढ़कर दो कुशपत्रसे मस्तकमें एक जुष्टि बनावे ॥ १७५ ॥

मायां लक्ष्मीं त्रिधा जप्त्वा गृहीत्वा लौहजं क्षुरम् ।
छित्त्वा तु जुष्टिकामूलं मातृहस्ते निवेशयेत्॥ १७६॥

फिर "ह्रीं श्रीं" मंत्र तीन वार पढ़कर लोहेका उस्तरा ले जुष्टिकाकी जड़ काटकर माताके हाथमें दे ॥ १७६ ॥

कुमारमाताहस्ताभ्यामादाय गोमयान्विते ।
शरावे स्थापयेज्जुष्टिं नापिताय पिता वदेत् १७७॥

कुमारकी माता दोनों हाथोंसे उस जुष्टिकाको ग्रहण करके गोमययुक्त नवीन सरैयामें स्थापित करे फिर पिता नाईसे कहे कि ॥ १७७ ॥

क्षुरमुण्डिन्! शिशोः क्षौरं सुखं साधय ठद्वयम् ।
पठित्वा नापितं पश्यन्सत्यनामनि पावके ।
प्रजापतिं समुद्दिश्य प्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥ १७८ ॥

हे क्षुरमुण्डिन् नापित ! तुम सुखसे इस बालकका क्षौर-कर्म करो यह कहकर "स्वाहा" पद उच्चारण करना चाहिये. पिता यह मंत्र पढ़कर नापितकी ओर निहार प्रजापतिके अर्थ सत्यनामक अग्निमें तीन वार आहुति दे ॥ १७८ ॥

नापितेन कृतक्षौरं स्नापयित्वा शिशुं ततः ।
वस्त्राभरणमाल्यानि धारयित्वाग्निसन्निधौ॥ १७९॥

जब नापित बालकका क्षौरकर्म कर चुके तब पिता उस बालकको स्नान करा, वस्त्राभूषण व माला पहरा सजाकर अग्निके सम्मुख ॥ १७९ ॥

स्ववामभागे संस्थाप्य स्विष्टकृद्धोममाचरेत् ।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं पिता ॥ १८० ॥

अपने वामभागमें स्थापित कर स्विष्टकृत् होम करे । फिर प्रायश्चित्तहोम करके पूर्णाहुति दे ॥ १८० ॥

माया शिशो ! ते कुशलं कुरुतां विश्वकृद्विभुः ।
पठित्वैनं शिशोः कर्णे स्वर्णमय्या शलाकया ।
राजत्या लोहमय्या वा कर्णवेधं प्रकल्पयेत् १८१॥

" ह्रीं शिशो विभु विश्वस्रष्टा तुम्हारा मंगल करें " इस मंत्रको पढ़कर स्वर्णमयी शलाकासे या चांदीकी सलाईसे अथवा लोहेकी सलाईसे बालकका कर्णवेध करे ॥१८१॥

आपोहिष्ठेतिमन्त्रेण अभिषिच्य सुतं ततः ।
शान्त्यादिदक्षिणां कृत्वा चूडाकर्म्म समापयेत् १८२

फिर " आपोहिष्ठा मयोभुवः " इस मन्त्रसे पुत्रको अभिषिक्त कर शान्तिकर्मके पश्चात् दक्षिणा देकर चूडाकर्मको पूरा करे ॥ १८२ ॥

गर्भाधानादिचूडान्तं समानं सर्व्वजातिषु ।
शूद्रसामान्यजातीनां सर्व्वमेतदमन्त्रकम् ॥१८३॥

गर्भाधानसे लेकर चूडाकरणतक समस्त संस्कार समस्तजातियोंके लिये समान हैं। शूद्रजाति और साधारण जातियोंके इन सब संस्कारोंके समय केवल मंत्र नहीं पढ़े॥१८३॥

जातकर्म्मादिचूडान्तं कुमार्य्याश्चाप्यमन्त्रकम् ।
कर्त्तव्य पञ्चभिर्वर्णैरेकं निष्क्रमणं विना ॥ १८४॥

कन्या उत्पन्न होनेपर ब्राह्मणादि पांचों वर्ण विना मंत्र पढ़े इन सारे संस्कारोंको करें, परंतु कुमारीके लिये निष्क्रमणका संस्कार नहीं है ॥ १८४ ॥

अथोच्यते द्विजातीनामुपवीतक्रियाविधिः ।
यस्मिन्कृते द्विजन्मानो दैवपैत्र्याधिकारिणः १८५

अब द्विजातियोंके उपनयनकी विधि कही जाती है । इससे द्विजगण दैव और पैतृककर्ममें अधिकारी हो जाते हैं १८५॥

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे कुर्यादुपनयं शिशोः ।
षोडशाब्दाधिको नोपनेतव्यो निष्क्रियोऽपि सः ॥

गर्भके आठवें वर्षकी आयुमें बालकका उपनयन संस्कार करे । जिसके सोलह वर्ष बीत गये हैं, फिर उसका उपनयन नहीं हो सकता, वह अनुपनीत बालक दैव और पितृकर्ममें अधिकारी नहीं है ॥ १८६ ॥

कृतनित्यक्रियो विद्वान्पञ्चदेवान्समर्च्चयेत् ।
गौर्य्यादिमातृकाश्चैव वसुधारां प्रकल्पयेत्॥१८७॥

विद्वान् पिता नित्यक्रिया समाप्त करके पंचदेवताओंकी पूजा करे । फिर गौरी आदि षोड़श मातृकाओंकी पूजा करके वसुधारा दे ॥ १८७ ॥

वृद्धिश्राद्धं ततः कुर्य्याद्देवतापितृतृप्तये ।
कुशण्डिकोक्तविधिना धाराहोमान्तमाचरेत्१८८॥

फिर देवता और पितरोंके लिये वृद्धिश्राद्ध करके कुश-ण्डिकामें कही विधिके अनुसार सब कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥ १८८ ॥

प्रातः कृताशनं बालं सुस्नातं समलंकृतम् ।
शिखां विना कृतक्षौरं क्षौमाम्बरविभूषितम् १८९॥

प्रातःकालमें बालकको स्नान भोजन कराकर उत्तम गहने और रेशमी वस्त्र पहिरावे। परंतु केवल शिखा रख कर उसका सारा मस्तक मुंडवा दे ॥ १८९ ॥

छायामण्डपमानीय समुद्भवहुताशितुः ।
समीपे चात्मनो वामे संस्थाप्य विमलासने १९०॥

फिर इस बालकको छायामण्डपमें लाकर समुद्भवनामक अग्निके समीपमें अपनी बायीं ओर सुविमल आसनपर बैठावे ॥ १९० ॥

शिष्यं वदेद्ब्रह्मचर्य्यं कुरु वत्स ! ततः शिशुः ।
ब्रह्मचर्यं करोमीति गुरवे विनिवेदयेत् ॥ १९१ ॥

फिर गुरु इस शिष्यसे कहे कि हे वत्स ! ब्रह्मचर्य धारण करो। बालक गुरुसे निवेदन करे कि ब्रह्मचर्यका अवलम्बन करता हूं ॥ १९१ ॥

ततो गुरुः प्रसन्नात्मा शिशवे शान्तचेतसे ।
काषायवाससी दद्याद्दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ॥ १९२ ॥

फिर गुरु प्रसन्न होकर शान्तहृदय बालकको दीर्घायुष्कारी तेजकी वृद्धिके लिये कषैले रंगे हुए दो वस्त्र दे ॥ १९२ ॥

मौञ्जीं कुशमयीं वापि त्रिवृत्तां ग्रन्थिसंयुताम् ।
तूष्णीं च मेखलां दद्यात्काषायाम्बरधारिणे १९३॥

जब यह बालक कषैले वस्त्र पहर ले तब गुरुको चाहिये कि उसको मूंजकी, कुशकी, गांठयुक्त त्रिवली देदे और मौन धारण करके मेखला भी दे ॥ १९३ ॥

मायामुच्चार्य्य सुभगा मेखला स्याच्छुभप्रदा ।
इत्युक्त्वा मेखलां बद्धा मौनी तिष्ठेद्गुरोः पुरः १९४॥

पहले बालक " ह्रीं " उच्चारण करके यह सुभग मेखला मुझे कल्याणकी देनेवाली हो । यह मन्त्र पढ़कर कमरमें मेखला बांध गुरुके सामने मौन हो बैठे ॥ १९४ ॥

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः

यह यज्ञोपवीत परमपवित्र है, पहले प्रजापतिजीने इस सहज यज्ञोपवीतको धारण किया था, आयु करनेवाला श्रेष्ठ शुभ्र यज्ञोपवीत तुम धारण करो, तुम्हारा बल और तेज बढ़े ॥ १९५ ॥

मन्त्रेणानेन शिशवे दद्यात्कृष्णाजिनान्वितम् ।
यज्ञोपवीतं दण्डञ्च वैणवं खादिरञ्च वा ।
पालाशमथवा दद्यात्क्षीरवृक्षसमुद्भवम् ॥ १९६ ॥

गुरु यह मंत्र पढ़कर बालकको काले मृगचर्मका यज्ञोपवीत और बांसका बना हुआ खदिरका या ढाक अथवा क्षीरवृक्षका बना हुआ दंड दे ॥ १९६ ॥

आपोहिष्ठेति मन्त्रेण मायया पुटितेन च ।
त्रिरावृत्त्या कुशाम्भोभिर्धृतदण्डोपवीतिनम् ।
अभिषिच्य ततस्तोयैः पूरयेद्बालकाञ्जलिम् १९७॥

जब बालक दण्ड और उपवीत धारण कर ले तब मायापुटित अर्थात् "ह्रीं" बीजसे पुटित 'आपोहिष्ठा' यह मन्त्र तीन बार पढ़कर कुशसे जल ले बालकको अभिषिक्त करे । फिर उस पात्रमें रखा हुआ जल ले उपनीत बालककी अंजलि भरे ॥ १९७ ॥

तदञ्जलिं दिनेशाय दातारं ब्रह्मचारिणम् ।
तच्चक्षुरितिमन्त्रेण दर्शयेद्भास्करं गुरुः ॥ १९८ ॥

जब ब्रह्मचारी वह जलांजलि सूर्य भगवान्‌को अर्पण कर दे तब गुरु " तच्चक्षुर्देवहितम् " मंत्र पढ़कर उसको सूर्यका दर्शन करावे ॥ १९८ ॥

दृष्टभास्करमाचार्य्यो वदेन्माणवकं ततः ।
मम व्रते मनो धेहि मम चित्तं ददामि ते ।
जुषस्वैकमना वत्स ! मम वाचोऽस्तु ते शिवम् १९९

जब बालक सूर्यका दर्शन कर ले तब आचार्य उससे कहे कि मैं तुमको अपना वित्त प्रदान करता हूं, तुम हमारे

अनुष्ठानमें मन लगाओ हे वत्स ! तुम एक मनोहर हमारे व्रतका आचरण करो, हमारा वाक्य तुम्हारा कल्याण करनेवाला हो ॥ १९९ ॥

हृदि स्पृष्ट्वा पठित्वैनं किन्नामासीति तं वदेत् ।
शिष्यस्त्वमुकशर्म्माहं भवन्तमभिवादये ॥ २०० ॥

गुरु यह मन्त्र पढ़कर बालकको हृदयस्पर्श करके कहे कि "हे वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है" शिष्य कहे कि "मुझ आपके शिष्यका नाम अमुकशर्मा है" मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥ २०० ॥

कस्य त्वं ब्रह्मचारीति गुरौ पृच्छति पार्व्वति ! ।
शिष्यः सावहितो ब्रूयाद्भवतो ब्रह्मचार्य्यहम् २०१॥

हे पार्वति ! फिर गुरु पूछे कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो; शिष्य सावधान चित्तसे कहे कि मैं आपका ब्रह्मचारी हूं ॥ २०१ ॥

इन्द्रस्य ब्रह्मचारी त्वमाचार्य्यस्ते हुताशनः ।
इत्युक्त्वा सद्गुरुः पश्चाद्देवेभ्यस्तं समर्पयेत् २०२॥

फिर सद्गुरु शिष्यसे कहे कि हे वत्स ! तुम इन्द्रके ब्रह्मचारी हो, अग्नि तुम्हारे आचार्य हैं । यह कहकर गुरु शिष्यको देवताओंको समर्पण करे ॥ २०२ ॥

त्वां प्रजापतये वत्स ! सवित्रे वरुणाय च ।
पृथिव्यै विश्वेदेवेभ्यः सर्व्वदेवेभ्य एव च ।
समर्पयामि ते सर्व्वे रक्षन्तु त्वां निरन्तरम् ॥ २०३ ॥

(और यह मंत्र पढ़े) कि हे वत्स! तुमको प्रजापतिके निकट, सविताके निकट, वरुणके निकट और सब देवताओंके निकट समर्पण करता हूं । वे सब देवता निरन्तर तुम्हारी रक्षा करें ॥ २०३ ॥

ततो माणवको वह्निं दक्षिणावर्त्तयोगतः ।
गुरुं प्रदाक्षिणीकृत्य स्वासने पुनराविशेत् ॥२०४॥

फिर बालक दक्षिणावर्त योगसे अग्निको और गुरुको प्रदक्षिणा कर फिर आसनपर बैठे ॥ २०४ ॥

गुरुः शिष्येण संस्पृष्टः समुद्भवहुताशने ।
पञ्चदेवान्समुद्दिश्य दद्यात्पञ्चाहुतीः प्रिये !॥२०५॥

हे प्रिये ! तदुपरांत गुरु शिष्यके द्वारा स्पृष्ट होकर समुद्भवनामक अग्निमें पांच देवताओंके लिये पांच आहुति दे ॥ २०५ ॥

प्रजापतिस्तथा शक्रो विष्णुर्ब्रह्मा शिवस्तथा २०६॥

अनन्तर प्रजापति, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, शिव ॥ २०६ ॥

मायादिवह्निजायान्तैर्जुहुयात्स्वस्वनामभिः ।
अनुक्तमन्त्रे सर्व्वत्र विधिरेष प्रकीर्त्तितः ॥२०७॥

इन सब देवताओंके नाम लेकर आदिमें " ह्रीं " अन्तमें " स्वाहा " उच्चारण करके आहुति दे। जिस मन्त्रमें कोई विधि नहीं कही है, उस मन्त्रका भी वैसे ही विधान करे। अर्थात् नामके पहले " ह्रीं " उच्चारण करके फिर "स्वाहा" कहे जैसे " ह्रीं प्रजापतये स्वाहा " ॥ २०७ ॥

ततो दुर्गा महालक्ष्मीः सुन्दरी भुवनेश्वरी ।
इन्द्रादिदशदिक्पाला भास्करादिनवग्रहाः ॥२०८॥

फिर दुर्गा, महालक्ष्मी, सुन्दरी, भुवनेश्वरी, इन्द्रादि दश दिक्पाल, भास्करादि नवग्रह ॥ २०८ ॥

प्रत्येकनाम्ना हुत्वैतान्वाससाच्छाद्य बालकम् ।
पृच्छेन्माणवकं प्राज्ञो ब्रह्मचर्य्याभिमानिनम् ।
को वाश्रमस्ते तनय ! ब्रूहि किन्ते मनोगतम् २०९॥

इनमेंसे प्रत्येकका नाम लेकर आहुति दे (१) फिर बुद्धिमान् गुरु ब्रह्मचर्याभिमानी बालकको वस्त्रसे ढककर पूछे कि हे वत्स ! इस समय तुम कौनसे आश्रमको चाहते हो और तुम्हारे मनका भाव क्या है सो कहो ॥ २०९ ॥

ततः शिष्यः सावहितो धृत्वा गुरुपदद्वयम् ।
करोतु मामाश्रमिणं ब्रह्मविद्योपदेशतः ॥ २१० ॥

फिर शिष्य सावधान हो गुरुके दोनों चरणकमल पकड़कर प्रार्थना करे कि हे गुरो ! ब्रह्मका उपदेश देकर मुझको ब्रह्मचर्याश्रमी कीजिये ॥ २१० ॥

एवं प्रार्थयमानस्य दक्षकर्णे शिशोस्तदा ।
श्रावयित्वा त्रिधातारं सर्व्वमन्त्रमयं शिवे ! ।
व्याहृतित्रयमुच्चार्य्य सावित्रीं श्रावयेद्गुरुः॥२११॥

---

(१) मंत्रः- "ह्रीं दुर्गायैस्वाहा। ह्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा। ह्रीं सुन्दर्यै स्वाहा" इत्यादि।

हे शिवे ! बालकके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गुरु उसके दाहिने कानमें सर्व मंत्रमय प्रणवको तीन बार सुनाकर "भूर्भुवः स्वः" यह तीन व्याहृति उच्चारण करके गायत्रीका उपदेश करे ॥२११॥

ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
अधिष्ठात्री तु सावित्री मोक्षार्थे विनियोगिता॥२१२॥

इस सावित्रीके ऋषि सदाशिव, छंद त्रिष्टुप्, अधिष्ठात्री देवी सावित्री, मोक्षके लिये विनियोग होता है (१)॥२१२॥

आदौ तत्सवितुः पश्चाद्वरेण्यं पदमुच्चरेत् ।
भर्गःपदान्ते देवस्य धीमहीति पदं वदेत् ॥२१३॥

पहले "तत्सवितुः" पद उच्चारण करके फिर 'वरेण्यं" पद उच्चारण करे। तदुपरांत "भर्गः" पदके पीछे "देवस्य धीमहि" पदका पाठ करे ॥ २१३ ॥

ततस्तु परमेशानि ! धियो यो नः प्रचोदयात् ।
पुनः प्रणवमुच्चार्य्य सावित्र्यर्थं गुरुर्व्वदेत् ॥२१४॥

हे परमेश्वरि ! तदुपरांत "धियो यो नः प्रचोदयात्" यह पद उच्चारण करके प्रणव उच्चारण करनेके पीछे गुरु शिष्यको गायत्रीका अर्थ समझावे ॥ २१४ ॥

---

(१) गायत्रीके ऋष्यादि यथाः—अस्याः गायत्र्याः सदाशिवऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः सावित्र्यधिष्ठात्री देवता मोक्षार्थे विनियोगः । शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे त्रिष्टुब्छन्दसे नमः । हृदये सावित्र्यै अधिष्ठात्र्यै देवतायै नमः । मोक्षावाप्तये विनियोगः । इस प्रकार ऋषिन्यास करके गायत्रीका जप करे।

त्र्यक्षरात्मकतारेण परेशः प्रतिपाद्यते ।
पाता हर्त्ता च संस्रष्टा यो देवः प्रकृतेः परः २१५॥

त्र्यक्षरात्मक प्रणवके द्वारा जो देव प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ है, जो सृष्टि, स्थिति, प्रलयको करता है वही परमेश्वर कथित होता है (१) ॥ २१५ ॥

असौ देवस्त्रिलोकात्मा त्रिगुणं व्याप्य तिष्ठति ।
अतो विश्वमयं ब्रह्मवाच्यं व्याहृतिभिस्त्रिभिः २१६॥

वह देव त्रिलोकीका आत्मा है वह तीनों गुणोंमें व्याप रहा है । इस कारण "भूर्भुवःस्वः" इन तीन व्याहृतिसे ब्रह्माण्डमें ब्रह्म कहा जाता है ॥ २१६ ॥

तारव्याहृतिवाच्यो यः सावित्र्या ज्ञेय एव सः ।
जगद्रूपस्य सवितुः संस्रष्टुर्दीव्यतो विभोः ॥२१७॥

(१) अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः । मकारः प्रोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः ॥ अ, उ, म इन तीन अक्षरोंसे प्रणव होता है । अकारका अर्थ विष्णु अर्थात् पालनकर्त्ता, उकारका अर्थ महेश्वर अर्थात् संहारकर्त्ता । मकारका अर्थ ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्त्ता है । अ, उ, म,—ओं, इस प्रणवसे सृष्टि, स्थिति, प्रलयकर्त्ता कहा जाता है । गोरक्षसंहितामें कहा है—'इच्छा, क्रिया तथा ज्ञानं गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी । त्रिधा शक्तिः स्थिता लोके तत्परं शक्तिरोमिति ॥' ईश्वरकी तीन शक्ति हैं, एक शक्तिका नाम इच्छाशक्ति है । एक शक्तिका नाम क्रियाशक्ति है और एक शक्तिका नाम ज्ञानशक्ति है । इच्छाशक्ति गौरीशब्दमें, क्रियाशक्ति ब्राह्मीशब्दमें और ज्ञानशक्ति वैष्णवीशब्दमें कही जाती है । प्रणव अर्थात् ओंकारके द्वारा यह तीन शक्तियां दिखायी देती हैं ।

जो प्रणवसे प्रतिपाद्य है, जो तीन व्याहृतिसे वाच्य है, सावित्रीसे वही जाना जाता है। जो जगत्का सविता अर्थात सृष्टिकर्त्ता है, जो दीप्त्यादि क्रियाश्रय विभु है ॥२१७॥

अन्तर्गतं महद्वर्चो वरणीयं यतात्मभिः ।
ध्यायेम तत्परं सत्यं सर्व्वव्यापि सनातनम् ॥२१८॥

उसकी अन्तर्गत योगियोंकी वरणीय महाज्योतिका ध्यान करता हूं। वह ब्रह्म ही परमसत्य, सर्वव्यापी और सनातन है ॥ २१८ ॥

यो भर्गः सर्वसाक्षीशो मनोबुद्धीन्द्रियाणि नः ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयेद्विनियोजयेत ॥ २१९ ॥

जो वह महाज्योति सर्वसाक्षी और ईश्वर है वह हमारे मनको बुद्धि व इन्द्रियोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें लगावे ॥ २१९ ॥

इत्थमर्थयुतां ब्रह्मविद्यामादिश्य सद्गुरुः ।
शिष्यं नियोजयेद्देवि ! गृहस्थाश्रमकर्मसु ॥२२०॥

हे देवि ! सद्गुरु इस प्रकार अर्थसहित ब्रह्मविद्याका उपदेश देकर शिष्यको गृहस्थाश्रमके कर्ममें लगावे ॥ २२० ॥

ब्रह्मचर्य्योचितं वेषं वत्सेदानीं परित्यज ।
शाम्भवोदितमार्गेण देवान्पितॄन्समर्च्चय ॥२२१॥

और कहे कि हे वत्स ! इस समय वह वेश जो ब्रह्मचर्यके योग्य है—त्याग दे। महादेवजीका दिखाया हुआ मार्ग अवलंबन करके देवता और पितृगणोंकी पूजा कर ॥२२१॥

ब्रह्मविद्योपदेशेन पवित्रं ते कलेवरम् ।
प्राप्ता गृहस्थाश्रमिता तदुक्तं कर्म कल्पय॥२२२॥

ब्रह्मविद्याके उपदेशसे इस समय तुम्हारा शरीर पवित्र हुआ है। इस समय तुम गृहस्थाश्रमको प्राप्त हो गये । अतएव तुम गृहस्थाश्रममें कहे हुए कार्योंका अनुष्ठान करो २२२

उपवीतद्वयं दिव्यं वस्त्रालंकरणानि च ।
गृहाण पादुकां छत्रं गन्धमाल्यानुलेपनम्॥२२३॥

हे वत्स ! इस समय तुम दो यज्ञोपवीत, रमणीय वस्त्र, अलंकार, खड़ाऊं, छत्र, गंध माला और अनुलेपन ग्रहण करो ॥ २२३ ॥

ततः काषायवसनं कृष्णाजिनसमन्वितम् ।
यज्ञसूत्रं मेखलाञ्च दण्डं भिक्षाकरण्डकम्॥२२४॥

फिर गेरुआरंगके वस्त्र, कृष्णमृगका चर्म, यज्ञोपवीत मेखला, दंड, भिक्षापात्र ॥ २२४ ॥

आचारादर्जितां भिक्षां समर्प्य गुरवे शिवे ! ।
शुद्धोपवीतयुगलं परिधायाम्बरे शुभे ॥ २२५ ॥

आचारके अनुसार मिली हुई भिक्षा, यह सब गुरुजीको अर्पण करके शिष्य, दो शुद्ध यज्ञोपवीत और दो उत्तम वस्त्र पहर ॥ २२५ ॥

गन्धमाल्यधरस्तूष्णीं तिष्ठदाचार्य्यसन्निधौ ।
ततो गृहस्थाश्रमिणं शिष्यमेतद्वदेद्गुरुः ॥२२६॥

गन्ध और माला धारण कर आचार्यके समीप चुपकेसे खड़ा रहे । आचार्य गृहस्थाश्रमी शिष्य से कहे ॥२२६॥

जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्रह्मज्ञानपरो भव ।
स्वाध्यायाश्रमकर्माणि यथाधर्मेण साधय ॥२२७॥

तुम जितेन्द्रिय, सत्यवादी और ब्रह्मज्ञानपरायण हो। तुम धर्मशास्त्रकी विधिके अनुसार अध्ययन और गृहस्थाश्रमके समस्त कर्म करो ॥ २२७ ॥

इत्यादिश्य द्विजं पश्चात्समुद्भवहुताशने ।
मायादिप्रणवान्तेन भूर्भुवःस्वस्त्रयेण च ॥ २२८ ॥

इस प्रकार द्विज शिष्यको आज्ञा देकर गुरु पहले माया और पीछेसे प्रणव उच्चारण करके, "भूः भुवः स्वः" इन तीन मन्त्रोंसे समुद्भवनामक अग्निमें ॥ २२८ ॥

हावयित्वा त्रिधाचार्य्यः स्विष्टकृद्धोममाचरन् ।
दत्त्वा पूर्णाहुतिं भद्रे ! व्रतकर्म्म समापयेत् २२९॥

तीन वार आहुति देकर स्विष्टकृत् होमको करे । हे भद्रे ! फिर पूर्णाहुति देकर उपनयनक्रियाको समाप्त करे ॥ २२९ ॥

जीवसेकादिसंस्कारा व्रतान्तः पितृतो नव ।
उद्वाहः पितृतो वापि स्वतोऽपि सिध्यति प्रिये! २३०

हे प्रिये! जीवसेकसे लेकर उपनयनतक नौ संस्कार पिताके ही द्वारा होते हैं। परन्तु विवाहसंस्कार पिताके द्वारा या अपने आप भी हो सकता है ॥ २३० ॥

विवाहेऽह्नि कृतस्नानः कृतनित्यक्रियः कृती। ।
पञ्चदेवान्समभ्यर्च्य गौर्यादिमातृकास्तथा ।
वसोर्धारां कल्पयित्वा वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् २३१॥

कार्यकुशल विवाहके दिन स्नान करके नित्यक्रियासे निपट पांच देवताओंकी पूजा कर, गौरी इत्यादि षोडश मातृकाओं-की पूजा करे। फिर वसुधारा देकर वृद्धिश्राद्ध करे ॥२३१॥

रात्रौ प्रतिश्रुतं पात्रं गीतवाद्यपुरःसरम् ।
छायामण्डपमानीय उपवेश्य वरासने ॥ २३२ ॥

पहले जिस पात्रको कन्यादान करनेके लिये वचन दिया था, जब वह पात्र गाजे बाजेके साथ रात्रिके समय आवे, तब उसको छाये हुए मण्डपके नीचे ला करके आसनपर बैठावे ॥ २३२ ॥

वासवाभिमुखं दाता पश्चिमाभिमुखो विशेत् ।
आचम्य स्वस्तिऋद्धिं च कथयेद्ब्राह्मणैः सह २३३॥

पात्र पूर्वकी ओर बैठे, दाता पश्चिमकी ओर बैठे, कन्यादान करनेवाला पहले आचमन करके। (कर्तव्येऽस्मिन् शुभविवाहकर्माणि स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु) यह मंत्र पढ़कर फिर ब्राह्मणोंके साथ कहे कि (स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा इत्यादि) स्वस्ति पढ़कर फिर कन्यादान करनेवाला कहे कि (कर्तव्येऽस्मिन् शुभविवाहकर्माणि ऋद्धिं भवन्तोऽधिब्रुवन्तु) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मणोंसे कहावे कि (ऋध्यताम् ऋध्यताम् ऋध्यताम्) ॥ २३३ ॥

साधुप्रश्नं वरं पृच्छेदर्चनाप्रश्नमेव च ।
वरात्प्रश्नोत्तरं नीत्वा पाद्याद्यैर्वरमर्चयेत् ॥२३४॥

फिर कन्यादाता वरसे साधु प्रश्न और अर्चनाप्रश्न करके प्रश्नका उत्तर ले (१) पाद्यादिसे वरकी अर्चना करे ॥२३४॥

समर्पयामि वाक्येन देयद्रव्यं समर्पयेत् ।
पादयोरर्पयेत्पाद्यं शिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ॥२३५॥

पाद्यादि देनेके समय, तुमको यह समर्पण करता हूं यह वाक्य पढ़कर सब देनेके योग्य द्रव्योंको समर्पण कर दे, दोनों चरणोंमें पाद्य और मस्तकमें अर्घ्य समर्पण करे२३५॥

आचम्य वदने दद्याद्गन्धं माल्यं सुवाससी ।
दिव्याभरणरत्नानि यज्ञसूत्रं समर्पयेत् ॥ २३६ ॥

फिर वदनमें आचमनीय देकर दो वस्त्र, सुगंधित माला, यज्ञोपवीत, उत्तम आभूषण और रत्नादि दान करे ॥२३६॥

ततस्तु भाजने कांस्ये कृत्वा दधि घृतं मधु ।
समर्पयामि वाक्येन मधुपर्कं करेऽर्पयेत् ॥ २३७॥

फिर कांसेके पात्रमें दही, घी और मधु रखकर समर्पण करता हूं, वाक्य पढ़कर हाथमें मधुपर्क अर्पण करे ॥२३७॥

---

(१) कन्यादाताका प्रश्न–"साधु भवानास्ताम्" वरका उत्तर–"साध्वहमासे" प्रश्न–"अर्चयिष्यामि भवन्तम्" उत्तर–"ओं अर्चय" ।

वरोऽपि पात्रमादाय वामे पाणौ निधाय च ।
दक्षाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां प्राणाहुत्युक्तमन्त्रकैः २३८॥

वर भी उस मधुपर्कके पात्रको ग्रहण कर वाम हाथमें रख प्राणाहुति मंत्र पढ़के (१) दांये हाथके अंगूठे और अनामिकासे ॥ २३८ ॥

पञ्चधाघ्राय तत्पात्रमुदीच्यां दिशि धारयेत् ।
मधुपर्कं समर्प्यैवं पुनराचामयेद्वरम् ॥ २३९ ॥

पांच वार सूंघकर उस पात्रको उत्तरकी ओर रख दे। इस प्रकार मधुपर्क समर्पण करके वरको पुनराचमनीय दे॥२३९॥

दूर्वाक्षताभ्यां जामातुर्विधृत्य जानुदक्षिणम् ।
स्मृत्वा विष्णुं तत्सदिति मासपक्षतिथीस्ततः२४०॥

फिर दूब और अक्षत हाथमें ले जामाताकी दाहिनी जांघ नवाय विष्णुजीका स्मरण करके "तत्सत्" वाक्य उच्चारण कर मास, पक्ष और तिथिका ॥ २४० ॥

समुल्लिख्य निमित्तानि वृणुयाद्वरमुत्तमम् ।
गोत्रप्रवरनामानि प्रत्येकं प्रपितामहात् ॥ २४१ ॥
षष्ठ्यन्तानि समुच्चार्य्य वरस्य जनकावधि ।
द्वितीयान्तं वरं ब्रूयाद्गोत्रप्रवरनामभिः ॥ २४२ ॥

(१) प्राणाहुतिका मंत्र यथाः—"प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा ॥"

तथैव कन्यामुल्लिख्य ब्राह्मोद्वाहेन पण्डितः ।
दातुं भवन्तमित्युक्त्वा वृणेऽहमिति कीर्तयेत् ॥ २४३ ॥

नाम ले वरके परदादेसे लेकर पितातक प्रत्येकका गोत्र, प्रवरके साथ षष्ठयन्त नाम उच्चारण करे, ऐसे ही गोत्र प्रवरादिके सहित द्वितीयान्त वरका नाम ले वरका भलीभाँतिसे वरण करे । फिर इस प्रकार कन्याके परदादेसे लेकर बापतक तीन पुरुषका षष्ठयन्त नाम, गोत्र और प्रवरके साथ उच्चारण करके ऐसे ही गोत्र प्रवरके साथ द्वितीयान्त कन्याका नाम लेकर, पंडित कन्यादातासे कहे कि ब्राह्मविवाहसे कन्यादान करनेके अर्थ मैं तुमको वरण करता हूँ (१) ॥ २४१ ॥ ॥ २४२ ॥ २४३ ॥

वृतोऽस्मीति वरो ब्रूयात्ततो दाता वदेद्वरम् ।
यथाविहितमित्युक्त्वा विवाहं कर्म्म कुर्व्विति ।
वरो ब्रूयाद्यथाज्ञानं करवाणि तदुत्तरम् ॥ २४४ ॥

फिर कहे कि (वृतोऽस्मि) वृत हुआ । फिर कन्यादाता वरसे कहे कि (यथाविहितं विवाहकर्म कुरु) यथा विधानसे

---

(१) यह मंत्र उद्धृत हुआ । यथाः—विष्णुरों तत्सदोम् अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकगोत्रः श्रीमदमुकदेवशर्मामुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमतोऽमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रम् अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्रम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्रम् अमुकगोत्रममुकप्रवरं श्रीमन्तममुकदेवशर्माणं वरममुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्रीम् अमुकगोत्राममुकप्रवराममुकीं देवीं कन्यां ब्राह्मोद्वाहेन दातुं भवन्तमहं वृणे ॥

विवाहकार्य करो । वर उत्तर दे कि (यथाज्ञानं करवाणि) मुझको जैसा ज्ञान है वैसा करता हूं ॥ २४४ ॥

ततः कन्यां समानीय वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।
वस्त्रान्तरेण संच्छाद्य स्थापयेद्वरसम्मुखम् ॥२४५॥

फिर वस्त्राभूषणसे सजी हुई कन्याको लाकर वस्त्रसे ढकके वरके सम्मुख बैठावे ॥ २४५ ॥

पुनर्व्वरं समभ्यर्च्य वासोऽलंकारणादिभिः ।
वरस्य दक्षिणे पाणौ कन्यापाणिं नियोजयेत्२४६

तदुपरांत कन्यादाता फिर वस्त्र और अलंकारादिसे वरकी पूजा करक वरके दाहिने हाथमें कन्याके हाथको समर्पण करे ॥ २४६ ॥

तन्मध्ये पञ्चरत्नानि फलताम्बूलमेव वा ।
दत्त्वार्चयित्वा तनयां वराय विदुषेऽर्पयेत् ॥२४७॥

और उसके हाथमें फल, ताम्बूल व पंचरत्न देकर अर्चना करके उस विद्वान् वरके हाथमें कन्याको समर्पण करे॥२४७॥

प्राग्वत्त्रिपुरुषाख्यानं निमित्ताख्यानमेव च ।
आत्मनः काममुद्दिश्य चतुर्थ्यन्तं वरं वदेत्२४८॥

इस कन्याको समर्पण करनेके समय पहले अपनी कामना कहकर तीन पुरुषका नाम ले निमित्त कीर्तन करके चतुर्थी-विभक्तिके अन्तमें वरका नाम ले ॥ २४८ ॥

कन्याभिधां द्वितीयान्तामर्च्चितां समलङ्कृताम् ।
साच्छादनां प्रजापतिदेवताकामुदीरयन् ॥ २४९ ॥

फिर (ऐसे ही तीन पुरुषका नाम लेकर) कन्याका द्वितीयान्त नाम उच्चारण करनेके समय अर्चिता, अलंकृता, साच्छादना, प्रजापतिदेवताका यह कई विशेषणपद उच्चारण करे ॥ २४९ ॥

तुभ्यमहमिति प्रोच्य दद्यात्सम्प्रददे वदन् ।
वरः स्वस्तीति स्वीकुर्य्यात्सम्प्रदाता वरं वदेत् २५०

फिर " तुभ्यमहं सम्प्रददे " (अर्थात् मैं तुमको सम्प्रदान करता हूं) यह वाक्य पढ़कर कन्यादान करे (१) वर स्वस्ति कहकर (कन्याको भार्याभावसे ग्रहण करनेको) स्वीकार करे । कन्यादाता वरसे कहे कि ॥ २५० ॥

धर्म्मे चार्थे च कामे च भवता भार्य्यया सह ।
वर्त्तितव्यं वरो बाढमुक्त्वा कामस्तुतिं पठेत् ॥ २५१ ॥

---

(१) सम्प्रदानमन्त्रो यथाः—विष्णुरोंतत्सदोम् अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकाभीष्टार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्रः श्रीमदमुकशर्मामुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्राय, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्राय, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्राय, अमुकगोत्रायामुकप्रवराय श्रीमतेऽमुकदेवशर्मणे वराय अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्रीम, अमुकगोत्राममुकप्रवरामर्चितां समलंकृतां साच्छादनां प्रजापतिदेवताकाममुकीं देवीमेनां कन्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥

तुम धर्म, अर्थ और कामविषयमें भार्याके साथ मिलकर कार्य करना। "ऐसे ही करूंगा" कहकर वर इस प्रकार कामस्तुति पढ़े कि ॥ २९१ ॥

दाता कामो गृहीतापि कामायादाञ्च कामिनीम् ।
कामेन त्वां प्रगृह्णामि कामः पूर्णोऽस्तु चावयोः २९२

काम सम्प्रदान करता है, काम ही प्रतिग्रह करता है, काम ही कामको कामिनीदान करता है. हे भार्ये ! मैं कामके हेतु तुमको ग्रहण करता हूं, हमारे दोनोंके काम पूर्ण हों २९२

ततो वदेत्सम्प्रदाता कन्यां जामातरं प्रति ।
प्रजापतिप्रसादेन युवयोरभिवाञ्छितम् ।
पूर्णमस्तु शिवञ्चास्तु धर्म्मं पालयतं युवाम् २५३॥

फिर कन्याका देनेवाला जमाई और कन्यासे कहे कि, प्रजापतिके प्रसादसे तुम्हारी मनःकामना पूर्ण हो, तुम्हारा मंगल हो, तुम दोनों मिलकर धर्म करो ॥ २९३ ॥

तत आच्छाद्य वस्त्रेण सम्प्रदाता सुमङ्गलैः ।
परस्परशुभालोकं कारयेद्वरकन्ययोः ॥ २५४ ॥

फिर दाता मंगल गीत बाजे शंखादि बजाकर कन्या और वरको श्वेतवस्त्र पहराकर परस्पर शुभदृष्टि करावे ॥ २५४ ॥

ततो हिरण्यरत्नानि यथाशक्त्यनुसारतः ।
जामात्रे दक्षिणां दद्यादच्छिद्रमवधारयेत् ॥२५५॥

तदुपरांत जामाताको यथाशक्ति सुवर्ण और रत्नदक्षिणा देकर " कृतमिदं शुभविवाहकर्माच्छिद्रमस्तु " यह कहकर अच्छिद्रावधारण करे ॥ २५५ ॥

वरस्तु भार्य्यया सार्द्धं तद्रात्रौ दिवसेऽपि वा ।
कुशण्डिकोक्तविधिना वह्निस्थापनमाचरेत् २५६॥

अनन्तर उस रात्रिमें वा दूसरे दिन भार्याके साथ कुशकण्डिकामें कही हुई विधिके अनुसार अग्निस्थापन करे॥२५६॥

योजकाख्यः पावकोऽत्र प्राजापत्यश्चरुः स्मृतः ।
धारान्तं कर्म्म सम्पाद्य दद्यात्पञ्चाहुतीर्वरः॥२५७॥

इस कुशण्डिकास्थलमें योजकनामक अग्नि और प्राजापत्य नामक चरु कहा है। धाराहोमतक सब कर्म करके वरको पांच आहुति देनी चाहिये ॥ २५७ ॥

शिवं दुर्गां तथा विष्णुं ब्रह्माणं वज्रधारिणम् ।
ध्यात्वैकैकं समुद्दिश्य जुहुयात्संस्कृतेऽनले॥२५८॥

इन पांच आहुतियोंको देनेके समय शिव, दुर्गा, विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र इन पांचों देवताओंका ध्यान करके प्रत्येकके लिये एक एक आहुति संस्कार की हुई अग्निमें दे२५८॥

भार्य्यायाः पाणियुगलं गृह्णीयादित्युदीरयन् ।
पाणिं गृह्णामि सुभगे ! गुरुदेवरता भव ।
गार्हस्थ्यं कर्म्म धर्म्मेण यथावदनुशीलय ॥ २५९ ॥

फिर भार्याके दोनों हाथ पकड़कर वर यह मन्त्र पढ़े कि, हे सुभगे ! मैं तेरा पाणिग्रहण करता हूं, तू गुरुभक्ति और देवताभक्तिपरायण होकर धर्मानुसार विधिविधानसे गृहस्थ कर्मका अनुष्ठान कर ॥ २५९ ॥

घृतेन स्वामिदत्तेन लाजैर्भ्रात्राहृतैः शिवे ।
प्रजापतिं समुद्दिश्य दद्याद्वेदाहुतीर्वधूः ॥ २६० ॥

हे शिवे ! इसके उपरांत वधूको चाहिये कि, स्वामीके दिये हुए घृतसे और भ्राताके दिये हुए लाजसे प्रजापतिके अर्थ चार आहुति दे ॥ २६० ॥

प्रदक्षिणीकृत्य वह्निमुत्थाय भार्य्यया सह ।
दुर्गां शिवं रमां विष्णुं ब्राह्मीं ब्रह्माणमेव च ।
युग्मं युग्मं समुद्दिश्य त्रिस्त्रिधाहवनं चरेत् ॥ २६१ ॥

फिर भार्याके साथ वरको उठकर अग्निकी प्रदक्षिणा करके दुर्गा और शिव, रमा और विष्णु, ब्राह्मी और ब्रह्मा इन दोनोंके लिये अर्थात् प्रत्येक दम्पतिके लिये तीन वार आहुति दे ॥ २६१ ॥

अश्ममण्डलिकासप्तारोहौ कुर्य्यादमन्त्रकम् ।
निशायां चेत्तदा स्त्रीभिः पश्येद्ध्रुवमरुन्धतीम् २६२

फिर विना मन्त्र पढ़े शिलारोहण और सप्तपदीगमन करे, यदि विवाहकी रात्रिमें ही कुशण्डिका हो तो वर और वधू पुरकी स्त्रियोंके साथ मिलकर अरुन्धतीका दर्शन करे २६२॥

प्रत्यावृत्त्यासने सम्यगुपविश्य वरस्तदा ।

स्विष्टकृद्धोमतः पूर्णाहुत्यन्तेन समापयेत् ॥२६३॥

फिर वरको उचित है कि, लौटके भलीभांतिसे अपने आसनपर बैठे और स्विष्टकृत् होमसे पूर्णाहुतितक समस्त कर्म करे ॥ २६३ ॥

ब्राह्मो विवाहो विहितो दोषहीनः सवर्णया ।

कुलधर्मानुसारेण गोत्रभिन्नासपिण्डया ॥ २६४ ॥

यदि स्वजातीय गोत्रके सिवाय माताकी असपिंडा कन्याके साथ कुलधर्मके अनुसार विवाह हो तो वह निर्दोष ब्राह्मविवाह (१) कहलाता है ॥ २६४ ॥

ब्राह्मोद्वाहेनया ग्राह्या सैव पत्नी गृहेश्वरी ।

तदनुज्ञां विना ब्राह्मविवाहं नाचरेत्पुनः ॥ २६५ ॥

जो भार्या ब्राह्मविवाहसे ग्रहण की जाती है, वही भार्या पत्नी और गृहेश्वरी होती है, विना उसकी सम्मतिके कोई पुरुष पुनर्वार ब्राह्मविवाह नहीं कर सकता ॥ २६५ ॥

तस्या अपत्ये तद्वंशे विद्यमाने कुलेश्वरि ! ।

शैवोद्भवान्यपत्यानि दायार्हाणि भवन्ति न २६६॥

हे कुलेश्वरि ! ब्राह्मविवाहसे उत्पन्न हुआ पुत्र या उसके वंशमें किसी रहते हुए शैवविवाहके द्वारा विवाहित भार्याके गर्भका पुत्र धनका अधिकारी नहीं हो सकता ॥ २६६ ॥

(१) रूपवान् पात्रको बुलाकर यदि अलंकृता कन्याको दान कर दिया जाय तो वह "ब्राह्मविवाह" कहलाया जायगा ।

शैवास्तदन्वयाश्चैव लभेरन्धनभाजिनः ।

यथाविभवमाच्छादं ग्रासञ्च परमेश्वरि ! ॥२६७॥

हे परमेश्वरि ! शिवविवाहसे उत्पन्न हुई सन्तान वा उस वंशके पुत्रगण, धनाधिकारीके पाससे सम्पत्तिके अनुसार वस्त्र. भोजनमात्र पा सकते हैं ॥ २६७ ॥

शैवो विवाहो द्विविधः कुलचक्रे विधीयते ।

चक्रस्य नियमेनैको द्वितीयो जीवनावधि॥२६८॥

शैवविवाह दो प्रकारका है। कुलचक्रमें ही ऐसे विवाह होते हैं। एक प्रकारका विवाह चक्रके नियमानुसार (चक्रकी निवृत्तितक स्थायी रहता है) दूसरे प्रकारके विवाहका बन्धन जन्मभरतक स्थायी होता है ॥ २६८ ॥

चक्रानुष्ठानसमये स्वगणैः शक्तिसाधकैः ।

परस्परेच्छयोद्वाहं कुर्याद्वीरः समाहितः ॥२६९॥

वीर पुरुष चक्रानुष्ठानके समय सावधान चित्तसे शक्ति-साधक स्वजनोंके साथ मिलकर परस्पर इच्छानुसार विवाह करे ॥ २६९ ॥

भैरवीवीरवृन्देषु स्वाभिप्रायं निवेदयेत् ।

आवयोः शाम्भवोद्वाहे भवद्भिरनुमन्यताम् ॥२७०॥

प्रथम, भैरवी वीरोंके निकट अपना अभिप्राय निवेदन करके कहे कि, हम दोनोंके शैवविवाहमें आपलोग अनुमति दें ॥ २७० ॥

तेषामनुज्ञामादाय जप्त्वा सप्ताक्षरं मनुम् ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या प्रणमेत्कालिकां पराम् ॥२७१॥

अनन्तर वीरोंकी अनुमति ग्रहण करके "परमेश्वरि स्वाहा" यह मन्त्र एकशत आठवार जप करके परमदेवी कालिकाको प्रणाम करे ॥ २७१ ॥

ततो वदेत्तां रमणीं कौलानां सन्निधौ शिवे ! ।
अकैतवेन चित्तेन पतिभावेन मां वृणु ॥२७२॥

हे शिवे ! फिर कौलवर्गके सम्मुख वीरको उस स्त्रीसे कहना चाहिये कि, कपटहीन हृदयसे मुझको पतिभावमें वरण कर ॥ २७२ ॥

गन्धपुष्पाक्षतैर्वृत्वा सा कौला दयिता ततः ।
सुश्रद्दधाना देवेशि ! करं दद्यात्करोपरि ॥२७३॥

हे देवेशि ! वह कुलीन कामिनी गन्ध, पुष्प और अक्षत ले श्रद्धायुक्त हृदयसे प्यारे पतिकी पूजा कर उसके हाथपर अपना हाथ रखे ॥ २७३ ॥

ततोऽभिषिञ्चेच्चक्रेशो मन्त्रेणानेन दम्पती ।
तदा चक्रस्थिताः कौला ब्रूयुःस्वस्तीति सादरम् २७४

तदनन्तर चक्रेश्वरको आगे लिखा हुआ मन्त्र पढ़कर उस दम्पतिका अभिषेक करना चाहिये । और चक्रमें बैठे हुए समस्त वीर आदरसहित "स्वस्ति" यह वचन कहें ॥२७४॥

राजराजेश्वरी काली तारिणी भुवनेश्वरी ।
बगला कमला नित्या युवां रक्षन्तु भैरवी ॥२७५॥

दम्पतिको अभिषिक्त करनेके समय चक्रेश्वर यह मन्त्र पढ़े कि, राजराजेश्वरी काली, तारिणी, भुवनेश्वरी, बगला, कमला, नित्या और भैरवी ये तुम दोनोंकी रक्षा करें॥२७५॥

अभिषिञ्चेद्द्वादशधा मधुना वार्घ्यपाथसा ।
ततस्तौ प्रणतौ विद्वाञ्छ्रावयेद्वाग्भवं रमाम् २७६॥

चक्रेश्वर यह मन्त्र पढ़कर सुरासे अथवा अर्घ्यके जलसे दोनोंका अभिषेक करे । जब दम्पती भूमिष्ठ हो प्रणाम करे तब चक्रेश्वर उनको "ऐं श्रीं" यह दो बीज श्रवण करावे२७६

यद्यदङ्गीकृतं तत्र ताभ्यां पाल्यं प्रयत्नतः ।
शाम्भवोक्तविधानेन कुलीनाभ्यां कुलेश्वरि॥२७७॥

हे कुलेश्वरि ! वह कुलीन दम्पति उस शैवविवाहस्थलमें जो जो अंगीकार करेंगे, उसको शिवोक्तविधिके अनुसार उनको अवश्य पालन करना होगा ॥ २७७ ॥

वयोवर्णविचारोऽत्र शैवोद्वाहे न विद्यते ।
असपिण्डां भर्तृहीनामुद्वहेच्छम्भुशासनात् ॥२७८॥

इस शैवविवाहस्थलमें कौन वर्ण, कितनी आयु है, इसका विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है; महादेवजीकी ऐसी आज्ञा है कि, स्वामीहीन और असपिंडाका ही विवाह होगा ॥ २७८ ॥

परिणीता शैवधर्मे चक्रनिर्धारणेन या ।
अपत्यार्थी ऋतुं दृष्ट्वा चक्रातीते तु तां त्यजेत् २७९

शैवनियमके अनुसार चक्रनियम करके जिसके साथ विवाह किया गया है । सन्तानार्थी उसका नियमित ऋतु काल देखकर चक्रनिवृत्त होनेपर उसका त्याग कर सकते हैं २७९

शैवभार्य्योद्भवापत्यमनुलोमेन मातृवत् ।
समाचरेद्विलोमेन तत्तु सामान्यजातिवत् ॥२८०॥

अनुलोम विवाहकी विधिसे विवाहित शैवभार्याके गर्भसे उत्पन्न हुआ सन्तान (अपनी) माताके समान होगा अर्थात् माताकी जो जाति है सन्तान भी उसी जातिको प्राप्त होगी । यदि विलोम विवाह हो जाय अर्थात् कन्या ऊंची जातिकी और पात्र नीच जातिका हो तो उसके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तति साधारण जातिके समान अर्थात् पंचमवर्ण होगी ॥ २८० ॥

एषां सङ्करजातीनां सर्वत्र पितृकर्म्मसु ।
भोज्यप्रदानं कौलानां भोजनं विहितं भवेत् ॥२८१॥

इन संकरजातिको पितृश्राद्धादिमें कौलपुरुषको भोजन देना और भोजन कराना होगा ॥ २८१ ॥

नृणां स्वभावजं देवि प्रियं भोजनमैथुनम् ।
संक्षेपाय हितार्थाय शैवधर्मे निरूपितम् ॥ २८२ ॥

हे देवि ! भोजन और मैथुन मनुष्योंको स्वभावसे ही प्रिय होता है. अत एव उसका संक्षेप करनेके लिये और हित करनेके लिये शैवधर्ममें उसकी सीमा नियत की गयी है॥२८२॥

अत एव महेशानि ! शैवधर्म्मनिषेवणात् ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्रभुर्भवति नान्यथा ॥२८३॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे कुशण्डिकादशविधसंस्कारविधिर्नाम नवमोल्लासः ॥ ९ ॥

हे महेश्वरि ! इस कारण शिवके प्रवर्तित किये धर्मका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य निःसंदेह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी हो जाता है ॥ २८३ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादाबादनिवासि पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां कुशण्डिकादशविधसंस्कारविधिर्नाम नवमोल्लासः ॥ ९ ॥

दशमोल्लासः १०.

श्रीदेव्युवाच ।

कुशण्डिकाविधिर्नाथ ! संस्काराश्च दश श्रुताः ।
वृद्धिश्राद्धविधिं देव ! कृपया मे प्रकाशय ॥ १ ॥

श्रीदेवीजीने कहा हे नाथ ! आपसे दशविधिके संस्कार और कुशण्डिकाकी विधि श्रवण की । अब मुझसे वृद्धिश्राद्धका विधान कहिये ॥ १ ॥

कस्मिन्कस्मिंश्च संस्कारे प्रतिष्ठासु च कास्वपि ।
कुशण्डिकाविधानञ्च वृद्धिश्राद्धञ्च शंकर ! ॥२॥

हे महादेव ! किस संस्कारके समय अथवा किस २ प्रतिष्ठाके समय कुशण्डिका और वृद्धिश्राद्ध ॥ २ ॥

कर्त्तव्यं वा न कर्त्तव्यं तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ।
मत्प्रीतये महेशान ! जीवानां मङ्गलाय च ॥ ३ ॥

हे महेशान ! करना व न करना चाहिये सो मेरी प्रीतिके लिये और जीवोंके मंगलार्थ भलीभांति मुझसे कहिये ॥३॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

जीवसेकाद्विवाहान्तदशसंस्कारकर्म्मसु ।
यत्र यद्विहितं भद्रे ! सविशेषं प्रकीर्त्तितम् ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा, हे भद्रे ! गर्भाधानसे विवाहतक दशविध संस्कारके बीच जहां जहांपर जिस जिस कार्यकी विधि है सो मैं भलीभाँति कह आया हूं ॥ ४ ॥

तदेव कार्य्यं मनुजैस्तत्त्वज्ञैर्हितामिच्छुभिः ।
अन्यत्र यद्विधातव्यं तच्छृणुष्व वरानने ! ॥ ५ ॥

हे वरानने ! मैंने इस प्रकारसे जहाँपर जैसा विधान किया है, हित चाहनेवाले तत्त्वज्ञानी मनुष्य वैसा ही अनुष्ठान करें, इसके अतिरिक्त और स्थलमें जैसा विधान चाहिये वह भी कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ ५ ॥

वापीकूपतडागानां देवप्रतिकृतेस्तथा ।
गृहारामव्रतादीनां प्रतिष्ठाकर्म्मसु प्रिये ! ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! वापी, कूप, तड़ाग, देवप्रतिमा, गृह, उद्यान, व्रतादिकी प्रतिष्ठाके समय ॥ ६ ॥

सर्वत्र पञ्चदेवानां मातृणामपि पूजनम् ।
वसोर्धारा च कर्त्तव्या वृद्धिश्राद्धकुशण्डिके ॥७॥

सब कहीं पंचदेवताओंकी पूजा, मातृकाओंकी पूजा, वसुधारा, वृद्धिश्राद्ध और कुशंडिका करनी चाहिये ॥ ७ ॥

स्त्रीणां विधेयकृत्येषु वृद्धिश्राद्धं न विद्यते ।
देवतापितृतृप्त्यर्थं भोज्यमेकं समुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

स्त्रीजातिके कर्त्तव्यकर्ममें वृद्धिश्राद्धका विधान नहीं है, परन्तु देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये एक भोज्य उत्सर्ग करना चाहिये ॥ ८ ॥

देवमात्रार्चनं तत्र वसुधारा कुशण्डिका ।
भक्त्या स्त्रिया विधातव्या ऋत्विजा कमलानने! ॥९॥

हे कमलानने ! ऐसे स्थलमें स्त्रियोंका कर्तव्य है कि, पुरोहित करके भक्तिके साथ देवताकी पूजा करे, वसुधारा देकर कुशण्डिका करे ॥ ९ ॥

पुत्रश्च पौत्रो दौहित्रो ज्ञातयो भगिनीसुतः ।
जामातर्त्विग्दैवपैत्र्ये शस्ताः प्रतिनिधौ शिवे! १०॥

हे शिवे ! बेटा, पोता, धेवता, जाति, भानजा, जामाता और पुरोहित स्त्रियोंके प्रतिनिधि होनेको यही दैव और पितृकर्ममें श्रेष्ठ हैं ॥ १० ॥

वृद्धिश्राद्धं प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु कालिके! ॥ ११ ॥

हे कालिके ! अब ठीक २ वृद्धिश्राद्धका प्रयोग कहता हूं, श्रवण करो ॥ ११ ॥

कृत्वा नित्योदितं कर्म्म मानवः सुसमाहितः ।
गङ्गां यज्ञेश्वरं विष्णुं वास्त्वीशं भूपतिं यजेत् ॥ १२ ॥

सावधान चित्तसे नित्यकर्म समाप्त करके मनुष्यको गंगा, यज्ञेश्वर, विष्णु, वासुदेव और भूस्वामीकी पूजा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

ततो दर्भमयान्विप्रान्कल्पयेत्प्रणवं स्मरन् ।
पञ्चभिर्नवभिर्वापि सप्तभिस्त्रिभिरेव वा ॥ १३ ॥

फिर प्रणवका स्मरण करते करते दर्भमय ब्राह्मण बनावे पांच, नव, सप्त अथवा तीन ब्राह्मण बनावे ॥ १३ ॥

निर्गर्भैश्च कुशैः साग्रैर्दक्षिणावर्त्तयोगतः ।
सार्द्धद्वयावर्त्तनेन उर्द्धाग्रैरर्चयेद्द्विजान् ॥ १४ ॥

गर्भशून्य अग्रभागके साथ ऊर्ध्वाग्रकुशके साथ दक्षिणावर्तमें ढाईसे घेरकर उक्त ब्राह्मणकी रचना करे ॥ १४ ॥

वृद्धिश्राद्धे पार्वणादौ षड्विप्राः परिकीर्त्तिताः ।
एकोद्दिष्टे तु कथित एक एव द्विजः शिवे! ॥ १५ ॥

हे शिवे ! वृद्धिश्राद्ध और पार्वणादिश्राद्धमें तीनों पक्षोंके दो दो ब्राह्मण अर्थात् सब छः बनावे, परंतु एकोद्दिष्ट श्राद्धमें केवल एक ब्राह्मणकी कल्पना करे ॥ १५ ॥

ततो विप्रान्कुशमयानेकस्मिन्नेव भाजने ।
कौबेराभिमुखान्कृत्वा स्नापयेदमुना सुधीः ॥१६॥

अनन्तर ज्ञानी पुरुष कुशमय ब्राह्मणोंको एकपात्रमें उत्तरकी ओर मुख करके स्थापन कर इस मंत्रको पढ़के स्नान करावे कि ॥ १६ ॥

ह्रीं शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयो राभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥

जलदेवता हमारी अभीष्टसिद्धिके लिये मंगल करे । जलदेवता हमारे पानके लिये मंगल करे । जलदेवता सब प्रकारसे हमारे कल्याणकी वर्षा करे ॥ १७ ॥

ततस्तु गन्धपुष्पाभ्यां पूजयेत्कुशभूसुरान् ॥१८॥

फिर इन कुशमय ब्राह्मणोंकी गन्ध पुष्पसे पूजा करे १८

पश्चिमे दक्षिणे चैव युग्मयुग्मक्रमात्सुधीः ।
षट्पात्राणि सदर्भाणि स्थापयेत्तुलसीतिलैः ॥१९॥

फिर ज्ञानी पुरुष पश्चिम और दक्षिण दिशामें तुलसीदल, तिल और दर्भके साथ दो २ एकत्र करक छः पात्र स्थापन करे ॥ १९ ॥

पात्रद्वयं पश्चिमायां याम्ये पात्रचतुष्टयम् ।
पूर्वास्यानुत्तरमुखान्षाडशानुपवेशयेत् ॥ २० ॥

पश्चिमदिशामें रखे हुए दो पात्रोंमें दो ब्राह्मणोंको पूर्वमुख करके और दक्षिणदिशामें स्थापित चार पात्रोंमें चार ब्राह्मणोंको उत्तरमुख करके बैठावे ॥ २० ॥

दैवपक्षं पश्चिमायां दक्षिणे वामयाम्ययोः ।
पितुर्मातामहस्यापि पक्षौ द्वौ विद्धि पार्वति ! २१॥

हे पार्वति ! पश्चिमदिशामें देवपक्ष, दक्षिणदिशाके वामभागमें पितृपक्ष और दक्षिणदिशाके दक्षिणभागमें मातामहकी कल्पना करे ॥ २१ ॥

नान्दीमुखाश्च पितरो नान्दीमुख्यश्च मातरः ।
मातामहादयोऽप्येवं मातामह्यादयोऽपि च ।
श्राद्धे नाम्न्याभ्युदयिके समुल्लेख्या वरानने! ॥२२॥

हे वरानने ! आभ्युदयिकनामक नान्दीश्राद्धमें नान्दीमुख पितृगणोंका और नान्दीमुख मातृगणोंका नाम ले । इस प्रकार नान्दीमुख मातामहादि और नान्दीमुख मातामही इत्यादिका भी नाम लेना कर्त्तव्य है ॥ २२ ॥

दक्षावर्त्तेनोत्तरास्यो दैवं कर्म समाचरेत् ।
वामावर्त्तेन दक्षास्यः पितृकर्माणि साधयेत् ॥२३॥

दक्षिणावर्त्तसे उत्तरमुख होकर बैठ देवकर्मका अनुष्ठान करे और वामावर्त्तसे लौट दक्षिणकी ओर मुख कर पितृकर्म करे२३

सर्वकर्म्म प्रकुर्वीत दैवादिक्रमतः शिवे ! ।
लङ्घनान्मातृमातृणां श्राद्धं तद्विफलं भवेत् २४॥
कौबेराभिमुखोऽनुज्ञावाक्यं दैवे प्रकल्पयेत् ।
याम्यास्यः कल्पयेद्वाक्यं पित्रे मातामहेऽपि च ।
तत्रादौ दैवपक्षे तु वाक्यं शृणु शुचिस्मिते ॥२५॥

हे शिवे ! इस प्रकार दैवादिक्रमसे सब कर्म करे (वामावर्त होकर) माताआदि और माताकी माताआदिको लंघन करके श्राद्ध किया जाय तो वह निष्फल होगा । दैवकर्मके समय उत्तरकी ओर मुख करके अनुज्ञावाक्य पढ़े और पैत्र्य व मातामहादिके कर्मकालमें दक्षिणकी ओरको मुख कर अनुज्ञावाक्य कहे । हे शुचिस्मिते ! पहले दैवपक्षके वाक्यको कहता हूं, श्रवण करो ॥ २४ ॥ २५ ॥

कालादीनि निमित्तानि समुल्लिख्य ततः परम् ।
तत्तत्कर्म्माभ्युदयार्थमुक्त्वा साधकसत्तमः ॥ २६ ॥

साधकश्रेष्ठको चाहिये कि, प्रथम काल और निमित्तका नाम लेकर फिर "तत्तत्कर्माभ्युदयार्थं" कहकर ॥ २६ ॥

पित्रादीनां त्रयाणां तु मात्रादीनां तथैव च ।
मातामहानां च मातामह्यादीनामपि प्रिये ! ॥२७॥

पित्रादि तीन पुरुषोंका, मात्रादि तीनका, मातामहादि तीन पुरुषोंका और मातामही इत्यादि तीनके ॥ २७॥

षष्ठयन्तं कीर्त्तयेन्नाम गोत्रोच्चारणपूर्वकम् ।
विश्वेषाञ्चैव देवानां श्राद्धं पदमुदीरयेत् ॥ २८ ॥

गोत्रका उच्चारण करके षष्ठी विभक्त्यन्त नाम लेवे फिर "विश्वेषां देवानां श्राद्धं" यह पद उच्चारण करे ॥ २८ ॥

कुशनिर्मितयोः पश्चाद्विप्रयोरहमित्यपि ।
करिष्ये परमेशानीत्यनुज्ञावाक्यमीरितम् ॥ २९ ॥

हे परमेश्वरि ! फिर "कुशनिर्मितयोर्ब्राह्मणयोरहं करिष्ये" इस वाक्यको पढ़े । इसका नाम अनुज्ञावाक्य है (१) ॥ २९ ॥

विश्वान्देवान्परित्यज्य पितृपक्षे तु पार्वति ! ।
तथा मातामहस्यापि पक्षेऽनुज्ञा प्रकीर्त्तिता ॥ ३० ॥

---

(१) " विष्णुरों तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुककर्माभ्युदयार्थममुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रपितामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या मातुरमुकीदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्याः पितामह्या अमुकीदेव्याः अमुकगोत्रायाः नान्दीमुख्याः प्रपितामह्या अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य मातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य वृद्धप्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या मातामह्या अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्याः प्रमातामह्या अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या वृद्धप्रमातामह्याः अमुकीदेव्याश्च विश्वेषां देवानामाभ्युदयिकश्राद्धं कुशनिर्मितयोर्ब्राह्मणयोरहं करिष्ये" । यह वाक्य उद्धृत हुआ ।

हे पार्वति ! पितृपक्षमें और मातामहपक्षमें "विश्वेषां देवानां" पद छोड़कर अनुज्ञावाक्य कल्पित होगा (१)॥ ३०॥

ततो जपेद्ब्रह्मविद्यां गायत्रीं दशधा शिवे ! ॥ ३१॥

हे शिवे ! फिर दशावर ब्रह्मविद्या गायत्रीका जपकरे ३१॥

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
नमोऽस्तु पुष्ट्यै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति॥ ३२॥

देवताओंको, पितृगणोंको, महायोगियोंको, पुष्टिको और स्वाहाको नमस्कार है, इस प्रकार अभ्युदयके कार्य नित्य हों ॥ ३२ ॥

पठित्वैनं त्रिधा हस्ते जलमादाय सत्तमः ।
वं हूं फडिति मन्त्रेण श्राद्धद्रव्याणि शोधयेत् ३३॥

इस मन्त्रको पढ़ साधुपुरुष हाथमें जल लेकर "वं हूं फट्" मन्त्र पढ़कर श्राद्धके सब द्रव्योंको तीन वार प्रोक्षित करके शुद्ध करे ॥ ३३ ॥

---

(१) ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षे अमुकतिथावमुककर्माभ्युदयार्थममुकगोत्राणां नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकमुकदेवशर्मणाम्, अमुकगोत्राणां नान्दीमुखीनां मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुक्यमुक्यमुकीदेवीनाम्, अमुकगोत्राणां नान्दीमुखानां मातामह—प्रमातामह—वृद्धप्रमातामहानां अमुकामुकामुकदेवशर्मणाम्, अमुकगोत्राणां नान्दीमुखीनां मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामहीनाम् अमुक्यमुक्यमुकीदेवीनां, चाप्याभ्युदायिकं श्राद्धं कुशनिर्मितयोर्विप्रयोरहं करिष्ये ।

आग्नेय्यां पात्रमेकन्तु संस्थाप्य कुलनायिके ।
रक्षोघ्नममृतं प्रोच्य यज्ञरक्षां कुरुष्व मे ।
इत्युक्त्वा भाजने तस्मिंस्तुलसीदलसंयुतम् ॥ ३४ ॥

हे कुलनायिके ! फिर अग्निकोणमें एक पात्र स्थापन करके " रक्षोघ्नममृतमसि, मम यज्ञरक्षां कुरुष्व" इस मंत्रको पढ़कर उस पात्रमें तुलसीपत्रके सहित ॥ ३४ ॥

निधाय सलिलं देवि ! देवादिक्रमतः सुधीः ।
विप्रेभ्यो जलगण्डूषं दत्त्वा दद्यात्कुशासनम् ॥ ३५ ॥

जल रखकर ज्ञानवान् श्राद्धका करनेवाला देवपक्षसे आरंभ करके कुशमय ब्राह्मणोंको जलगंडूष देवे । फिर देवादिक्रमसे कुशासन दे (१) ॥ ३६ ॥

---

(१) "विश्वेदेवा इदमासनं वो नमः" यह वाक्य पढ़कर विश्वेदेवाओंको कुशासन दे । फिर- "अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन् , अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेवशर्मन् , इदमासनं वः स्वधा" यह मन्त्र पढ़कर पिता, पितामह और प्रपितामहको आसन दे । तदनन्तर- "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि, इदमासनं वः स्वधा " यह पढ़कर, माता, पितामहीको और प्रपितामहीको आसन दे । अनन्तर- "अमुकगोत्र नान्दीमुख मातामह अमुकदेवशर्मन् , अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन् , इदमासनं वः स्वधा" पढ़कर मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहको आसन दे । फिर- "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि, इदमासनं वः स्वधा" यह मंत्र पढकर मातामही, प्रमातामही और वृद्धप्रमातामहीको आसन दे ।

तत आवाहयेद्विद्वान्विश्वान्देवान्पितॄंस्तथा ।
मातुर्म्मातामहांश्चापि तथा मातामहीः शिवे ! ॥ ३६ ॥

हे शिवे ! इसके उपरांत विद्वान् पुरुषको उचित है कि, विश्वेदेवाओंको, पितृलोगोंको, मातृगणोंको, मातामहलोगोंको और मातामहीओंको आवाहन करे (१) ॥ ३६ ॥

---

(१) आवाहनके मंत्र यथा—"विश्वेदेवाः इहागच्छत इह तिष्ठत इह सन्निधत्त मम पूजां गृह्णीत" इस वाक्यसे विश्वेदेवाओंके कुशासनपर आवाहन करे । "अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पजां गृहाण" इस वाक्यसे पिताका कुशासनपर आवाहन करे । तदनन्तरे-"असुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" यह वाक्य पढ़कर पितामहका आवाहन करे । तदुपरांत-"असुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह असुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" इस वाक्यसे प्रपितामहका कुशासनपर आवाहन करे । पश्चात्-"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजांगृहाण"यह वाक्य पढ़कर माताका आवाहन करे। फिर-"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" इस वाक्यसे पितामहीका कुशासनपर आवाहन करे । फिर-"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पजां गृहाण" इसे पढ़कर प्रपितामहीका आवाहन करे । अनन्तर-"अमुकगोत्र नान्दीमुख मातामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" यह मंत्र पढ़कर मातामहका कुशासनपर आवाहन करे । फिर-"अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह असुकदेवशर्मन् , इहागच्छ, इह तिष्ठ, इह सन्निधेहि, मम पूजां गृहाण" यह वाक्य पढ़कर प्रमातामहका कुशासनपर आवाहन करे।

आवाह्य पूजयेदादौ विश्वान्देवांस्ततो यजेत् ।
पितृत्रयं तथा मातृत्रयं मातामहत्रयम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार विश्वेदेव, मातृपक्ष और पितृपक्षका आवाहन करके पहले विश्वेदेवताओंकी पूजा करे, फिर बाप, दादा, परदादा इन तीन पितरोंकी, माता, दादी, परदादी इन तीन माताओंकी, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह इन तीन मातामहोंकी ॥ ३७ ॥

मातामहीत्रयं चापि पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ।
धूपैर्दीपैश्च वासोभिः पूजयित्वा वरानने ! ।
पात्राणां पातनप्रश्नं कुर्य्याद्दैवक्रमाच्छिवे ॥ ३८ ॥

और मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही इन तीन मातामहीगणोंकी—पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप

—तदुपरान्त-"अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" यह वाक्य पढ़कर वृद्धप्रमातामहका कुशासनपर आवाहन करे । अनन्तर-"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" इस वाक्यसे मातामहीका कुशासनपर आवाहन करे । फिर-"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" यह वाक्य पढ़कर प्रमातामहीका कुशासनपर आवाहन करे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" इस वाक्यसे वृद्धप्रमातामहीका आवाहन करे ।

वस्त्रादिसे पूजा करे (१) हे वरानने ! फिर देवपक्षसे आरंभ करके पात्रपातन प्रश्न करे (२) हे शिवे ! ॥ ३८ ॥

मण्डलं रचयेदेकं मायया चतुरस्रकम् ।
द्वे द्वे च मण्डले कुर्य्यात्तद्वत्पक्षद्वयोरपि ॥ ३९ ॥

फिर मायाबीज उच्चारण करके देवपक्षमें एक चौकोन मण्डल रचे फिर मातामहपक्षमें और पितृपक्षमें ऐसे ही 'ह्रीं' उच्चारण करके दो दो मंडल बनावे ॥ ३९ ॥

वारुणप्रोक्षितेष्वेषु पात्राण्यासाद्य साधकः ।
तेन क्षालितपात्रेषु सर्वोपकरणैः सह ।
पानार्थपाथसान्नानि क्रमेण परिवेषयेत् ॥४० ॥

---

(१) कल्पितवाक्यं यथा:-"विश्वेदेवाः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वो नमः" यह वाक्य पढकर प्रथम विश्वेदेवाओंकी पूजा करे । फिर-"ओम् अद्य अमुकगोत्रा नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा"इस वाक्यसे ऊपर कहे तीन जनोंकी पूजा करे । अनन्तर "अमुकगोत्राः नान्दीमुख्यः मातृपितामहीप्रपितामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यको पढ़कर तीनों माताओंकी पूजा करे । फिर-"अमुकगोत्रा नान्दीमुखा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यसे तीन नानाओंकी पूजा करे । अनन्तर "अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यसे तीनों मातामहियोंकी पूजा करे ।

(२) ब्राह्मणके प्रति प्रश्न करे कि "पात्राणि पातयिष्ये" ब्राह्मण उत्तर दे कि 'पातय' ॥

फिर साधकको उचित है कि "वं" इस वरुण बीजसे इस मंडलको प्रोक्षित करके उसमें क्रमानुसार सब पात्रोंको रखे। ऐसे ही "वं" बीजसे प्रक्षालितपात्रमें देवपक्षसे आरंभ करके सब उपकरणोंके सहित और पान करनेके अर्थ जलके साथ क्रमानुसार अन्न परसे ॥ ४० ॥

ततो मधुयवान्दत्त्वा ह्रां ह्रूं फडितिमन्त्रकैः।
संप्रोक्ष्यान्नानि सर्वाणि विश्वान्देवांस्तथा पितॄन्॥४१॥

फिर सब अन्नमें मधु और जौ डालकर "ह्रां ह्रूं फट्" मन्त्र पढ़कर समस्त अन्नको प्रोक्षित अर्थात् जलसे छिड़के फिर विश्वेदेवताओंका, पितरोंका, ॥ ४१ ॥

मातॄर्मातामहान्मातामहीरुल्लिख्य तत्त्ववित्।
निवेद्य देवीं गायत्रीं दत्वाभ्यस्त्रिधा पठेत् ॥४२॥
शेषान्नपिण्डयोः प्रश्नौ कुर्य्यादाद्ये! ततः परम्॥४३॥

माताओंका, मातामहोंका, मातामहीगणोंका नाम लेकर तत्त्व जाननेवाला पुरुष सब अन्नका क्रमानुसार निवेदन करे(१)

---

(१) "विश्वेदेवाः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणसहितमेतदन्नं वो नमः" इस मंत्रसे विश्वेदेवाओंको अन्न निवेदन करे। फिर-"अमुकगोत्राः नान्दीमुखाः पितृपितमहप्रमितामहाः अमुकामुकामुकदेवशर्माणः पानार्थोदकमधुयवसर्व्वोपकरणान्वितमेतदन्नं वः स्वधा" यह वाक्य पढ़कर पितृगणोंको अन्न निवेदन करे। फिर-"अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यः मातृपितामहीप्रपितामह्योऽमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमेतदन्नं वः स्वधा" इस वाक्यसे मातृगणोंको अन्न दे। फिर-"अमुकगोत्रा नान्दीमुखा माता-

फिर दशवार गायत्रीको पढकर तीन वार देवताभ्यः (१) मन्त्रका पाठ करे. हे आद्ये ! इसके पीछे शेषान्नप्रश्न और पिण्डप्रश्न (२) करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

दत्तशेषैरक्षताद्यैर्म्मालूरफलसन्निभान् ।
द्विजात्प्राप्तोत्तरः पिण्डान्रचयेद्द्वादश प्रिये ॥ ४४ ॥

हे प्रिये ! ब्राह्मणसे प्रश्नका उत्तर प्राप्त होकर बचे हुए अक्षतादिसे बिल्वफलके समान बारह पिंड बनावे ॥ ४४ ॥

अन्यं तु कल्पयेदेकं पिण्डं तत्सममम्बिके ! ।
आस्तरन्नैर्ऋते दर्भान्मण्डले यवसंयुतान् ॥ ४५ ॥

हे अम्बिके ! वैसा ही बेलफलके समान और एक पिंड बनावे फिर नैऋत्यकोणके मंडलपर यवसंयुक्त दर्भ (कुश) बिछावे ॥ ४५ ॥

महप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः अमुकामुकामुकदेवशर्माणः एतत् पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमन्नं वः स्वधा" इस मंत्रसे मातामहोंको अन्न निवेदन करे । फिर–"अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः एतत् पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमन्नं वः स्वधा" इस वाक्यको पढ नानियोंको जल देवे ।

(१) देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमोऽस्तु पुष्ट्यै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति ॥

(२) ब्राह्मणसे इस प्रकार शेषान्नप्रश्न करे कि "शेषान्नमस्ति क देयम्" ब्राह्मण उत्तर दे–"इष्टेभ्यो दीयताम्" फिर पिंडप्रश्न करे कि "पिण्डदानम् करिष्ये" ब्राह्मण उत्तर दे कि "ओं कुरुष्व"।

ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
अग्निदग्धाश्च ये केऽपि व्यालव्याघ्रहताश्च ये ॥ ४६ ॥

(उसके ऊपर यह पढ़कर पिंडदान करे, कि) हमारे वंशमें जो लोग स्त्रीपुत्रसे रहित हैं, जिनका पिंडलोप हो गया है अथवा जो अग्निसे भस्म हो गये हैं अथवा जो व्याघ्रादिकोंसे या और हिंसक जन्तुओंसे मार डाले गये हैं ॥ ४६ ॥

ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
मद्दत्तपिण्डतोयाभ्यां ते यान्तु तृप्तिमक्षयाम् ॥ ४७ ॥

जो हमारे बान्धव हैं या अबान्धव हैं, जो पहिले जन्ममें हमारे बान्धव थे, वे सब ही मुझ करके दिये हुए इस पिंड और जलसे अक्षय तृप्तिको प्राप्त करें ॥ ४७ ॥

दत्त्वा पिण्डमपिण्डेभ्यो मन्त्राभ्यां सुरवन्दिते ! ।
प्रक्षाल्य हस्तावाचान्तः सावित्रीं प्रजपंस्ततः ।
देवताभ्यस्त्रिधा जप्त्वा मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥ ४८ ॥

हे सुरवन्दिते ! इन दो मन्त्रोंसे अपिण्डियोंको पिंडदान करके हाथ धोवे और आचमनपूर्वक दश वार गायत्रीका जप करे फिर ' देवताभ्यः ' इस मन्त्रको तीन वार पढ़े फिर मंडल बनावे ॥ ४८ ॥

उच्छिष्टपात्रपुरतः पूर्वोक्तविधिना बुधः ।
द्वे द्वे च मण्डले देवि ! रचयेत्पितृतः क्रमात् ॥ ४९ ॥

हे देवि ! बुद्धिमान् श्राद्धकर्ताको उचित है कि, पितृपक्षसे आरंभ करके उच्छिष्टपात्रके सामने पहले कही हुई विधिके अनुसार दो दो मंडल बनावे ॥ ४९ ॥

पूर्वमन्त्रेण संप्रोक्ष्य कुशांस्तेष्वास्तरेत्कृती ।
अभ्युक्ष्य वायुना दर्भान्पितृदर्भक्रमाच्छिवे ।
ऊर्ध्वे मूले च मध्ये च त्रींस्त्रीन्पिण्डान्निवेदयेत् ५० ॥

हे शिवे ! बुद्धिमान् श्राद्धका करनेवाला पहलेके समान वरुणबीजसे इस मंडलको प्रोक्षित करके उसमें दर्भ बिछावे फिर " यं " बीजसे सब दर्भोंको अभ्युक्षित करके पितृदर्भसे आरम्भ करके दर्भके मूलमें और ऊपर पितादिको, मातादिको, मातामहादिको और मातामही इत्यादिको क्रमानुसार तीन २ पिण्ड दे ॥ ५० ॥

आमन्त्रणेन प्रत्येकं नामोच्चार्य्य महेश्वरि ! ।
स्वधया वितरेत्पिण्डं यवमाध्वीकसंयुतम् ॥ ५१ ॥

हे महेश्वरि ! आमन्त्रणयुक्त प्रत्येकका नाम उच्चारण करके स्वधा पढ़ प्रत्येकको जौ व मधुसे युक्त पिंडदान करे (१) ५१

(१) वाक्यं यथाः–"अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन् ! एष मधुयवसमन्वितः पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भमूलमें पिताके लिये पिंड दे फिर "अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन्!एष ते मधुयवसहितः पिण्डः स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भमें पितामहको पिण्ड दे।फिर–"अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेवशर्मन् ! एष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भके ऊपरी भागमें प्रपितामहको पिण्ड दे।–

पिण्डान्ते पिण्डशेषञ्च विकीर्य्य लेपभाजिनः ।
प्रीणयेत्करलेपेन नैकोद्दिष्टेष्वयं विधिः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार पिण्ड देकर पिण्डके चारों ओर पिण्डशेषको बखेर दे "लेपभुजः पितरः प्रीयन्ताम्" यह वाक्य पढ़के करलेप अर्थात् हाथमें लगे हुए अन्नसे लेपभोजी चतुर्थ पंचमादि पुरुषोंको प्रसन्न करे । एकोद्दिष्टश्राद्धमें यह विधि अर्थात् लेपभागी पितृगणोंके प्रसन्न करनेकी विधि नहीं है ५२

--फिर--"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि! मधुयवसमन्वित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भमूलमें माताके लिये पिंड दे । "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकीदेवि ! यवमधुसाहित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भमें पितामहीको पिण्ड दे । तदुपरान्त--"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढकर दर्भके अग्रभागमें प्रपितामहीको लिये पिण्ड दे । फिर--"अमुकगोत्र नान्दीमुख मातामह अमुकदेवशर्मन् ! मधुयवसहित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भके मूलमें मातामहको पिंड दे । फिर--"अमुकगोत्र प्रमातामह अमुकदेवशर्मन्! मधुयवसमन्वित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य उच्चारण करके दर्भके मध्यभागमें प्रमातामहको पिंड दे । फिर--"अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन् ! मधुयवसहित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़के दर्भके अग्रभागमें वृद्धप्रमातामहको पिण्ड दे । अनन्तर--"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भमूलमें मातामहीको पिण्ड दे । फिर--"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकीदेवि ! मधुयवसमन्वित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर प्रमातामहीको पिंड दे । फिर--अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि! मधुयवसहित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भके अग्रभागमें वृद्धप्रमातामहीको पिण्ड दे ।

देवतापितृतृप्त्यर्थं सावित्रीं दशधा जपेत् ।
देवताभ्यस्त्रिधा जप्त्वा पिण्डान्सम्पूजयेत्ततः ॥५३॥

फिर देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये दशवार गायत्री-का जप करे, "देवताभ्यः पितृभ्यश्च" यह मन्त्र तीन वार पढ़े। फिर (गन्धपुष्पसे) पिंडकी पूजा करे ॥ ५३ ॥

प्रज्वाल्य धूपं दीपं च निमील्य नयनद्वयम् ।
दिव्यदेहधरान्पितॄनश्नतः कव्यमध्वरे ।
विभाव्य प्रणमेद्धीमानिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ५४ ॥

तदुपरांत धूप दीपको जलाकर दोनों नेत्र बंद कर विचार करे कि, दिव्यदेह धारण करके पितृगण यज्ञस्थलमें कव्य अर्थात् अपना २ अन्न भोजन करते हैं फिर ज्ञानीपुरुष इस मन्त्रको पढ़कर पितरोंको प्रणाम करे कि ॥ ५४ ॥

पिता मे परमो धर्म्मः पिता मे परमं तपः ।
स्वर्गः पिता मे तत्तृप्तौ तृप्तमस्त्यखिलं जगत् ॥५५॥

पिता ही हमारा परमधर्म है, पिता ही हमारा परम तप है पिता ही हमारा स्वर्ग है, पितरोंके तृप्त होनेसे सारा संसार संतुष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥

ततो निर्म्माल्यमादाय प्रार्थयेदाशिषःपितॄन् ॥५६॥

फिर निर्माल्य ग्रहण करके पितरोंसे इस आशीर्वादकी प्रार्थना करे कि ॥ ५६ ॥

आशिषो मे प्रदीयन्तां पितरः करुणामयाः ।
वेदाः सन्ततयो नित्यं वर्द्धन्तां बान्धवा मम॥५७॥

करुणामय पितृगण हमको आशीर्वाद दें । हमारी वेद, सन्तान और बांधवगण नित्य वृद्धिको प्राप्त हों ॥ ५७ ॥

दातारो मे विवर्द्धन्तां बहून्यन्नानि सन्तु मे ।
याचितारः सदा सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥५८॥

जो हमको दान करते हैं वे वृद्धिको प्राप्त हों । हमारे पास बहुतसा अन्न हो, हमसे अनेक याचना करें, हम मानों किसी से याचना नहीं करें ॥ ५८ ॥

देवादितो द्विजान्पिण्डान्विसृजेत्तदनन्तरम् ।
तथैव दक्षिणां कुर्य्यात्पक्षेषु त्रिषु तत्त्ववित्॥५९॥

फिर देवपक्षसे आरम्भ करके ब्राह्मणोंको और सब पिंडोंको विसर्जन कर दे (१) फिर ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि देवपक्ष, पितृपक्ष मातामहपक्षको दक्षिणा दे (२) ॥५९॥

(१) "ब्रह्मन् ! क्षमस्व" यह वाक्य पढ़कर देवपक्षसे आरंभ करके सब ब्राह्मणोंको विसर्जन करे । फिर "पिण्ड गयां गच्छ" यह वाक्य पढ़कर ऐसे ही देवादि क्रमसे विसर्जन करे ।

(२) "ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थिते भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे जम्बुद्वीपान्तर्गतभारतवर्षैकदेशे अमुकग्रामे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकशाखाध्यायी श्रीअमुकदेवशर्मा कृतैतदाभ्युदयिकश्राद्धप्रतिष्ठार्थं काञ्चनमिदम् अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदीयामुकशाखाध्यायिने जम्बूद्वीपान्तर्गतभारतखण्डस्थामुकग्रामवासिने श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ।" यह वाक्य पढ़कर यथाशक्ति काञ्चनादि दक्षिणा दे ।

गायत्रीं दशधा जप्त्वा देवताभ्योऽपि पञ्चधा ।
दृष्ट्वा वह्निं रविं विप्रमिदं पृच्छेत्कृताञ्जलिः ॥६०॥

फिर दशवार गायत्रीका जप करके पांच वार " देवताभ्यः पितृभ्यश्च " यह मन्त्र पढ़े फिर अग्नि और सूर्यका दर्शन कर हाथ जोड़ ब्राह्मणसे पूछे कि ॥ ६० ॥

इदं श्राद्धं समुच्चार्य्य साङ्गं जातमुदीरयेत् ।
द्विजो वदेत्सम्यगेव साङ्गं जातं विधानतः ॥६१॥

" इदं श्राद्धं साङ्गं जातम् " अर्थात् क्या यह श्राद्ध सब अंशसे सम्पूर्ण हुआ है ? ब्राह्मण उत्तर दे-" विधानतः सम्यगेव साङ्गं जातम् " अर्थात् विधिविधानकरके सब भाँतिसे सब अंशसे पूर्ण हुआ है ॥ ६१ ॥

अङ्गवैगुण्यशान्त्यर्थं प्रणवं दशधा जपन् ।
अच्छिद्राभिविधानेन कुर्य्यात्सर्व्वसमापनम् ।
पात्रीयान्नानि पिण्डांश्च ब्राह्मणाय निवेदयेत्६२॥

फिर अंगकी विकारताकी शान्तिके लिये दशवार प्रणवका जप करे, अच्छिद्राभिधानसे " कृतैतच्छ्राद्धकर्माच्छिद्रमस्तु" कर्म समाप्त करे, अनन्तर पात्रका अन्न और पिंड ब्राह्मणको अर्पण करे ॥ ६२ ॥

विप्राभावे गवाजेभ्यः सलिले वा विनिःक्षिपेत् ।
वृद्धिश्राद्धमिदं प्रोक्तं नित्यसंस्कारकर्म्मणि ॥६३॥

यदि ब्राह्मण न पाया जाय तो समस्त द्रव्य गाय या छागको दे दे अथवा जलमें डाल दे। नित्य अर्थात् अवश्य कर्तव्य दशविध संस्कारके समय जो वृद्धिश्राद्ध होता है वह तुमसे कहा ॥ ६३ ॥

श्राद्धे पर्व्वणि कर्त्तव्ये पार्व्वणत्वेन कीर्त्तयेत् ॥ ६४ ॥

यदि आमावास्यादिपर्वों पर उक्त विधानसे श्राद्ध करना हो तो उसको पार्वणश्राद्ध कहते हैं ॥ ६४ ॥

देवतादिप्रतिष्ठासु तीर्थयात्राप्रवेशयोः ।
पार्व्वणेन विधानेन श्राद्धमेतदुदीरयेत् ॥ ६५ ॥

देवतादिकी प्रतिष्ठाके समय, तीर्थयात्राके समय गृहप्रवेशादिके समय, पार्वणश्राद्धकी विधिके अनुसार कार्य करे ॥ ६५ ॥

नैतेषु श्राद्धकृत्येषु पितॄन्नान्दीमुखान्वदेत् ।
नमोऽस्तु पुष्ट्यायित्यत्र स्वधायै पदमुच्चरेत् ॥ ६६ ॥

इन सब श्राद्धोंके समय " नान्दीमुखान् पितॄन् " पद न कहे और " नमोऽस्तु पुष्ट्यै " इस पदके आगे " स्वधायै " पद उच्चारण करे ॥ ६६ ॥

पित्रादित्रयमध्ये तु यो जीवति वरानने ! ।
तस्योर्द्धतनमुल्लिख्य श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ६७ ॥

हे वरानने ! पितादि तीन पुरुषोंके बीचमें जो जीवित हो, बुद्धिमान् उसके बदलेमें उसके ऊपरके पुरुषका नाम लेकर श्राद्ध करे ॥ ६७ ॥

जनकादिषु जीवत्सु त्रिषु श्राद्धं विवर्ज्जयेत् ।
तेषु प्रीतेषु देवेशि ! श्राद्धयज्ञफलं लभेत् ॥६८॥

जो बाप, दादा, परदादा ये तीनों पुरुष जीवित हों तो श्राद्ध नहीं करना चाहिये । हे देवेशि ! इन तीन पुरुषोंके प्रसन्न होनेसे श्राद्धका और यज्ञका फल मिल जाता है॥६८॥

जीवत्पितरि कल्याणि ! नान्यश्राद्धाधिकारिता ।
मातुः श्राद्धं विना पत्न्यास्तथा नान्दीमुखं विना६९

हे कल्याणि ! पिताके जीवित रहते हुए माताका श्राद्ध, भार्याका श्राद्ध वा नान्दीमुख श्राद्धके सिवाय और किसी श्राद्धके करनेका अधिकार नहीं है ॥ ६९ ॥

एकोद्दिष्टे तु कौलेशि ! विश्वेदेवान्न पूजयेत् ।
एकमेव समुद्दिश्यानुज्ञावाक्यं प्रकल्पयेत् ॥ ७० ॥

हे कुलेश्वरि ! एकोद्दिष्ट श्राद्ध करनेके समय विश्वेदेवाओंकी पूजा नहीं करनी चाहिये, वहांपर केवल एक पुरुषको उद्देश्य करके ही अनुज्ञावाक्य कल्पना करे ॥७०॥

दक्षिणाभिमुखो दद्यादन्नं पिण्डं च मानवः ।
यवस्थाने तिला देयाः सर्व्वमन्यच्च पूर्ववत् ॥७१॥

इस एकोद्दिष्टश्राद्धमें दक्षिणकी ओर मुख कर अन्नका और पिंडका दान करे, इसमें सबविधि पहलेकी नाईं है, परंतु जौकी जगह तिल देने चाहिये ॥ ७१ ॥

प्रेतश्राद्धे विशेषोऽयं गङ्गाद्यर्चां विवर्जयेत् ।
मृतं समुल्लिखेत्प्रेतं वाक्ये दानेऽन्नपिण्डयोः ॥७२॥

प्रेतश्राद्धमें विशेष बात यह है कि, इसमें गंगादिकी पूजा नहीं करनी चाहिये और वाक्यकल्पनाके समय और पिंड देनेके समय मृतक पुरुषोंको प्रेत कहो ॥ ७२ ॥

एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं तदुच्यते ।
प्रेतस्यान्ने च पिण्डे च मत्स्यमांसं नियोजयेत्॥७३॥

एक पुरुषके लिये श्राद्ध करनेका नाम " एकोद्दिष्ट " श्राद्ध है । प्रेतश्राद्धमें प्रेतके लिये अन्नमें और पिंडमें मत्स्य और मांस देवे ॥ ७३ ॥

आशौचान्ताद्द्वितीयेऽह्नि श्राद्धं यत्कुरुते नरः ।
प्रेतश्राद्धं विजानीहि तदेव कुलनायिके ॥ ७४ ॥

हे कुलनायिके ! अशौचके अन्तमें दूसरे दिन जो श्राद्ध मनुष्यगण करते हैं, वह प्रेतश्राद्ध कहलाता है ॥ ७४ ॥

गर्भस्रावाज्जातमृतादन्यत्र मृतजातयोः ।
कुलाचारानुसारेण मानवोऽशौचमाचरेत् ॥ ७५ ॥

जहांपर गर्भ गिर जाता है अथवा जन्म लेते ही मर जाता है, इसके सिवाय और अवसरोंपर, सन्तानके जन्म लेने या मरनेसे मनुष्योंको कुलाचारके अनुसार अशौच ग्रहण करना चाहिये ॥ ७५ ॥

द्विजातीनां दशाहेन द्वादशाहेन पक्षतः ।
शूद्रसामान्ययोर्देवि! मासेनाशौचकल्पना ॥ ७६ ॥

हे देवि ! ब्राह्मणोंका दश दिन, क्षत्रियोंका बारह दिन, वैश्योंका पन्द्रह दिन और शूद्र व साधारण जातियोंका अशौच एक मासतक रहता है ॥ ७६ ॥

असपिण्डमृतज्ञातौ त्रिरात्राशौचमिष्यते ।
शृण्वतोऽपि गताशौचे सपिण्डस्य मृतिं शिवे!॥७७॥

हे शिवे ! असपिंडजातिवालेकी मृत्यु होनेसे तीन राततक अशौच रहता है । किसी सपिंडके मर जानेपर यदि अशौच कालके पीछे सुना जाय तो भी तीन राततक अशौच रहता है ॥ ७७ ॥

अशुचिर्नाधिकारी स्याद्दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि ।
ऋते कुलार्च्चनादाद्ये ! तथा प्रारब्धकर्म्मणः ॥७८॥

हे आद्ये ! जिसको अशौच हुआ है वह पुरुष कुलपूजा और प्रारब्ध कर्मके सिवाय और किसी देव या पैतृककर्ममें अधिकारी नहीं हो सकता ॥ ७८ ॥

पञ्चवर्षाधिकान्मर्त्यान्दाहयेत्पितृकानने ।
भर्त्रा सह कुलेशानि! न दहेत्कुलकामिनीम्॥७९॥

हे कुलेश्वरि ! जो पांच वर्षका बालक मर जाय तो उसको श्मशानमें दग्ध करना चाहिये, कुलकामिनीको स्वामीके साथ दग्ध नहीं करे ॥ ७९ ॥

तव स्वरूपा रमणी जगत्याच्छन्नविग्रहा ।
मोहाद्भर्त्तुश्चितारोहाद्भवेन्नरकगामिनी ॥ ८० ॥

सब स्त्रियें तुम्हारा स्वरूप हैं, संसारमें उनका शरीर आच्छन्न है, जो स्त्री मोहके मारे स्वामीकी चितापर चढ़ती है, वह नरकको जाती है ॥ ८० ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकांस्तु तेषामाज्ञानुसारतः ।
प्रवाहयेद्वा निखनेद्दाहयेद्वापि कालिके ! ॥ ८१ ॥

हे कालिके ! जो लोग ब्रह्ममन्त्रके उपासक हैं, उनकी आज्ञानुसार, उनका मृतकशरीर जलमें बहा दे या मृत्तिकामें दाब दे या भस्म कर डाले ॥ ८१ ॥

पुण्यक्षेत्रे च तीर्थे वा देव्याः पार्श्वे विशेषतः ।
कुलीनानां समीपे वा मरणं शस्तमम्बिके! ॥ ८२ ॥

हे अम्बिके ! पुण्यक्षेत्रमें, तीर्थमें अथवा भगवतीके समीप वा कौलिकगणोंके समीप ही मरना अच्छा है ॥ ८२ ॥

विभावयन्सत्यमेकं विस्मरञ्जगतां त्रयम् ।
परित्यजति यः प्राणान्स स्वरूपे प्रतिष्ठति ॥ ८३ ॥

जो पुरुष मरणकालमें त्रिलोकीको बिसार केवल सत्यस्वरूपका ध्यान करते २ प्राण छोड़ता है वह परमात्मामें मिल जाता है ॥ ८३ ॥

प्रेतभूमौ शवं नीत्वा स्नापयित्वा घृतोक्षितम् ।
उत्तराभिमुखं कृत्वा शाययेत्तं चितोपरि ॥८४॥

पहले शवको उठाकर प्रेतभूमिमें ले जावे । फिर इस मृतक देहको घी लगाकर स्नान करा चिताके ऊपर उत्तरकी ओर मुख करके लिटा दे ॥ ८४ ॥

सम्बोधनान्तं तद्गोत्रं प्रेताख्यानं समुच्चरन् ।
दत्त्वा पिण्डं प्रेतमुखे दहेद्वह्निमनुस्मरन् ॥ ८५ ॥

फिर सम्बोधनके अन्तमें गोत्रके साथ प्रेतका नाम (१) लेकर प्रेतके मुखमें पिंड दे और "रं" वह्निबीजका स्मरण करते २ दाह करे ॥ ८५ ॥

पिण्डं तु रचयेत्तत्र सिद्धान्नैस्तण्डुलैश्च वा ।
यवगोधूमचूर्णैर्वा धात्रीफलसमं प्रिये ! ॥ ८६ ॥

हे प्रिये ! यहांपर पके हुए अन्नसे, चावलोंसे अथवा गेहूंके आटेसे आँवलेके समान पिंड बनावे ॥ ८६ ॥

स्थितेषु प्रेतपुत्रेषु ज्येष्ठे श्राद्धाधिकारिता ।
तदभावेऽन्यपुत्रादौ ज्येष्ठानुक्रमतो भवेत् ॥ ८७ ॥

प्रेतपुरुषके और पुत्रोंके रहनेपर भी बड़ा पुत्र ही श्राद्ध करनेका अधिकारी है । बड़ा पुत्र न हो (मर गया हो) वा किसी दूरदेशमें हो तो इन कारणोंमें ज्येष्ठके क्रमसे और पुत्र भी श्राद्धके अधिकारी हो सकते हैं ॥ ८७ ॥

(१) "ओं अद्य अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन् ! एष पिण्डस्ते स्वधा" यह पढ़कर प्रेतके मुखमें पिंड रक्खे ।

अशौचान्तान्तदिवसे कृतस्नानो नरः शुचिः ।
मृतप्रेतत्वमुक्त्यर्थमुत्सृजेत्तिलकाञ्चनम् ॥ ८८ ॥

अशौचके अन्तमें दूसरे दिन मनुष्यको स्नान करके पवित्र हो मृतकपुरुषका प्रेतपन छुड़ानेके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्ग करना चाहिये (१) ॥ ८८ ॥

गां भूमिं वसनं यानं पात्रं धातुविनिर्म्मितम् ।
भोज्यं बहुविधं दद्यात्प्रेतस्वर्गाय सत्सुतः ॥ ८९ ॥

मृतकपुरुषको स्वर्गप्राप्तिके लिये मृतकपुरुषके पुत्रोंको गाय, भूमि, वस्त्र, यान, धातुपात्र और बहुतसे भोज्य द्रव्य (भोजनकी सामग्री) उत्सर्ग करने उचित हैं (२) ॥ ८९ ॥

गन्धं माल्यं फलं तोयं शय्यां प्रियकरीं तथा ।
यद्यत्प्रेतप्रियद्रव्यं तत्स्वर्गाय समुत्सृजेत् ॥ ९० ॥

---

(१) 'ओं अद्य अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितुरमुकदेवशर्मणः प्रेतत्वविमुक्त्यर्थम् अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दातुमहं काञ्चनसहितान् तिलान् समुत्सृजे ।' यह वाक्य पढ़कर मृतकपुरुषका प्रेतपन छुड़ानेके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे ।

(२) "ओं अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितुरमुकदेवशर्मणः स्वर्गार्थम् अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय गां तुभ्यमहं सम्प्रददे ।" यह पढ़कर स्वर्गप्राप्तिके लिये गोदान करे । भूमि, वस्त्र, यानादि उत्सर्गके समय भी यह वाक्य पढ़े ।

गन्ध, माला, फल, जल, प्यारी सेज और जो जो वस्तुएँ प्रेतपुरुषको प्यारी रही हों वे सब प्रेतकी स्वर्गप्राप्तिके लिये दान कर दे ॥ ९० ॥

ततस्तु वृषभश्चैकं त्रिशूलाङ्केन लाञ्छितम्।
स्वर्णेनालंकृतं कृत्वा त्यजेत्तत्स्वर्गवासये ॥ ९१ ॥

अनन्तर स्वर्गप्राप्तिके लिये एक वृषभ त्रिशूलके चिह्नसे चिह्नित और सुवर्णालंकारसे भूषित कर छोड़दे ॥ ९१ ॥

प्रेतश्राद्धोक्तविधिना श्राद्धं कृत्वातिभक्तितः।
ब्रह्मज्ञान्ब्राह्मणान्कौलान्क्षुधितानपि भोजयेत् ९२॥

फिर अत्यन्त भक्तिके साथ प्रेतश्राद्धमें कही हुई विधिके अनुसार कुलवान् व दूसरे क्षुधित ब्राह्मणोंको भोजन करावे ९२

दानेष्वशक्तो मनुजः कुर्वञ्छ्राद्धं स्वशक्तितः।
बुभुक्षितान्भोजयित्वा प्रेतत्वं मोचयेत्पितुः ॥९३॥

जो पुरुष भूमि शय्यादिका दान करनेमें असमर्थ हो वह मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार श्राद्ध करके भूखे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पिताका प्रेतपन छुड़ावे ॥ ९३ ॥

आद्यैकोद्दिष्टमेतत्तु प्रेतत्वान्मुक्तिकारणम्।
वर्षे वर्षे मृततिथौ दद्यादन्नं गतासवे ॥ ९४ ॥

यह प्रेतश्राद्ध आद्य एकोद्दिष्ट और प्रेतपनकी मुक्तिका कारण है, इसके आगे प्रतिवर्ष मृतककी तिथिपर मृतक पुरुषके नामपर अन्न देना चाहिये ॥ ९४ ॥

बहुभिर्विधिभिः किंवा कर्मभिर्बहुभिश्च किम् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति मानवः कौलिकार्च्चनात् ॥९५॥

बहुतसे विधानसे क्या फल हो सकता है ? बहुतसे कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे क्या फल हो सकता है ? कुलवान् पुरुषकी अर्चना करनेसे ही मनुष्यको सब सिद्धियें मिल जाती हैं ॥ ९५ ॥

विना होमाज्जपाच्छ्राद्धात्संस्कारेषु च कर्मसु ।
सम्पूर्णकार्य्यसिद्धिः स्यादेकया कौलिकार्च्चया९६॥

होम, जप, श्राद्ध या कोई भी संस्कार न किया जाय तथापि केवल कुलवान् पुरुषकी अर्चना करनेसे सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ ९६ ॥

शुक्लां चतुर्थीमारभ्य शुभकर्म्माणि कारयेत् ।
असितां पञ्चमीं यावद्विधिरेष शिवोदितः ॥९७ ॥

शिवका कहा हुआ विधान है कि, शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिसे आरंभ करके कृष्णपक्षकी पंचमी तिथिके बीचमें ही इन सब शुभकर्मोंको कर ले ॥ ९७ ॥

अन्यत्रापि विरुद्धेऽह्नि गुर्वृत्विक्कौलिकाज्ञया ।
कर्म्माण्यपरिहार्य्याणि कर्म्मार्थी कर्त्तुमर्हति ॥९८॥

गुरु, ऋत्विक् और कुलवान् पुरुषकी आज्ञाके अनुसार मनुष्य अवैध दिनमें भी अपरिहार्य कर्मका अनुष्ठान कर सकता है ॥ ९८ ॥

गृहारम्भः प्रवेशश्च यात्रा रत्नादिधारणम् ।
सम्पूज्याद्यां पञ्चतत्त्वैः कुर्य्यादेतानि कौलिकः ९९॥

गृहारम्भ, गृहप्रवेश, यात्रा, शंख रत्नादिधारण इत्यादि कर्म कुलवान् पुरुषको पांचतत्त्वसे देवीकी पूजा करके करने चाहिये ॥ ९९ ॥

संक्षेपयात्रामथवा कुर्य्यात्साधकसत्तमः ।
ध्यायन्देवीं जपन्मन्त्रं नत्वा गच्छेद्यथामति १००॥

अथवा साधकको उचित है कि, देवी भगवतीका ध्यान करके मन्त्रजप और नमस्कार करके इच्छानुसार गमन करे इसका नाम संक्षेपयात्रा है ॥ १०० ॥

सर्वासु देवतार्चासु शारदीयोत्सवादिषु ।
तत्तत्कल्पोक्तविधिना ध्यानपूजां समाचरेत् १०१॥

सब देवताओंकी पूजाके स्थानमें शारदीय महोत्सवके स्थलमें उस उस कल्पमें कही हुई विधिके अनुसार ध्यान और पूजा करनी उचित है ॥ १०१ ॥

आद्यापूजोक्तविधिना बलिहोमं प्रयोजयेत् ।
कौलार्चनं दक्षिणाञ्च कृत्वा कर्म्म समापयेत् १०२॥

आदिकालिकाकी पूजामें जैसा विधान है उसके अनुसार बलिदान करे और फिर कुलवान् पुरुषको पूजा दक्षिणा देकर कर्मको समाप्त करे ॥ १०२ ॥

गङ्गां विष्णुं शिवं सूर्य्यं ब्रह्माणं परिपूज्य च ।
उद्देश्यमर्च्चयेद्देवं सामान्यो विधिरीरितः ॥ १०३ ॥

साधारण विधि यह है कि–गंगा, विष्णु, शिव, सूर्य और ब्रह्मा इन पांचों देवताओंकी पूजा करके उद्दिष्ट देवताकी पूजा करे ॥ १०३ ॥

कौलिकः परमो धर्म्मः कौलिकः परदेवता ।
कौलिकः परमं तीर्थं तस्मात्कौलं सदार्च्चयेत् १०४॥

कुलवान् पुरुष ही परमधर्म है, कुलवान् पुरुष ही परम देवता है, कुलवान् पुरुष ही परमतीर्थ है, इस कारणसे सदा सर्वभाँतिसे कुलवान् पुरुषकी पूजा करनी चाहिये ॥१०४॥

सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि ब्रह्माद्याः सर्व्वदेवताः ।
वसन्ति कौलिकदेहे किन्नस्यात्कौलिकार्च्चनात् १०५

साढ़े तीन करोड़ तीर्थ, ब्रह्मादि समस्त देवता, कुलवान् महापुरुषके शरीरमें विराजमान रहते हैं, अत एव कुलवान् पुरुषकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण फल मिलते हैं ॥ १०५ ॥

पूर्णाभिषिक्तः सत्कौलो यस्मिन्देशे विराजते ।
धन्यो मान्यः पुण्यतमः स देशः प्रार्थ्यते सुरैः १०६॥

पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त हुआ श्रेष्ठ कुलवान् जिस देशमें रहता है, वह देश ही धन्य, मान्य और पुण्यतम है । देवता लोग भी ऐसे देशकी प्रार्थना करते हैं ॥ १०६ ॥

कृतपूर्णाभिषेकस्य साधकस्य शिवात्मनः ।
पुण्यपापविहीनस्य प्रभावं वेत्ति को भुवि ॥ १०७॥

पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त हुआ साधक पापपुण्यरहित और साक्षात् शिवरूप है, पृथ्वीमें कौन पुरुष उस महात्माके प्रभावको जान सकता है ॥ १०७ ॥

केवलं नररूपेण तारयन्नखिलं जगत् ।
शिक्षयँल्लोकयात्राञ्च कौलो विहरति क्षितौ १०८॥

केवल मनुष्य रूपसे समस्त जगत्का उद्धार करनेके लिये और लोकयात्रा सिखानेके लिये कुलवान् पुरुष पृथ्वीपर विचरण किया करते हैं ॥ १०८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

पूर्णाभिषिक्तकौलस्य माहात्म्यं कथितं प्रभो ! ।
विधानमभिषेकस्य कृपया श्रावयस्व माम्॥ १०९॥

श्रीभगवतीजीने कहा–हे प्रभो ! पूर्णाभिषेकके द्वारा अभिषिक्त हुए कुलवान् पुरुषका माहात्म्य आपने कहा, अब कृपा करके इस अभिषेकका विधान कहिये, उसके श्रवण करनेकी मुझको इच्छा है ॥ १०९ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

विधानमेतत्परमं गुप्तमासीद्युगत्रये ।
गुप्तभावेन कुर्वन्तो नरा मोक्षं ययुः पुरा॥ ११०॥

सदाशिवने कहा सत्य, त्रेता और द्वापरयुगमें इस पूर्ण अभिषेकका विधान अत्यन्त गुप्त था। उस कालमें गुप्तभावसे इसका अनुष्ठान करके मनुष्योंने मुक्ति पायी है ॥११०॥

प्रबले कलिकाले तु प्रकाशे कुलवर्तिनः ।
नक्तं वा दिवसे कुर्य्यात्सप्रकाशाभिषेचनम् ॥ १११॥

आगे जब कलियुगका प्रभाव बढ़ेगा तब कुलाचारी मनुष्य रात अथवा दिनमें प्रकटभावमें अभिषेक करेंगे १११॥

नाभिषेकं विना कौलः केवलं मद्यसेवनात् ।
पूर्णाभिषेकात्कौलः स्याच्चक्राधीशःकुलार्चकः ११२

अभिषेकके विना केवल मद्यके सेवनसे ही कुलवान् नहीं होता, जिसका पूर्ण अभिषेक हुआ है, वही कुलार्चक, चक्राधीश्वर और कौल हो सकता है ॥ ११२ ॥

तत्राभिषेकपूर्व्वेऽह्नि सर्व्वविघ्नोपशान्तये ।
यथाशक्त्युपचारेण विघ्नेशं पूजयेद्गुरुः ॥११३॥

उसमें अभिषेकके पहले दिन सब विघ्नोंकी शान्तिके लिये यथाशक्ति उपचार करके गुरुको विघ्नराजकी पूजा करनी चाहिये ॥ ११३ ॥

गुरुश्चेन्नाधिकारी स्याच्छुभपूर्णाभिषेचने ।
तदाभिषिक्तकौलेन संस्कारं साधयेत्प्रिये! ॥ ११४॥

हे प्रिये ! यदि गुरु पूर्णाभिषेकमें अधिकारी न हो तो पूर्ण अभिषेकमें अभिषिक्त हुए कुलवान्से कहा हुआ संस्कार सिद्ध करावे ॥ ११४ ॥

खान्तार्णं बिन्दुसंयुक्तं बीजमस्य प्रकीर्तितम् ११५॥

"ख" वर्णके पिछले वर्णमें चंद्रबिन्दु मिलाने (गं) से गणपतिका बीज होगा ॥ ११५ ॥

गणकोऽस्य ऋषिश्छन्दो नीवृद्विघ्नस्तु देवता ।

कर्त्तव्यकर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगिता ११६॥

इस गणपतिमंत्रका ऋषि गणक, छन्द नीवृत्, देवता विघ्न है, कर्तव्यकर्मकी विघ्नशान्तिके लिये विनियोग कीर्तन करना चाहिये (१) ॥ ११६ ॥

षड्दीर्घयुक्तमूलेन षडङ्गानि समाचरेत् ।

प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेद्गणपतिं शिवे! ११७॥

छः दीर्घस्वर युक्त मन्त्रसे षडङ्गन्यास करे (२) हे शिवे ! फिर प्राणायाम करके (३) गणेशजीका ध्यान करे ११७॥

---

(१) ऋष्यादिन्यासो यथाः—अस्य गणपतिबीजमन्त्रस्य गणकऋषिः। नीवृच्छन्दो विघ्नो देवता, कर्त्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः। शिरसि गणकाय ऋषये नमः । मुखे नीवृच्छन्दसे नमः। हृदये विघ्नाय देवतायै नमः। कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः ।

(२) अङ्गुष्ठादिषडङ्गन्यासो यथाः—गामङ्गुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। गूं मध्यमाभ्यां वषट् । गैं अनामिकाभ्यां हुम् । गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। गः करतलपृष्ठाभ्यामस्त्राय फट्। हृदयादिषडङ्गन्यासो यथाः—गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुम्। गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। गः करतलपृष्ठाभ्यामस्त्राय फट्। (३) "गं" इस बीजमंत्रको पढ़कर प्रणाम करे ।

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
शङ्खंपाशांकशेष्टान्युरुकरविलसद्वारुणीपूर्णकुम्भम् ।
बालेन्दूद्दीप्तमौलिं करिपतिवदनं बीजपूराद्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ११८

जो सिन्दूरके समान लालवर्ण हैं,जो तीन नेत्रवाले हैं, जिनका उदर बड़ा है, जो चार भुजाओंमें शंख, पाश, अंकुश और वर धारण किये हैं, जो विशाल शुंडमें वारुणीसे पूर्ण कुम्भ (घड़ा)धारण कर रहे हैं,नवीन चंद्रमाकी कलासे जिनका मस्तक शोभायमान हो रहा है, जिनका वदन गज-राजके वदनके समान है, जिनके दोनों कपोल सदा मदके निकलनेसे भीगे रहते हैं, जिनका शरीर सर्पराजसे शोभायमान है, जो लाल वस्त्र और लाल अंगराग धारण किये हैं उन देवगणपतिका भजन करना चाहिये ॥ ११८ ॥

ध्यात्वैवं मानसैरिष्ट्वा पीठशक्तीः प्रपूजयेत् ।
तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी ११९

इस प्रकार ध्यान कर मनके उपचारसे पूजा करके (प्रणवका उच्चारण करके चतुर्थीविभक्त्यन्त नाम लेकर "नमः" पद अंतमें लगाकर गंधपुष्पादिसे पीठशक्तियोंकी पूजा करे । तीव्रा, ज्वालिनी,नंदा, भोगदा, कामरूपिणी ११९

उग्रा तेजस्विनी सत्या मध्ये विघ्नविनाशिनी ।
पूर्व्वादितोऽर्च्चयित्वैताः पूजयेत्कमलासनम् १२०॥

उग्रा, तेजस्विनी और सत्या इन आठ पीठशक्तियोंकी पूर्वादि क्रमसे पूजा करके मध्यदेशमें विघ्नविनाशिनीकी पूजा

करे (१) फिर प्रणव पढ़कर "नमः" (पदान्त नाम उच्चारण करके) कमलासनकी पूजा करे (२) ॥ १२० ॥

पुनर्ध्यात्वा गणेशानं पञ्चतत्त्वोपचारकैः ।
अभ्यर्च्य तच्चतुर्दिक्षु गणेशं गणनायकम् ॥१२१॥
गणनाथं गणक्रीडं यजेत्कौलिकसत्तमः ॥
एकदन्तं रक्ततुण्डं लम्बोदरगजाननौ ॥ १२२ ॥
महोदरञ्च विकटं धूम्राभं विघ्ननाशनम् ॥१२३॥

कौलिकश्रेष्ठको चाहिये कि फिर ध्यान करके मन्त्रसे शुद्ध हुए पंचतत्त्वरूप उपचारसे गणेशजीकी पूजा करे । फिर उनके चारों ओर गणेश, गणनायक, गणनाथ, गणक्रीड, एकदन्त, रक्ततुण्ड, लम्बोदर, गजानन, महोदर, विकट, धूम्राभ, विघ्ननाशन इनकी पूजा करे (३) ॥१२१॥१२२॥१२३॥

ततो ब्राह्मीमुखाः शक्तीर्दिक्पालांश्च प्रपूजयन् ।
तेषामस्त्राणि सम्पूज्य विघ्नराजं विसर्जयेत् ॥१२४॥

---

(१) पूर्वदिशामें एते गंधपुष्पे "ओं तीव्रायै नमः" अग्निकोणमें एते गन्धपुष्पे, "ओं ज्वालिन्यै नमः" । दक्षिणदिशामें "ओं नन्दायै नमः," । नैर्ऋतकोणमें "ओं भोगदायै नमः" । पश्चिमदिशामें "ओं कामरूपिण्यै नमः" । वायुकोणमें "ओं उग्रायै नमः" । उत्तरदिशामें "ओं तेजस्विन्यै नमः" । ईशानकोणमें "ओं सत्यायै नमः" । मध्यमें "ओं विघ्नविनाशिन्यै नमः" ।

(२) एते गन्धपुष्पे "ओं कमलासनाय नमः ।

(३) एते गन्धपुष्पे "ओं गणेशाय नमः" एते गन्धपुष्पे "ओं गणनायकाय नमः ।" इत्यादि ।

फिर ब्राह्मी इत्यादि अष्टशक्ति और इन्द्रादि दशदिक्पालोंकी पूजा करके दिक्पालोंके सब अस्त्रोंकी पूजा करे और विघ्नराज ! (क्षमस्व) इस वाक्यसे विघ्नराजका विसर्जन करे ॥ १२४ ॥

एवं सम्पूज्य विघ्नेशमधिवासनमाचरेत् ।
भोजयेच्च पञ्चतत्त्वैर्ब्रह्मज्ञान्कुलसाधकान् ॥ १२५ ॥

इस प्रकार विघ्नराजकी पूजा करके अधिवासन करे और पंचतत्त्वसे ब्रह्मज्ञानी कुलसाधकोंको भोजन करावे ॥ १२५ ॥

ततः परदिने स्नातः कृतनित्योदितक्रियः ।
आजन्मकृतपापानां क्षयार्थं तिलकाञ्चनम् ।
उत्सृजेत्कौलतृप्त्यर्थं भोज्यञ्चैकमपि प्रिये! १२६॥

फिर दूसरे दिन स्नान करनेके पीछे नित्यक्रियाको समाप्त करके जन्मसे लेकर किये हुए सब पापोंके क्षय होनेके अर्थ तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे (१) हे प्रिये ! उसके उपरान्त कुलवानोंकी तृप्तिके लिये एक भोज्य दे (२) ॥१२६॥

---

(१) "ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्ष अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकातिथौ अमुकवासरे जम्बूद्वीपान्तर्गतभारतवर्षैकदेशस्थितामुकग्रामवासी अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः० अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिने श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दातुं काञ्चनसहितान् तिलानहं समुत्सृजे । " यह वाक्य पढ़कर तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे ।

(२) "ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायी श्रीअमुकदेवशर्मा कौलादितृप्तिकामः अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिने श्रीमते अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय कौलाय दातुं भोज्यमहं समुत्सृजे" यह वाक्य पढ़कर भोज्य उत्सर्ग करे ।

अर्घ्यं दत्त्वा दिनेशाय ब्रह्मविष्णुशिवग्रहान् ।
अर्चयित्वा मातृगणान्वसुधारां प्रकल्पयेत्॥ १२७॥
कर्म्मणोऽभ्युदयार्थाय वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ।
ततो गत्वा गुरोः पार्श्वं प्रणम्य प्रार्थयेदिदम् १२८॥

फिर सूर्यको अर्घ्य देकर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नवग्रह, मातृगणोंकी पूजा करके वसुधारा दे । अनन्तर कर्मके उदय होनेकी कामनासे वृद्धिश्राद्ध करे । इसके उपरान्त गुरुके निकट जाय प्रणाम करके प्रार्थना करे कि ॥१२७॥१२८॥

त्राहि नाथ ! कुलाचार ! नलिनीकुलवल्लभ ! ।
त्वत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि कृपानिधे! १२९

हे नाथ ! आप कौलिकरूप पद्मवनके आधार हैं । हे कृपानिधे ! इस समय मेरे मस्तकपर अपने चरणकमलकी छाया कर दो ॥ १२९ ॥

आज्ञां देहि महाभाग ! शुभपूर्णाभिषेचने ।
निर्विघ्नं कर्म्मणः सिद्धिमुपैमि त्वत्प्रसादतः १३०॥

हे महाभाग ! मेरे शुभ पूर्णाभिषेकके लिये आप आज्ञा दें, आपके प्रसादसे मैं निर्विघ्न कार्यकी सिद्धि प्राप्त कर लूंगा ॥ १३० ॥

शिवशक्त्याज्ञया वत्स ! कुरु पूर्णाभिषेचनम् ।
मनोरथमयी सिद्धिर्जायतां शिवशासनात् १३१॥

हे वत्स ! शिवशक्तिके आज्ञानुसार पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त होवो । महादेवजीकी आज्ञाके अनुसार तुम्हारी मनःकामना सिद्ध हो ॥ १३१ ॥

इत्थमाज्ञां गुरोः प्राप्य सर्वोपद्रवशान्तये ।
आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यावाप्त्यै सङ्कल्पमाचरेत् ॥ १३२ ॥

गुरुजीसे यह आज्ञा पाकर शिष्य सब उपद्रवोंकी शान्तिके लिये और आयु, लक्ष्मी, बल व आरोग्यप्राप्तिके लिये संकल्प करे (१) ॥ १३२ ॥

ततस्तु कृतसंकल्पो वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
कारणैः शुद्धिसहितैरभ्यर्च्य वृणुयाद्गुरुम् ॥ १३३ ॥

इस प्रकार संकल्प कर वस्त्राभूषण वा शुद्धिके साथ कारणसे गुरुको पूजा करके वरण करे (२) ॥ १३३ ॥

---

(१) "ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी, कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामवासी, श्रीअमुकदेवशर्मा, निःशेषोपद्रवशान्तिकामः आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यकामश्च शुभपूर्णाभिषेचनमहं करिष्ये" यह वाक्य पढ़कर संकल्प करे ।

(२) "ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी, कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामवासी, श्रीअमुकदेवशर्मा, अमुकगोत्रम् अमुकप्रवरम् अमुकवेदिनम् अमुकशाखाध्यायिनं कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामनिवासिनं श्रीमन्तममुकानन्दनाथं गुरुत्वेन भवन्तं वस्त्रालंकारादिभिरहं वृणे" इस प्रकार संकल्प पढ़ गुरुको वरण करे ।

गुरुर्मनोहरे गेहे गैरिकादिविचित्रिते ।
चित्रध्वजपताकाभिः फलपल्लवशोभिते ॥ १३४ ॥

गैरिकादिकसे चित्र विचित्र बने मनोहर गृहमें गुरुको (बैठना चाहिये)। यह गृह मनको रमानेवाला, ध्वजा, पताका और फल पत्रादिसे शोभायमान हो ॥१३४॥

किङ्किणीजालमालाभिश्चन्द्रातपविभूषिते ।
घृतप्रदीपावलिभिस्तमोलेशविवर्ज्जिते ॥ १३५ ॥

किंकिणी अर्थात् क्षुद्रघंटिकाओंकी मालासे विभूषित, विचित्र चंदोवेसे यह गृह सजा रहे । घृतके इतने दीपक जला दिये जाँय कि, अन्धकारका नाम न रहे ॥ १३५ ॥

कर्पूरसहितैर्धूपैर्यक्षधूपैः सुवासिते ।
व्यजनैश्चामरैर्बर्हैर्दर्पणाद्यैरलङ्कृते ॥ १३६ ॥

कपूरके साथ धूपके द्वारा शालके गोंदसे बनी हुई धूपके द्वारा उस स्थानको सुगन्धित करे । हाथके खैंचनेके पंखेसे, तालवृन्त चामरसे, मोरके पंखोंसे और दर्पणादिसे उस गृहको सजावे ॥ १३६ ॥

सार्द्धहस्तमितां वेदीमुच्चकैश्चतुरङ्गुलाम् ।
रचयेन्मृन्मयीं तत्र चूर्णैरक्षतसम्भवैः ॥ १३७ ॥
पीतरक्तासितश्वेतश्यामलैः सुमनोहरम् ।
मण्डलं सर्वतोभद्रं विदध्याच्छ्रीगुरुस्ततः ॥१३८॥

चार अंगुल ऊंची और आधे हाथकी लम्बी चौड़ी वेदी इस गृहमें गुरुको बनानी चाहिये । फिर पीले, लाल, काले, श्वेत, श्यामल इन पांच रंगके चावलोंके आटेसे मनोहर सर्वतोभद्र मंडल बनावे ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

स्वस्य कल्पोक्तविधिना मानसार्चाद्यधिक्रियाम् ।
कृत्वा पूर्वोक्तमन्त्रेण पञ्चतत्त्वानि शोधयेत् १३९॥

फिर अपने २ कल्पमें कही हुई विधिके अनुसार मानसिक पूजासे लेकर समस्त कार्य समाप्त करके पहले कहे हुए मंत्रसे पंचतत्त्वको शुद्ध करे ॥ १३९ ॥

संशोध्य पञ्चतत्त्वानि पुरःकल्पितमण्डले ।
स्वार्णं वा राजतं ताम्रं मृन्मयं घटमेव वा॥१४०॥

पंचतत्त्वको शुद्ध करनेके उपरान्त पहले कहे हुए सर्वतोभद्र मण्डलके ऊपर सुवर्ण, चांदी, तांबा, अथवा मृत्तिकाका बना घड़ा लाकर ॥ १४० ॥

क्षालितश्चास्त्रबीजेन दध्यक्षतविवर्जितम् ।
स्थापयेद्ब्रह्मबीजेन सिन्दूरेणाङ्कयेच्छ्रिया ॥१४१॥

“ फट् ” मन्त्रसे उस घड़ेको प्रक्षालित कर उसमें दही चावलका लेप करे और प्रणवका उच्चारण करके उसको इस मण्डलमें स्थापन करे । फिर “ श्रीं ” बीज पढ़कर सिंदूरसे उसको अंकित करे ॥ १४१ ॥

क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुविभूषितैः।
मूलमन्त्रत्रिजापेन पूरयेत्कारणेन तम् ॥ १४२ ॥

चन्द्रबिन्दु "ँ" विभूषित (क्ष) से लेकर 'अ' तक ५० वर्णके साथ तीन वार मूलमन्त्रका जप करके कारणसे इस घड़ेको भरे ॥ १४२ ॥

अथवा तीर्थतोयेन शुद्धेन पाथसापि वा।
नवरत्नं सुवर्णं वा घटमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥ १४३ ॥

अथवा तीर्थजलसे या शुद्धजलसे घड़ेको भरकर फिर उस घड़ेमें सुवर्ण या नवरत्न डालने उचित हैं ॥ १४३ ॥

पनसोदुम्बराश्वत्थबकुलाम्रसमुद्भवम्।
पल्लवं तन्मुखे दद्याद्वाग्भवेन कृपानिधिः ॥ १४४ ॥

फिर कृपानिधान गुरुजी "ऐं" बीज उच्चारण करके कलशके मुखमें कटहल, गूलर, पीपल, मौलसिरी और आम इन पांच वृक्षोंके पत्त रखे ॥ १४४ ॥

शरावं मार्त्तिकं वापि फलाक्षतसमन्वितम्।
रमां मायां समुच्चार्य्य स्थापयेत्पल्लवोपरि ॥ १४५ ॥

फिर "ह्रींश्रीं" मन्त्र उच्चारण करके तन्दुल और फल-युक्त सुवर्ण, चांदी, तांबे या मिट्टीकी बनी सरैयां पत्तोंके ऊपर रखे ॥ १४५ ॥

बध्नीयाद्वस्त्रयुग्मेन ग्रीवां तस्य वरानने !।
शक्तौ रक्तं शिवे विष्णौ श्वेतवासःप्रकीर्त्तितम् १४६

हे वरानने ! दो वस्त्रोंसे इस बर्तनका गला बांधे, हे शिवे ! शक्तिमन्त्रमें लाल और शिव तथा विष्णुजीके मन्त्रमें श्वेत-वस्त्र ही अच्छा है ॥ १४६ ॥

स्थां स्थीं मायां रमां स्मृत्वा स्थिरीकृत्य घटान्तरे ।
निक्षिप्य पञ्चतत्त्वानि नवपात्राणि विन्यसेत् १४७॥

अनन्तर "स्थां स्थीं ह्रीं श्रीं स्थिरीभव " यह मन्त्र पढ़कर स्थिर किये हुए और घड़ेमें पंचतत्त्व रखकर नवपात्रको रखे ॥ १४७ ॥

राजतं शक्तिपात्रं स्याद्गुरुपात्रं हिरण्मयम् ।
श्रीपात्रन्तु महाशङ्खंताम्राण्यन्यानि कल्पयेत् १४८

शक्तिपात्र चांदीका बना हुआ, गुरुपात्र सुवर्णका बना हुआ, श्रीपात्र महाशंखका बना हुआ और सब पात्र तांबेके होने चाहिये ॥ १४८ ॥

पाषाणदारुलौहानां पात्राणि परिवर्ज्जयेत् ।
शक्त्या प्रकल्पयेत्पात्रं महादेव्याःप्रपूजने॥ १४९॥

महादेवीजीकी पूजाके अवसरमें पत्थरके, काठके और लोहेके पात्रोंको छोड़कर शक्तिके अनुसार और पदार्थसे पात्र बनावे ॥ १४९ ॥

पात्राणां स्थापनं कृत्वा गुरून्देवीं प्रतर्पयेत् ।
ततस्त्वमृतसम्पूर्णघटमभ्यर्च्चयेत्सुधीः ॥ १५० ॥

फिर पात्र स्थापन करके गुरुगणोंका और भगवतीका (और आनन्दभैरवादिकोंका) तर्पण करे । इसके उपरान्त ज्ञानीपुरुष अमृतसे भरे हुए घड़ेकी पूजा करे ॥ १५० ॥

दर्शयित्वा धूपदीपौ सर्व्वभूतबलिं हरेत् ।

पीठदेवान्पूजयित्वा षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ १५१ ॥

पीछे धूप दीप दिखाकर पहले कहा हुआ मन्त्र पढ़ सब-भूतोंको बलि दे । अनन्तर पीठदेवताओंकी पूजा करके षडङ्ग न्यास करे ॥ १५१ ॥

प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यात्वाऽवाह्य महेश्वरीम् ।

स्वशक्त्या पूजयेदिष्टां वित्तशाठ्यं विवर्ज्जयेत् १५२

इसके उपरान्त प्राणायाम करके महेश्वरीका ध्यान धरकर आवाहन करनेके पीछे अपनी शक्तिके अनुसार उस अभीष्ट-देवताकी पूजा करे, परन्तु किसी प्रकारसे वित्तशाठ्य (सामर्थ्य रुपयादान करनेकी है तो एक पैसा) न करे ॥ १५२ ॥

होमान्तकृत्यं निष्पाद्य कुमारीशक्तिसाधकान् ।

पुष्पचन्दनवासोभिरर्च्चयेत्सद्गुरुः शिवे! ॥ १५३ ॥

हे शिवे ! सद्गुरुको चाहिये कि होमसे लेकर सब कार्यों को पूरा कर फूल, चन्दन और वस्त्रोंसे कुमारियोंकी और शक्तिसाधकोंकी पूजा करे ॥ १५३ ॥

अनुगृह्णन्तु कौला मे शिष्यं प्रति कुलव्रताः ।

पूर्णाभिषेकसंस्कारे भवद्भिरनुमन्यताम् ॥ १५४ ॥

हे कौलगण ! आपलोग मेरे शिष्यपर अनुग्रह कीजिये। इस पूर्णाभिषेकसंस्कारमें अनुमति दीजिये ॥१९४॥

एवं पृच्छति चक्रेशे तं ब्रूयुर्गुरुमादरात् ।
महामायाप्रसादेन प्रभावात्परमात्मनः ।
शिष्यो भवतु पूर्णस्ते परतत्त्वपरायणः ॥१९५॥

इस प्रकार चक्रेश्वरके प्रश्न करनेपर सब कुलवान् आदर पूर्वक कहें कि, महामायाके प्रसादसे और परमात्माके प्रभावसे आपका शिष्य परमतत्त्वपरायण और पूर्ण हो ॥१९५॥

शिष्येण च गुरुर्देवीमर्चयित्वार्चिते घटे ।
कामं मायां रमां जप्त्वा चालयेद्विमलं घटम् १९६

फिर गुरुको उचित है कि, शिष्यसे देवी भगवतीजीकी पूजा कराय पूजित घड़ेके ऊपर " क्लीं ह्रीं श्रीं " मन्त्र जपवाकर उस निर्मल घड़को चलावे ॥ १९६ ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मकलश ! देवतात्मक ! सिद्धिद ! ।
त्वत्तोयपल्लवैः सिक्तः शिष्यो ब्रह्मरतोऽस्तु मे१९७

(और यह मन्त्र पढ़े कि) हे ब्रह्मकलश ! तुम सिद्धिदाता और देवतास्वरूप हो, तुम उठो । हमारा शिष्य तुम्हारे जल और पत्तोंसे सिक्त होकर ब्रह्ममें निरत हो ॥ १९७ ।

इत्थं सञ्चाल्य कलशमुत्तराभिमुखं गुरुः ।
मन्त्रैरेतैर्वक्ष्यमाणैरभिषिञ्चेत्कृपान्वितः ॥१९८॥

इस मंत्रसे कलशको चलाकर गुरु कृपायुक्त हृदयसे उत्तरकी ओर मुख करके बैठे हुए शिष्यको अभिषिक्त करे और यह मंत्र पढ़ता रहे ॥ १५८ ॥

शुभपूर्णाभिषेकस्य सदाशिवऋषिः स्मृतः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताद्या प्रणवं बीजमीरितम् ।
शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥१५९॥

शुभ पूर्णाभिषेकके ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता आद्या, बीज प्रणव (ॐ), शुभपूर्णाभिषेककार्यके अर्थ विनियोग कीर्तन करना चाहिये (१) ॥ १५९ ॥

गुरवस्त्वाभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः॥१६०॥

गुरुजन तुमको अभिषिक्त करें और ब्रह्मा, विष्णु, महेश तुमको अभिषिक्त करें। दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी ये मातायें तुमको अभिषिक्त करे ॥ १६० ॥

षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१६१॥

(१) मंत्रः-"एषां शुभपूर्णाभिषेकमन्त्राणां सदाशिव ऋषिरनुष्टुपछन्दः आद्याकाली देवता ओं बीजं शुभपूर्णाभिषेकार्थे निनियोगः । शिरसि-सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे-अनुष्टुपछन्दसे नमः । हृदये-आद्यायै कालिकायै देवतायै नमः । गुह्ये-ओं बीजाय नमः, शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः ।" इस प्रकार ऋषिन्यास करे ।

षोडशी, तारिणी, नित्या, स्वाहा, महिषमर्द्दिनी ये मंत्र पढ़े हुए जलसे तुमको अभिषिक्त करें ॥ १६१ ॥

जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु बगला वरदा शिवा ॥ १६२॥

जयदुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी, सरस्वती, बगला, वरदा, शिवा ये तुमको अभिषिक्त करें ॥ १६२ ॥

नारसिंही च वाराही वैष्णवी वनमालिनी ।
इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वाभिषिञ्चन्तु शक्तयः १६३॥

नारसिंही, वैष्णवी, वाराही, वनमालिनी, इन्द्राणी, वारुणी, रौद्री ये सब शक्तियें तुमको अभिषिक्त करें १६३॥

भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा ।
श्रद्धा कान्तिर्द्दयाशान्तिराभिषिञ्चन्तु ते सदा १६४॥

भैरवी, भद्रकाली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, दया, शान्ति, ये सदा तुमको अभिषिक्त करें ॥ १६४ ॥

महाकाली महालक्ष्मीर्म्महानीला सरस्वती ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा त्वामाभिषिञ्चन्तु सर्व्वदा ॥ १६५॥

महाकाली, महालक्ष्मी, महानीला, सरस्वती, उग्रचंडा, प्रचंडा, ये देवियां सदा तुमको अभिषिक्त करें ॥ १६५ ॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।
रामो भार्गवरामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ॥ १६६॥

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम, ये जलसे सदा तुम्हारा अभिषेक करे ॥ १६६ ॥

आसिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयंकरः ।
कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा॥ १६७॥

आसिताङ्ग, रुरु, चंड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण ये जलसे तुमको अभिषिक्त करें ॥ १६७ ॥

काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता महोग्रा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्व्वदा॥ १६८॥

काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, महोग्रा ये सदा तुमको अभिषिक्त करें ॥ १६८ ॥

इन्द्रोऽग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा ।
धनदश्च महेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः १६९॥

इन्द्र, अग्नि, पितृपति, नैर्ऋत, वरुण, मरुत, कुबेर, ईशान और आठ दिक्पाल तुमको अभिषिक्त करें ॥ १६९ ॥

रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।
राहुः केतुः सनक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः १७०॥

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु ये सब ग्रह और नक्षत्रगण तुमको अभिषिक्त करें १७०

नक्षत्रं करणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च ।
ऋतुर्म्मासो हायनस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्व्वदा १७१॥

अश्विनीआदि नक्षत्र, बवआदि करण, विष्कंभादि योग, रवि इत्यादि वार, शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, दिन (तिथि), वसन्तादि छः ऋतु, वैष्णव आदि बारह महीने और उत्तरायण व दक्षिणायन सूर्य, वर्ष ये सब सदा तुमको अभिषिक्त करें १७१॥

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ।
समुद्रास्त्वाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१७२॥

लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, दुग्धसमुद्र ये सब समुद्र अभिमन्त्रित जलसे तुमको अभिषिक्त करें ॥ १७२ ॥

गङ्गा सूर्य्यसुता रेवा चन्द्रभागा सरस्वती ।
सरयूर्गण्डकी कुन्ती श्वेतगङ्गा च कौशिकी ।
एतास्त्वामाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१७३॥

गंगा, यमुना, रेवा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, गंडकी, कुन्ती, श्वेतगंगा, कौशिकी ये नदियें अभिमन्त्रित जलसे तुमको अभिषिक्त करें ॥ १७३ ॥

अनन्ताद्या महानागाः सुपर्णाद्याः पतत्रिणः ।
तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वां महीधराः १७४॥

अनन्त, वासुकि, पद्म आदि महानाग, गरुडादि पक्षी, कल्पवृक्षादि वृक्ष और पर्वत तुमको अभिषिक्त करें ॥१७४॥

पातालभूतलव्योमचारिणः क्षेमकारिणः ।
पूर्णाभिषेकसन्तुष्टास्त्वाभिषिञ्चन्तु पाथसा॥१७५॥

पातालचारी भूतलचारी और व्योमचारी जीवगण तुम्हारा मंगल करें और वह पूर्णाभिषेक देखकर संतुष्ट हो जलसे तुम्हारा अभिषेक करें ॥ १७५ ॥

दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगा दौर्म्मनस्यं तथा शुचः ।
विनश्यन्त्वभिषेकेण परमब्रह्मतेजसा ॥ १७६ ॥

पूर्णाभिषेक होनेसे और परब्रह्मके तेजसे तुम्हारा दुर्भाग्य, अपयश, रोग, दुर्मनता व शोकादि सब विध्वंस हो जायें १७६

अलक्ष्मीः कालकर्णी च डाकिन्यो योगिनीगणाः।
विनश्यन्त्वभिषेकेण कालीबीजेन ताडिताः १७७॥

अलक्ष्मी, कालकर्णी, डाकिनी, योगिनी ये अभिषेकसे और कालीजीके बीज मन्त्रसे ताडित होकर नाशको प्राप्त हो जायें ॥ १७७ ॥

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ग्रहा येऽरिष्टकारकाः ।
विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमाबीजेन ताडिताः॥ १७८॥

भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह और सब अनिष्ट करनेवाले रमाके बीजसे फटकारें खाकर भाग जायँ और नष्ट हों ॥१७८॥

अभिचारकृता दोषा वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये ।
मनोवाक्कायजा दोषा विनश्यन्त्वभिषेचनात् १७९

अभिचारसे उत्पन्न हुआ दोष, वैरिमंत्रसे उत्पन्न हुआ दोष, मानसिक दोष, वाचनिक दोष, कायिक दोष ये सब दोष अभिषेकसे नष्ट हो जायँ ॥ १७९ ॥

नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।
अभिषेकेन पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥१८०॥

तुम्हारी सब विपत्तियें दूर हों, तुम्हारी समस्त सम्पत्ति स्थिर हो, इस पूर्ण अभिषेकसे तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण हो ॥ १८० ॥

इत्येकाधिकविंशत्या मन्त्रैः संसिक्तसाधकम् ।
पशोर्मुखाल्लब्धमन्त्रं पुनः संश्रावयेद्गुरुः॥ १८१ ॥

इन इक्कीस मंत्रोंसे साधकको अभिषिक्त होना चाहिये. यदि शिष्य पशुके निकट दीक्षित हुआ हो, तब गुरुको उचित है कि, पुनर्वार शिष्यको वह मंत्र श्रवण करावे ॥१८१ ॥

पूर्वोक्तनाम्ना सम्बोध्य ज्ञापयञ्छक्तिसाधकान् ।
दद्यादानन्दनाथान्तमाख्यानं कौलिको गुरुः १८२॥

फिर कौल गुरुको उचित है कि, शक्तिसाधक लोगोंको बताकर पहले नाम ले, शिष्यको पुकार आनन्दनाथान्त नाम रखे ॥ १८२ ॥

श्रुतमन्त्रो गुरोर्यन्त्रे सम्पूज्य निजदेवताम् ।
पञ्चतत्त्वोपचारेण गुरुमभ्यर्चयेत्ततः ॥ १८३ ॥

गुरुके मुखसे मंत्र सुनकर शिष्यको चाहिये कि, पंचतत्त्वके उपचारसे यंत्रमें अपने अभीष्टदेवताकी पूजा करके गुरुकी पूजा करे ॥ १८३ ॥

गोभूहिरण्यवासांसि यानालंकरणानि च ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा यजेत्कौलाञ्छिवात्मकान् १८४

फिर गुरुजीको गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, (सवारी), आभूषण ये सब वस्तुयें दक्षिणामें देकर साक्षात् शिवस्वरूप कौलिकोंकी पूजा करे ॥ १८४ ॥

कृतकौलार्च्चनो धीरः शान्तोऽतिविनयान्वितः ।
श्रीगुरोश्चरणौ स्पृष्ट्वा भक्त्या नत्वेदमर्थयेत् १८५॥

अनन्तर ज्ञानीपुरुष कौलोंकी पूजा कर शान्त और अतिविनीत हो भक्तिके साथ श्रीगुरुजीके चरण छू नमस्कार करके यह प्रार्थना करे कि ॥ १८५ ॥

श्रीनाथ ! जगतांनाथ ! मन्नाथ ! करुणानिध ! ।
परामृतप्रदानेन पूरयास्मन्मनोरथम् ॥ १८६ ॥

हे श्रीनाथ ! आप जगत्के नाथ हैं, मेरे नाथ और करुणानिधि हैं, आप परमामृत देकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें॥१८६॥

आज्ञां मे दीयतां कौलाः प्रत्यक्षशिवरूपिणः ।
सच्छिष्याय विनीताय ददामि परमामृतम् १८७॥

(कुलवानोंसे गुरुको कहना उचित है कि) कौलगण ! आप लोग प्रत्यक्ष शिवस्वरूप हैं, आप आज्ञा दें, मैं इस विनयी श्रेष्ठ शिष्यको परम अमृत दूं ॥ १८७ ॥

चक्रेश ! परमेशान ! कौलपङ्कजभास्कर ! ।
कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं देह्यमुष्म कुलामृतम् १८८॥

(कुलीनोंको कहना चाहिये) हे चक्रेश्वर ! आप साक्षात् परमेश्वर हैं, आप कौलरूप कमलवनके लिये सूर्यरूप हैं, आप इस श्रेष्ठ शिष्यको कृतार्थ करें, इसको कुलामृत दें॥१८८॥

आज्ञामादाय कौलानां परमामृतपूरितम् ।
सशुद्धिकं पानपात्रं शिष्यहस्ते समर्पयेत् ॥ १८९॥

कुलीनोंकी अनुमति लेकर गुरुको उचित है कि, शुद्धिके साथ परमामृतपूरित पानपात्र शिष्यके हाथमें समर्पण करे॥

हृद्याकृष्य गुरुर्देवीं स्रुवसंलग्नभस्मना ।
स्वस्य शिष्यस्य कौलानां कूर्चे च तिलकं न्यसेत्

फिर अपने हृदयमें देवी भगवतीका ध्यान करके गुरु स्रुवेमें लगी हुई भस्मसे अपने शिष्यके और कुलीनोंके माथेमें तिलक लगा देवे॥ १९० ॥

ततः प्रसादतत्त्वानि कौलेभ्यः परिवेषयन् ।
चक्रानुष्ठानविधिना विदध्यात्पानभोजनम्॥ १९१॥

अनन्तर प्रसादतत्त्व सब कुलीनोंको परोसकर चक्रानुष्ठानकी विधिके अनुसार पान और भोजन करे ॥ १९१ ॥

इति ते कथितं देवि ! शुभपूर्णाभिषेचनम् ।
ब्रह्मज्ञानैकजननं शिवत्वफलसाधनम् ॥ १९२ ॥

हे देवि ! मैंने तुमसे यह शुभ पूर्णाभिषेक कहा, इससे ब्रह्मज्ञान और शिवतत्त्व प्राप्त हो जाता है ॥ १९२ ॥

नवरात्रं सप्तरात्रं पञ्चरात्रं त्रिरात्रकम् ।
अथवाप्येकरात्रञ्च कुर्य्यात्पूर्णाभिषेचनम् ॥१९३॥

नवरात्रि, सप्तरात्रि, पंचरात्रि, त्रिरात्रि अथवा एकरात्रि पूर्णाभिषेक करे ॥ १९३ ॥

संस्कारेऽस्मिन्कुलेशानि ! पञ्च कल्पाः प्रकीर्तिताः ।
नवरात्रे विधातव्यं सर्वतोभद्रमण्डलम् ॥ १९४ ॥

हे कुलेश्वरि ! इस संस्कारमें पांच कल्प हैं, यदि नवरात्रितक अभिषेक हो तो सर्वतोभद्र मंडल बनाना चाहिये १९४

नवनाभं सप्तरात्रे पञ्चाब्जं पञ्चरात्रके ।
त्रिरात्रे चैकरात्रे च पद्ममष्टदलं प्रिये ! ॥१९५॥

हे प्रिये ! सप्तरात्रिके अभिषेकमें नवनाभमंडल, पंचरात्रिके अभिषेकमें पञ्चाब्जमंडल, त्रिरात्रि और एकरात्रिके अभिषेकमें अष्टदलपद्म बनावे ॥ १९५ ॥

मण्डले सर्वतोभद्रे नवनाभेऽपि साधकैः ।
स्थापनीया नव घटाः पञ्चाब्जे पञ्चसङ्ख्यकाः १९६

साधक लोगोंको चाहिये कि, सर्वतोभद्रमंडलमें और नवनाभमंडलमें नौ घड़े और पञ्चाब्ज मंडलमें पांच घड़े स्थापन करे ॥ १९६ ॥

नलिनेऽष्टदले देवि ! घटस्त्वेकः प्रकीर्तितः ।
अङ्गावरणदेवांश्च केशरादिषु पूजयेत् ॥ १९७ ॥

हे देवि ! अष्टदलपद्ममें केवल एक घट स्थापन करना चाहिये, इस पद्मके केशरादिमें अंगदेवता और आवरणदेवताओंकी पूजा करे ॥ १९७ ॥

पूर्णाभिषेकासिद्धानां कौलानां निर्म्मलात्मनाम् ।
दर्शनात्स्पर्शनाद्घ्राणाद्द्रव्यशुद्धिर्विधीयते ॥१९८॥

जो कुलीन पूर्णाभिषेकसे अभिषिक्त हुए हैं, जिनका हृदय निर्मल है, उनके दर्शन, स्पर्श या घ्राणसे द्रव्यशुद्धि हो जाती है ॥ १९८ ॥

शाक्तैर्वा वैष्णवैः शैवैः सौरैर्गाणपतैरपि ।
कौलधर्म्माश्रितः साधुःपूजनीयोऽतियत्नतः १९९॥

जो चाहे शाक्त हो, वैष्णव हो, शैव हो, सौर हो, वा गाणपत्य हो चाहे जिसके उपासक हों, वे अवश्य ही अतियत्नके साथ कुलधर्मका आश्रय रखनेवाले साधुकी पूजा करें ॥ १९९ ॥

शाक्ते शाक्तो गुरुः शस्तः शैवे शैवो गुरुर्म्मतः ।
वैष्णवे वैष्णवःसौरे सौरो गुरुरुदाहृतः ॥२००॥

गाणपे गाणपश्चैव कौलः सर्वत्र सद्गुरुः ।
अतः सर्वात्मना धीमान्कौलाद्दीक्षां समाचरेत् २०१

शाक्तोंके लिये शाक्त, शैवोंके लिये शैव, वैष्णवोंके लिये वैष्णव और सौरलोगोंके लिये सौर, गाणपत्योंके लिये गाण-

पत्य गुरु ही श्रेष्ठ है, परन्तु, कौलपुरुष सब प्रकारसे सबके लिये श्रेष्ठ गुरु हो सकता है अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सब प्रकारसे कुलवान्के निकट दीक्षित होना चाहिये ॥२०१॥

पञ्चतत्त्वेन यत्नेन भक्त्या कौलान्यजन्ति ये ।
उद्धृत्य पुरुषान्सर्वांस्ते यान्ति परमां गतिम्।२०२॥

जो लोग भक्तिपूर्वक यत्नके साथ पंचतत्त्वसे कुलीनोंकी पूजा करेंगे, वे अपने पूर्वपुरुषोंका उद्धार करके परम गति पावेंगे ॥ २०२ ॥

पशोर्वक्त्राल्लब्धमन्त्रः पशुरेव न संशयः ।
वीराल्लब्धमनुर्वीरः कौलाद्भवति ब्रह्मवित् ॥२०३॥

पशुसे मन्त्र ग्रहण करनेवाला पशु ही है इसमें कोई संदेह नहीं । जिसने वीरसे मन्त्र ग्रहण किया है वह वीर है, जिसने कौलसे मन्त्र ग्रहण किया है वह निःसन्देह ब्रह्मका जाननेवाला होता है ॥ २०३ ॥

शाक्ताभिषेकी वीरः स्यात्पञ्चतत्त्वानि शोधयेत् ।
स्वेष्टपूजाविधावेव न तु चक्रेश्वरो भवेत् ॥२०४॥

जिसको शाक्ताभिषेक हुआ है वह वीर है, वह अपने इष्टदेवताकी पूजा करनेके समय ही पंचतत्त्वको शुद्ध कर सकेगा परंतु वह चक्रेश्वर होनेका अधिकारी नहीं है ॥ २०४ ॥

वीरघाती वृथापायी वीराणां स्त्रीगमस्तथा ।
स्तेयी महापातकिनस्तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥२०५॥

जो वीरकी हत्या करता है, जो वृथा पान करता है, जो वीरकी स्त्रीसे मिलता है, जो चोरीसे आजीविका करता है, जो इन चार प्रकारके महापातकियोंका संग करता है, ये पांचो ही महापातकी हैं ॥ २०५ ॥

कुलवर्त्म कुलद्रव्यं कुलसाधकमेव च ।
ये निन्दन्ति दुरात्मानस्ते गच्छन्त्यधमाङ्गतिम् २०६

जो दुरात्मा कुलमार्ग, कुलद्रव्य और कुलसाधककी निन्दा करते हैं उनकी अधोगति होती है ॥ २०६ ॥

नृत्यन्ति रुद्रडाकिन्यो नृत्यन्ति रुद्रभैरवाः ।
मांसास्थिचर्वणानन्दाःसुराःकौलद्विषां नृणाम् २०७

रुद्रडाकिनियां और रुद्रभैरवगण, कौलविद्वेषी मनुष्योंका मांस व हड्डी, चाबनेके लिये आनन्दसे नाचते रहते हैं २०७

दयालवः सत्यशीलाः सदापरहितैषिणः ।
तान्गर्हयन्तो नरकान्निष्कृतिं यान्ति न क्वचित् २०८

जो लोग दयालु, सत्यनिष्ठ और सदा पराया हित करनेवाले हैं वे भी यदि कुलवानोंकी निन्दा करें तो किसी प्रकार नरकसें छुटकारा नहीं पा सकते ॥ २०८ ॥

उक्ताः प्रयोगा बहवः कर्माणि विविधानि च ।
ब्रह्मैकनिष्ठकौलस्य त्यागानुष्ठानयोः समम् २०९॥

बहुतसे प्रयोग कहे हैं, बहुतसे कर्मानुष्ठान और विधान कहे हैं, परन्तु ब्रह्मनिष्ठ कुलवान्के लिये कर्मत्याग और कर्मानुष्ठान ये दोनों समान हैं, केवल परब्रह्म जगन्मण्डलमें व्यापकर विराजमान है ॥ २०९ ॥

एकमेव परं ब्रह्म जगदावृत्य तिष्ठति ।
विश्वार्चया तदर्चा स्याद्यतः सर्वं तदन्वितम् २१०॥

अतएव किसीभी संसारी वस्तुकी पूजा करनेसे उस ब्रह्मकी ही पूजा होती है. कारण कि संसारकी कोई वस्तु ब्रह्मसे अलग नहीं है ॥ २१० ॥

फलासक्ताः कामपराः कर्म्मजालरताः प्रिये ! ।
पृथक्त्वेन यजन्तोऽपि तत्प्रयान्ति विशन्ति च २११

हे प्रिये ! जो कर्मकाण्डमें लगे हुए हैं, कामपरायण और फलमें आसक्त हैं वे पृथक्पनसे और देवताकी पूजा करके भी यथासमयमें ब्रह्मको प्राप्त होते ही और ब्रह्ममें लय हो जाते हैं ॥ २११ ॥

सर्व्वं ब्रह्मणि सर्वत्र ब्रह्मैव परिपश्यति ।
ज्ञेयः स एव सत्कौलो जीवन्मुक्तो न संशयः २१२॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे वृद्धिश्राद्धादिर्मृतक्रियापूर्णाभिषेककथनं नाम दशमोल्लासः ॥ १० ॥

जो सब वस्तुओंमें ब्रह्मका अधिष्ठान और ब्रह्ममें ही सब वस्तुओंका अधिष्ठान अवलोकन करते हैं, वे निःसन्देह श्रेष्ठ कौल और जीवनमुक्त हैं ॥ २१२ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादाबादनिवासि–कात्यायनगोत्रोत्पन्न पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां वृद्धिश्राद्धादिकथनं नाम दशमोल्लासः ॥ १० ॥

एकादशोल्लासः ११.

श्रुत्वा शाम्भवधर्मांश्च वर्णाश्रमविभेदतः ।
अपर्णा परया प्रीत्या पप्रच्छ शङ्करं प्रति ॥ १ ॥

वर्णाश्रमके भेदसे महादेवजीका चलाया धर्म सुन परम प्रसन्न हो भगवती अपर्णा महादेवजीसे पूंछती भई ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

वर्णाश्रमाचारधर्माः संस्कारा लोकसिद्धये ।
कथिताः कृपया मह्यं सर्वज्ञेन त्वया प्रभो ! ॥२॥

भगवतीने कहा हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं । आपने कृपा करके मुझसे लोकव्यवहरके निर्वाह करने योग्य वर्णाश्रमका आचार, धर्म और सब संस्कार कहे ॥ २ ॥

कलौ दुर्वृत्तयो लोकाः कामक्रोधान्धचेतसः ।
नास्तिकाः संशयात्मानः सदेन्द्रियसुखैषिणः ॥३॥

कलिकालके मनुष्य कामक्रोधादिसे अन्धे, खोटी वृत्तिवाले, नास्तिक, संशययुक्त और सदा इन्द्रियोंका सुख चाहनेवाले होंगे ॥ ३ ॥

भवन्निगदितं वर्त्म नानुष्ठास्यन्ति दुर्धियः ।
तेषां का गतिरीशान ! विशेषाद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

हे ईशान ! जो कुबुद्धिमान् मनुष्य आपके कहे हुए मार्गको अनुसरण नहीं करेंगे उनकी क्या गति होगी सो भली भाँतिसे कहिये ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

साधु पृष्टं त्वया देवि ! लोकानां हितकारिणि ! ।
त्वं जगज्जननी दुर्गा जन्मसंसारमोचनी ॥ ५ ॥

श्रीसदाशिवने कहाः-हे देवि ! तुमने उत्तम प्रश्न किया, तुम लोकहितकारिणी, जगज्जननी और संसारका बन्धन छुड़ानेवाली दुर्गा हो ॥ ५ ॥

त्वमाद्या जगतां धात्री पालयित्री परात्परा ।
त्वयैव धार्य्यते देवि ! विश्वमेतच्चराचरम् ॥ ६ ॥

हे देवि ! तुम जगद्धात्री, पालन करनेवाली, आद्या और परात्परा हो,इस चराचर विश्वको तुम्ही धारण करती हो॥६॥

त्वमेव पृथ्वी त्वं वारि त्वं वायुस्त्वं हुताशनः ।
त्वं वियत्त्वमहंकारस्त्वं महत्तत्त्वरूपिणी ॥ ७ ॥

तुम पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहंकारतत्त्व और महत्तत्त्व हो ॥ ७ ॥

त्वमेव जीवलोकेऽस्मिंस्त्वं विद्या परदेवता ।
इन्द्रियाणि मनोबुद्धिर्विश्वेषां त्वं गतिःस्थितिः॥८॥

इस लोकमें स्थित जो जीव हैं, वे भी तुम्हीं हो, तुम विद्या, परमदेवता, सब इन्द्रियां मन, बुद्धि, जगत्की गति और स्थाति भी तुम्हीं हो ॥ ८ ॥

त्वमेव वेदाः प्रणवः स्मृतयस्त्वं हि संहिताः ।
निगमागमतन्त्राणि सर्व्वशास्त्रमयी शिवा ॥ ९ ॥

तुम्हीं वेद, प्रणव (ओंकार), सब स्मृति हो, तुम्हीं सब संहिता हो, तुम निगम, आगम, तन्त्र और सर्व शास्त्रमयी भगवती भी तुम्हीं हो ॥ ९ ॥

महाकाली महालक्ष्मीर्म्महानीला सरस्वती ।
महोदरी महामाया महारौद्री महेश्वरी ॥ १० ॥

तुम महाकाली, महालक्ष्मी, महानीला, सरस्वती, महोदरी, महामाया, महारौद्री और महेश्वरी हो ॥ १० ॥

सर्व्वज्ञा त्वं ज्ञानमयी नास्त्यवेद्यं तवान्तिके ।
तथापि पृच्छसि प्राज्ञे ! प्रीतये कथयामि ते॥ ११॥

तुम सर्वज्ञानमयी हो, इस कारण ऐसी वार्ता कोई नहीं है जिसको तुम न जानती हो । हे प्राज्ञे ! जब कि, तुम सब कुछ जानकर भी पूछती हो, तब तुम्हारी प्रसन्नताके लिये कहता हूं ॥ ११ ॥

सत्यमुक्तं त्वया देवि ! मनुजानां विचेष्टितम् ।
जानन्तोऽपि हितं मत्ताः पापैराशुसुखप्रदैः ॥ १२॥

हे देवि ! मनुष्यगण कलियुगमें जैसा आचरण करेंगे वह तुमने यथार्थ ही कहा है । वे लोग हितकी बातको जानकर भी शीघ्र सुखका देनेवाला अवैध स्त्रीगमन सुरापानादि पापमें मत्त होकर ॥ १२ ॥

नाचरिष्यन्ति सद्धर्म्महिताहितबहिष्कृताः ।
तेषां निःश्रेयसार्थाय कर्त्तव्यं यत्तदुच्यते ॥ १३ ॥

हिताहितका विचार छोड़ श्रेष्ठमार्गमें नहीं चलेंगे, इनकी मुक्तिके जो कर्त्तव्य हैं सो कहता हूं ॥ १३ ॥

अनुष्ठानं निषिद्धस्य त्यागो विहितकर्म्मणः।
नृणां जनयतः पापं क्लेशशोकामयप्रदम् ॥१४॥

निषिद्ध कर्मका अनुष्ठान और वैधकर्मका अननुष्ठान इन दोनोंसे मनुष्यको पाप होता है। पापसे क्लेश, शोक और पीड़ा होती है ॥ १४ ॥

स्वानिष्टमात्रजननात्परानिष्टोपपादनात्।
तदेव पापं द्विविधं जानीहि कुलनायिके! ॥१५॥

हे कुलनायिके! यह पाप दो प्रकारका है, एक प्रकारके पापसे केवल अपना अनभल होता है, और एक पापसे दूसरेका बुरा होता है ॥ १५ ॥

परानिष्टकरात्पापान्मुच्यते राजशासनात्।
अन्यस्मान्मुच्यते मर्त्यः प्रायश्चित्तात्समाधिना १६॥

जिस पापसे पराया बुरा होता है राजदण्डके द्वारा वह पाप छूट जाता है, प्रायश्चित्त और चित्तनिरोधसे दूसरा पाप छूट सकता है ॥ १६ ॥

प्रायश्चित्त्याथवा दण्डैर्न पूता ये कृतांहसः।
नरकान्न निवर्त्तन्ते इहामुत्र विगर्हिताः ॥ १७ ॥

जो पापात्मा राजदंडसे या प्रायश्चित्तसे पवित्र नहीं होते वे इस लोक और परलोकमें निन्दनीय होकर नरकको जाते हैं१७॥

तत्रादौ कथयाम्याद्ये ! नृपशासननिर्णयम् ।
यल्लङ्घनान्महेशानि ! राजा यात्यधमां गतिम् १८॥

हे आद्ये ! पहले राजशासनका निर्णय कहता हूं । यदि राजा इसका लंघन करे अर्थात् दण्ड योग्य प्रजाको दण्ड नहीं दे तो वह नरकको जाता है ॥ १८ ॥

भृत्यान्पुत्रानुदासीनान्प्रियानपि तथाऽप्रियान् ।
शासने च तथा न्याये समदृष्ट्याऽवलोकयेत्॥ १९॥

विचारके समय, दंड देनेके समय, शासनके समय राजाको उचित है, कि नौकरोंको, पुत्रोंको, उदासीन जनोंको, प्रिय अप्रिय पुरुषोंको समान दृष्टिसे देखे ॥ १९ ॥

स्वयं चेत्कृतपापः स्यात्पीडयेद कृतांहसः ।
उपवासैश्च दानैस्तान्परितोष्य विशुद्ध्यति॥ २० ॥

राजा यदि स्वयं पाप करे तो उपवास करके शुद्ध हो सकता है, निरपराधी पुरुषोंको दण्ड देनेसे, राजा दानसे उन निरपराधी पुरुषोंको संतुष्ट करके पापसे छूट सकता है॥२०॥

वधार्हं मन्यमानः स्वं कृतपापो नराधिपः ।
त्यक्त्वा राज्यं वनं प्राप्य तपसाऽऽत्मानमुद्धरेत् २१॥

यदि राजाने ऐसा पाप किया हो कि जिससे वह स्वयं वध (दण्ड) योग्य हो तो वह राज्य त्याग वनमें जाकर तप करके अपना उद्धार करे ॥ २१ ॥

गुरुदण्डं नैव राजा विदध्याल्लघुपापिषु ।
न लघुं गुरुपापेषु विना हेतुं विपर्य्यये ॥ २२ ॥

विना किसी विशेष कारणके थोड़े पापमें बड़ा दण्ड, या बड़े पापमें लघु दंड राजाको न देना चाहिये । यदि विशेष कारण हो तो इस विषयके विपरीत कर सकता है ॥ २२ ॥

तस्मिन्यच्छासने शास्या अनेकोन्मार्गवर्त्तिनः ।
पापेभ्यो निर्भये शस्तो लघुपापे गुरुर्द्दमः ॥२३॥

जो पुरुष पापकर्म करनेमें निर्भय है अर्थात् जिस पुरुषने बारंवार पाप किया है और उस आदमीको दण्ड देनेसे यदि बहुतसे कुमार्गी उसको देख खोटे रस्तेको छोड़ श्रेष्ठ मार्ग पर आजायँगे तो ऐसी जगह छोटे पापमें बड़ा दण्ड देना श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

सकृत्कृतापराधेन सत्रपे बहुमानिनि ।
पापाद्भीरौ प्रशस्तः स्याद्गुरुपापे लघुर्द्दमः ॥ २४ ॥

जिस पुरुषने केवल एकवार अपराध किया है, जो पुरुष लाजयुक्त और मानी है और जो पुरुष पापाचरणसे डरता है ऐसे पुरुषका यदि बड़ा अपराध हो तो भी उसको लघुदण्ड देना चाहिये ॥ २४ ॥

स्वल्पापराधी कौलश्चेद्ब्राह्मणो लघुपापकृत् ।
बहुमान्योऽपि दण्डयः स्याद्वचोभिरवनीभृता २५॥

यदि बहुमानास्पद कुलवान् पुरुष वा वैसा ब्राह्मण भी अल्पअपराधमें अपराधी हो तो राजाको चाहिये कि, उसको वचनदण्ड दे ॥ २५ ॥

न्यायं दण्डं प्रसादं च विचार्य्य सचिवैः सह ।
यो न कुर्य्यान्महीपालः स महापातकी भवेत् ॥ २६ ॥

मन्त्रियोंके साथ विचार करके जो राजा न्यायानुसार दण्ड या पारितोषिक नहीं देता वह महापातकी है ॥ २६ ॥

न त्यजेत्पितरौ पुत्रो न त्यजेयुर्नृपं प्रजाः ।
न त्यजेत्स्वामिनं भार्य्या विना तानतिपापिनः ॥ २७ ॥

पुत्र-पिता माताको, प्रजा राजाको और विनययुक्त भार्या स्वामीको नहीं छोड़ सकती. परन्तु यदि पिता, माता, स्वामी या राजा यह अतिपातकी हों तो इनको छोड़ दिया जा सकता है ॥ २७ ॥

राज्यं धनं जीवनं च धार्मिकस्य महीपतेः ।
संरक्षेयुः प्रजा यत्नैरन्यथा यान्त्यधोगतिम् ॥ २८ ॥

धर्मात्मा राजाके राज्य, धन और जीवनकी रक्षा यत्नके साथ प्रजाको करनी चाहिये। इसके विपरीत करनेसे नरकगामी होना पड़ता है ॥ २८ ॥

मातरं भगिनीञ्चापि तथा दुहितरं शिवे ! ।
गन्तारो ज्ञानतो ये च महागुरुनिघातकाः ॥ २९ ॥

हे शिवे ! जो जान बूझकर मातृगमन, भागिनीगमन या कन्यागमन करते हैं, जो जान बूझकर महागुरुकी हत्या करते हैं ॥ २९ ॥

कुलधर्म्मं समाश्रित्य पुनस्त्यक्तकुलक्रियाः ।
विश्वासघातिनो लोका अतिपातकिनः स्मृताः ३० ॥

जो लोग कुलधर्म ग्रहण करके फिर कुलकी क्रिया-के अनुष्ठानको छोड़ देते हैं, जो लोगोंसे विश्वासघात करा करते हैं वे सब ही अति पातकी हैं ॥ ३० ॥

मातरं भगिनीं कन्यां गच्छतो निधनं दमः ।
तासामपि सकामानां तदेव विहितं शिवे! ॥ ३१ ॥

हे शिवे ! मातृगमन, भागिनीगमन वा कन्यागमन करने-वालेको और सकाम हुई उन स्त्रियोंको भी प्राणदण्ड देना चाहिये ॥ ३१ ॥

मातापितृष्वसुस्तल्पं स्नुषां श्वश्रूं गुरुस्त्रियम् ।
पितामहस्य वनितां तथा मातामहस्य च ॥ ३२ ॥

जो पुरुष मौसीके पास जाय, बुआके पास जाय, जो पुरुष पुत्रवधूके पास जाय, जो सासके पास जाय, जो गुरु-पत्नीके पास जाय, दादीके पास जाय, नानीके पास जाय ३२

पित्रोर्भ्रातुः सुतां जायां भ्रातुः पत्नीं सुतामपि ।
भागिनेयीं प्रभोः पत्नीं तनयाञ्च कुमारिकाम् ३३ ॥

जो पुरुष चाचाकी बेटी या मामाकी बेटीके पास जाय, जो पुरुष चाची या मामीके पास जाय । जो पुरुष भाभी या भतीजीसे भोग करे, जो पुरुष भानजीका संग करे, जो पुरुष स्वामीकी स्त्री या कन्यासे संग करे,जो पुरुष क्वारीसे रमण करे ॥ ३३ ॥

गच्छतां पापिनां लिङ्गच्छेदो दण्डो विधीयते ।
गृहान्निर्य्यापणं चैव पापादस्माद्विमुक्तये ॥ ३४॥

इन पापियोंके उपस्थके कटवानेका दण्ड विधिमें कहा है, यदि ये कामिनियें भी सकामा हों तो इनका बड़ा पाप छुटानेको नाक काटकर घरसे बाहर निकाल दे ॥ ३४ ॥

सपिण्डदारतनयाः स्त्रियं विश्वासिनामपि ।
सर्वस्वहरणं केशवपनं गच्छतो दमः ॥ ३५ ॥

जो पुरुष किसी सपिंडकी स्त्रीसे या कन्यासे मिलाहुआ हो, जो पुरुष किसी विश्वासी पुरुषकी स्त्रीसे गमन करे राजाको चाहिये कि, उसका सब मालमता छीन, शिर मुँडाकर छोड़ दे ॥ ३५ ॥

स्त्रीभिरेताभिरज्ञानाद्भवेत्पारिणयो यदि ।
ब्राह्मेण वापि शैवेन ज्ञात्वा तास्तत्क्षणं त्यजेत् ३६॥

यदि अजानतासे पहले कहे हुए सम्बंधियोंकी किसी नारीसे ब्राह्म या शैव विवाह हो जाय तो जभी यह बात ज्ञात हो तभी उस स्त्रीको छोड़ना चाहिय ॥ ३६ ॥

सवर्णदारान्यो गच्छेदनुलोमपरस्त्रियम्।
दमस्तस्य धनादानं मासैकं कणभोजनम् ॥३७॥

जो पुरुष अपनी जातिकी पराई स्त्रीमें गमन करे अथवा जो पुरुष अपने आपसे नीच जातिवाली पराई स्त्रीमें गमन करे। राजाको उचित है कि, उसपर यथासम्भव अर्थदण्ड (जुरमाना) करे और एक मासतक कणभोजन करावे ३७॥

राजन्यवैश्यशूद्राणां सामान्यानां वरानने।
ब्राह्मणीं गच्छतां ज्ञानाल्लिङ्गच्छेदो दमः स्मृतः ३८

हे वरानने! यदि कोई क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या साधारण जाति जान बूझकर ब्राह्मणीसे संग करे तो उसका दंड लिंगका कटवा देना है॥ ३८॥

ब्राह्मणीं विकृतां कृत्वा देशान्निर्यापयेन्नृपः।
वीरस्त्रीगामिनां तासामेवमेव दमो विधिः ॥३९॥

राजाको उचित है कि, इस नीचगामिनी ब्राह्मणीका नाक. कान या और कोई अंग काटकर वा मस्तक मुँडा कुरूप कर अपने राज्यसे बाहर निकाल दे। यदि पहले कहे पुरुष वीर-पत्नी गमन करे तो उनको और वीरपत्नियोंको भी ऐसा ही दण्ड देना उचित है॥ ३९॥

दुरात्मा यस्तु रमते प्रतिलोमपरस्त्रिया।
दण्डस्तस्य धनादानं त्रिमासं कणभोजनम् ॥४०॥

जो दुरात्मा प्रतिलोम स्त्रीका संग करे अर्थात् अधम जातिका पुरुष होकर उत्तम जातिकी स्त्रीमें रत हो, उसका सर्वस्वहरण करके तीन मासतक कणभोजन कराके रखे॥४०॥

सकामायाः स्त्रियाश्चापि दण्डस्तद्वद्विधीयते ।
बलात्काररता भार्या त्याज्या पाल्या भवेच्छिवे॥४१॥

यदि ये स्त्रियें सकामा हों तो उनको भी ऐसाही दण्ड दें. हे शिवे! यदि किसीकी भार्यापर दूसरा कोई बलात्कार करे तो उस भार्याको छोड़ तो दे,परन्तु उसका भरण पोषण करना चाहिये ॥ ४१ ॥

ब्राह्मी भार्य्याथवा शैवी कामतो वाप्यकामतः ।
सर्वथा हि परित्याज्या स्याच्चेत्परगता सकृत्॥४२॥

ब्राह्मी भार्या हो, या शैवी भार्या हो, इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक हो यदि एकवारभी परपुरुषके संसर्गसे दूषित हो जाय तो उसको छोड़देना योग्य है ॥ ४२ ॥

गच्छतां वारनारीषु गवादिपशुयोनिषु ।
शुद्धिर्भवति देवेशि ! त्रिरात्रं कणभोजनात्॥४३॥

हे देवेशि जो पुरुष वेश्यागमन करे, जो पुरुष गौ, छागी इत्यादि पशुयोनिमें गमन करे, वह त्रिरात्री कणभोजन करके पापसे छूट सकता है ॥ ४३ ॥

गच्छतां कामतः पुंसः स्त्रियाः पायुं दुरात्मनाम् ।
वध एव विधातव्यो भूभुजा शम्भुशासनात् ॥४४॥

महादेवजीका शासन है, कि यदि कोई पुरुष अथवा स्त्रीके गुह्यदेशमें गमन करे तो राजाको चाहिये कि, उसको वध दण्ड दे ॥ ४४ ॥

बलात्कारेण यो गच्छेदपि चाण्डालयोषितम् ।
वधस्तस्य विधातव्यो न क्षन्तव्यः कदापि सः॥४५॥

यदि कोई पुरुष बलात्कार करके चाण्डालकन्यासे भी संसर्ग करे तो उसको भी वध दंड दे । बलात्कारमें यह समझकर, कि चाण्डालकन्यासे संसर्ग किया है, क्षमा नहीं करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

परिणीतास्तु या नार्यो ब्राह्मैर्वा शैववर्त्मभिः ।
ता एव दारा विज्ञेया अन्याः सर्वाः परस्त्रियः ४६

जो कन्या ब्राह्मविवाहमे या शैवविवाहसे ब्याही गयी है वही भार्या है और सब परस्त्री हैं ॥ ४६ ॥

कामात्परस्त्रियं पश्यन्रहः सम्भाषयन्स्पृशन् ।
परिष्वज्योपवासेन विशुध्येद्द्विगुणक्रमात् ॥ ४७॥

जो पुरुष सकाम होकर परायी स्त्रीको देखे वह एक दिन उपवास करके शुद्ध हो जायगा, जो पुरुष सकाम होकर परायी स्त्रीके साथ अकेलेमें बात चीत करे वह दो दिन उपवास करे और जो पुरुष परायी स्त्रीको छुये वह चार दिन उपवास करे एवं जो पुरुष परायी स्त्रीको चिपटावे वह आठ दिनतक उपवास करे तब शुद्ध होगा ॥ ४७ ॥

कुर्वत्येवं सकामा या परपुंसा कुलाङ्गना ।
उक्तोपवासविधिना स्वात्मानं परिशोधयेत् ॥४८॥

जो कुलाङ्गना सकामा होकर परपुरुषका दर्शन करे परपुरुषसे बात चीत करे, परपुरुषको छुये, परपुरुषको आलिंगन करे वह स्त्री भी यथाक्रमसे एक दिन, दो दिन, चार दिन और आठ दिन उपवास करके शुद्ध हो सकती है॥४८॥

ब्रुवन्निन्द्यं वचः स्त्रीषु पश्यन्गुह्यं परास्त्रियाः ।
हसन्गुरुतरं मर्त्यः शुध्येद्विरुपवासतः ॥ ४९ ॥

जो पुरुष स्त्रियोंसे अश्लीलताके वचन कहे, जो पुरुष स्त्रियोंके गुप्तस्थानको देखे, जो पुरुष स्त्रियोंको देख ठठाकर हँसे वह दो दिन उपवास करके शुद्ध हो सकता है॥४९॥

दर्शयन्नग्नमात्मानं कुर्वन्नग्नं तथापरम् ।
त्रिरात्रमशनं त्यक्त्वा शुद्धो भवति मानवः ॥५०॥

जो पुरुष किसीके सामने नंगा हो अथवा जो पुरुष किसी औरको नंगा करे वह तीन दिनतक उपवास करके शुद्ध हो सकता है ॥ ५० ॥

पत्न्याः पराभिगमनं प्रमाणयति चेत्पतिः ।
नृपस्तदा तां तज्जारं शास्याच्छास्त्रानुसारतः॥५१॥

यदि कोई पुरुष ऐसा प्रमाण कर सके, कि उसकी स्त्रीने परपुरुषके साथ संसर्ग किया है तब राजाको उचित है कि

उस स्त्रीको और उसके यारको शास्त्रानुसार पहले कहे लिंग-च्छेदादि दंड दे ॥ ५१ ॥

प्रमाणे यद्यशक्तः स्याद्दयितोपपतेः पतिः।
त्यक्त्वा तां पोषयेद् ग्रासैस्तिष्ठेच्चेत्पतिशासने॥५२॥

यदि अपनी स्त्रीका उपपतिसे संसर्ग करना प्रमाणित न कर सके तो भी उस स्त्रीको त्याग कर सकता है, परन्तु यदि यह स्त्री पतिकी आज्ञामें रही तो पतिको चाहिये कि उसका भरण पोषण करे ॥ ५२ ॥

रममाणामुपपतौ पश्यन्पत्नीं पतिस्तदा।
निघ्नन्वनितया जारं वधार्हो नैव भूभृतः ॥ ५३ ॥

यदि स्वामी अपनी स्त्रीको उपपतिके साथ रति करता हुआ देख ले और यदि वह (स्वामी) उस समयमें उस व्यभिचारिणी स्त्रीको और उसके उपपतिको मार डाले तो राजा उसका वध-दंड (या और कोई दण्ड) न करे॥५३॥

भर्त्तुर्निवारणं यत्र गमने येन भाषणे।
प्रयाणाद्भाषणात्तत्र त्यागार्हा स्यात्कुलाङ्गना॥५४॥

स्वामी जहांपर जानेको निषेध करे या जिसके साथ बात चीत करनेको मना करे, यदि कुलकामिनी अपने स्वामीकी सम्मतिके विना उस स्थानमें जाय अथवा उस पुरुषसे बात करे तो स्वामीको चाहिये कि उसको छोड़ दे ॥ ५४ ॥

मृते पत्यौ स्वधर्म्मेण पतिबन्धुवशे स्थिता ।
अभावे पितृबन्धूनां तिष्ठन्ती दायमर्हति ॥ ५५ ॥

स्वामीकी मृत्यु होनेपर यदि विधवा भार्या पतिबंधुओं वशमें रहकर अपने धर्ममें रहे अथवा पतिबंधुके साथ न रह नेपर पितृकुलमें रहकर अपना धर्म पालन करे तो स्वामीकी स्थावर अस्थावर सब संपत्तियोंको पा सकती है ५

द्विर्भोजनं परान्नं च मैथुनामिषभूषणम् ।
पर्य्यङ्कं रक्तवासश्च विधवा परिवर्जयेत् ॥ ५६ ॥

दो वार भोजन, परान्नभोजन, मैथुन, मांसभोजन, भूषण पहरना, पलँगपर लेटना, लाल वस्त्र पहरना, विधवाको इन वस्तुओंका व्यवहार छोड़ देना चाहिये ॥ ५६ ॥

नाङ्गमुद्वर्त्तयेद्वासैर्ग्राम्यालापमपि त्यजेत् ।
देवव्रतान्नयेत्कालं वैधव्यं धर्म्ममाश्रिता ॥ ५७ ॥

विधवा स्त्रीको सुगन्धित तेल नहीं लगाना चाहिये, अथवा सुगन्धितद्रव्यसे शरीरको नहीं मलना चाहिये, ग्राम्य आलापको छोड़ देना उचित है, क्योंकि विधवाका यही कर्तव्य है कि अपने वैधव्यधर्मका अवलंबन कर सदा देवपूजामें निरत रहे और व्रतपरायण होकर समय बितावे ॥ ५७ ॥

न विद्यते पिता यस्य शिशोर्माता पितामहः ।
नियतं पालने तस्य मातृबन्धुः प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

जिस बालकके माता पिता नहीं और दादा भी नहीं हो तो माताके कुलमें मातृबंधुद्वारा ही उसका पालन श्रेष्ठ है५८

मातुर्माता पिता भ्राता मातुर्भ्रातुः सुतास्तथा ।
मातुः पितुः सोदराश्च विज्ञेया मातृबान्धवाः ५९॥

नानी, नाना, मामा, मामाका बेटा और नानाका भाई इत्यादि ये मातृबंधु हैं ॥ ५९ ॥

पितुर्माता पिता भ्राता पितुर्भ्रातुः स्वसुः सुताः ।
पितुः पितुः सोदराश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः॥६०॥

दादी, दादा, चचा, चचाका बेटा, पितृष्वस्रेय (बुआका लड़का) दादाका भाई, इत्यादिको पितृबंधु कहा जाता है६०

पत्युर्माता पिता भ्राता पत्युर्भ्रातुः स्वसुः सुताः ।
पत्युः पितुः सोदराश्च विज्ञेयाः पतिबान्धवाः६१॥

स्वामीकी माता, श्वशुर, जेठ अथवा देवर अथवा जेठका पुत्र, स्वामीकी बहनका पुत्र, श्वशुरका भाई इत्यादि ये पतिके बन्धु कहलाते हैं ॥ ६१ ॥

पित्रे मात्रे पितुः पित्रे पितामह्यै तथा स्त्रियै ।
अयोग्यसूनवे पुत्रहीनमातामहाय च ॥ ६२ ॥

पिता, माता, दादा, दादी, पत्नी, अयोग्य पुत्र, पुत्रहीन मातामह ॥ ६२ ॥

मातामह्यै दरिद्रेभ्यो येभ्यो वासस्तथाशनम् ।
दापयेन्नृपतिः पुंसा यथाविभवमम्बिके ! ॥ ६३ ॥

पुत्रहीन नानी ये लोग यदि दरिद्री हों तो राजा इनको वित्तानुसार अन्न, वस्त्र दिलावे ॥ ६३ ॥

दुर्वाच्यं कथयन्पत्नीमेकाहमशनं त्यजेत् ।
त्र्यहं सन्ताडयन्रक्तं पातयन्सप्तवासरान् ॥ ६४ ॥

यदि कोई भार्याको कुवचन कहे तो उसे एक दिन उपवास करना चाहिये, यदि कोई पत्नीको मारे तो उसे तीन राततक उपवास करना चाहिये, यदि कोई प्रहार करके भार्याके रुधिर निकाले तो उसे सात दिनतक उपवास करना चाहिये ॥ ६४ ॥

क्रोधाद्वा मोहतो भार्य्यां मातरं भगिनीं सुताम् ।
वदन्नुपोष्य सप्ताहं विशुध्येच्छिवशासनात् ॥ ६५ ॥

यदि कोई क्रोधसे या मोहसे भार्याको " माता " कहे, " बहन " कहे " कन्या " कहे तो शिवकी आज्ञा है कि उसको सातरात उपवास करना चाहिये ॥ ६५ ॥

षण्डेनोद्वाहितां कन्यां कालातीतेऽपि पार्थिवः ।
जानन्नुद्वाहयेद्भूयो विधिरेष शिवोदितः ॥ ६६ ॥

शिवने यह विधान कहा है कि, जो कोई कन्या नपुंसकसे ब्याही जाय और बहुत दिन पीछे भी यह वृत्तान्त जाना जाय तो राजाको उचित है कि, उस कन्याका विवाह फिर करावे ॥ ६६ ॥

परिणीता न रमिता कन्यका विधवा भवेत् ।
साप्युद्वाह्या पुनः पित्रा शैवधर्मेष्वयं विधिः॥६७॥

यदि कन्या विवाही जाकर पतिका संग करनेसे पहले विधवा हो जाय तो माता पिताको उसका पुनर्विवाह कर देना चाहिये, क्योंकि शैवधर्ममें ऐसा ही विधान है ॥६७॥

उद्वाहाद्द्वादशे पक्षे पत्यन्ताद्गतहायने ।
प्रसूते तनयं योग्यं न सा पत्नी न सः सुतः६८॥

विवाहके पीछे बारह पक्ष अर्थात् छः मासमें या पति-वियोगके पीछे एक वर्षके अन्तमें जो स्त्री परिपुष्ट सन्तान उत्पन्न करे तो वह पुत्र अपने पतिका नहीं है और वह उसकी भार्या भी नहीं है ॥ ६८ ॥

आगर्भात्पञ्चमासान्तर्गर्भं या स्रावयेद्धिया ।
तदुपायकृतं तां च यातयेत्तीव्रताडनैः ॥ ६९ ॥

गर्भाधानसे लेकर पांच मासके बीचमें जो नारी जान बूझकर गर्भ गिरा दे उस नारीको और गर्भ गिरानेका उपाय करनेवाले उस पुरुषको राजा कठिन ताड़ना देकर दंड दे६९

पञ्चमात्परतो मासाद्या स्त्री भ्रूणं प्रपातयेत् ।
तत्प्रयोक्तुश्च तस्याश्च पातकं स्याद्वधोद्भवम् ॥७०॥

पांच मासके पीछे जो नारी गर्भ गिरावे अथवा जो पुरुष उसका उपाय कर दे वे दोनों वध करनेवालेके समान महा-पातकी होते हैं ॥ ७० ॥

यो हन्ति ज्ञानतो मर्त्यं मानवः क्रूरचेष्टितः ।

वधस्तस्य विधातव्यः सर्वथा धरणीभृता ॥ ७१ ॥

जो कोई निठुर दुरात्मा जान बूझकर नरहत्या करे तो राजा उसे अवश्य मरवा डाले ॥ ७१ ॥

प्रमादाद्भ्रमतोऽज्ञानाद्घ्नन्तन्नरमरिन्दमः ।

द्रविणादानतस्तीव्रताडनैस्तं विशोधयेत् ॥ ७२ ॥

जो कोई पुरुष प्रमाद (पागलपन) या भ्रमसे मनुष्यको मार डाले तो राजा उसे धनदण्ड देकर कठिन मार लगवावे ॥ ७२ ॥

स्वतो वा परतो वापि वधोपायं प्रकुर्वतः ।

अज्ञानवधिनां दण्डो विहितस्तस्य पापिनः ॥७३॥

जो कोई पुरुष आप या दूसरेसे अपने या दूसरेके वधका उपाय करे तो उस पापीको वह दण्ड देना चाहिये; जो लोग अनजानमें नरहत्या करनेवालेको मिलता है ॥ ७३ ॥

मिथःसंग्रामयोद्धारमाततायिनमागतम् ।

निहत्य परमेशानि ! न पापार्हो भवेन्नरः ॥७४॥

हे परमेश्वरि ! जो मनुष्य आततायी होकर आया है उसका वध करनेसे मनुष्यको पाप नहीं होता ॥ ७४ ॥

अङ्गच्छेदे विधातव्यं भूभृताङ्गनिकृन्तनम् ।

प्रहारे च प्रहरणं नृषु पापं चिकीर्षुषु ॥ ७५ ॥

पाप करनेवाला पुरुष यदि दूसरेका अंग काट डाले तो राजाको उसका अंग कटाना चाहिये। यदि कोई पापात्मा दूसरेपर प्रहार करे तो राजा भी उसपर वैसा ही प्रहार करावे ॥ ७८ ॥

विप्रान्गुरूनवगुरेत्प्रहरेद्यो दुरासदः।
धनादानाद्धस्तदाहात्क्रमतस्तं विशोधयेत्॥ ७६ ॥

ब्राह्मण या गुरुके मारनेको जो पापात्मा लाठी इत्यादि उठावे अथवा जो पुरुष इनको मारे राजाको उचित है कि उसकी धन सम्पत्ति लेकर उसके हाथ जला दे ॥ ७६ ॥

शस्त्रादिक्षतकायस्य षण्मासात्परतो मृतौ।
प्रहर्त्ता दण्डनीयः स्याद्वधार्हो नहि भूभृतः॥ ७७ ॥

यदि किसीका शरीर शस्त्रादिसे घायल हो जाय और यह घायल छः मासके पीछे मर जाय तो प्रहार करनेवालेको दण्ड होगा, परन्तु वध दण्ड नहीं ॥ ७७ ॥

राष्ट्रविप्लाविनो राज्यं जिहीर्षोर्नृपवैरिणाम्।
रहोहितैषिणो भृत्याद्भेदकान्नृपसैन्ययोः ॥ ७८ ॥

जो लोग विद्रोही हैं, जो लोग राज्यको छोड़ना चाहते हैं जो लोग छिपे हुए शत्रु राजाओंका हित चाहते हैं, जो लोग राजाके साथ सेनाका भेद करा देते हैं ॥ ७८ ॥

योद्धुमिच्छुः प्रजा राज्ञा शस्त्रिणः पान्थपीडकान्।
हत्वा नरपतिस्त्वेतान्नैव किल्बिषभाग्भवेत्॥ ७९॥

जो प्रजा युद्ध करना चाहती है, जो लोग शस्त्र धारण कर यात्रियोंपर अत्याचार करते हैं इन सबका नाश करनेसे राजा पापका भागी नहीं होता ॥ ७९ ॥

यो हन्यान्मानवं भर्त्तुराज्ञयापरिहार्य्यया ।
भर्त्तुरेव वधस्तत्र प्रहर्त्तुर्न शिवाज्ञया ॥ ८० ॥

शिवजीकी आज्ञा है कि जो पुरुष स्वामीकी न उल्लंघन करने योग्य आज्ञाके अनुसार किसी मनुष्यको मार डाले तो उसे नरहत्याका पाप नहीं होगा वरन् आज्ञा देनेवालेको पाप का भागी होना पड़ेगा ॥ ८० ॥

अयत्नपुंसः पशुना शस्त्रैर्वा म्रियते नरः ।
धनदण्डेन वा कायदमेनास्य विशोधनम्॥ ८१ ॥

यदि किसी असावधानीसे अस्त्र करके वा पशुसे दूसरेकी मृत्यु हो जाय तो धनदण्डसे अथवा कायदंडसे उसका पाप छूटेगा ॥ ८१ ॥

बहिर्म्मुखान्नृपाज्ञासु नृपाग्रे प्रौढवादिनः ।
दूषकान्कुलधर्म्माणां शास्याद्राजा विगर्हितान् ८२॥

जो लोग राजाकी आज्ञाका पालन नहीं करते, जो लोग राजाके सामने ढीठता करते हैं, जो कुलधर्मके दूषक हैं राजाको उचित है कि इन सबको दण्ड दे ॥ ८२ ॥

स्थाप्यापहारिणं क्रूरं वञ्चकं भेदकारिणम् ।
विवादयन्तं लोकांश्च देशान्निर्य्यापयेन्नृपः ॥८३॥

जो पुरुष धरोहरके धनको हर ले, जो क्रूर और धोखा देनेवाला हो, जो आदमियोंमें परस्पर वैमनस्य और झगड़ा उत्पन्न करा दे, राजाको उचित है कि ऐसे आदमियोंको देशसे निकाल दे ॥ ८३ ॥

शुल्केन कन्यां दातॄंश्च पुत्रं षण्ढे प्रयच्छतः ।
देशान्निर्य्यापयेद्राजा पतितान्दुष्कृतात्मनः ॥८४॥

जो मनुष्य शुल्क ग्रहण करके कन्या या पुत्रका दान करते हैं अथवा नपुंसकको कन्याका दान करते हैं, राजाको चाहिये कि उन दुष्ट पापियोंको देशसे निकाल दे ॥ ८४ ॥

मिथ्यापवादव्याजेन परानिष्टं चिकीर्षवः ।
यथापराधं[1] ते शास्या धर्म्मज्ञेन महीभृता ॥८५ ॥

जो लोग झूंठ लोकापवाद लगाकर पराया बुरा करनेकी अभिलाषा करें तो धर्मवान् राजा अपवादके अनुसार उनको यथायोग्य दंड दे ॥ ८५ ॥

यो यत्परिमितानिष्टं कुर्य्यात्तत्सम्मितं धनम् ।
नृपतिर्द्दापयेत्तेन जनायानिष्टभागिने ॥ ८६ ॥

जो मनुष्य जितना अनिष्ट करे उतना ही धनदण्ड करके अनिष्टपद भोगनेवाले मनुष्यको वह दे दे ॥ ८६ ॥

मणिमुक्ताहिरण्यादिधातूनां स्तेयकारिणः ।
करस्य बाह्वोश्छेदो वा कार्य्यो मूल्यं विचारयन्८७

---

१ 'यथापवादम्' इति वा पाठः ।

जो लोग मणि, मुक्ता या सुवर्णादि धातु चुराते हैं राजा, मोलका विचारकर उनके हाथ (पंजे) या दोनों बाँहें कटवा दे ॥ ८७ ॥

महिषाश्वगवादीनां रत्नादीनां तथा शिशोः ।
बलेनापहृतां नृणां स्तेयिवद्विहितो दमः ॥ ८८ ॥

जो लोग बलात्कारसे भैंस, घोड़ा, गाय, इत्यादि पशु सुवर्णादि धातु द्रव्य या छोटे बच्चेको चुराते हैं राजाको उचित है कि, उनको चोरोंके समान दंड दे ॥ ८८ ॥

अन्नानामल्पमूल्यस्य वस्तुनः स्तेयिनं नृपः ।
विशोधयेत्तं पक्षैकं सप्ताहं वाशयन्कणम् ॥८९॥

जो पुरुष अन्न या थोड़े मोलका पदार्थ चुराता है राजाको चाहिये कि उसको एकपक्ष वा सप्ताहतक कणभोजन कराकर शुद्ध करे ॥ ८९ ॥

विश्वासघातके पुंसि कृतघ्ने सुरवन्दिते ।
यज्ञैर्व्रतैस्तपोदानैः प्रायश्चित्तैर्न निष्कृतिः॥ ९० ॥

हे सुरपूजिते ! जो विश्वासघाती और कृतघ्न हैं वे यज्ञ, व्रत, तप, दान आदि कोई भी प्रायश्चित्त करें, परन्तु उनका छुटकारा किसी प्रकारसे नहीं ॥ ९० ॥

ये कूटसाक्षिणो मर्त्या मध्यस्थाः पक्षपातिनः ।
शास्याच्चांस्तीव्रदण्डेन देशान्निर्य्यापयेन्नृपः॥९१॥

जो मनुष्य कूटसाक्षी हैं, जो बिचउये बनकर पक्षपात करते हैं, राजाको उचित है कि, उन्हें तीव्र दण्ड देकर देशसे निकाल दे ॥ ९१ ॥

षट् साक्षिणः प्रमाणं स्युश्चत्वारस्त्रय एव वा ।
अभावे द्वावपि शिवे! प्रसिद्धौ यदि धार्म्मिकौ॥९२॥

छः, चार अथवा तीन साक्षी प्रमाणमें गिने जाते हैं. हे शिवे ! जो (गवाह) न मिलें तो धर्मात्मा और प्रसिद्ध दो गवाहोंके वचन भी प्रमाण हो सकते हैं ॥ ९२ ॥

देशतः कालतो वापि तथा विषयतः प्रिये ! ।
परस्परमयुक्तञ्चेदग्राह्यं साक्षिणां वचः ॥ ९३ ॥

हे प्रिये ! जो वे लोग पूछे जानेपर देश, काल और किसी विशेष बातके मध्य परस्पर विरोधीवचन कहें तो उन गवाहोंके वाक्य ग्रहण नहीं किये जायँगे ॥ ९३ ॥

अन्धानां वाक्प्रमाणं स्याद्बधिराणां तथा प्रिये ! ।
मूकानामेडमूकानां शिरसाङ्गीकृतिर्लिपिः ॥ ९४ ॥

साक्षीमें अंधे और बहरोंके वचन प्रमाणित गिने जायँगे। जो गूँगे हैं, एडमूक (कानहीन और वाचाशक्तिहीन) हैं उनका शिर हिलाना ग्रहण किया जायगा और लेख प्रमाण माना जायगा ॥ ९४ ॥

लिपिः प्रमाणं सर्वेषां सर्वत्रैव प्रशस्यते ।
विशेषाद्व्यवहारेषु न विनश्येच्चिरं यतः ॥ ९५ ॥

सब स्थानोंमें सबके लिये ही लेखका प्रमाण श्रेष्ठ है, विशेष करके व्यवहारमें यह सब प्रकारसे श्रेष्ठ है, क्योंकि यह बहुत कालमें भी नष्ट नहीं होता ॥ ९५ ॥

स्वीयार्थमपरार्थञ्चेत्कुर्वतः कल्पितां लिपिम् ।
दण्डस्तस्य विधातव्यो द्विपाद्यं कूटसाक्षिणः ॥९६॥

जो पुरुष अपने लिये या पराये लिये कल्पित लिपि (जाल) बनावे, उस कूटसाक्षी (जालसाज) को दूना दंड हो अर्थात् ऐसे पुरुषोंका माल मता छीन कठिन दंड देकर देशसे निकाल दे ॥ ९६ ॥

अभ्रमस्याप्रमत्तस्य यदङ्गीकरणं सकृत् ।
स्वीयार्थे तत्प्रमाणं स्याद्वचसो बहुसाक्षिणाम् ॥९७॥

जो पुरुष भ्रम और प्रमादसे रहित हो वह यदि किसी अपनी बातको केवल एक वार अंगीकार कर ले तो उसका प्रमाण बहुत साक्षियोंके वचनोंसे भी प्रबल होगा ॥ ९७ ॥

यथा तिष्ठन्ति पुण्यानि सत्यमाश्रित्य पार्वति ! ।
तथाऽनृतं समाश्रित्य पातकान्यखिलान्यपि ॥९८॥

हे पार्वति ! जिस प्रकार सत्यमें सब पुण्य रहते हैं वैसे ही झूठमें समस्त पातक रहते हैं ॥ ९८ ॥

अतः सत्यविहीनस्य सर्वपापाश्रयस्य च ।
ताडनाद्दमनाद्राजा न पापार्हः शिवाज्ञया ॥९९॥

अतएव सत्यहीन पुरुष सब पापोंका आश्रय है। शिवकी आज्ञा है कि, ऐसे पापात्माका ताड़न और दमन करनेसे राजाको पाप नहीं होता ॥ ९९ ॥

सत्यं ब्रवीमि सङ्कल्प्य स्पृष्ट्वा कौलं गुरुं द्विजम्।
गङ्गातोयं देवमूर्तिं कुलशास्त्रं कुलामृतम् ॥१००॥

मैं जो कुछ कहूंगा "सत्य कहूंगा" ऐसा संकल्प करके कौलगुरु ब्राह्मण,गंगाजल, देवमूर्ति,कुलशास्त्र,कुलामृत १००

देवनिर्म्माल्यमथवा कथनं शपथो भवेत्।
तत्रानृतं वदन्मर्त्यः कल्पान्तं नरकं व्रजेत्॥१०१॥

देवनिर्माल्य इन सबको स्पर्श करके जो कहा जाय उसका नाम शपथ है। जो पुरुष इस शपथको करके मिथ्या वचन कहेगा उसका वास एककल्पतक नरकमें रहेगा ॥१०१॥

अपापजनिकार्य्याणां त्यागे वा ग्रहणेऽपि वा।
तत्कार्य्यं सर्वथा मर्त्यैः स्वीकृतं शपथेन यत् १०२॥

जो कार्य शपथ करके स्वीकार किया गया है, वह कार्य यदि वैसा पापजनक न हो तो उसके करने या न करनेमें अंगीकारके अनुसार कार्य करना पड़ेगा ॥ १०२ ॥

स्वीकारोल्लङ्घनाच्छुध्येत्पक्षमेकमभोजनैः।
भ्रमेणापि तमुल्लङ्घ्य द्वादशाहं कणाशनैः ॥१०३॥

जो पुरुष पहले अंगीकार करके फिर लंघन कर जाता है वह एकपक्ष अनाहार रहकर उस पापसे छूट सकता है। जो

भ्रमसे अंगीकारको लाँघ जाय वह बारह दिनतक कण खानेसे शुद्ध हो सकता है ॥ १०३ ॥

कुलधर्म्मोऽपि सत्येन विधिना चेन्न सेवितः ।
मोक्षाय श्रेयसे न स्यात्कौले पापाय केवलम् १०४

और बात तो दूर रहे जो पुरुष सत्यका आश्रय लेकर कुलधर्मकी सेवा नहीं करता है उसका वह धर्म मोक्षदायक नहीं होता, केवल पापजनक होता है ॥ १०४ ॥

सुरा द्रवमयी तारा जीवानिस्तारकारिणी ।
जननी भोगमोक्षाणां नाशिनी विपदां रुजाम् १०५

सुरा द्रवमयी स्वयं भगवती तारा है। इस कारणसे प्राणियोंका निस्तार होता है, सुरा भोग और मोक्षकी कारण है, सुरा रोगका नाश करनेवाली और विपत्तिसे उद्धार करनेवाली होती है ॥ १०५ ॥

दाहिनी पापसङ्घानां पावनी जगतां प्रिये ।
सर्वसिद्धिप्रदा ज्ञानबुद्धिविद्याविवर्द्धिनी ॥१०६॥

हे प्रिये ! सुरासे पापके समूह भस्म हो जाते हैं, सुरा संसारको पवित्र करती है, सुरासे सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं, सुरासे ज्ञान, बुद्धि, विद्याकी वृद्धि होती है ॥ १०६ ॥

मुक्तैर्मुमुक्षुभिः सिद्धैः साधकैः क्षितिपालकैः ।
सेव्यते सर्वदा देवैराद्ये ! स्वाभीष्टसिद्धये ॥१०७॥

हे आद्ये ! मुक्त, मुमुक्षु और सिद्ध योगीगण, साधकगण, भूपालगण और देवतालोग अपनी २ अभीष्टसिद्धिके लिये सदा इस सुराका सेवन करते हैं ॥ १०७ ॥

सम्यग्विधिविधानेन सुसमाहितचेतसा ।
पिबन्ति मदिरां मर्त्या अमर्त्या एव ते क्षितौ १०८

जो लोग उत्तम और सावधानहृदय हो विधिके अनुसार मदिराको पीते हैं वे मनुष्य नहीं, बरन् पृथ्वीपर रहनेवाले देवता हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १०८ ॥

प्रत्येकतत्त्वस्वीकाराद्विधिना स्याच्छिवो नरः ।
न जाने पञ्चतत्त्वानां सेवनात्किंफलं भवेत् १०९॥

इस पंचतत्त्वमें यदि कोई विधिविधानसे एक तत्त्वका भी सेवन करता है वह निःसन्देह साक्षात् शिव है, परन्तु पंचतत्त्वके सेवन करनेसे जो फल होता है उसको हम नहीं कह सकते ॥ १०९ ॥

इयं चेद्वारुणी देवी निपीता विधिवर्जिता ।
नृणां विनाशयेत्सर्वं बुद्धिमायुर्यशोधनम् ॥११०॥

जो विधिविधानके विना वारुणी देवीकी सेवा की जाय तो वह मनुष्यकी बुद्धि, आयु, यश, धन सबको ही नाश कर देती है ॥ ११० ॥

अत्यन्तपानान्मद्यस्य चतुर्वर्गप्रसाधनी ।
बुद्धिर्विनश्यति प्रायो लोकानां मत्तचेतसाम् १११

जो लोग अत्यन्त सुरापान करके मतवाले हो जाते हैं, उनके हृदयमें भ्रमसा पड़ जाता है, जिससे चारों वर्ग प्राप्त हो जाते हैं वह बुद्धि उनकी बहुधा कलुषित और नष्ट होती है ॥ १११ ॥

विभ्रान्तबुद्धेर्म्मनुजात्कार्य्याकार्य्यमजानतः ।
स्वानिष्टं च परानिष्टं जायतेऽस्मात्पदे पदे॥ ११२॥

जिस मनुष्यकी बुद्धि बिगड़ गयी है, जो पुरुष कर्तव्याकर्तव्य और हिताहितका ज्ञान नहीं रखता उससे पग पग पर अपना और पराया बुरा हुआ करता है ॥ ११२ ॥

अतो नृपो वा चक्रेशो मद्ये मादकवस्तुषु ।
अत्यासक्तजनान्कायधनदण्डेन शोधयेत् ॥ ११३॥

इस कारण जो लोग मद्य या मादक वस्तुमें अत्यन्त आसक्त हैं राजाको या चक्रेश्वरको चाहिये कि, उन्हें शारीरिक दंड या अर्थदण्ड दे ॥ ११३ ॥

सुराभेदाद्व्यक्तिभेदान्न्यूनेनाप्यधिकेन वा ।
देशकालविभेदेन बुद्धिभ्रंशो भवेन्नृणाम् ॥ ११४॥

सुरा अधिक पी जाय वा थोड़ी पी जाय सुराके भेदसे, मनुष्यभेदसे, देश और कालके भेदसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है ॥ ११४ ॥

अतएव सुरापानादतिपानं न लक्ष्यते ।
स्खलद्वाकपाणिपादहग्भिरतिपानं विचारयेत् ११५॥

इस कारण लड़खड़ाते हुए बोल, डोलते हुए हाथ और स्खलित पांव वा चंचलदृष्टिसे अधिक पानका विचार करे क्योंकि सुरापानके अनुसार अतिपान नहीं देखा जाता ११५

नेन्द्रियाणि वशे यस्य मदविह्वलचेतसः ।
देवतागुरुमर्य्यादोल्लङ्घिनो भयरूपिणः ॥ ११६ ॥

सब इन्द्रियें जिसके वशमें नहीं हैं, जिसका चित्त मदसे विह्वल हो रहा है, जो पुरुष मत्तताके मारे देवता और गुरुकी मर्यादाको लाँघता है, जिसकी मतवाली अवस्था देखकर भय होता है ॥ ११६ ॥

निखिलानर्थयोग्यस्य पापिनः शिवघातिनः ।
दहेज्जिह्वां हरेदर्थांस्ताडयेत्तं च पार्थिवः ॥ ११७॥

जो पुरुष सब अनर्थोंकी खानि है वह पुरुष पापात्मा और शिवघाती है, राजा उसका धन छीनकर जीभ जलवा दे और उसकी ताड़ना करे ॥ ११७ ॥

विचलत्पादवाक्पाणिं भ्रान्तमुन्मत्तमुद्धतम् ।
तमुग्रं यातयेद्राजा द्रविणं चाहरेत्ततः ॥ ११८ ॥

जिसके पांव, वाक्य और हाथ चलते रहें, जो पुरुष भ्रमयुक्त, उन्मत्त, ऊधमी और अविनीत हो उस पुरुषको राजा दंड दे और उसकी सब सम्पत्ति हरण कर ले॥११८॥

अपवाग्वादिनं मत्तं लज्जाभयविवर्ज्जितम् ।
धनादानेन तं शास्यात्प्रजाप्रीतिकरो नृपः॥११९॥

जो पुरुष मतवाला होकर अश्लील या अयुक्त वचन कहे अथवा लाज भयरहित हो जाय प्रजाका रंजन करनेवाला राजा उसका धन ग्रहण करके उसे दण्ड दे ॥ ११९ ॥

शताभिषिक्तः कौलश्चेदतिपानात्कुलेश्वरि ! ।
पशुरेव स मन्तव्यः कुलधर्म्मबहिष्कृतः ॥१२० ॥

हे कुलेश्वरि ! शताभिषिक्त कौलपुरुष यदि अतिपानके दोषसे दूषित हो तो वह कुलधर्मसे च्युत होगा और पशुमें उसकी गिनती की जायगी ॥ १२० ॥

पिबन्नतिशयं मद्यं शोधितं वाप्यशोधितम् ।
त्याज्यो भवति कौलानां दण्डनीयोऽपि भूभृतः १२१॥

शोधित या अशोधित मद्यको जो बहुत पीता है कौल पुरुषोंको चाहिये कि, उसका त्याग कर दे और वह राजाके निकट दंडनीय होगा ॥ १२१ ॥

ब्राह्मीं भार्य्यां सुरां मत्ताः पाययन्तो द्विजातयः ।
शुध्येयुर्भार्य्यया सार्द्धं पञ्चाहं कणभोजनात् १२२॥

यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य मत्त होकर ब्राह्मी भार्या अर्थात् वेदकी विधिके अनुसार ब्याही हुई स्त्रीको मद्य पिलावे तो वह इस भार्याके साथ पांच दिनतक कणभोजन करके शुद्धिको प्राप्त कर सकेगा ॥ १२२ ॥

असंस्कृतसुरापानाच्छुद्ध्येदुपवसंत्र्यहम् ।
भुक्त्वाप्यशोधितं मांसमुपवासद्वयं चरेत् ॥१२३॥

जो कोई पुरुष विना संस्कार की हुई सुराको पिये तो वह तीन दिन उपवास करके शुद्ध हो सकता है। यदि कोई पुरुष विना शुद्ध हुआ मांसभक्षण करे तो उस पापसे छुड़ानेको उसे दो दिन उपवास करना चाहिये ॥ १२३ ॥

असंस्कृते मीनमुद्रे खादन्नुपवसेदहः।

अवैधं पञ्चमं कुर्वन्राज्ञो दण्डेन शुध्यति ॥ १२४॥

जो कोई पुरुष विना संस्कारके मत्स्य या मुद्राका भक्षण करे तो वह एक दिन उपवास करे, यदि कोई पुरुष विधिका लंघन करके पांचवें तत्त्वका सेवन करे तो पाप छुड़ानेके लिये उसको राजदण्ड देना चाहिये ॥ १२४ ॥

भुञ्जानो मानवं मांसं गोमांसं ज्ञानतः शिवे !।

उपोष्य पक्षं शुद्धः स्यात्प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् १२५

हे शिवे ! जो कोई पुरुष जान बूझकर मनुष्यमांस या गोमांस भक्षण करे तो उसका प्रायश्चित्त यह है कि, वह एक पक्ष उपवास करके शुद्धि प्राप्त कर सके ॥ १२५ ॥

नराकृतिपशोर्म्मांसं मांसं मांसादनस्य च।

अत्त्वा शुध्येन्नरः पापादुपवासैस्त्रिभिः प्रिये ! १२६

हे प्रिये ! जो मनुष्याकार पशुका मांस या मांस खानेवाले जीवका मांस भक्षण करे वह तीन दिन उपवास करके शुद्ध हो सकता है ॥ १२६ ॥

म्लेच्छानां श्वपचानां च पशूनां कुलवैरिणाम्।

खादन्नन्नं विशुद्धः स्यात्पक्षमेकमुपोषितः॥१२७॥

जो पुरुष म्लेच्छ और यवनका अन्न, चाण्डालका अन्न अथवा कुलधर्मसे विद्वेष करनेवाले पशुका अन्न भोजन करे वह एकपक्षतक उपवास करके शुद्धि प्राप्त कर सकता है१२७

उच्छिष्टं यदि भुञ्जीत ज्ञानादेषां कुलेश्वरि ! ।
शुध्येन्मासोपवासेनाज्ञानात्पक्षोपवासतः ॥१२८॥

हे कुलेश्वरि ! यदि कोई जान बूझकर इनका जूठा खाय तो वह एक मासतक उपवास करके शुद्ध हो सकता है, जो पुरुष अजानमें उपरोक्त मनुष्योंका जूठा खा ले तो इस पापके छुटानेके अर्थ उसको एक पक्षतक उपवास करना चाहिये ॥ १२८ ॥

अनुलोमेन वर्णानामन्नं भुक्त्वासकृत्प्रिये ! ।
दिनत्रयोपवासेन विशुद्धः स्यान्ममाज्ञया ॥१२९॥

हे प्रिये ! मेरी आज्ञा है कि, यदि कोई पुरुष केवल एक बार अनुलोमजातिका भोजन करे तो वह तीनदिनतक उपवास करके शुद्ध हो सकता है ॥ १२९ ॥

पशुश्वपचम्लेच्छानामन्नं चक्रार्पितं यदि ।
वीरहस्तार्पितं वापि तदश्नन्नैव पापभाक्॥१३०॥

यदि पशुका अन्न, श्वपचका अन्न अथवा म्लेच्छका अन्न चक्रमें अर्पण किया जावे और यदि वीरपुरुष उसको हाथमें लेकर दे दे तो उसके भोजन करनेसे कोई पापका भागी नहीं होगा ॥ १३० ॥

अन्नाभावे च दौर्भिक्ष्ये विपदि प्राणसङ्कटे ।
निषिद्धेनादनेनापि रक्षन्प्राणान्न पातकी ॥१३१॥

जब अन्नकी कमी हो, दुर्भिक्ष हो, जो विपत्तिका समय हो, प्राणसंकट पड़ रहा हो, उस समय जो कोई निषिद्ध अन्नभोजन करके प्राणकी रक्षा करे तो वह पापका भागी नहीं होगा ॥ १३१ ॥

करिपृष्ठे तथानेकोद्वाह्यपाषाणदारुषु ।
अलक्षितेऽपि दूष्याणां भक्ष्यदोषो न विद्यते १३२॥

जिस पत्थरको या काठादिको एक आदमी उठाकर नहीं ले जा सके वैसे काठ और पाषणादिके ऊपर, हाथीकी पीठके ऊपर और जिस स्थानमें दूषित संसर्ग हो और दिखाई न दे उस स्थानमें भोजन कर लेनेसे स्पर्शदोष नहीं होता ॥ १३२ ॥

पशूनभक्ष्यमांसांश्च व्याधियुक्तानपि प्रिये ! ।
न हन्याद्देवतीर्थेऽपि हत्वा च पातकी भवेत् १३३॥

जिन पशुओंका मांस अभक्ष्य है, जो पशु रोगी हैं उन पशुओंका वध देवताके अर्थ भी न करे, यदि कोई वध करे तो पातकी होगा ॥ १३३ ॥

कृच्छ्रव्रतं नरः कुर्य्याद्गोवधे बुद्धिपूर्वके ।
अज्ञानादाचरेदर्द्धं व्रतं शंकरशासनात् ॥१३४॥

यदि कोई पुरुष जानकर गोहत्या करे तो उसे कृच्छ्रव्रत करना चाहिये । महादेवजीकी आज्ञा है कि, जो कोई पुरुष अज्ञानसे गोहत्या करे तो वह अर्द्धकृच्छ्रव्रत पालन करे१३४॥

न केशवपनं कुर्य्यान्न नखच्छेदनं तथा ।
न क्षारयोगं वसने यावन्न व्रतमाचरेत् ॥१३५॥

जबतक इस व्रतका अनुष्ठान न किया जाय तबतक हजामत बनवाना, नख कटाना वर्जित है और वस्त्रको क्षार (साबुनादि) से धोवे नहीं ॥ १३५ ॥

उपवासैर्नयेन्मासं मासमेकं कणाशनैः ।
मासं भैक्षान्नमश्नीयात्कृच्छ्रव्रतमिदं शिवे! ॥१३६॥

हे शिवे ! कृच्छ्रव्रतका नियम यह है कि, एकमास उपवास करके बितावे, एकमास कणभक्षण करके रहे, एकमास भिक्षान्न करके बितावे, इसका नाम कृच्छ्रव्रत है ॥ १३६ ॥

व्रतान्ते वापितशिराः कौलञ्ज्ञातींश्च बान्धवान् ।
भोजयित्वा विमुक्तः स्याज्ज्ञानगोवधपातकात् १३७

व्रत पूर्ण होनेपर मस्तक मुँडवाय कुलवानोंको, जातिवालोंको और बंधु बान्धवोंको भोजन करावे तब ज्ञानकृत गोवधजनित पातकसे छुटकारा प्राप्त कर सकता है ॥ १३७ ॥

अपालनवधाद्गोश्च शुध्येदष्टोपवासतः ।
बाहुजाद्या विशुध्येयुः पादन्यूनक्रमाच्छिवे! १३८॥

हे शिवे! अपालनकृत गोवधजनित पातकके लगनेसे आठ दिन उपवास करके शुद्ध हो सकता है, परन्तु क्षत्रियलोग छः दिन, वैश्य चार दिन, शूद्र दो दिनतक करके उस अपालनकृत गोवधके उत्पन्न हुए पापसे छूट सकते हैं॥१३८॥

गजोष्ट्रमहिषाश्वांश्च हत्वा कौलिनि कामतः ।
उपवासैस्त्रिभिः शुध्येन्मानवः कृतकिल्बिषः १३९॥

हे कुलनायिके ! इच्छानुसार हाथी, ऊंट, भैंसा, घोड़ा इन जीवोंकी हत्या करनेसे मनुष्य पापी होगा और तीनादिनतक उपवास करके उस पापसे छूट सकेगा ॥ १३९ ॥

मृगमेषाजमार्ज्जारान्निघ्नन्नुपवसेदहः ।
मयूरशुकहंसांश्च सज्योतिरशनं त्यजेत् ॥१४०॥

जो कोई मृग, मेढ़ा, छाग और बिल्लीको मार डाले तो वह एक दिन उपवास करे, जो मोर, शुक या हंसका वध करे तो सूर्यके उदयसे लेकर अस्ततक उपवास करना चाहिये ॥ १४० ॥

निहत्य सास्थिजन्तूंश्च नक्तमद्यान्निरामिषम् ।
निरस्थिजीविनो हत्वा मनस्तापेन शुद्ध्यति १४१

यदि अस्थियुक्त (हड्डीवाले) जीवको मारा हो तो एक रात्रि निरामिष भोजन करे, यदि अस्थिहीन जीवकी हत्या करे तो केवल पछतानेसे शुद्धता प्राप्त हो सकती है ॥१४१॥

पशुमीनाण्डजान्निघ्नन्मृगयायां महीपतिः ।
न पापार्हो भवेद्देवि राज्ञो! धर्म्मः सनातनः॥१४२॥

हे देवि! जो राजा मृगयाके समय पशु, मछली या अण्डज (अंडेसे उत्पन्न हुए) जीवकी हत्या करे तो वह पापी नहीं होगा क्योंकि राजाओंका यह सनातन धर्म है ॥ १४२ ॥

देवोद्देशं विना भद्रे ! हिंसां सर्वत्र वर्ज्जयेत् ।
कृतायां वैधहिंसायां नरः पापैर्न लिप्यते ॥१४३॥

हे भद्रे ! विना देवताके अर्थके और किसी अवसरपर हिंसा न करे, जो कोई देवतादिके लिये अथवा मृगयाके समय वा संग्राममें वैधहिंसा करे तो वह पुरुष पापी नहीं हो सकता ॥ १४३ ॥

संकल्पितव्रतापूर्त्तौ देवनिर्म्माल्यलङ्घने ।
अशुचौ देवतास्पर्शे गायत्रीजपमाचरेत्॥ १४४ ॥

जो कोई संकल्प किया हुआ व्रत पूर्ण न कर सके, यदि देवनिर्माल्यका लंघन हो जाय और जो कोई अशौचके समय देवप्रतिमाको स्पर्श कर ले तो उसे गायत्री जपना चाहिये ॥ १४४ ॥

माता पिता ब्रह्मदाता महान्तो गुरवःस्मृताः ।
निन्दन्नेतान्वदन्क्रूरं शुद्ध्येत्पञ्चोपवासतः ॥१४५॥

माता, पिता और ब्रह्मदाता ये तीन महागुरु हैं । जो पुरुष इन महागुरुकी निन्दा करे या महागुरुको निष्ठुर वचन कहे तो वह पांच दिनतक उपवास करके शुद्ध हो सकता है ॥ १४५ ॥

एवमन्यान्गुरून्कौलान्विप्रान्गर्हन्नपि प्रिये ।
सार्द्धद्वयोपवसने मुक्तो भवति पातकात् ॥ १४६ ॥

हे प्रिये ! जो पुरुष इस प्रकार और गुरुकी, अथवा कौल ब्राह्मणकी निन्दा करे या उससे घृणा करे वह अढ़ाई दिन उपवास करके उस पातकसे छूटता है ॥ १४६ ॥

वित्तार्थी मानवो देशानखिलान्गन्तुमर्हति ।
निषिद्धकौलिकाचारं देशं शास्त्रमपि त्यजेत् १४७ ॥

मनुष्यगण धन पैदा करनेके लिये चाहे जिस देशमें जा सकते हैं, परन्तु जिस देशमें वा जिस शास्त्रमें कौलाचारवर्जित हुआ है, उस देश और उस शास्त्रका त्याग कर देना चाहिये ॥ १४७ ॥

गच्छंस्तु स्वेच्छया देशे निषिद्धे कुलवर्त्मनि ।
कुलधर्म्मात्पतेद्भूयः शुध्येत्पूर्णाभिषेकतः ॥ १४८ ॥

जिस देशमें कुलधर्म और कौलिकाचार वर्जित है यदि कोई इच्छानुसार उस देशमें चला जाय तो वह कुलधर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, अतः वह पूर्णाभिषेक करा कर शुद्धि प्राप्त कर सकता है ॥ १४८ ॥

तपनोदयमारभ्य यामाष्टकमभोजनम् ।
उपवासः स विज्ञेयः प्रायश्चित्ते विधीयते ॥ १४९ ॥

प्रायश्चित्तके लिये उपवास करनेपर सूर्योदयसे लेकर आठ पहरतक अनाहार रहना चाहिये ॥ १४९ ॥

पिबंस्तोयाञ्जलिञ्चैक भक्षन्नपि समीरणम् ।
मानवः प्राणरक्षार्थं न भ्रश्येदुपवासतः॥ १५० ॥

जो कोई पुरुष प्राणधारणके लिये एक अंजली जल पी लेगा अथवा वायुभक्षण करेगा वह उपवाससे भ्रष्ट नहीं होगा ॥ १५० ॥

उपवासासमर्थश्चेद्रुजा वा जरसापि वा ।
तदा प्रत्युपवासं च भोजयेद्द्वादश द्विजान्॥ १५१॥

यदि बुढ़ापे या दैहिक पीड़ाके कारण उपवास करनेको समर्थ न हो तो प्रत्येक उपवासके अनुकल्प स्वरूप बदलनेमें बारह ब्रह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ १५१ ॥

परनिन्दां निजोत्कर्षं व्यसनायुक्तभाषणम् ।
अयुक्तं कर्म्म कुर्वाणो मनस्तापैर्विशुध्यति॥ १५२॥

जो कोई पुरुष परायी निन्दा या अपनी प्रशंसा करे। अथवा जो और परायी निन्दा आदिका आन्दोलन करे या अवैधकार्य करे तो वह केवल पछतानेसे शुद्ध हो सकता है ॥

अन्यानि यानि पापानि ज्ञानाज्ञानकृतान्यपि ।
नश्यन्तिजपनाद्देव्याःसावित्र्याःकौलभोजनात् १५३

और जो सब पाप हैं वह ज्ञानसे किये जाँय अथवा अज्ञानसे किये जाँय; भगवती गायत्रीका जप करके और कौल भोजन कराते ही नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १५३ ॥

सामान्यनियमान्पुंसां स्त्रीषु षण्डेषु योजयेत् ।
योषितां तु विशेषोऽयं पतिरेको महागुरुः॥१५४॥
जो साधारण नियम पुरुषोंपर प्रकट किये गये हैं वही नियम नपुंसकोंपर और स्त्रियोंपर लगेंगे । स्त्रीजातिमें विशेषता यह है कि उनके लिये स्वामी ही महागुरु है ॥ १५४ ॥

महारोगान्विता ये च ये नराश्चिररोगिणः ।
स्वर्णदानेन पूताः स्युर्दैवे पैत्र्येऽधिकारिणः १५५॥
महाव्याधिसे ग्रस्त और सदाके रोगी लोग सुवर्णदान करके पवित्र हो दैव और पैतृककर्ममें अधिकारी हो सकते हैं ॥ १५५ ॥

अपघातमृतेनापि दूषितं विद्युदाग्निना ।
गृहं विशोधयेद्धोमैर्व्याहृत्या शतसंख्यकैः ॥१५६॥
यदि किसी गृहमें सर्पाघात या उद्बंधनादि (फाँसी वगैरे) से किसीकी अपमृत्यु हुई हो अथवा कोई घर बिजलीकी आगसे दूषित हुआ हो तो " भूः स्वाहा भुवः स्वाहा " इत्यादि शतव्याहृतिके द्वारा होम करके उस गृहको शुद्ध करे ॥ १५६ ॥

वापीकूपतडागेषु सास्थां शवनिरीक्षणात् ।
उद्धृत्य कुणपं तेभ्यस्ततस्तान्परिशोधयेत्॥१५७॥
यदि वापी, कूप, तडागादिमें अस्थियुक्त शव दिखलायी दे तो उसमेंसे मृतकको निकालकर उस वापी, कूपादिको शुद्ध करे ॥ १५७ ॥

पूर्णाभिषेकमनुभिर्मन्त्रितैः शुद्धवारिभिः ।
पूर्णैस्त्रिस्सप्तकुम्भैस्तान्प्लावयेदिति शोधनम् १५८॥

उसको शोधन करनेका विधान यह है कि इकीस घड़े जलसे भरे हुए पूर्णाभिषेकके मंत्रसे अभिमंत्रित करके उनको इस जलाशयमें डाल दे ॥ १५८ ॥

यदि स्वल्पजलास्ते स्युः शवदुर्गन्धि दूषिताः।
सपङ्कं सलिलं सर्वमुद्धृत्याप्लावयेत्तु तान् ॥१५९॥

यदि इन वापी, कूपादिमें जल अल्प हो और शवकी दुर्गन्धिसे वह दूषित हो गया हो तो उस सब जलको और कीचड़को निकालकर पहले कहे हुए पूर्णाभिषेकके मंत्रसे अभिमंत्रित इक्कीस घड़े शुद्धजल उनमें डाले ॥ १५९ ॥

सन्ति भूरीणि तोयानि गजदघ्नानि तेषु च ।
शतकुम्भजलोद्धारैरभिषेकेण शोधयेत् ॥ १६० ॥

उक्त जलाशयमें यदि गजभरके परिमाणका बहुतसा जल हो तो उससे शतघड़े जल निकालकर पहले कहे हुए मंत्रसे अभिमंत्रित इक्कीस घड़े जल उनमें डालकर शुद्ध कर ले ॥ १६० ॥

यद्येवं शोधिता न स्युर्मृतस्पृष्टजलाशयाः ।
अपेयसलिलास्तेषां प्रतिष्ठामपि नाचरेत् ॥ १६१ ॥

शवस्पृष्ट जलाशय यदि इस प्रकारसे भी शोधित न हो सके तो उसका जल पीना उचित नहीं और उस जलाशयकी प्रतिष्ठा भी नहीं करनी चाहिये ॥ १६१ ॥

स्नानमेषु जलैरेषां कुर्वन्कर्म्म वृथा भवेत् ।
दिनमेकं विनाहारः शुध्येत्पञ्चामृताशनात् ॥ १६२ ॥

इस जलसे स्नान करना किसी कर्मका करना वृथा हो जाता है, अतः जो लोग इस जलसे स्नान करेंगे या कोई कर्म करेंगे वह एकदिन अनाहार रहकर पंचामृत पान करनेसे शुद्ध होंगे ॥ १६२ ॥

याचकं धनिनं दृष्ट्वा वीरं युद्धपराङ्मुखम् ।
दूषकं कुलधर्म्माणां मद्यपां च कुलस्त्रियम् ॥ १६३ ॥

जो कोई धनवान् होकर माँगे, जो कोई वीर संग्राममें विमुख हो जाय, यदि कोई कुलधर्मपर विद्वेष दिखावे, एवं यदि कोई कुलकामिनी सुरापान करे ॥ १६३ ॥

मित्रद्रोहकरं मर्त्यं स्वयं पापरतं बुधम् ।
पश्यन्सूर्य्यं स्मरन्विष्णुं सचैलं स्नानमाचरेत् १६४

यदि मित्रद्रोह करे, यदि कोई पंडित होकर पापका आचरण करे तो ऐसे आदमियोंको जो पुरुष देख ले तो वह विष्णुजीका स्मरण करे और सूर्यनारायणका दर्शन कर तत्काल वस्त्रसहित स्नान करके पापसे छूट सकता है॥१६४॥

खरकुक्कुटकोलांश्च विक्रीणन्तो द्विजातयः ।
नीचवृत्तिं चरन्तोऽपि शुध्येयुस्त्रिदिनव्रतात् १६५॥

जो द्विजातिके लोग गधे, कुक्कुट या शूकरको बेचें या और कोई नीच काम करें तो वे तीन दिनतक व्रत करनेसे शुद्ध हो सकते हैं ॥ १६५ ॥

दिनमेकं निराहारो द्वितीयं कणभोजनः ।
अपरं तु नयेदद्भिस्त्रिदिनव्रतमम्बिके ॥ १६६ ॥

हे अम्बिके! तीन दिनतक व्रत करनेकी रीति यह है कि एक दिन अनाहार रहे, एक दिन कणभोजन करे, एक दिन जल पीकर रहे ॥ १६६ ॥

गृहेऽनुद्घाटितद्वारेऽनाहूतः प्रविशन्नरः ।
वारितार्थप्रवक्तापि पञ्चाहमशनं त्यजेत् ॥१६७॥

यदि कोई विना बुलाये ऐसे गृहमें चला जाय कि जिसका द्वार बंद है अथवा उस बातको कहे कि जिसके कहनेको वर्जे दिया है तो उसे पांचदिनतक उपवास करना चाहिये ॥ १६७ ॥

आगच्छतो गुरून्दृष्ट्वा नोत्तिष्ठेद्यो मदान्वितः ।
तथैव कुलशास्त्राणि शुध्येदेकोपवासतः ॥ १६८ ॥

गुरुजनको आता हुआ देखकर जो पुरुष घमंडके मारे उठे नहीं अथवा जो पुरुष कुलशास्त्रको आता हुआ देखकर न उठे उस पापके लिये उसको एक दिन उपवास करना चाहिये ॥ १६८ ॥

एतस्मिञ्छाम्भवे शास्त्रे व्यक्तार्थपदबृंहिते ।
कूटेनार्थं कल्पयन्तः पतिता यान्त्यधोगतिम् १६९॥

शिवजीके बनाये हुए इस शास्त्रमें सब अर्थ भलीभाँतिसे खुले हैं,जो पण्डितलोग इसका कूट अर्थ करेंगे वे पतित होकर नीच गतिको प्राप्त होंगे ॥ १६९ ॥

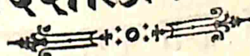
इदं ते कथितं देवि सारात्सारं परात्परम् ।
इहामुत्रार्थदं धर्म्यं पावनं हितकारकम् ॥१७०॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे स्वपरानिष्टजनकपापप्राय-
श्चित्तकथनं नाम एकादशोल्लासः ॥११॥

हे देवि ! मैंने तुमसे जो कुछ भी कहा सो परेसे परे, सारका भी सार धर्म है, एवं पवित्रकारक, हितकारक और इस लोक व परलोकमें शुभ फलका देनेवाला है ॥ १७० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-
शिवसंवादे मुरादाबादनिवासि पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषा-
टीकायां प्रायाश्चित्तकथनं नाम एकोदशोल्लासः समाप्तः॥११॥

द्वादशोल्लासः १२.



श्रीसदाशिव उवाच ।

भूयस्ते कथयाम्याद्ये व्यवहारान्सनातनान् ।
यान्रक्षन्प्रविदन्राजा स्वच्छन्दं पालयेत्प्रजाः॥ १ ॥

श्रीसदाशिवने कहा–हे आद्ये ! मैं फिर तुमसे सनातन व्यवहार कहता हूं, ज्ञानवान् राजा इस व्यवहारके अनुसार चलकर स्वच्छन्द हो प्रजापालन कर सकता है ॥ १ ॥

नियमेन विना राज्ञो मानवा धनलोलुपाः ।
मिथस्ते विवदिष्यन्ति गुरुस्वजनबन्धुभिः ॥ २ ॥

यदि राजा नियमको स्थापन नहीं करे तो मनुष्य धनके लोभी होकर गुरुजनोंके साथ, स्वजनोंके साथ और बन्धु बान्धवोंके साथ परस्पर झगड़ा करेंगे ॥ २ ॥

व्यतिघ्नन्ति तदा देवि स्वार्थिनो वित्तहेतवे ।
पापाश्रया भविष्यन्ति हिंसया च जिहीर्षया ॥ ३ ॥

हे देवि ! राजनियमके न होनेसे मनुष्य धनके अभिलाषी होकर परस्पर एक दूसरेको मारेंगे, वध करेंगे और वह हिंसाके हेतु और धन हरण करनेकी इच्छाके हेतु अनेक पापोंमें लिप्त होंगे ॥ ३ ॥

अतस्तेषां हितार्थाय नियमो धर्म्मसम्मतः ।
नियोज्यते यमाश्रित्य न भ्रश्येयुः शुभान्नराः ॥ ४ ॥
दण्डयेत्पापिनो राजा यथा पापापनुत्तये ।
तथैव विभजेद्दायान्नृणां सम्बन्धभेदतः ॥ ५ ॥

इसकारणसे मनुष्योंका हित करनेके लिये धर्मानुगत राजनियम बाँधता हूं; जो मनुष्य इन नियमोंके अनुसार कार्य करेंगे उनका कदापि अमंगल न होगा। पाप दूर करनेके लिये जिसप्रकार राजा पापियोंको दण्ड देता है वैसे ही मनुष्योंके सम्बन्धानुसार दायविभाग करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

सम्बधो द्विविधो ज्ञेयो विवाहाज्जन्मनस्तथा ।
तत्रौद्वाहिकसम्बन्धादपरो बलवत्तरः ॥ ६ ॥

विवाहाधीन और जन्माधीन, ये दो प्रकारके सम्बन्ध होते हैं । इनमें वैवाहिक सम्बन्धकी अपेक्षा जन्माधीन संम्बध अधिक बलवान् है ॥ ६ ॥

दाये तूर्ध्वतनाज्ज्यायान्सम्बन्धोऽधस्तनः शिवे ।
अधऊर्ध्वक्रमादत्र पुमान्मुख्यतरः स्मृतः ॥ ७ ॥

हे शिवे ! धनाधिकारमें ऊर्ध्वतन पुरुषोंके अधस्तन पुरुष अर्थात् दादा परदादा इत्यादिके रहते बेटे पोते इत्यादि धनके अधिकारी होंगे। इसप्रकार अध ऊर्ध्वके क्रमसे स्त्रीजातिकी अपेक्षा पुरुषजाति ही श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

तत्रापि सन्निकर्षेण सम्बन्धी दायमर्हति ।
अनेन विधिना धीरा विभजेयुः क्रमाद्धनम् ॥८॥

इसमें जिस पुरुषके साथ सम्बन्ध अतिनिकट है; वह पुरुष ही दायाधिकारी हो सकता है । इस प्रकार पण्डितगण क्रमके अनुसार विधिविधानसे धनको बाँट दें ॥ ८ ॥

मृतस्य पुत्रे पौत्रे च कन्यासु पितरि स्थिते ।
भार्य्यायामपि दायार्हः पुत्र एव न चापरः ॥ ९ ॥

यदि मृतक पुरुषके बेटा, पोता, कन्या, पिता और भार्या आदि वर्तमान हों तो पुत्र ही धनका अधिकारी होगा, और कोई धनका आधिकारी नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

बहवस्तनया यत्र सर्व्वे तत्र समांशिनः ।
ज्येष्ठे राज्याधिकारित्वं तत्तु वंशानुसारतः ॥१०॥

यदि बहुतसे पुत्र हों तो सबको बराबर अंश मिलना चाहिये, परन्तु वंशक्रमके अनुसार बड़ा पुत्र ही राज्यका अधिकारी होगा ॥ १० ॥

ऋणं यत्पैतृकं तच्च शोधयेत्पैतृकैर्धनैः ।
तस्मिन्स्थिते विभागार्हं न भवेत्पैतृकं वसु ॥११॥

जो पिताका लिया ऋण हो तो वह पिताके धनसे ही दिया जायगा, पैतृक ऋणके रहते हुए पैतृक धन नहीं बँट सकता ॥ ११ ॥

विभज्य यदि गृह्णीयुर्विभवं पैतृकं नराः ।
तेभ्यस्तद्धनमाहृत्य पितृणां दापयेन्नृपः ॥१२॥

यदि पैतृक ऋणके रहते हुए पुत्र पिताके धनको बाँटकर ग्रहण कर लें तो राजा उनसे उस धनको लेकर पैतृक ऋणको भुगता दे (ऋणको भुगताकर जो बचे उसे पुत्र ग्रहण कर लें) ॥ १२ ॥

यथा स्वकृतपापेन निरयं यान्ति मानवाः ।
ऋणेनापि तथा बद्धः स्वयमेव न चापरः ॥१३॥

जिसप्रकार मनुष्य अपने किये हुए पापोंसे आप ही नरकको जाते हैं वैसे ही सब अपने किये ऋणसे आप ही बंधते हैं, उससे दूसरा कोई नहीं बँधता ॥ १३ ॥

साधारणं धनं यच्च स्थावरं स्थावरेतरम् ।
अंशिनः प्राप्तुमर्हन्ति स्वं स्वमंशं विभागतः ॥१४॥

स्थावर व अस्थावर जो कुछ साधारण धन हो हिस्सेदार भागके अनुसार उसमेंसे अपना अपना हिस्सा ले लें ॥१४॥

अंशिनां सम्मतावेव विभागः परिसिद्ध्यति ।
तेषामसम्मतौ राजा समदृष्ट्यांशमाचरेत् ॥ १५ ॥

यदि सब अंशियोंकी सम्मति होती है तभी यथार्थ रूपसे हिस्सा बांट हो सकता है और जहाँ अंशियोंकी सम्मति न हो वहांपर राजाको चाहिये कि सबको बराबर भाग बांट दे१५॥

स्थावरस्य चरस्यापि विभागानर्हवस्तुनः ।
मूल्यं तदुपभोगं वाप्यंशिनां विभजेन्नृपः ॥१६॥

यदि स्थावर या अस्थावर वस्तुका भाग न किया जा सके तो राजा उसका मूल्य या उपसत्व अंशियोंको बाँट दे॥ १६ ॥

विभक्तेऽपि धने यस्तु स्वीयांशं प्रतिपादयेत् ।
पुनर्विभज्य तद्द्रव्यमप्राप्तांशाय दापयेत् ॥१७॥

यदि धन बँटनेके पीछे कोई और पुरुष प्रमाणित करे कि धनमें मेरा अंश है तो राजा उस धनको फिर बांटे और जिसने अंश नहीं पाया है उसे भी बराबर हिस्सा करके दे ॥ १७ ॥

कृते विभागे द्रव्याणामंशिनां सम्मतौ शिवे ।
पुनर्विवादयंस्तत्र शास्यो भवति भूभृतः ॥ १८ ॥

हे शिवे ! जहांपर सब अंशियोंकी सम्मतिसे धनका विभाग हो गया है वहांपर यदि कोई अंशी पहले किये हुए विभागको अस्वीकार करके फिर झगड़ा करे तो राजा उसे दंड दे ॥ १८ ॥

स्थिते प्रेतस्य पौत्रे च भार्य्यायां च पितर्य्यपि ।
पौत्र एव धनार्हः स्यादधस्ताज्जन्मगौरवात् ॥ १९ ॥

यदि मृतकपुरुषका पोता, भार्या और पिता विद्यमान हों तो यह पोता ही धनका अधिकारी होगा, क्योंकि उत्तराधिकारी होनेके कारण पोतेको ही गौरव अधिक है ॥ १९ ॥

अपुत्रस्य स्थिते तात सोदरे च पितामहे ।
जन्मतः सन्निकर्षेण पितैवास्य धनं हरेत् ॥ २० ॥

अपुत्रक मृतक पुरुषका पिता और सहोदर यदि जीवित हो तो जन्मके अनुसार सम्बन्धके हेतु पिता ही उस धनका अधिकारी होगा ॥ २० ॥

विद्यमानासु कन्यासु सन्निकृष्टास्वपि प्रिये ।
मृतस्य पौत्रो धनभाग्यतो मुख्यतरः पुमान् ॥ २१ ॥

हे प्रिये ! अत्यन्त निकट कन्याके रहते हुए पोता धनका अधिकारी होगा, क्योंकि स्त्रीकी अपेक्षा पुरुष जाति ही श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

धनं मृतेन पुत्रेण पौत्रं याति पितामहात् ।
अतोऽत्र गीयते लोकैः पुत्ररूपः स्वयं पिता ॥ २२ ॥

यदि धनवान्का पुत्र पहले मर गया हो तो वह दादेका धन पोतेके पास चला जायगा, इस कारण संसारमें कहा करते हैं कि पिता स्वयं ही पुत्रस्वरूप है ॥ २२ ॥

औद्वाहिकेऽपि सम्बन्धे ब्राह्मी भार्य्या वरीयसी ।
अपुत्रस्य हरेद्रिक्थं पत्युर्देहार्द्धहारिणी ॥ २३ ॥

विवाहके सम्बन्धमें ब्राह्मविधिके अनुसार विवाहिता भार्या ही श्रेष्ठ है । अपुत्रककी मृत्यु होनेपर स्वामीकी अर्द्धांग-स्वरूप वह ब्राह्मी भार्या ही धनकी अधिकारिणी होगी॥२३॥

पतिपुत्रविहीना तु सम्प्राप्य स्वामिनो धनम् ।
नैव दातुं न विक्रेतुं समर्था स्वधनं विना ॥ २४॥

पतिपुत्रहीन नारी यदि स्वामीके धनको पावे तो वह स्त्री अपने धनके सिवाय इस स्वामीके धनको न बेंच सकती है न दूसरेको दे सकती है ॥ २४ ॥

पितृभिः श्वशुरैर्व्वापि दत्तं यद्धर्म्मसम्मतम् ।
स्वकृत्योपार्जितं यच्च स्त्रीधनं तत्प्रकीर्तितम्॥२५॥

पिताका दिया हुआ धन, श्वशुरका दिया हुआ धन अथवा धर्मके अनुसार अपने परिश्रमसे पैदा किया हुआ धन स्त्रीधन कहलाता है ॥ २५ ॥

तस्यां मृतायामृक्थं तत्पुनः स्वामिपदं व्रजेत् ।
तदासन्नतरोरिक्थमधउर्द्धक्रमाद्धरेत् ॥ २६ ॥

जिस स्त्रीने स्वामीके धनको पाया है उसके मरनेपर वह धन फिर उसके स्वामीका धन हो जाता है और उसके स्वामीके अधस्तन वा ऊर्ध्वतन पुरुष निकटके अधिकारी उसको पावेंगे ॥ २६ ॥

मृते पत्यौ स्वधर्म्मेण पतिबन्धुवशे स्थिता ।
तदभावे पितृबन्धोस्तिष्ठन्ती दायमर्हति ॥ २७ ॥

स्वामीके मरे पीछे स्त्री अपने धर्ममें निरत रहकर पतिके बन्धुओंके वशमें रहे, यदि वे न हों तो :पिताके बन्धुओंके वशमें रहे, नहीं तो धनकी अधिकारिणी नहीं होगी ॥ २७ ॥

शङ्कितव्यभिचारापि न पत्युर्दायभागिनी ।
लभते जीवनं वस्त्रं भर्त्तुर्विभवहारिणः॥ २८ ॥

जिस स्त्रीके ऊपर व्यभिचारकी शंका होगी वह स्वामीके धनको नहीं पावेगी, परन्तु जो पुरुष उसके स्वामीके धनका अधिकारी होगा वह विभवके अनुसार उसे केवल जीविका तथा वस्त्र देगा ॥ २८ ॥

बह्वयश्चेद्वनितास्तस्य स्वर्य्यातुर्धर्म्मतत्पराः ।
भजेरन्स्वामिनो वित्तं समांशेन शुचिस्मिते ॥२९॥

हे शुचिस्मिते! यदि स्वर्ग प्राप्त हुए पुरुषके बहुतसी स्त्रियां हों और वे सब अपने धर्ममें निरत हों तो सब ही स्वामीके धनका समान अंश ग्रहण करें ॥ २९ ॥

पत्युर्धनहरायाश्च मृतौ भर्तृसुतास्थितौ ।
पुनः स्वामिपदं गत्वा धनं दुहितरं व्रजेत् ॥३०॥

जो स्वामीके धनको भोगनेवाली यह सब स्त्रियें मर जाँय और स्वामीकी कन्या वर्तमान हो तो वह धन फिर स्वामी-धनके स्थानमें होकर दुहितृगामी होगा ॥ ३० ॥

एवंस्थितायां कन्यायामृक्थं पुत्रवधूगतम् ।

तन्मृतौ स्वामिनं प्राप्य श्वशुरात्तत्सुतामियात् ३१॥

यदि कन्याके रहते पुत्रवधूको धन मिले अर्थात् धनीकी मौतके पीछे पुत्र धनाधिकारी हो परलोकको चला जाय और उसकी स्त्री वह धन पावे तो वह धन इस मृतपुत्रवधूके स्वामीका स्थानीय होकर उसकी पितृदुहिता अर्थात् मृत-पुत्रवधूके स्वामीकी बहनको मिलेगा ॥ ३१ ॥

पितामहस्य सत्त्वेऽपि वित्तं मातृगतं शिवे ।

तस्यां मृतायां पुत्रेण भर्त्रा श्वशुरगं भवेत् ॥ ३२ ॥

हे शिवे ! इस प्रकार दादाके रहते यदि धन मातृगामी हो तो माताकी मृत्युके पीछे वह धन पुत्रधनका स्थानीय होकर पितृसम्बन्धसे दादाके पास जायगा ॥ ३२ ॥

मृतस्योर्ध्वगतं वित्तं यथा प्राप्नोति तत्पिता ।

जनन्यपि तथाप्नोति पतिहीना भवेद्यदि ॥ ३३ ॥

मृतकपुरुषका ऊर्ध्वगत धन जैसे पिताको प्राप्त होता है वैसे ही पतिहीन माताको भी मिलता है ॥ ३३ ॥

अतः सत्यां जनन्यां तु विमाता न धनं हरेत् ।

मृते जनन्यास्तं प्राप्य पित्रा गच्छेद्विमातरम् ३४॥

माताके रहते सौतली माको धन नहीं मिल सकता, परंतु यदि इस माताकी मृत्यु हो तो पिताके सम्बन्धसे सौतेली माता भी धनकी भागिनी होगी ॥ ३४ ॥

अधस्तनानां विरहाद्यथा रिक्थं न यात्यधः ।
येनैवाधस्तनं प्राप्तं तेनैवोर्द्ध्वं तदा व्रजेत् ॥ ३५ ॥

यदि अधस्तन न हो तो धन अधोगामी नहीं होता, परन्तु वह धन जिस नियमसे अधोगामी हो सकता है उस नियमसे ही ऊर्ध्वगामी होगा, अर्थात् जो जन्मसम्बन्धसे निकट है वही आगे धनका अधिकारी होगा ॥ ३५ ॥

अतः स्थितौ पितृव्यस्य धनं स्वसृगतंच सत् ।
पत्यौस्थितेऽनपत्याया मृतौ पितृव्यमाश्रयेत् ३६॥

अतएव चचाके रहते यदि कन्या धनको पाजाय और यह कन्या विना पुत्र उत्पन्न किये पतिके जीवित रहते परलोकको चली जाय तो वह धन चचाको ही मिलेगा ॥ ३६ ॥

ऊर्द्ध्वाद्वित्तमधः प्राप्य पुमांसमवलम्बते ।
अतः सत्यां सोदरायां वैमात्रेयो धनं हरेत् ॥ ३७॥

धन ऊपरको पहुँचकर जब नीचेको चलता है तब वह पुरुषको ही पहुँचाता है, इस कारण सगी बहनके वर्तमान रहते भी सौतेला भाई धनका भागी होता है ॥ ३७ ॥

स्थितायां सोदरायां च विमातुः पुत्रसन्ततौ ।
वैमात्रेयगतं वित्तं वैमात्रेयान्वयो भवेत् ॥ ३८ ॥

सगी बहन और विमाताके पुत्रके वर्तमान रहते चचेड़े भाईके पास गया हुआ धन सौतेले भाईके वंशवाले ही पा सकते हैं ॥ ३८ ॥

मृतस्य सोदरो भ्राता वैमात्रेयस्तथा शिवे ।
धनं पितृगतत्वेन विभजेतां समांशिनौ ॥ ३९ ॥

हे शिवे ! जो मृतकपुरुषका सगा भाई और सौतेला भाई वर्तमान हो तो वह धन पितृगत होकर पितृसम्बन्धसे सबन्धी, सहोदर और सौतेला भाई यह बराबर बाँट ले ॥३९॥

कन्यायां जीवितायां च तदपत्यं न दायभाक् ।
यत्र यद्बाधितं वित्तं तन्मृतावपरं व्रजेत् ॥ ४० ॥

कन्याके जीवित रहते हुए उसके गर्भकी संतान धनाधिकारी नहीं होगी, क्योंकि यहांपर कन्या ही उसकी बाधक है, उस बाधकस्वरूप कन्याकी जब मृत्यु हो जाय तब यह धन उसका सन्तान पावेगा ॥ ४० ॥

विभजेयुर्दुहितरः पुत्राभावे पितुर्वसु ।
उद्वाहयन्त्योऽनूढां तु पितुः साधारणैर्धनैः ॥ ४१ ॥

यदि पुत्र न हो तो कन्याओंको चाहिये कि अपने पिताके धनको बाँट लें, परन्तु इस साधारण पिताके धनसे पहले अनूढा कन्याका विवाह कर देना चाहिये ॥ ४१ ॥

असन्तत्या मृतायाश्च स्त्रीधनं स्वामिनं व्रजेत् ।
अन्यत्तु द्रविणं यायादास्तं तत्पदमाश्रयेत् ॥४२॥

संतानरहित स्त्रीकी मृत्यु होनेपर उसका स्वामी स्त्रीधनको प्राप्त करे। स्त्रीधनके सिवाय और धन जिस पुरुषने दिया था वही पुरुष उसको प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥

प्रेतलब्धधनैर्नारी विदध्यादात्मपोषणम् ।
पुण्यं तु तदुपस्वत्वैर्न शक्ता दानविक्रये॥ ४३ ॥

उत्तराधिकारके संबंधसे जो धन स्त्रीके मिले उससे वह अपना भरण पोषण करे और उसकी आमदनीसे पुण्यकर्म करे, परन्तु वह इस सम्पत्तिको न दूसरेको दे सकती है, न बेंच सकती है ॥ ४३ ॥

पितामहस्य स्नुषायां च सत्यां तातविमातरि ।
पितामहगतं रिक्थं तत्पुत्रेण स्नुषां व्रजेत् ॥४४॥

जहाँपर चाची या सौतली चाची विद्यमान हों वहां जो धन दादेपर पहुँच कर फिर चचाके पास पहुँचे तो वह धन चाचीको ही मिलेगा ॥ ४४ ॥

पितामहे पितृव्ये च तथा भ्रातरि जीवति ।
अधोभवानां मुख्यत्वाद्भ्रातैव धनभाग्भवेत् ॥४५॥

यदि दादा, चचा और भ्राता जीवित हो नीचेके पुरुषोंकी प्रधानताके हेतु भैया ही धनका भागी होगा ॥ ४५ ॥

पितृव्यात्सन्निकर्षेऽत्र तुल्यौ भ्रातृपितामहौ ।
धनं पितृपदं गत्वा प्रयातुर्भ्रातरं व्रजेत् ॥ ४६ ॥

चचासे सम्बन्धकी निकटताके हेतु भैया और दादा दोनों ही बराबर निकट आते हैं। ऐसी जगह मृतक पुरुषका धन पितृस्थानमें पहुँचकर भैयोंको पहुँचता है ॥ ४६ ॥

स्थितेऽप्यपत्ये दुहितुः प्रेतस्य पितरि स्थिते ।
दुहित्रपत्यं धनभाग्धनं यस्मादधोमुखम् ॥ ४७ ॥

जो मृतक पुरुषका धेवता और पिता वर्तमान हो तो धेवता ही धनका अधिकारी होगा, क्योंकि यह धन स्वभावसे ही नीचेको पहुँचता है ॥ ४७ ॥

स्वप्रयातुः स्थिते ताते तथा मातरि कालिके ।
पुंसो मुख्यतरत्वेन धनहारी भवेत्पिता ॥ ४८ ॥

हे कालिके ! यदि मृतकपुरुषके माबाप जीवित हों तो पुरुषकी विप्रधानताके हेतु पिता ही अधिकारी होगा ॥४८॥

स्थितः स्वपितृसापिण्डो वर्त्तमानेऽपि मातुले ।
प्रेतस्य धनहारी स्यात्पितुः सम्बन्धगौरवात्॥४९॥

यदि मृतकपुरुषके पिताका सपिंड और मामा जीवित हो तो पिताके सम्बन्धके गौरवसे पिताका सपिंड पुरुष ही धनको पावे ॥ ४९ ॥

अधस्ताद्गमनाभावे धनमूर्द्ध्वभवं गतम् ।
तत्रापि पुंसां मुख्यत्वादितं पितृकुलं शिवे ।
अतोऽत्र सन्निकृष्टोऽपि मातुलो नाप्नुयाद्धनम् ५०॥

हे शिवे! जहाँपर धन नीचेको नहीं चलता ऐसी जगह वह ऊपरको पहुँचता है, उसमें पुरुषकी श्रेष्ठताके हेतु पहले धन पिताके ही कुलमें जाता है, इस कारणसे इस स्थानमें मामा निकटका होकर भी धनका भागी नहीं हो सकता ॥ ५० ॥

अजीवत्पितृकः पौत्रः पितृव्यैः सह पार्वति ।
पितामहस्य द्रविणात्स्वपितुर्दायमर्हति ॥ ५१ ॥

जहाँपर मातापिताहीन पोता और पुत्र दोनों हैं वहांपर मातापिताहीन पोता पिताके नियत धनके अंशको पावेगा ५१

भ्रातृहीना तथा पौत्री पितृव्यैः समभागिनी ।
पितामहधनं साप्याहरेच्चेन्मृतमातृका ॥ ५२ ॥

भाईहीन और माता पिताहीन पोती, यदि अपने धर्ममें रहे तो दादाके धनमेंसे चचाके सहित धनका बराबर भाग पावेगी ॥ ५२ ॥

सत्यां पौत्र्याः पितामह्यां पौत्र्याः पितृष्वसर्य्यपि ।
वित्ते पितृगते देवि पौत्री तत्राधिकारिणी ॥५३॥

हे देवि ! जो दादी और बुआ दोनों जीवित हों तो पिताको पहुँचते हुए दादाके धनकी पोती ही मालिक होगी ॥ ५३ ॥

अधोगामिषु वित्तेषु पुमाञ्ज्यायानधस्तनः ।
ऊर्द्धगामिधने श्रेष्ठः पुमानूर्द्धोर्द्धवो भवेत् ॥ ५४ ॥

जो धन नीचेको पहुँचता हो तो नीचेके पुरुष ही उसमें प्रधान हैं, यदि धन ऊपरको पहुँचे तो ऊपरके पुरुषोंको प्रधानता ही देखी जायगी ॥ ५४ ॥

अतः स्नुषायां पौत्र्यां च सत्यां दुहितरि प्रिये ।
प्रेतस्य विभवं हर्तुं नैव शक्नोति तत्पिता ॥ ५५ ॥

हे प्रिये! इस कारणसे बेटेकी बहू, पोती और कन्याके जीवित रहते मृतकपुरुषका धन मृतकपुरुषका पिता ग्रहण नहीं कर सकता ॥ ५५ ॥

यदा पितृकुले न स्यान्मृतस्य धनभाजनम् ।
पूर्वोक्तविधिना रिक्थं मातामहकुलं भजेत् ॥ ५६ ॥

जो मृतक पुरुषके कुलमें कोई उत्तराधिकारी न हो तो पहली कही हुई युक्ति और विधिके अनुसार वह मातामहके कुलमें जायगा ॥ ५६ ॥

मातामहगतं वित्तं मातुलैस्तत्सुतादिभिः ।
अधऊर्द्ध्वक्रमेणैवं पुमांसं स्त्रियमाश्रयेत् ॥ ५७ ॥

नानाके कुलमें गये हुए धनको मामा और मामाके पुत्र पावेंगे, यह भी पहले नीचेके पुरुष, उनके न होनेपर ऊँचेके पुरुष और प्रधानताके हेतु पुरुषजाति, तत्पश्चात् निकृष्टताके हेतु नारीजातिको धनका अधिकार मिलेगा ॥ ५७ ॥

ब्राह्मान्वये विद्यमाने पित्रोः सापिण्डने स्थिते ।
मृतस्य शैवीतनयो न पितुर्दायभाग्भवेत् ॥ ५८ ॥

जो ब्राह्मविवाहकी स्त्रीके सन्तान हो और माताके सपिंडके रहते शैवविवाहसे ब्याही हुई स्त्रीका सन्तान धनका भागी नहीं होगा ॥ ५८ ॥

शैवी पत्नी च तत्पुत्रा लभेरन्धनभागिनः ।
ग्रासमाच्छादनं भद्रे स्वप्रयातुर्यथाधनम् ॥ ५९ ॥

हे भद्रे ! जो लोग इस धनके अधिकारी होंगे उनसे शैव-विवाहसे ब्याही भार्या और उसके गर्भसे हुई सन्तान मृतक पुरुषके विभवानुसार उदरपूरणको कुछ पावेंगे ॥ ५९ ॥

शैवोद्वाहं प्रकुर्व्वन्तीं शैवभर्त्तैव पालयेत् ।
सौम्याश्चेन्नाधिकारोऽस्याः पित्रादीनां धने प्रिये ६०

हे प्रिये ! शैवविवाहसे विवाही हुई भार्याको शैव स्वामी ही पालन करे, जो यह स्त्री व्यभिचारिणी हो तो उसका पालन नहीं करे; यह शैवी भार्या पिता, माता इत्यादिके धनकी अधिकारिणी नहीं होती ॥ ६० ॥

अतः सत्कुलजां कन्यां शैवैरुद्वाहयन्पिता ।
क्रोधाद्वा लोभतो वापि स भवेल्लोकगर्हितः ॥६१॥

इस कारण क्रोध होनेसे या लोभके वश होकर अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई कन्याको पिता शैवविवाहसे ब्याह देगा तो वह संसारमें घृणित और निन्दित होगा ॥ ६१ ॥

शैवी तदन्वयाभावे सोदको ब्रह्मदो नृपः ।
हरेयुः क्रमतो वित्तं मृतस्य शिवशासनात् ॥ ६२॥

महादेवजीकी आज्ञा है कि, यदि शैवीभार्या या उसके गर्भसे उत्पन्न हुआ सन्तान न हो तो क्रमानुसार समानोदक अन्नदाता और राजा मृतकपुरुषके धनको ग्रहण करे ॥६२॥

पिण्डदात्सप्तपुरुषाः सपिण्डाः कथिताः प्रिये ।
सोदका दशमान्ताः स्युस्ततः केवलगोत्रजाः ६३॥

हे प्रिये! पिंडदातासे सातवें पुरुषतकको सपिंडशब्दसे पुकारा जा सकता है, आठवेंसे लेकर दशमपुरुषतक समानोदक कहा जायगा, जो लोग दशम पुरुषके अन्तर्गत नहीं हैं उनको केवल सगोत्र कहा जा सकता है ॥ ६३ ॥

विभक्तं द्राविणं यच्च संसृष्टं स्वेच्छया तु चेत् ।
अविभक्तविधानेन भजेरंस्तद्धनं पुनः ॥ ६४ ॥

जो धन एकवार विभागकर फिर अपनी इच्छाके अनुसार मिला लिया गया है वह अविभक्त धन है । विभागकी विधिके अनुसार इस अविभक्त धनको फिर बाँटे ॥ ६४ ॥

अविभक्ते विभक्ते वा यस्य यादृग्विभागिता ।
मृतेऽपि तस्य दायादास्तादृग्विभवभागिनः ॥६५॥
ये यस्य धनहर्त्तारो भवेयुर्ज्जीवनावधि ।
दद्युः पिण्डं त एवास्य शैवभार्य्यासुतं विना ॥६६॥

जब बँटे हुए या बचे हुए धनमें जिसका जैसा अंश नियत है वह पुरुष यदि मर जाय तो उसका उत्तराधिकारी पुरुष जबतक जीवित रहे तबतक उसको पिंड दे । परन्तु शैवभार्याका पुत्र पिण्डदान नहीं कर सकेगा॥ ६५ ॥ ६६ ॥

लोकेऽस्मिञ्जन्मसम्बन्धाद्यथाशौचं विधीयते ।
धनभागित्वसम्बन्धात्त्रिरात्रं विहितं तथा ॥ ६७ ॥

जिस प्रकार जन्मके सम्बन्धमें अशौचकी व्यवस्था है वैसे ही उत्तराधिकारके सम्बन्धमें तीन रात्रितक अशौच होता है ॥ ६७ ॥

पूर्णेऽशौचेऽथवाऽपूर्णे तत्कालाभ्यन्तरे श्रुते ।
श्रवणाच्छेषदिवसैर्विशुद्ध्येयुर्द्विजातयः ॥ ६८ ॥

जो पूर्ण अशौच अथवा खंड अशौच हो और जो नियत हुए अशौचकालके मध्यमें वह सुना जाय तो अशौचके जितने दिन बाकी रहे होंगे द्विजातिगण उतने ही दिनमें शुद्धि प्राप्त कर सकेंगे ॥ ६८ ॥

कालातीते तु विज्ञाते खण्डेऽशौचं न विद्यते ।
पूर्णे त्रिरात्रं विहितं न चेत्संवत्सरात्परम् ॥ ६९ ॥

यदि अशौचकालके बीत जानेपर वर्षभरके बीचमें खण्ड अशौचका कारण सुना जाय तो अशौच नहीं होता । यदि अशौचकालके व्यतीत होजानेपर वर्षके भीतर ही पूर्ण अशौचका कारण सुना जाय तो तीन रात्रितक अशौच होता है । वर्षके उपरान्त कारण श्रवण करनेसे कोई अशौच नहीं होता ॥ ६९ ॥

वर्षातीतेऽपि चेन्मातुः पितुर्वा मरणश्रुतौ ।
त्रिरात्रमशुचिः पुत्रस्तथा भर्त्तुः पतिव्रता ॥ ७० ॥

यदि एकवर्ष बीतनेपर पुत्र, पिता या माताकी मृत्युक संवाद सुना जाय अथवा पतिव्रता स्त्री स्वामीके मरनेका समाचार सुने तो तीन रात्रितक अशौच रहेगा ॥ ७० ॥

अशौचाभ्यन्तरे यस्मिन्नशौचान्तरमापतेत् ।
गुर्वशौचेन मर्त्यानां शुद्धिस्तत्र विधीयते ॥ ७१ ॥

जो एक अशौचमें दूसरा अशौच हो जाय तो गुरु अशौचसे अर्थात् दीर्घकालव्यापी अशौचसे मनुष्योंको शुद्धि प्राप्त होगी ॥ ७१ ॥

अशौचानां गुरुत्वं च कालव्यापित्वगौरवात् ।
व्याप्यव्यापकयोर्मध्ये गरीयो व्यापकं स्मृतम् ७२॥

बहुत कालतक रहनेवाले अशौचको गुरु कहा जाता है, इस कारण थोड़े समयतक रहनेवाले अशौचको लघु कहा जाता है। व्याप्य और व्यापक इन दो प्रकारके अशौचोंमें व्यापक अशौचका ही गुरुत्व (भारीपन) माना जाता है७२॥

यद्यशौचान्तदिवसे पतेदपरसूतकम् ।
पूर्वाशौचेन शुद्धिः स्यादाद्यवृद्ध्या दिनद्वयम् ७३॥

जो मरण-अशौचके या जन्म-अशौचके पिछले दिनरातके बीचमें और कोई मरणका या जन्मका अशौच आ पड़े तो पहले अशौचसे ही उसका अशौच जायगा । अर्थात् खण्ड अशौचको ग्रहण नहीं किया जायगा, यदि पूर्ण अशौच हो तो पहले अशौचके पीछे एक दिन बढ़ा लेना चाहिये७३

तावत्पितृकुलाशौचं यावन्नोद्वहनं स्त्रियाः ।
जाते परिणये पित्रोर्मृतौ त्र्यहमुदाहृतम् ॥ ७४ ॥

विवाह न होनेतक स्त्रियोंका अशौच पितृकुलमें होता है, विवाही नारीके माता पिता मरे तो तीन रात्रितक उसको अशौच होता है ॥ ७४ ॥

विवाहानन्तरं नारी पतिगोत्रेण गोत्रिणी ।
तथा गृहीतगोत्रेण दत्तपुत्रस्य गोत्रता ॥ ७५ ॥

विवाह हो जानेपर स्त्री पतिके गोत्रको प्राप्त हो जाती है, ऐसे ही गोद लिया पुत्र गोद लेनेवालेके गोत्रको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥

सुतमादाय सम्मत्या जनन्या जनकस्य च ।
स्वगोत्रनामान्युल्लिख्य संस्कुर्यात्स्वजनैः सह॥७६॥

माता पिता दोनोंकी सम्मतिके अनुसार दत्तकपुत्र ले लेनेपर ग्रहण करनेवाला अपना गोत्र और नाम उच्चारण कर अपने कुटुम्बियोंके साथ उस दत्तकपुत्रका संस्कार करे ॥ ७६ ॥

औरसेऽपि यथा पित्रोर्धने पिण्डेऽधिकारिता ।
आदात्रोर्दत्तके तद्वद्यतोऽस्य पितरौ हि तौ ॥७७॥

औरस पुत्र जैसे पिता माताका धनाधिकारी और पिण्डाधिकारी होता है, वैसे ही दत्तकपुत्र भी दत्तक लेनेवालेके

धनका और पिण्डका अधिकारी होगा, कारण कि ग्रहण करनेवाले ही इस दत्तकपुत्रके पिता माता हैं ॥ ७७ ॥

आ पञ्चाब्दं शिशुं गृह्णन्सवर्णात्परिपालयेत् ।

पञ्चवर्षाधिको बालो दत्तको न प्रशस्यते ॥७८॥

सवर्णसे पाँचवर्षकी उमरवाले अथवा इससे कम उमरके बालकको गोद लेकर प्रतिपालन करे। दत्तकके ग्रहण करनेमें पांचवर्षसे अधिक उमरवाला बालक श्रेष्ठ नहीं है ॥७८॥

भ्रातृपुत्रोऽपि दत्तश्चेद्ग्रहीतैव भवेत्पिता ।

उत्पादकः पितृव्यः स्यात्सर्वकर्मसु कालिके॥७९॥

हे कालिके ! जो भ्राताका पुत्र (भतीजा) दत्तक हो तो दत्तकग्रहीता ही उस दत्तकपुत्रका पिता होगा और उसका बाप सब कार्योंमें ही चचाके समान समझा जायगा ॥७९ ॥

यो यस्य धनहर्त्ता स्यात्स तद्धर्म्माणि पालयेत् ।

संरक्षेन्नियमांस्तस्य तद्बन्धून्परितोषयेत्॥ ८० ॥

जो पुरुष जिसके, धनका अधिकारी हो वही स्वामीके धर्म व नियमकी रक्षा करे और सब प्रकारसे धनीके बन्धुओं को सन्तुष्ट करे ॥ ८० ॥

कानीना गोलकाः कुण्डा अतिपातकिनश्च ये ।

नाशौचं मरणे तेषां नैव दायाधिकारिता ॥८१॥

कानीन, गोलक, कुंड (१) और अतिपातकी पुत्रोंके मरणमें अशौच नहीं होगा और वे धनके अधिकारी भी नहीं हो सकेंगे ॥ ८१ ॥

लिङ्गच्छेदो दमो येषां यासां नासानिकृन्तनम् ।
महापातकिनां चापि मृतौ नाशौचमाचरेत् ॥८२॥

जिन पुरुषोंका लिङ्गच्छेदरूप दण्ड हुआ है, अथवा जिन स्त्रियोंकी नाक राज़दंडसे काटी गयी है, अथवा जो (ब्रह्मह-त्यादि करके) महापातकी हुए हैं, उनके मरनेसे अशौच ग्रहण नहीं किया जायगा ॥ ८२ ॥

नृणामुद्देशहीनानां परिवारान्धनान्यपि ।
पालयेद्रक्षयेद्राजा यावद्द्वादशवत्सरम् ॥ ८३ ॥

जो पुरुष निरुद्देश (बेपते या गुम) हो गये हैं उनके परिवार और धनकी रक्षा बारहवर्षतक राजाको करनी चाहिये ॥ ८३ ॥

द्वादशाब्दे गते तेषां दर्भदेहान्विदाहयेत् ।
त्रिरात्रान्ते तत्सुताद्यैः प्रेतत्वं परिमोचयेत् ॥८४॥

बारह वर्ष बीतनेपर इस निरुद्देश पुरुषके कुशसे बनेहुए देहका दाह करावे । उसके पुत्रादि तीन राततक अशौच ग्रहण करके श्राद्धादिसे उसके प्रेतपनको छुड़ा दें ॥ ८४ ॥

---

(२)पिताके घर क्वाँरी कन्याके गर्भमें छिपे२जिस पुत्रका जन्म हो उसको 'कानीन' कहते हैं, विधवाके गर्भमें उपपतिसे गुप्तभाव करके जिस पुत्रका जन्म हुआ है उसका नाम 'गोलक' है और स्वामीके जीवित रहते यारके द्वारा जो पुरुष गूढभावसे जन्मता है उसका नाम 'कुंड' है ।

ततस्तत्परिवारेभ्यः पुत्रादिक्रमतो धनम्।
विभज्य नृपतिर्दद्यादन्यथा पातकी भवेत्॥ ८५॥

फिर इस खोये हुए पुरुषका धन यथावद् बाँटकर पुत्रादि क्रमसे उसके परिवारवालोंको राजा दे दे, क्योंकि न देनेसे राजाको पाप होगा॥ ८५॥

न कोऽपि रक्षिता यस्य दीनस्यापद्गतस्य च।
तस्यैव नृपतिः पाता यतो भूपः प्रजाप्रभुः॥ ८६॥

अनाथ, दीन और विपद्में पड़े हुए पुरुषकी राजा रक्षा करे, क्योंकि राजा ही प्रजाका स्वामी है॥ ८६॥

यद्यागच्छेदनुद्दिष्टो विभागान्तेऽपि कालिके।
तस्यैव दाराः पुत्राश्च धनं तस्यैव नान्यथा॥८७॥

हे कालिके! यदि खोया हुआ पुरुष विभाग होनेके पीछे आ जाय तो वह अपने स्त्री, पुत्र और सब धनको पायेगा, इसमें अन्यथा नहीं हो सकता॥ ८७॥

न समर्थः पुमान्दातुं पैतृकं स्थावरं च यत्।
स्वजनायाथवान्यस्मै दायादानुमतिं विना॥८८॥

विना उत्तराधिकारियोंकी सम्मतिके पुरुषजाति भी स्थावर पैतृकधन (जमीनदारी इत्यादि) स्वजनको या और किसी पुरुषको दान नहीं कर सकता॥ ८८॥

यत्तु स्वोपार्ज्जितं रिक्थं स्थावरं स्थावरेतरम्।
अस्थावरं पैतृकं च स्वेच्छया दातुमर्हति॥ ८९॥

अपना पैदा किया हुआ स्थावर या अस्थावर धन और पैतृक अस्थावर धन अपनी इच्छाके अनुसार दानादि किया जा सकता है ॥ ८९ ॥

स्थिते पुत्रेऽथवा पत्न्यां कन्यायां तत्सुतेऽपि वा ।
जनके च जनन्यां वा भ्रातर्य्येव स्वसर्य्यपि॥९०॥

यदि पुत्र विद्यमान हो, अथवा स्त्री हो या कन्या या धेवता विद्यमान हो अथवा माता, पिता, भ्राता वा बहन जीवित हो ॥ ९० ॥

स्वार्जितं स्थावरधनमस्थावरधनं च यत् ।
अस्थावरं पैतृकं च दातुं सर्व्वं क्षमो भवेत्॥९१॥

तो भी अपना पैदा किया हुआ स्थावर और अस्थावर धन और पैतृक अस्थावर (नगदी) धन दान किया जा सकता है ॥ ९१ ॥

धनमेवं विधानेन दत्तं वा धर्म्मसात्कृतम् ।
पुंसां तदन्यथा कर्तुं पुत्राद्यैर्नैव शक्यते ॥ ९२ ॥

जो ऐसा धन किसीको इस प्रकारसे पुरुष दे दे या धर्म-कर्ममें लगा दे तो उसके पुत्र पौत्रादि उसके विपरीत नहीं कर सकते ॥ ९२ ॥

धर्म्मार्थं स्थापितं रिक्थं दाता रक्षितुमर्हति ।
न प्रभुःपुनरादातुं धर्म्मो ह्यस्य यतः प्रभुः ॥९३॥

जो धन धर्मार्थ लगाया गया है धनका देनेवाला ही उसकी रक्षादि करेगा, परन्तु फिर वह भी उस धनको ग्रहण नहीं कर सकता कारण कि धर्म ही उस धनका अधिकारी हो गया ॥ ९३ ॥

मूलं वा तदुपस्वत्वं यथासङ्कल्पमम्बिके ।
स्वयं वा तत्प्रतिनिधिर्धर्म्मार्थं विनियोजयेत् ॥९४॥

हे अम्बिके! अपने आप या प्रतिनिधि (कारिन्दा, मुनीम) के संकल्पके अनुसार मूलधन या उसकी आमदनी धर्मकार्यमें लगा दे ॥ ९४ ॥

स्वोपार्जितधनस्यार्द्धं दायादायापि चेद्धनी ।
दद्यात्स्नेहेन तच्चान्यो नान्यथाकर्तुमर्हति ॥ ९५॥

यदि किसी उत्तराधिकारीको स्नेहके वश धनका स्वामी अपने धनका ऊर्ध्वभाग दे दे तो और कोई उसके विपरीत बात नहीं कर सकता ॥ ९५ ॥

यदि स्वोपार्जितस्यार्द्धमेकस्मै धनहारिणाम् ।
ददात्यन्यैश्च दायादैः प्रतिरोद्धुं न शक्यते ॥ ९६॥

उत्तराधिकारियोंमेंसे यदि कोई एक पुरुषको ही अपने पैदा किये हुए धनका आधा भाग दे दे तो और उत्तराधिकारी उसके विरुद्ध, आचरण नहीं कर सकेंगे ॥ ९६ ॥

एकेन पितृवित्तेन यत्र वित्तमुपार्जितम् ।
पित्रे समांशा दायादा न लाभार्हा विनार्जकम् ९७॥

जो बहुतसे भाइयोंमेंसे एक भाई पैतृकधनसे धनको पैदा करे, तो उस पैतृकधनमें ही सब भाइयोंका यथायोग्य अंश रहेगा, पैदा किया हुआ धन पैदा करनेवालेके सिवाय और कोई नहीं पा सकता ॥ ९७ ॥

पैतृकाणि च वित्तानि नष्टेऽप्युद्धारयेत्तु यः ।
दायादानां तद्धनेभ्य उद्धर्त्ता द्व्यंशमर्हति ॥९८॥

यदि नष्ट हुए पैतृक द्रव्यका उद्धार एक भ्राता कर ले तो उस धनसे उद्धार करनेवालेको दो भाग मिलेगा और सब भ्राता एक एक अंश पावेंगे ॥ ९८ ॥

पुण्यं वित्तं च विद्या च नाश्रयेदशरीरिणम् ।
शरीरं तु पितुर्यस्मात्किन्न स्यात्पैतृकं वसु ॥९९॥

अशरीरी पुरुषको पुण्य, धन और विद्या यह आश्रय नहीं करते, जब कि यह शरीर पितासे प्राप्त हुआ, तब कौनसा धन पैतृक न होगा ॥ ९९ ॥

पृथगन्नैः पृथग्वित्तैर्म्मनुजैर्यदुपार्जितम् ।
सर्वं तत्पितृसंक्रान्तं तदा स्वोपार्जितं कुतः ॥१००॥

मनुष्य पृथक् अन्न (अलग भोजनादि बनवाकर) और पृथक् धन (मा बापसे अलग) होकर भी जो कुछ पैदा करेंगे वह सब ही पितृसम्बन्धी हैं, अतः अपने पैदा किये धनका स्थल कहां है ? ॥ १०० ॥

अतो महेशि स्वायासैर्येन यद्धनमर्जितम्।

स्वोपार्जितं तदेव स्यात्स तत्स्वामी न चापरः १०१

इस कारण हे महेश्वरि ! जो पुरुष अपने आप परिश्रम करके धन पैदा करे वह उसका ही पैदा किया है अर्थात् उसमें और किसीका अधिकार नहीं है ॥ १०१ ॥

मातरं पितरं देवि गुरुं चैव पितामहान्।

मातामहान्करेणापि प्रहरन्नैव दायभाक् ॥ १०२ ॥

हे देवि ! जो पुरुष माता, पिता, गुरु, दादा या नानाके हाथसे भी प्रहार करे वह धनका अधिकारी नहीं हो सकता ॥ १०२ ॥

निघ्नन्नन्यानपि प्राणैर्न तेषां धनमाप्नुयात्।

हतानामन्यदायादा भवेयुर्धनभागिनः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार उत्तराधिकारिताके सम्बंधसे धन प्राप्त होकर लोभसे या और किसी सम्बंधसे सम्बंधी पुरुषके प्राणोंका नाश करे तो भी वह नाश हुए पुरुषके धनको नहीं पावेगा। उस मरे हुए पुरुषके धनका अधिकारी और कोई उत्तराधिकारी होगा ॥ १०३ ॥

नपुंसकाः पङ्गवश्च ग्रासाच्छादनमम्बिके।

यावज्जीवनमर्हन्ति न ते स्युर्दायभागिनः॥ १०४ ॥

हे अम्बिके! लँगड़े और नपुंसक जीवनभर ग्रासाच्छादन (रोटी कपड़ा) पावेंगे और धनके भागी नहीं हो सकते१०४॥

सस्वामिकं धनं प्राप्तं पथि वा यत्रकुत्रचित् ।
नृपस्तत्स्वामिने प्राप्त्रा दापयेत्सुविचारयन् १०५

यदि कोई पुरुष मार्गमें वा और किसी स्थानमें दूसरेका धन पा जावे, तो राजा सूक्ष्म विचार करके वह धन उस धनके स्वामीको दिलावे ॥ १०५ ॥

अस्वामिकानां जीवानामस्वामिकधनस्य च ।
प्राप्ता तत्र भवेत्स्वामी दशमांशं नृपेऽर्पयेत् १०६॥

यदि कोई पुरुष अस्वामिक (अनाथ बेवारिस) धन या जीव पावे तो पानेवाला ही उसका अधिकारी होगा, परन्तु राजा उसका दशमांश ग्रहण करे ॥ १०६ ॥

स्थावरं धनमन्यस्मै स्थिते सान्निध्यवर्त्तिनि ।
योग्ये क्रेतारि विक्रेतुं न शक्तः स्थावराधिपः १०७॥

जन्मके सम्बन्धसे या विवाहके सम्बन्धसे निकट होनेके कारण उचित क्रेता (खरीददार) जो मोल लनेका अभिलाषी हो तो स्थावर स्वामी (जिमींदार) और किसीके हाथ स्थावर सम्पत्ति (जायदाद इत्यादि) नहीं बेंच सकेगा ॥ १०७ ॥

सान्निध्यवर्त्तिनां ज्ञातिः सवर्णो वा विशिष्यते ।
तयोरभावे सुहृदो विक्रेत्रिच्छा गरीयसी ॥१०८॥

मोल लेनेवालोंमें क्रमानुसार सपिंड, समानोदक, सगोत्र और सजातीय पुरुष स्थावर सम्पत्तिको मोल ले सकेंगे; यदि

यह लोग मोल लेनेमें असमर्थ हों तो इष्ट मित्र मोल ले; बहुतसे इष्ट मित्र हों तो बेंचनेवाला जिसको चाहे उसके हाथ अपनी स्थावर सम्पत्ति बेंच डाले ॥ १०८ ॥

निर्णीतमूल्येऽप्यन्येन स्थावरस्य क्रयोद्यमे ।
तन्मूल्यं चेत्समीपस्थो राति क्रेता न चापरः १०९॥

जो और किसीके साथ स्थावर सम्पत्ति(जायदाद इत्यादि) की दर ठहर गयी हो और क्रेता (खरीददार) यदि उस मोल-पर लेनेको तैयार हो उस समयमें निकटका सम्बन्धी वा कोई पुरुष जो उतना ही मूल्य दे, तो वह उसको मोल लेगा और वह उसको मोल नहीं ले सकेगा कि, जिसके साथ दर ठह-रायी गयी थी ॥ १०९ ॥

मूल्यं दातुमशक्तश्चेत्सम्मते विक्रयेऽपि वा ।
सन्निधिस्थस्तदान्यस्मै गृही शक्नोति विक्रये ११०॥

यदि निकटके सम्बन्धका पुरुष मूल्य देनेमें असमर्थ हो अथवा दूसरेके हाथ बेंच देनेकी सम्मति हो तो वह गृहस्थ दूसरे आदमीके हाथ भी वह स्थावरसम्पत्ति बेंच सकेगा ॥११०॥

क्रीतं चेत्स्थावरं देवि ! परोक्षे प्रतिवासिनः ।
श्रवणादेव तन्मूल्यं दत्त्वासौ प्राप्तुमर्हति॥ १११ ॥

हे देवि ! जो निकटसम्बन्धी और पड़ौसीके न जानते (परोक्षमें) और कोई स्थावर सम्पत्तिको मोल ले तो यह निकटका पुरुष यह सुनते ही मोल देकर उस स्थावरसम्पत्ति-को ले सकता है ॥ १११ ॥

क्रेता तत्र गृहारामान्विनिर्म्माति भनक्ति वा ।

मूल्यं दत्त्वापि नाप्नोति स्थावरं सन्निधिस्थितः ११२

जो कोई पुरुष निकट पुरुषके और पड़ोसीके न जानते हुए स्थावरसम्पत्तिको मोल लेकर उसमें गृह उद्यानादि बनावे या तुड़वावे तो निकटका पुरुष मूल्य देनेपर भी उसको प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥ ११२ ॥

करहीना प्रतिहता वन्यारण्यातिदुर्गमा ।

अनादिष्टोऽपि तां भूमिं सम्पन्नां कर्तुमर्हति॥ ११३॥

जो भूमि जलादिके अधिक होनेसे उपजाऊ नहीं है (बनेली है) जंगल है, या अतिदुर्गम है। लोग विना राजाकी आज्ञाके भी ऐसे स्थानको जोतने बोनेके योग्य कर सकते हैं॥ ११३॥

बहुप्रयाससाध्यायास्तस्या भूमेर्म्महीभृते ।

दत्त्वा दशांशं भुञ्जीयाद्भूमिस्वामी यतो नृपः ११४॥

यद्यपि यह भूमि बहुतसी मेहनत करनेसे ठीक होगी तथापि उसमें जो कुछ उत्पन्न होगा उसका दशमांश राजाको देना चाहिये कारण कि,राजा ही सब भूमिका स्वामी है११४

वापीकूपतडागानां खननं वृक्षरोपणम् ।

परानिष्टकरे देशे न गृहं कर्तुमर्हति ॥ ११५ ॥

जिस जगह कुछ पराया बिगाड़ हो सकता है, उस जगह वापी खुदवाना, कुआ बनाना, तड़ाग खनन करना, वृक्ष लगाना अथवा घर बनाना नहीं हो सकता है ॥११५॥

देवार्थं दत्तकूपादौ तथा स्रोतस्वतीजले ।
पानाधिकारिणः सर्वे सेचनेऽन्तिकवासिनः॥११६॥

जो जलाशय और कूपादि देवताके अर्थ बने हैं उनका और नदीका जलपान करनेमें सबका ही अधिकार है और उनके तीरपर वास करके सब ही कोई इस जलका व्यवहार कर सकते हैं ॥ ११६ ॥

यत्तोयसेचनाल्लोका भवेयुर्जलकातराः ।
न सिञ्चेयुर्जलं तस्मादपि सन्निधिवर्त्तिनः॥११७॥

जिसका जल व्यवहार करनेसे मनुष्योंको जलकष्ट हो निकट रहनेवाले भी उसके जलको व्यवहारमम्रें नहीं ला सकेंगे ॥ ११७ ॥

धनानामविभक्तानामंशिनां सम्मतिं विना ।
तथानिर्णीतवित्तानामसिद्धौ न्यासविक्रयौ॥११८॥

जिस स्थावर या अस्थावर धनका विभाग नहीं हुआ, विना भागीदारोंकी सम्मतिके उसको कोई बन्धक (गिरवी) नहीं रख सकता और न बेच सकता है, जिस सम्पत्तिकी अधिकारिताके विषयमें सन्देह है अथवा जिस सम्पत्तिका परिणाम नियत नहीं हुआ है उसका बेचना, गिरवी रखना असिद्ध होगा ॥ ११८ ॥

स्थाप्यतां बद्धवित्तानां ज्ञानान्नष्टेऽप्ययत्नतः ।
तन्मूल्यं दापयेत्तेन स्वामिने सर्वथा नृपः॥११९॥

जो वस्तु गिरवी रखी गयी है, वह यदि जान बूझकर या अयत्न (लापरवाही) से नष्ट कर दिया जाय तो राजाको चाहिये कि महाजनसे उसका मोल लेकर देनदारको दे देवे । अथवा जो कोई पुरुष किसीके पास अपनी कोई वस्तु धरोहर रखे और यह वस्तु जानकर या अयत्नसे नष्ट हो जाय तो राजा उसका मोल ग्रहण करके धरोहर रखनेवालेको दिला दे ॥ ११९ ॥

अभिमत्या स्थापकस्य पश्वादिन्यस्तवस्तुनाम् ।
व्यवहारे कृते तत्र धर्त्ता सम्पोषयेत्पशून् ॥ १२० ॥

जो कोई किसीके पास पशु आदि जीव धरोहरमें रखे और धरोहर रखनेवालेकी सम्मतिसे यह पशुआदि व्यवहारमें लाये जायँ, तो जिसके पास पशु धरोहर रखे गये हैं उसे ही इन पशुओंको भोजनादि देना पड़ेगा ॥ १२० ॥

लाभे नियोजयेद्यत्र स्थावरादीनि मानवः ।
नियमेन विना काललाभयोरन्यथा भवेत् ॥ १२१ ॥

यदि कोई आदमी लाभकी आशासे स्थावर व अस्थावर सम्पत्ति काममें लगा दे और समय व लाभका परिमाण नियत न हो तो वह असिद्ध हो सकता है ॥ १२१ ॥

साधारणानि वस्तूनि लाभार्थं नैव योजयेत् ।
मृते पितरि सर्वेषामंशिनां सम्मतिं विना ॥ १२२ ॥

पिताके परलोकवासी होनेपर समस्त भागीदारोंकी सम्मतिके विना कोई भी साधारण सम्पत्ति लाभके लिये कार्यमें नहीं लगा सकता ॥ १२२ ॥

क्रमव्यत्ययमूल्येन द्रव्याणां विक्रये सति ।
नृपस्तदन्यथाकर्त्तुं क्षमो भवति पार्वति ॥१२३॥

हे पार्वति ! जो बड़े मोलकी चीज थोड़े मोलमें, या थोड़े मोलकी चीज बड़े मोलमें बिक जाय तो राजा उसको असिद्ध कर सकता है ॥ १२३ ॥

जननं चापि मरणं शरीराणां यथा सकृत् ।
दानं तथैव कन्याया ब्राह्मोद्वाहः सकृत्सकृत्॥१२४॥

जैसे एकवारसे अधिक जन्म वा मृत्यु नहीं होती वैसे ही दान और कन्याका ब्राह्मविवाह एक वारसे अधिक नहीं हो सकता ॥ १२४ ॥

नैकपुत्रः सुतं दद्यान्नैकस्त्रीकस्तथा स्त्रियम् ।
नैककन्यः सुतां शैवोद्वाहे पितृहितः पुमान्॥१२५॥

कोई अपने इकलौते पुत्रको दान नहीं कर सकता, कोई अपनी अकेली स्त्रीको दान करनेका सामर्थ्य नहीं रखता । पितृहितकारी पुरुषके यदि एक ही कन्या हो तो वह उस कन्याका शैवविवाह नहीं कर सकता ॥ १२५ ॥

दैवे पित्र्ये च वाणिज्ये राजद्वारे विशेषतः ।
यद्विदध्यात्प्रतिनिधिस्तान्नियन्तुः कृतिर्भवेत् १२६॥

देवता और पितरोंके कार्यमें, वाणिज्य और विशेष करके राजद्वारमें नियुक्त प्रतिनिधि (वकील) जो कुछ करे वह करना उस नियोगकर्त्ताका ही करना समझा जायगा ॥१२६॥

न दण्डार्हः प्रतिनिधिस्तथा दूतोऽपि सुव्रते ।
नियोक्तृकृतदोषेण विधिरेष सनातनः ॥ १२७॥

हे सुव्रते ! सदासे विधि चली आयी है कि नियोग करनेवाला जो किसी दोषसे दूषित हो उसके दोषसे प्रतिनिधि दंडका भागी नहीं हो सकता ॥ १२७ ॥

ऋणे कृषौ च वाणिज्ये तथा सर्वेषु कर्म्मसु ।
यद्यदङ्गीकृतं लोकैस्तत्कार्य्यं धर्म्मसम्मतम् १२८॥

ऋण (कज), कृषि (खेती), वाणिज्य (व्यापार-सौदागरी) और सब कार्योंमें जैसे अंगीकार करे और जैसा धर्मानुसार हो वैसा ही आचरण करना चाहिये १२८

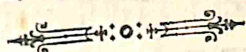
अधीशेनावितं विश्वं नाशं यान्ति निंक्षवः ।
तत्पातृन्पाति विश्वेशस्तस्माल्लोकहितो भवेत् १२९

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे सनातनव्यवहारकथनं नाम द्वादशोल्लासः ॥ १२ ॥

इस संसारकी रक्षा करनेवाला जगदीश्वर है, जो लोग इस जगत्का बुरा चेतते हैं, उनका स्वयं नाश हो जाता है। ईश्वरसे पाले जाते हुए जगत्की जो लोग रक्षा करते हैं जगदीश्वर उनकी भी रक्षा करता है, अतएव सदा ही जगत्का हित करना चाहिये ॥ १२९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मुरादाबादनिवासि-पं.बलदेवप्रसाद-मिश्रकृतभाषाटीकायां सनातनव्यवहारकथनं नाम द्वादशोल्लासः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोल्लासः १३.



इति निगदितवन्तं देवदेवं महेशं

निखिलनिगमसारं स्वर्गमोक्षैकबीजम् ।

कलिमलकलितानां पावनैकान्तचित्ता

त्रिभुवनजनमाता पार्वती प्राह भक्त्या ॥१॥

सब नियमोंका सार और स्वर्ग वा मोक्षका बीजरूप यह वाक्य जब देवदेव महादेवजी कह चुके तब कलिमलसे कलुषित हुए जीवोंकी पवित्रताका अत्यन्त अभिलाष करनेवाली त्रिलोकीके जीवोंकी माता श्रीपार्वतीजी भक्तिसहित कहती हुईं ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

महद्योनेरादिशक्तेर्म्महाकाल्या महाद्युतेः ।

सूक्ष्मातिसूक्ष्मभूतायाः कथं रूपानुरूपणम् ॥२॥

भगवतीजीने कहा-जो महद्योनि अर्थात् जिससे सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो रहा है, जो माहाद्युति अर्थात् जिससे स्थूल सूक्ष्म सारा संसार प्रकाशमान है, जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अर्थात् जो बड़ी कठिनाईसे जानी जाती हैं उन महाकाली-जीके रूपका निरूपण किस प्रकारसे उचित हो सकता है॥२॥

रूपं प्रकृतिकार्य्याणां सा तु साक्षात्परात्परा ।
एतन्मे संशयं देव विशेषाच्छेत्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

हे देव ! प्राकृतिक कार्य अर्थात् पाञ्चभौतिक घटपटादिका ही रूप है, महाकाली साक्षात् परेसे परे हैं । हमें इस बातमें बड़ा संशय है, आप मेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

उपासकानां कार्य्याय पुरैव कथितं प्रिये ।
गुणक्रियानुसारेण रूपं देव्याः प्रकल्पितम् ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोलेः—मैंने पहले ही तुमसे कहा है कि उपासकोंके कार्यके अर्थ गुण और क्रियाके अनुसार देवीका रूप कल्पित किया गया है ॥ ४ ॥

श्वेतपीतादिको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते ।
प्रविशन्ति तथा काल्यां सर्वभूतानि शैलजे ॥५॥

हे शैलनन्दिनी ! जैसे श्वेत पीले आदि रंग केवल एक काले रंगमें लीन हो जाते हैं, वैसे ही सारे पदार्थ एक कालीजीमें लीन हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अतस्तस्याः कालशक्तेर्निर्गुणाया निराकृतेः ।
हितायाः प्राप्तयोगानां वर्णः कृष्णो निरूपितः॥६॥

इस कारण उन लोगोंने जो कि योगारूढ़ हुए हैं, निर्गुणा निराकारा संसारकी हित करनेवाली कालशक्तिका कृष्णवर्ण निरूपण किया है ॥ ६ ॥

नित्यायाः कालरूपाया अव्ययायाः शिवात्मनः ।
अमृतत्वाल्ललाटेऽस्याः शशिचिह्नं निरूपितम् ॥७॥

वह नित्य कालरूप, अविनाशी और मंगलमयी हैं, इस कारण अमृतस्वरूपके हेतुसे उनके ललाटमें चन्द्रमाकी कला कल्पित हुई है ॥ ७ ॥

शशिसूर्य्याग्निभिर्नित्यैरखिलं कालिकं जगत् ।
सम्पश्यति यतस्तस्मात्कल्पितं नयनत्रयम् ॥८॥

सदा चन्द्र, सूर्य और अग्नि करके कालसे उत्पन्न हुआ जगत् दिखायी देता है, इस कारणसे योगियोंने उनके तीन नेत्र कल्पित किये हैं ॥ ८ ॥

ग्रसनात्सर्वसत्त्वानां कालदन्तेन चर्वणात् ।
तद्रक्तसंघो देवेश्या वासोरूपेण भाषितम् ॥९॥

वह कालके क्रमसे सब प्राणियोंका ग्रास करती हैं और कालरूपी दांतोंसे चाब जाती हैं, इस कारणसे सब प्राणियोंका रुधिरसमूह उन महेश्वरीका लालवस्त्र कल्पित हुआ है ॥ ९ ॥

समये समये जीवरक्षणं विपदः शिवे ।
प्रेरणं स्वस्वकार्य्येषु वरश्चाभयमीरितम् ॥१०॥

हे शिवे ! वह समय २ पर जीवकी रक्षा करती हैं और विपत्तिसे उद्धार करती हैं इस कारण उनके दाहिने दो हाथोंमें वर और अभयकी कल्पना की गयी है ॥ १० ॥

रजोजनितविश्वानि विष्टभ्य परितिष्ठति ।
अतो हि कथितं भद्रे रक्तपद्मासनस्थिता॥११॥

हे भद्रे ! वह रजोगुणसे उत्पन्न हुए संसारमें रहती हैं, इस कारणसे कहा जाता है कि वह लालकमलके आसनपर विराजमान हैं ॥ ११ ॥

क्रीडन्तं कालिकं कालं पीत्वा मोहमयीं सुराम् ।
पश्यन्ती चिन्मयी देवी सर्वसाक्षिस्वरूपिणी॥१२॥

मोहमयी सुराको पीकर कालोचित जगत्को खाकर काल-क्रीडा करता है, सबकी साक्षिरूप वह ज्ञानमयी देवी इसको देखती है ॥ १२ ॥

एवं गुणानुसारेण रूपाणि विविधानि च ।
कल्पितानि हितार्थाय भक्तानामल्पमेधसाम्॥१३॥

अल्पज्ञान रखनेवाले भक्तवृन्दोंके हितार्थ इस प्रकार गुणानुसार उन भगवतीके बहुतसे रूप कल्पित हुए हैं॥१३॥

श्रीदेव्युवाच ।

ध्यानं यत्कथितं काल्या जीवनिस्तारहेतवे ।
तस्यानुरूपतो मूर्तिं मृन्मयीं वा शिलामयीम्॥१४॥

देवीजीने कहा—जीवोंके निस्तारको जो आपने आदि कालिका व और देवताओंका जो ध्यान कहा है, यदि वह ध्यानके समान मूर्ति मृत्तिका; पत्थर ॥ १४ ॥

दारुधातुमयीं वापि निर्माय यदि साधकः ।
विचित्रभवनं कृत्वा वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ॥ १५ ॥

काठ या धातुकी बनाकर साधक पुरुष इस मूर्तिको वस्त्राभूषण पहनाकर श्रृंगार करे और जो विचित्र रमणीक गृह बनाकर ॥ १५ ॥

स्थापयेत्तत्र देवेशीं किं फलं तस्य जायते ।
प्रतिष्ठा केन विधिना तस्याः प्रतिकृतेः प्रभो ।
कर्त्तव्या तदशेषेण कृपया मे प्रकाश्यताम् ॥ १६ ॥

वहां उस महेश्वरीकी मूर्तिको स्थापित करे तो उसका क्या फल होगा ? हे प्रभो ! किस विधिके अनुसार वह प्रतिमा प्रतिष्ठित करनी चाहिये सो सम्पूर्ण आप कृपा करके मुझसे कहें ॥ १६ ॥

वापीकूपगृहारामदेवप्रतिकृतेस्तथा ।
प्रतिष्ठा सूचिता पूर्वं गदिता न विशेषतः ॥ १७ ॥

आपने पहले वापी, कुआं, गृह, आराम व देवप्रतिमा इन सबका वर्णन किया है; परंतु विशेषतासे कुछ नहीं कहा १७॥

तद्विधानमपि श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखाम्बुजात् ।
कथ्यतां परमेशान कृपया यदि रोचते ॥ १८ ॥

हे महेश्वर ! मैं आपके मुखकमलसे उस सम्पूर्ण विधानको भी सुना चाहती हूं, जो आपकी रुचि हो तो कृपा करके कहिये ॥ १८ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

गुह्यमेतत्परं तत्त्वं यत्पृष्टं परमेश्वरि ।
कथयामि तव स्नेहात्समाहितमनाः शृणु ॥१९॥

श्रीसदाशिवने कहाः—तुमने इन अतिगोपनीय तत्त्वोंको पूछा, तुम्हारे स्नेहके वशसे मैं कहता हूं, तुम हृदयको साव-धान करके सुनो ॥ १९ ॥

सकामाश्चैव निष्कामा द्विविधा भुवि मानवाः ।
अकामानां पदं मोक्षः कामिनां फलमुच्यते॥२०॥

इस पृथ्वीपर मनुष्य दो प्रकारके हैं-सकाम और निष्काम, निष्काम पुरुष मोक्षपदको पाते हैं और सकाम जिस फलको पाते हैं वह मैं तुमसे वर्णन करता हूं ॥ २० ॥

यो यद्देवप्रतिकृतिं प्रतिष्ठापयति प्रिये ।
स तल्लोकमवाप्नोति भोगानपि तदुद्भवान् ॥२१॥

हे प्रिये ! जो पुरुष जिस देवताके संबन्धी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करता है, वह पुरुष उसी देवताके लोकमें उस देव-ताके प्रसादसे अनेक प्रकारकी भोग करने योग्य वस्तुओंका भोग करता है ॥ २१ ॥

मृन्मये प्रतिबिम्बे तु वसेत्कल्पायुतं दिवि ।
दारुपाषाणधातूनां क्रमाद्दशगुणाधिकम् ॥२२॥

मृत्तिकाकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेवाला पुरुष दश हजार कल्पतक स्वर्गमें वास करता है, काठकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेसे दशगुण समय अर्थात् एक लाख कल्प, पत्थरकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेसे उससे शतगुणा समय अर्थात् दश लक्ष कल्प अर्थात् करोड़ कल्पतक देवलोकमें वास होता है ॥ २२ ॥

तृणकाष्ठादिरचितं ध्वजवाहनसंयुतम् ।
मन्दिरं देवमुद्दिश्य काममुद्दिश्य वा नरः ।
संस्कुर्य्यादुत्सृजेद्वापि तस्य पुण्यं निशामय॥२३॥

देवताकी प्रीतिके लिये अथवा किसी कामनासे जो पुरुष ध्वजा और वाहनके साथ तृणकाष्ठादिनिर्मित घरको बनाकर भेंट दे उससे क्या पुण्य होता है सो कहता हूं सुनो २३

तृणादिनिर्मितं गेहं यो दद्यात्परमेश्वरि ।
वर्षकोटिसहस्राणि स वसेद्देववेश्मनि ॥ २४ ॥

हे परमेश्वरि ! तृणादिसे बने हुए गृहको दान करनेवाला पुरुष हजार करोड़ वर्षतक देवलोकमें वास करता है ॥२४॥

इष्टकागृहदाने तु तस्माच्छतगुणं फलम् ।
ततोऽयुतगुणं पुण्यं शिलागेहप्रदानतः ॥ २५ ॥

ईंटसे बने हुए घरका दान करनेवाला पुरुष इससे शतगुण फल पावेगा। पत्थरका बना घर दान करनेवाला पुरुष उससे दशगुणे फलको भोगेगा ॥ २५ ॥

सेतुसंक्रमदाताद्ये यमलोकं न पश्यति ।
सुखं सुरालयं प्राप्य मोदते स्वर्निवासिभिः ॥२६॥

हे आद्ये ! पुल बनानेवाले पुरुषको यमलोकका मुख नहीं देखना पड़ता, किन्तु वह परमसुखी देवसदनमें जाकर स्वर्गवासियोंके साथ आनन्द करता है ॥ २६ ॥

वृक्षारामप्रतिष्ठाता गत्वा त्रिदशमन्दिरम् ।
कल्पपादपवृन्देषु निवसन्दिव्यवेश्मनि ।
भुङ्क्ते मनोरमान्भोगान्मनसो यानभीप्सितान् २७॥

वृक्ष और फुलवाड़ीकी प्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष देवलोकमें जाकर कल्पवृक्षके पौधोंसे विराजमान हुए दिव्य गृहमें वास करके अभिलाषाके अनुसार मनको रमानेवाली भोगने योग्य वस्तुओंके समूहका भोग करता है ॥ २७ ॥

प्रीतये सर्वसत्त्वानां ये प्रदद्युर्जलाशयम् ।
विधूतपापास्ते प्राप्य ब्रह्मलोकमनामयम् ।
निवसेयुः शतं वर्षानम्भसां प्रतिशीकरम् ॥२८॥

सर्वप्राणियोंकी तृप्तिके लिये जलाशयका उत्सर्ग करनेवाला पुरुष पापरहित हो वा निर्दोष हो ब्रह्मलोकमें चला जाता है और उस जलाशयमें जितने जलके कण होंगे उतने शत वत्सरतक वह ब्रह्मलोकमें वास करता है ॥ २८ ॥

यो दद्याद्वाहनं देवि देवताप्रीतिकारकम्।
स तेन रक्षितो नित्यं तल्लोके निवसेच्चिरम् ॥२९॥

हे देवि! देवताकी प्रसन्नताके लिये किसी वाहनका दान करनेवाला पुरुष सदा उस वाहन करसे रक्षित हो बहुत कालतक देवलोकमें वास करेगा ॥ २९ ॥

मृन्मये वाहने दत्ते यत्फलं जायते भुवि।
दारुजे तद्दशगुणं शिलाजे तद्दशाधिकम् ॥३०॥

इस पृथ्वीमें मृत्तिकाका पात्र दान करनेसे जो फल होता है काठके पात्रको दान करनेसे उससे दशगुण फल होता है और पत्थरका पात्र दान करनेसे उससे भी दशगुण फल होता है ॥ ३० ॥

रीतिकाकांस्यताम्रादिनिर्मिते देववाहने।
दत्ते फलमवाप्नोति क्रमाच्छतगुणाधिकम् ॥३१॥

पीतल, कांसी, तांबा आदि धातुओंसे बने हुए देववाहनके दान करनेसे क्रमानुसार शतगुण फल अधिक होता है ३१

देव्यागारे महासिंहं वृषभं शङ्करालये।
गरुडं केशवे गेहे प्रदद्यात्साधकोत्तमः ॥३२॥

परमसाधक पुरुष भगवतीके गृहमें महासिंह, महादेवजीके मंदिरमें बैल और विष्णुजीके मंदिरमें गरुड बनाते हैं ३२॥

तीक्ष्णदंष्ट्रः करालास्यः सटाशोभितकन्धरः ।
चतुरङ्घ्रिर्वज्रनखो महासिंहः प्रकीर्त्तितः ॥ ३३ ॥

जिसके दांत तीक्ष्ण हैं, जिसका वदनमंडल भयंकर है, जिसकी गर्दन केशरसमूहसे शोभायमान है, जिसके नाखून वज्रके समान कठिन हैं ऐसे चतुष्पद जन्तुओंको महासिंह कहा जाता है. अर्थात् इस प्रकारका महासिंह देवीके मंदिरमें स्थापित करना चाहिये ॥ ३३ ॥

शृङ्गायुधः शुद्धकायश्चतुष्पादः सितक्षुरः ।
बृहत्ककुत्कृष्णपुच्छः श्यामस्कन्धो वृषः स्मृतः ३४ ॥

जिसके शरीरका वर्ण श्वेत है, जिसके मस्तकपर दो सींग शोभा दे रहे हैं, जिसके खुर श्वेतवर्ण हैं, जिसकी पीठपर ककुद है, जिसका कंधा श्यामवर्ण है ऐसे चौपाए जन्तुको बैल कहा जाता है ॥ ३४ ॥

गरुडः पक्षिजंघस्तु नरास्यो दीर्घनासिकः ।
पादसङ्कोचसंविष्टः पक्षयुक्तः कृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥

गरुड़जीकी जंघा पक्षीके समान, मुख मनुष्यके समान और नासिका लंबी हो, दो पंख हो यह गरुड़जी दोनों पांव सकोड़े हाथ जोड़े बैठे हुए हों, इस प्रकारकी गरुड़मूर्ति वासुदेवजीके मंदिरमें स्थापन करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

पताकाध्वजदानेन देवप्रीतिः शतं समाः ।
ध्वजदण्डस्तु कर्तव्यो द्वात्रिंशद्धस्तसम्मितः ॥ ३६ ॥

देवालयमें ध्वजा पताका दान करनेसे देवतालोग शतवर्ष तक प्रसन्न रहते हैं, ध्वजाका दंड बत्तीस हाथ लम्बा करना चाहिये ॥ ३६ ॥

सुदृढश्छिद्ररहितः सबलः शुभदर्शनः ।
वेष्टितो रक्तवस्त्रेण कोटौ चक्रसमन्वितः ॥ ३७ ॥

ध्वजाका यह दंड मजबूत, छिद्ररहित, सीधा, देखनेमें अच्छा और लालवस्त्रसे लपेटा हुआ हो । उसके अग्रभागमें विष्णुचक्र रहे ॥ ३७ ॥

पताका तत्र संयोज्या तत्तद्वाहनचिह्निता ।
प्रशस्तमूला सूक्ष्माग्रा दिव्यवस्त्रविनिर्मिता ।
शोभमाना ध्वजाग्रे या पताका सा प्रकीर्त्तिता ३८

इस दंडके अग्रभागमें पताका लगानी चाहिये । पताकाका पिछला भाग श्रेष्ठ और अग्रभाग सूक्ष्म हो, उसको रमणीय वस्त्रसे बनाना चाहिये । उसमे उन २ देवताओंके वाहनोंके चिह्न हों यह पताका ध्वजाके आगे शोभायमान होती रहे ३८

वासोभूषणपर्य्यङ्कयानसिंहासनानिच ।
पानप्राशनताम्बूलभाजनानि पतद्ग्रहम् ॥ ३९ ॥

जो वस्त्राभूषण, सिंहासन, गिलास, भोजनपात्र (थाली-इत्यादि) ताम्बूलपात्र (खासदान) पीकदान ॥ ३९ ॥

मणिमुक्ताप्रवालादिरत्नान्यात्मप्रियञ्च यत् ।
यो दद्याद्देवमुद्दिश्य श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
स तल्लोकं समासा तत्तत्कोटिगुणं लभेत् ॥ ४० ॥

मणि, मुक्ता, मूँगा आदि रत्न और अपनी प्यारी वस्तुयें देवताके अर्थ श्रद्धाभक्तिके साथ जो दान करता है, वह पुरुष उस ही देवताके स्थानमें जाकर उस दी हुई वस्तुका कोटिगुण फल प्राप्त कर सकता है ॥ ४० ॥

कामिनां फलमित्युक्तं क्षयिष्णु स्वप्नराज्यवत् ।
निष्कामानान्तु निर्वाणं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥४१॥

कामना करके कर्म करनेवालोंका फल स्वप्नमें प्राप्त हुए राज्यके समान क्षयशील है, निष्काम होकर कर्म करनेवालोंको जन्म नहीं लेना पड़ता, वे निर्वाण मुक्तिपदको पाते हैं ॥ ४१ ॥

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम् ।
देवतानां प्रतिष्ठायां वास्तुदेवं प्रपूजयेत् ॥ ४२ ॥

जलाशयप्रतिष्ठा, गृहप्रतिष्ठा, आरामप्रतिष्ठा, सेतुप्रतिष्ठा, वृक्षप्रतिष्ठा और देवप्रतिष्ठाके समय वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

अनर्चयित्वा यो वास्तुं कुर्य्यात्कर्माणि मानवः ।
विघ्नन्तस्याचरेद्वास्तुः परिवारगणैः सह ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य विना गृहदेवताकी पूजा किये देवप्रतिष्ठा आदि कोई कर्म करे तो वास्तुदेवता अर्थात् गृहदेवता परिवारके साथ मिलकर उसके उस शुभकर्ममें विघ्न कर देते हैं ॥४३॥

कपिलास्यः पिङ्गकेशो भीषणो रक्तलोचनः ।

कोटराक्षो लम्बकर्णो दीर्घजङ्घो महोदरः॥ ४४ ॥

कपिलास्य, पिंगकेश, भीषण, रक्तलोचन, कोठराक्ष, लम्बकर्ण, दीर्घजंघ, महोदर ॥ ४४ ॥

अश्वतुण्डः काककण्ठो वज्रबाहुर्व्रतान्तकः ।

एते परिकरा वास्तोः पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥४५॥

अश्वतुण्ड, काककंठ, वज्रबाहु, व्रतान्तके ये सब वास्तुदेवताके परिवार हैं यत्नसहित इनकी पूजा करे ॥ ४५ ॥

मण्डलं शृणु वक्ष्यामि यत्र वास्तुं प्रपूजयेत्॥४६॥

जिस मंडलमें वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये अब उसको कहता हूं सुनो ॥ ४६ ॥

वेद्यां वा समदेशे वा शस्ताद्भिरुपलेपिते ।

वाय्वीशकोणयोर्म्मध्ये हस्तमात्रप्रमाणतः ।

सूत्रपातक्रमेणैव रेखामेकां प्रकल्पयेत् ॥ ४७ ॥

वेदी या और किसी बराबर पृथ्वीको श्रेष्ठजलसे लीपना चाहिये, फिर उसमें वायुकोणसे लेकर ईशानकोण तक हाथभरकी एक सीधी रेखा खींचे ॥ ४७ ॥

ईशानादग्निपर्य्यन्तमपरां रचयेत्तथा ।

आग्नेयान्नैर्ऋतं यावन्नैर्ऋताद्वायवावधि ॥ ४८ ॥

फिर ईशानकोणसे लेकर अग्निकोणतक ऐसीही और एक-हाथ सीधी रेखा खींचें। तत्पश्चात् अग्निकोणसे लेकर नैर्ऋत्य-कोणतक और नैर्ऋत्यकोणसे लेकर वायुकोणतक ॥ ४८ ॥

दत्त्वा रेखं चतुष्कोणमेकं मण्डलमालिखेत् ॥४९॥

रेखा खींचनेसे एक चौकोन मंडल बन जायगा ॥ ४९ ॥

कोणसूत्रे पातयित्वा चतुर्द्धा विभजेत्तु तत् ।
यथा तत्र भवेद्देवि मत्स्यपुच्छचतुष्टयम् ॥ ५० ॥

हे देवि ! इस मंडलके एक कोणेसे लेकर दूसरे कोणतक दो रेखा खींचकर ऐसा करे कि जिससे पुच्छाकार चार मत्स्य हो जाय ॥ ५० ॥

ततो भित्त्वा पुच्छमूलं वारुणाद्वासवावधि ।
कौबेराद्याम्यपर्य्यन्तं दद्याद्रेखाद्वयं सुधीः ॥५१॥

फिर ज्ञानी पुरुष इस पूँछके मूलका भेदन कर पश्चिम दिशासे लेकर पूर्वदिशातक एक और उत्तर दिशासे लेकर दक्षिण दिशातक एक रेखा खींचे ॥ ५१ ॥

ततश्चतुर्षु कोणेषु कोणरेखान्वितेष्वपि ।
कर्णाकर्णिप्रयोगेण न्यसेद्रेखाचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥

फिर इस मंडलके भीतर चौकोन चार मंडलोंमें कर्णा-कर्णि ऐसी मिली हुई एक एक रेखा और मध्यस्थलमें पश्चिमसे लेकर पूर्वतक एक एक और उत्तरसे दक्षिणतक एक एक रेखाकी कल्पना करे ॥ ५२ ॥

एवं संकेतविधिना कोष्ठानां षोडशं लिखन् ।
पञ्चवर्णेन चूर्णेन रचयेद्यन्त्रमुत्तमम् ॥५३॥

इस प्रकार संकेतके अनुसार इन मंडलोंमें सोलह कोठे बन जायँगे अर्थात् मंडलमें सोलह चौकोन अथवा बत्तीस त्रिकोण वृत्त हो जायँगे फिर पांच रंगके चूर्णसे यह यंत्र भलीभाँतिसे बनावे ॥ ५३ ॥

चतुर्षु मध्यकोष्ठेषु पद्मं कुर्य्यान्मनोहरम् ।
चतुर्द्दलं पीतरक्तकर्णिकं रक्तकेशरम् ॥ ५४ ॥

फिर बीचमें स्थित हुए चार कोठोंके ऊपर एक मनोहर चार दलवाला कमल बनावे, उसकी घंघोल पीली और लाल हो ॥ ५४ ॥

दलानि शुक्लवर्णानि यद्वा पीतानि कल्पयेत् ।
यथेष्टं पूरयेत्पद्मसन्धिस्थानानि वर्णकैः ॥५५॥

फिर कमलकी सब पंखुड़ियें श्वेतवर्ण या पीले रंगकी करे। तदुपरान्त कमलके सन्धिस्थानमें चाहे जैसा रंग भर दे ॥ ५५ ॥

शाम्भवं कोष्ठमारभ्य कोष्ठानां द्वादशं क्रमात् ।
श्वेतकृष्णपीतरक्तैश्चतुर्वर्णैः प्रपूरयेत् ॥५६॥

फिर ईशान कोणके कोठेसे आरंभ करके शेष बारह कोठे क्रमानुसार सफेद, काले, पीले, लाल, इन चारों रंगसे पूर्ण करे ॥ ५६ ॥

दक्षिणावर्त्तयोगेन कोष्ठानां पूरणं प्रिये ।

वामावर्त्तेन देवानां पूजनं तेषु साधयेत् ॥५७॥

हे प्रिये ! दक्षिणावर्तयोगमें इन सब कोठोंको पूर्ण करना चाहिये फिर उसमें वामावर्त्तके योगसे देवताओंकी पूजा करे ॥ ५७ ॥

पद्मे समर्चयेद्वास्तुदैत्यं विघ्नोपशान्तये ।

ईशादिद्वादशे कोष्ठे कपिलास्यादिदानवान् ॥५८॥

पहले तो विघ्नकी शांतिके लिये पद्ममें वास्तुदैत्यकी पूजा करे । फिर ईशानकोणमें स्थित कोठेसे आरम्भ करके (वामावर्त्तमें) बारह कोठोंमें कपिलास्यादि दानवोंकी पूजा करे५८

कुशाण्डिकोक्तविधिना कुर्वन्ननलसंस्कृतिम् ।

यथाशक्त्याहुतिं दत्त्वा वास्तुयज्ञं समापयेत्॥५९॥

फिर कुशण्डिकामें कही हुई विधिके अनुसार अग्निसंस्कार करके यथाशक्ति आहुति देकर वास्तुयज्ञको समाप्त करे॥५९॥

इति ते कथिता देवि ! वास्तुपूजा शुभप्रदा ।

यां साधयन्नरः क्वापि वास्तुविघ्नैर्न बाध्यते ॥६०॥

हे देवि ! यह तुमसे कल्याणकी देनेवाली वास्तुपूजा कही । वास्तुपूजाका अनुष्ठान करनेवालेको कोई विघ्न नहीं होता ॥ ६० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

मण्डलं कथितं वास्तोर्विधानमपि पूजने ।

ध्यानं न गदितं नाथ ! तदिदानीं प्रकाशय॥६१॥

देवीजीने कहा–हे नाथ ! आपने वास्तुदेवताका मंडल और वास्तुपूजाका विधान कहा, परन्तु वास्तुदेवताका ध्यान नहीं कहा सो अब कहिये ॥ ६१ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

ध्यानं वच्मि महेशानि ! श्रूयतां वास्तुरक्षसः ।
यस्यानुशीलनात्सद्यो नश्यन्ति सकलापदः ॥६२॥

श्रीमहादेवजी बोले--हे महेश्वरि ! वास्तुराक्षसका ध्यान कहता हूं, सुनो–इसका वारंवार अभ्यास करनेसे सब आपत्तियें दूर होती हैं ॥ ६२ ॥

चतुर्भुजं महाकायं जटामण्डितमस्तकम् ।
त्रिलोचनं करालास्यं हारकुण्डलशोभितम् ॥६३॥

जो चतुर्भुज और बड़े शरीरवाले हैं, जिनका मस्तक जटाके समूहसे शोभायमान है, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका वदन कराल है, जो हार कुण्डलसे शोभायमान हैं ॥६३॥

लम्बोदरं दीर्घकर्णं लोमशं पीतवाससम् ।
गदात्रिशूलपरशुखट्वाङ्गं दधतं करैः ॥ ६४ ॥

जो लम्बोदर और दीर्घकर्ण है, जिनका शरीर रोमोंसे ढका हुआ है, जो पीला वस्त्र पहर रहे हैं, जो चारों भुजाओंसे गदा त्रिशूल, परशु, खट्वाङ्ग (अस्त्रविशेष) धारण करते हैं ॥ ६४ ॥

असिचर्म्मधरैर्वीरैः कपिलास्यादिभिर्वृतम् ।
शत्रूणामन्तकं साक्षादुद्यदादित्यसन्निभम् ॥ ६५ ॥

ध्यायेद्देवं वास्तुपतिं कूर्म्मपद्मासनस्थितम् ॥ ६६ ॥

कपिलास्यादि वीरगण खड्ग चर्म धारण करके जिनके चारों ओर विराजमान हैं, जो शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं, जो उदित होते हुए सूर्यके समान अरुण वर्ण, जो कछुएके ऊपर पद्मासन पर बैठे हैं, ऐसे वास्तुपति देवताका ध्यान करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

मारीभये रोगभये डाकिन्यादिभये तथा ।
औत्पातिकापत्यदोषे व्यालरक्षोभयेऽपि च ।
ध्यात्वैवं पूजयेद्वास्तुं परिवारसमन्वितम् ॥ ६७ ॥

मारीभय, रोगभय और डाकिनीभयके पड़नेपर हिंसक जन्तु या राक्षसभय होनेपर इस प्रकारसे परिवारयुक्त वास्तु-देवताकी पूजा करे ॥ ६७ ॥

तिलाज्यपायसैर्हुत्वा सर्वशान्तिमवाप्नुयात् ।
यथा वास्तुः पूजनीयः प्रोक्तकर्मसु सुव्रते ! ॥ ६८ ॥

फिर तिल, घी और खीरसे होम करके सब बातोंमें शान्ति प्राप्त कर सकेगा । हे सुव्रते ! पहले कहे हुए सब कार्योंमें जैसे वास्तुदेवताकी पूजा करनी होती है ॥ ६८ ॥

ग्रहाश्चापि तथा पूज्या दशदिक्पतिभिर्युताः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वाणी लक्ष्मीश्च शंकरी ॥ ६९ ॥

वैसे ही नवग्रह, दश दिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वतीकी ॥ ६९ ॥

मातरः सगणेशाश्च सम्पूज्या वसवस्तथा ।
पितरो यद्यतृप्ताः स्युः कर्म्मस्वेतेषु कालिके ७०॥

मातृगणोंकी, गणेश, वसुगण और पितृगणोंकी पूजा करनी चाहिये । हे कालिके ! पहले कहे हुए सब कर्मोंसे जो यह सन्तुष्ट न हों ॥ ७० ॥

सर्व्वं तस्य भवेद्व्यर्थं विघ्नश्चापि पदे पदे ।
अतो महेशि ! यत्नेन प्रोक्तसंस्कारकर्म्मसु ॥७१॥

तो कर्मकर्ताका सब कुछ व्यर्थ हो जाता है और पग पग पर उसको विघ्न होते हैं ॥ ७१ ॥

पितॄणां तृप्तयेऽत्राभ्युदयिकं श्राद्धमाचरेत् ।
ग्रहयन्त्रं प्रवक्ष्यामि सर्वशान्तिविधायकम् ॥७२॥

हे महेश्वरि ! इस कारण पहले कहे हुए सब कर्मोंमें पितृगणोंकी तृप्तिके लिये यत्नसाहित आभ्युदयिक श्राद्ध करे। अब सर्वशान्तिका करनेवाला ग्रहयंत्र कहता हूं ॥ ७२ ॥

यत्र सम्पूजिताः सेन्द्रा ग्रहा यच्छन्ति वाञ्छितम् ।
त्रित्रिकोणैर्लिखेद्यन्त्रं तद्बहिर्वृत्तमालिखेत् ॥७३॥

उसमें ग्रह और इन्द्रादिक देवता पूजे जाकर अभिलषित फल देते हैं, तीन त्रिकोण यन्त्र लिखकर उसके बाहर गोल मंडल बनावे ॥ ७३ ॥

विदध्याद्वृत्तलग्नानि दलान्यष्टौ च तद्बहिः ।
चतुर्द्वारान्वितं कुर्य्याद्भूपुरं सुमनोहरम् ॥७४॥

उस वृत्तके बाहर उससे लगा हुआ आठ दलवाला पद्म लिखे, उसके बाहर चार द्वारवाला एक मनोहर भूपुर बनावे ॥ ७४ ॥

वासवेशानयोर्म्मध्ये भूपुरस्य बहिःस्थले ।
वृत्तं विरचयेदेकं प्रादेशपरिमाणकम् ॥ ७५ ॥

भूपुरके बाहर पूर्वदिशा और ईशानकोणके मध्यमें आधे हाथका एक वृत्त खींचे ॥ ७५ ॥

रक्षोवारुणयोर्म्मध्ये चापरं कल्पयेत्तथा ॥ ७६ ॥

फिर पश्चिमदिशा और नैर्ऋतकोणके बीचमें भी ऐसा ही एक मंडल बनावे ॥ ७६ ॥

नवग्रहाणां वर्णेन नवकोणानि पूरयेत् ।
मध्यत्रिकोणपार्श्वौ द्वौ सव्यदक्षिणभेदतः॥ ७७ ॥
श्वेतपीतौ विधातव्यौ पृष्ठभागः सितेतरः ।
अष्टदिक्पतिवर्णेन पर्णान्यष्टौ प्रपूरयेत् ॥ ७८ ॥

फिर नवग्रहके वर्णसे इस यन्त्रके नौ कोण भरे और बीचमें स्थित हुए त्रिकोणके दाँये बांये दोनों पार्श्व श्वेत और पीले रँगे। उसका पिछला भाग काला हो, आठ दिक्पालोंके वर्णसे आठ दल पूर्ण करे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

सितरक्तासितैश्चूर्णैः पुरः प्राकारमाचरेत् ।
पुरोबहिस्थे द्वे वृत्ते देवि ! प्रादेशसम्मिते ॥७९॥

श्वेत, लाल और काले चूर्णसे भूपुरकी प्राकार (भीत) को रँगे । हे देवि ! भूपुरके बाहिर बने हुए आधे हाथके दोनों वृत्त ॥ ७९ ॥

उपर्य्यधः क्रमेणैव रक्तश्वेते विधाय च ।
सन्धिस्थानानि यन्त्रस्य स्वेच्छया रचयेत्सुधीः ८०

ऊपरके भाग और नीचेके भागके क्रमसे लाल और श्वेत रंग कर, ज्ञानी पुरुष सन्धिके सब स्थानोंको चाहे जैसे रंगसे भर दे ॥ ८० ॥

यत्कोष्ठे यो ग्रहः पूज्यो यत्पत्रे यश्च दिक्पतिः ।
यद्द्वारेऽवस्थिता ये च तत्क्रमं शृणु साम्प्रतम् ॥ ८१ ॥

जिस जिस कोठेमें जिस जिस ग्रहकी पूजा होनी चाहिये जिस जिस पत्रमें जिस दिक्पालकी पूजा होनी चाहिये और जिस द्वारमें जो देवतादि कोण है इसका क्रम अब कहा जाता है, सुनो ॥ ८१ ॥

मध्यकोणे यजेत्सूर्य्यं पार्श्वयोररुणं शिखाम् ।
पश्चात्प्रचण्डयोर्दण्डौ पूजयेदंशुमालिनः ॥ ८२ ॥

मध्यकोणमें सूर्यकी पूजा करनी चाहिये, उसके दोनों बगलमें अरुण और शिखाकी पूजा करनी चाहिये फिर सूर्यके पिछले भागमें प्रचण्ड और उद्दण्डकी पूजा करनी योग्य है ॥ ८२ ॥

भानूर्ध्वकोणे पूर्वस्यामर्च्चयेद्रजनीकरम् ।
आग्नेये मङ्गलं याम्ये बुधं नैर्ऋतकोणके ॥ ८३ ॥

सूर्यके ऊर्ध्वकोणमें पूर्वदिशाको चन्द्रमाकी पूजा करे फिर अग्निकोणमें मङ्गलकी, दक्षिण दिशामें बुधकी, नैर्ऋत-कोणमें ॥ ८३ ॥

बृहस्पतिं वारुणे च दैत्याचार्य्यं प्रपूजयेत् ।
शनैश्चरन्तु वायव्ये कौबेरैशानयोः क्रमात् ।
राहुं केतुं यजेच्चन्द्रं परितस्तारकागणान् ॥ ८४ ॥

वरुणकोणमें बृहस्पति और शुक्रकी अर्चना करे। फिर वायुकोणमें शनिकी, उत्तर दिशामें राहुकी, ईशानकोणमें केतुकी अर्चना करके चन्द्रमाके चारों ओर ताराओंका पूजन करे ॥ ८४ ॥

सूरो रक्तः शशी शुक्लो मङ्गलोऽरुणविग्रहः ।
बुधजीवौ पाण्डुपीतौ श्वेतः शुक्रोऽसितःशनिः॥८५॥

सूर्य रक्तवर्ण, चन्द्रमा शुक्लवर्ण, मंगल अरुणवर्ण, बुध पाण्डु-वर्ण, बृहस्पति पीतवर्ण, शुक्र श्वेतवर्ण और शनि कृष्ण-वर्ण है ॥ ८५ ॥

राहुकेतू दिचित्राभौ ग्रहवर्णाः प्रकीर्तिताः ।
चतुर्भुजं रविं ध्यायेत्पद्मद्वयवराभयैः ॥ ८६ ॥

राहु और केतुका वर्ण विचित्र है यह तुमसे ग्रहोंका वर्ण कहा। सूर्यका चतुर्भुज ध्यान करना चाहिये, उनके दो हाथमें पद्म हैं, वे एक हाथसे वर और एक हाथसे अभय दे रहे हैं ॥ ८६ ॥

चिन्तयेच्छशिनं दानमुद्रामृतकराम्बुजम् ।
कुजमीषत्कुब्जतनुं हस्ताभ्यां दण्डधारिणम् ।
ध्यायेत्सोमात्मजं बालं भाललोलितकुन्तलम् ८७॥

चन्द्रमाका ध्यान इस प्रकारसे करे कि, उनके एक हाथमें अमृत और दूसरे हाथमें दानमुद्रा है. मंगलका ध्यान इस प्रकार करे कि, वह कुछेक कुबड़े हैं और दोनों हाथोंसे दंड धारण किये हैं, बुधका ध्यान इस प्रकारसे करे कि, वह बालक हैं और उनके माथेमें चंचल केश शोभायमान हो रहे हैं ८७॥

यज्ञसूत्रान्वितं ध्यायेत्पुस्तकाक्षकरं गुरुम् ।
एवं दैत्यगुरुञ्चापि काणं खञ्जं शनैश्वरम् ॥ ८८॥
राहुकेतू शिरःकायौ विकृतौ क्रूरचेष्टितौ ।
स्वैः स्वैर्ध्यानैर्ग्रहानिष्ट्वा यजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ८९

बृहस्पतिका ध्यान इस भाँति करे कि, उनके गलेमें यज्ञोपवीत पड़ा है, एक हाथमें पुस्तक और एक हाथमें अक्षमाला है, इस प्रकार शुक्रको एक नेत्रहीन और शनैश्वरको लँगड़ा ध्यान करे। शिर और धड़ ये राहु और केतु हैं। ये दोनों ही क्रूरचेष्टायुक्त और विकृताकार हैं । ग्रहोंको उनके ध्यानसहित पूजकर फिर इंद्रादि दिक्पालोंकी पूजा करे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

दलेष्वष्टसु पूर्वादिक्रमतः साधकोत्तमः ।
सहस्राक्षं यजेदादौ पीतकौशेयवाससम् ॥ ९० ॥

साधकश्रेष्ठको उचित है कि, आठ दलवाले पद्मके पूर्वकी ओरके दलसे आरंभ करके (प्रत्येक दलमें एक २ दिक्पालकी पूजा करे) पहले पूर्वदिशाके पत्रमें इन्द्रकी पूजा करे। इन्द्रके सहस्र नेत्र हैं, उनका वर्ण पीला है, वह रेशमी वस्त्र पहरे हुए हैं ॥ ९० ॥

वज्रपाणिं पीतरुचिं स्थितमैरावतोपरि ।
रक्ताभं छागवाहस्थं शक्तिहस्तं हुताशनम् ॥९१॥

उनके हाथमें वज्र है, शरीरका वर्ण पीत है, ऐरावत नामके हाथीके ऊपर बैठे हैं, अग्निका शरीर रक्त वर्ण है, वह अपने वाहन छागपर बैठे हैं, उनके हाथमें शक्ति नामक अस्त्र है ॥ ९१ ॥

ध्यायेत्कालं लुलायस्थं दण्डिनं कृष्णविग्रहम् ।
निर्ऋतिं खड्गहस्तञ्च श्यामलं वाजिवाहनम्॥९२॥
वरुणं मकरारूढं पाशहस्तं सितप्रभम् ।
ध्यायेत्कृष्णत्विषं वायुं मृगस्थञ्चाङ्कुशायुधम्९३॥

कालस्वरूप यमराजके शरीरका वर्ण काला है, वे दण्ड हाथमें लिये भैंसेपर सवार हैं । निर्ऋति श्यामलवर्ण हैं, उनके हाथमें खड्ग है, उनका वाहन अश्व है । वरुणजीका ध्यान इस प्रकारसे करे कि, वे मकरपर सवार हैं, वर्ण श्वेत है, हाथमें पाश है। वायुका ध्यान इस प्रकारसे करे कि, उनके हाथमें अंकुश नामक अस्त्र है, वे मृगपर बैठे हैं, शरीर कृष्णवर्ण है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

कुबेरं कनकाकारं रत्नसिंहासनस्थितम् ।

स्तुतं यक्षगणैः सर्वैः पाशाङ्कुशकराम्बुजम् ॥९४॥

कुबेरके शरीरका वर्ण सुवर्णकासा है, वह रत्नसिंहासनपर बैठे हैं, उनके करकमलमें पाश और अंकुश है, चारों ओर यक्षलोग खड़े हुए उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ९४ ॥

ईशानं वृषभारूढं त्रिशूलवरधारिणम् ।

व्याघ्रचर्म्माम्बरधरं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ॥ ९५ ॥

ईशान (शिव) बैलपर सवार होकर त्रिशूल धारण किये हुए हैं, उनकी कान्ति पूर्णचंद्रमाके समान है, व्याघ्रचर्मको पहरे हुए हैं ॥ ९५ ॥

ध्यात्वा चैतान्क्रमादिष्ट्वा ब्रह्मानन्तौ पुराद्बहिः ।

ऊर्ध्वाधोवृत्तयोरर्च्यौ ततोऽर्च्या द्वारदेवताः ॥९६॥

क्रमानुसार ध्यानसहित इन आठ दिक्पालोंकी पूजा करके भूपुरके बाहिर ऊपर जो मंडल स्थित है उसमें ब्रह्माजीकी और नीचेके मंडलमें अनन्तकी पूजा करे फिर द्वारदेवताओंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥

उग्रभीमौ प्रचण्डेशौ पूर्वद्वास्थाः प्रकीर्तिताः ।

जयन्तः क्षेत्रपालश्च नकुलेशो बृहच्छिराः ।

याम्यद्वारे पश्चिमे च वृकाश्वानन्ददुर्ज्जयाः ॥९७॥

उग्र, भीम, प्रचंड और ईश ये लोग पूर्वद्वारके स्वामी हैं। जयन्त, क्षेत्रपाल, नकुलेश्वर, बृहच्छिरा ये दक्षिणद्वारके

अधीश्वर हैं । वृक, अश्व, आनंद और दुर्जय ये पश्चिमद्वारके अधिदेवता हैं ॥ ९७ ॥

त्रिशिराः पुराजिच्चैव भीमनादो महोदरः ।
उत्तरद्वारपाश्वैते सर्वे शस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ९८ ॥

त्रिशिरा, पुराजित् , भीमनाद, महोदर ये उत्तरद्वारके मालिक हैं, इन सबके ही हाथमें अस्त्र शस्त्र हैं ॥ ९८ ॥

श्रूयतां ब्रह्मणो ध्यानमनन्तस्यापि सुव्रते ! ।
रक्तोत्पलनिभो ब्रह्मा चतुरास्यश्चतुर्भुजः ॥ ९९ ॥

हे सुव्रते ! ब्रह्मा और अनन्तके ध्यानको कहता हूं, सुनो, ब्रह्माजी चतुर्भुज और चतुर्मुख हैं, उनका शरीर लाल कमलके समान लालवर्ण है ॥ ९९ ॥

हंसारूढो वराभीति--मालापुस्तकपाणिकः॥ १००॥

वे हंसपर सवार हैं, उनके एक हाथमें पुस्तक और एक हाथमें माला है, वे एक हाथसे वर और दूसरे हाथसे अभय दे रहे हैं ॥ १०० ॥

हिमकुन्देन्दुधवलः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रपाणिवदनो ध्येयोऽनन्तः सुरासुरैः ॥१०१॥

अनन्तका वर्ण हिम (पाला) कुन्द (कुन्दका फूल) और चंद्रमाके समान शुभ्र है, उनके हजार नेत्र और हजार चरण हैं, देवता और दानवलोग इस प्रकारसे हजार हाथवाले और हजार पांववाले अनतन्तजीका ध्यान करते हैं१०१

ध्यानपूजाक्रमश्चापि यन्त्रञ्च कथितं प्रिये ! ।
वास्त्वादिक्रमतो ह्येषां मन्त्रानपि शृणु प्रिये १०२॥

हे प्रिये ! वास्तु इत्यादिके देवताओंका यंत्र, ध्यान और पूजाकी विधि क्रमानुसार कही गयी, अब क्रमानुसार इन वास्तुदेवादिकोंका मंत्र कहता हूं, सुनो ॥ १०२ ॥

क्षकारो हव्यवाहस्थः षड्दीर्घस्वरसंयुतः ।
भूषितो नादबिंदुभ्यां वास्तुमन्त्रः षडक्षरः॥१०३॥

क्षकार अग्नि (रेफ) के ऊपर रहे, उसमें दीर्घस्वर मिल वह नादबिन्दुसे विभूषित हो इस प्रकारसे यह षडक्षर वास्तु-मंत्र हो जायगा (१) ॥ १०३ ॥

तारं मायां तिग्मरश्मयेऽन्तमारोग्यदं वदेत् ।
वह्निजायां ततो दत्त्वा सूर्यमन्त्रं समुद्धरेत्॥१०४॥

प्रणव और माया इन दो पदोंको उच्चारण करके "तिग्म-रश्मये" पद उच्चारण कर फिर "आरोग्यदाय" पदके पीछे "स्वाहा" उच्चारण करे । इस प्रकार सूर्यके मंत्रका उद्धार होगा (२) ॥ १०४ ॥

कामो माया च वाणी च ततोऽमृतकरेति च ।
अमृतं प्लावयद्वन्द्वं स्वाहा सोममनुर्मतः ॥ १०५॥

---

(१) मंत्रोद्धार यथाः—" क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं क्ष्रः " यही षडक्षर वास्तुमंत्र है ।

(२) सूर्यमंत्र यथाः—" ॐ ह्रीं तिग्मरश्मये आरोग्यदाय स्वाहा ।"

काम, माया, वाणी, अमृतकर अमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा इन शब्दोंके मिलानसे सोम (चंद्रमाका) मंत्र हो जायगा (१) ॥ १०५ ॥

ऐं ह्रां ह्रीं सर्वपदाद्दुष्टान्नाशय नाशय ।

स्वाहावसानो मन्त्रोऽयं मङ्गलस्य प्रकीर्त्तितः १०६

"ऐं ह्रां ह्रीं" सर्व, पदके पीछे "दुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा" इस पदके उच्चारण करनेसे मंगलका मंत्र होगा (२) १०६॥

ह्रीं श्रीं सौम्यपदश्चोक्त्वा सर्वान्कामांस्ततो वदेत् ।

पूरयान्ते वह्निकान्ता मेष सोमात्मजे मनुः॥ १०७॥

"ह्रीं श्रीं सौम्य" पदको उच्चारण करनेके पीछे "सर्वान् कामान्" पद उच्चारण करके "पूरय स्वाहा" इस पदके उच्चारण करनेसे बुधका मंत्र हो जायगा (३) ॥ १०७ ॥

तारेण पुटिता वाणी ततः सुरगुरो ! पदम् ।

अभीष्टं यच्छ यच्छेति स्वाहा मन्त्रो बृहस्पतेः १०८

पहले तारपुटिता वाणी फिर "सुरगुरो" तदुपरान्त "अभीष्टं यच्छ यच्छ" तदुपरान्त "स्वाहा" उच्चारण करनेसे बृहस्पतिका मंत्र होगा (४) ॥ १०८ ॥

---

(१) चंद्रमाका मंत्रः-"क्लीं ह्रीं ऐं अमृतकरामृतं प्लावय प्लावय स्वाहा"

(२) मंगलका मंत्रः-"ऐं ह्रां ह्रीं सर्वदुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा"।

(३) बुधका मंत्रः-"ह्रीं श्रीं सौम्य सर्वान् कामान् पूरय स्वाहा" ।

(४) ओं ऐं ओं सुरगुरो !' अभीष्ट यच्छ यच्छ स्वाहा' यह बृहस्पतिका मन्त्र है ।

शां शीं शूं शैं ततः शौं शः शुक्रमन्त्रः समीरितः १०९

"शां शीं शूं शैं शौं शः" यह शुक्रका मंत्र है ॥ १०९ ॥

ह्लां ह्लां ह्लीं सर्वशत्रून्विद्रावय पदद्वयम्।

मार्त्तण्डसूनवे पश्चान्नमो मन्त्रः शनैश्चरे ॥११०॥

शनैश्चरका मंत्र यह है "ह्लां ह्लां ह्लीं ह्लीं सर्वशत्रून् विद्रावय विद्रावय मार्तण्डसूनवे नमः" ॥ ११० ॥

रां ह्रौं भ्रैं ह्लीं सोमशत्रो शत्रून्विध्वंसयद्वयम्।

राहवे नम इत्येष राहोर्म्मनुरुदाहृतः ॥१११॥

राहुका मन्त्र यह है कि "रां ह्रौं भ्रैं ह्लीं सोमशत्रो शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय राहवे नमः" ॥ १११ ॥

कूं हूं क्रैं क्रैं केतवे स्वाहा केतोर्म्मन्त्रः प्रकीर्त्तितः

"क्रूं हूं क्रैं केतवे स्वाहा" यह केतुका मंत्र है ॥११२॥

लं रं मृं स्त्रूं वं यमिति क्षं हौं ब्रीममिति क्रमात्।

इन्द्राद्यनन्तदिक्पानां दशमन्त्राःसमीरिताः ११३॥

इन्द्रका मंत्र "लं" अग्निका मंत्र "रं" यमका मन्त्र "मृं" निर्ऋतिका मन्त्र "स्त्रू" वरुणका मंत्र 'वं' वायुका मंत्र 'यं' कुबेरका मंत्र 'क्षं' ईशानका मंत्र 'हौं' ब्रह्माका मंत्र 'ब्रीं' अनन्तका मंत्र 'अं' यह इन्द्रादि दश दिक्पालोंके मंत्र कहे हैं ॥ ११३ ॥

अन्येषां परिवाराणां नाममन्त्राः प्रकीर्त्तिताः।

अनुक्तमन्त्रे सर्वत्र विधिरेष शिवोदितः ॥११४॥

और अंगदेवताओंके परिवारोंका या जिस देवताका मंत्र नहीं कहा, मंत्रकी जगह उसका नाम ही ले लेना चाहिये, सदाशिवने सब जगह ऐसा ही विधान कहा है ॥ ११४ ॥

नमोऽन्तमन्त्रे देवेशि ! न नमो योजयेद्बुधः ।
स्वाहान्तेऽपि तथा मन्त्रे न दद्याद्वह्निवल्लभाम् ११५

हे देवि ! जिस मंत्रके अंतमें 'नमः' पद है, वह मंत्र पढ़कर पूजा करनेके समय पाद्यादि देनेके अवसरमें फिर 'नमः' शब्द नहीं लगावे ऐसे ही जिस मंत्रके अन्तमें 'स्वाहा' पद है अर्घ्यादि देनेके समय फिर दुबारा 'स्वाहा' पद नहीं मिलाना चाहिये ॥ ११५ ॥

ग्रहादिभ्यः प्रदातव्यं पुष्पं वासश्च भूषणम् ।
तेषां वर्णानुरूपेण नान्यथा प्रीतये भवेत्॥ ११६॥

जिस ग्रहका जैसा वर्ण कहा है उस ग्रहको उसी रंगके वस्त्राभूषण और फूल फल देने चाहिये, ऐसा न करनेसे ग्रह प्रसन्न नहीं होते ॥ ११६ ॥

कुशण्डिकोक्तविधिना वह्निं संस्थापयन्सुधीः ।
पुष्पैरुच्चावचैर्यद्वा समिद्भिर्होममाचरेत् ॥ ११७ ॥

ज्ञानी पुरुषको उचित है कि, कुशण्डिकामें कही हुई विधिके अनुसार अग्निस्थापन करके विधिमें कहे हुए पुष्पसे अथवा समिधासे होम करे ॥ ११७ ॥

शान्तिकर्म्मणि पुष्टौ च वरदो हव्यावावनः ।
प्रतिष्ठायां लोहिताक्षः शत्रुहा क्रूरकर्म्मणि॥ ११८॥

शान्ति और पुष्टिकर्ममें अग्निका नाम वरद है, प्रतिष्ठाके समय अग्निका नाम लोहिताक्ष है और क्रूरकर्मके समय अग्निका नाम शत्रुहा होता है ॥ ११८ ॥

शान्तौ पुष्टौ महेशानि ! तथा क्रूरेऽपि कर्म्मणि ।
ग्रहयागं प्रकुर्वाणो वाञ्छितार्थमवाप्नुयात् ॥ ११९ ॥

हे महेश्वरि ! शान्ति, पुष्टि या किसी और क्रूरकर्म करनेके समय जो ग्रहयाग करता है, वह अभिलषित फलको पाता है ॥ ११९ ॥

यथा प्रतिष्ठाकार्य्येषु देवार्चा पितृतर्पणम् ।
वास्तोर्योगे ग्रहाणाञ्च तद्वदेव विधीयते ॥ १२० ॥

प्रतिष्ठाके समय जैसे देवताओंकी पूजा और पितृतर्पण करना आवश्यक है, ग्रहयागमें भी वैसे ही देवताओंकी पूजा और पितृतर्पणकी विधि है ॥ १२० ॥

यद्येकस्मिन्दिने द्वित्रिः प्रतिष्ठायागकर्म्म च ।
मन्त्रेण तत्र देवार्चा पितृश्राद्धाग्निसंस्क्रियाः १२१॥

जो एक दिनमें दो तीन प्रतिष्ठा और यागकर्म आ पड़ें तो एक वार ही देवपूजा और पितृश्राद्ध और अग्निसंस्कार हो सकता है ॥ १२१ ॥

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनः ।
वाहनासनयानानि वासोऽलङ्करणानि च ॥१२२॥

जलाशय, गृह, आराम (विश्रामालय,) पुल, संक्रमवृक्ष, वाहन, आसन, यान, वस्त्र, आभूषण ॥ १२२ ॥

पानाशनीयपात्राणि देववस्तूनि यान्यपि ।
असंस्कृतानि देवाय न प्रदद्युः फलेप्सवः ॥१२३॥

पानपात्र (गिलास लोटा आदि) भोजनपात्र (थाली इत्यादि) अथवा जो और कोई वस्तु दान कीजाय, तो फलकी इच्छा करनेवाले पुरुष विना संस्कार किये इन चीजोंको न दें ॥ १२३ ॥

काम्ये कर्म्मणि सर्वत्र बुधः सङ्कल्पमाचरेत् ।
विधिवाक्यानुसारेण सम्पूर्णसुकृताप्तये ॥ १२४ ॥

सम्पूर्ण सुकृतका लाभ होनेके अर्थ ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि, सब काम्यकर्मोंमें विधिवाक्यके अनुसार संकल्प करे ॥ १२४ ॥

संस्कृताभ्यर्चितं द्रव्यं नामोच्चारणपूर्वकम् ।
सम्प्रदानाभिधाञ्चोक्त्वा दत्त्वा सम्यक्फलं लभेत् ॥

जिस वस्तुका दान करना हो पहले उसका संस्कार करे और फिर उसको पूजे । फिर उसका नाम लेवे, जिसको दान करे उसका नाम ले, ऐसे दान करनेसे संपूर्ण फल मिलता है ॥ १२५ ॥

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम् ।
कथ्यन्ते प्रोक्षणे मन्त्राः प्रयोज्या ब्रह्मविद्यया १२६

जलाशय, गृह, आराम (विश्रामालय), पुल, संक्रमवृक्षके प्रोक्षित करनेका मंत्र कहता हूं-गायत्री पढ़कर उन सब मंत्रोंको पढ़े ॥ १२६ ॥

जीवनाधार ! जीवानां जीवनप्रद ! वारुण ।
प्रोक्षणे तव तृप्यन्तु जलभूचरखेचराः ॥ १२७ ॥

हे वारुण ! तुम जीवोंको जीवन देते हो, तुम सबके जीवनके आधार हो मैं जो तुमको प्रोक्षित करता हूं उससे जलचारी, स्थलचारी और आकाशचारी सब जीव तृप्त हों । इस मंत्रको पढ़कर जलाशयको प्रोक्षित करे ॥ १२७ ॥

तृणकाष्ठादिसम्भूत वासेय ब्रह्मणः प्रिय ।
त्वां प्रोक्षयामि तोयेन प्रीतये भव सर्वदा ॥ १२८ ॥

हे गृह ! तुम तृण और काष्ठादिसे बने हो, तुम उत्तम वासके योग्य स्थानमें हो,तुम ब्रह्माके प्रिय पदार्थ हो,मैं तुमको जलसे प्रोक्षित करता हूं, तुम सदा प्रीतिदायक हो यह मंत्र पढ़कर तृणादिसे बने हुए गृहको प्रोक्षित करे ॥१२८॥

इष्टकादिसमुद्भूत ! वक्तव्यन्त्विष्टकामये ॥ १२९ ॥

ईंट आदिसे बने हुए गृहकी प्रतिष्ठाके समय तृण काष्ठादिसमुद्भव अर्थात् तुम तृण व काष्ठादिसे बने हो ऐसा न कहकर । इष्टकादिसमुद्भूत अर्थात् तुम ईंटआदिसे बने हो ऐसा मंत्र पढ़े, पत्थरसे बने हुए गृहकी प्रतिष्ठाके समय यहाँ पर प्रस्तरादिसमुद्भूत अर्थात् तुम पत्थरादिसे बने हो ऐसा वाक्य कहना चाहिये ॥ १२९ ॥

फलैः पत्रैश्च शाखाद्यैश्छायाभिश्च प्रियङ्कराः ।
यच्छन्तु मेऽखिलान्कामान्प्रोक्षितास्तीर्थवारिभिः ॥

आराम और वृक्षकी प्रतिष्ठाके समय भी ऐसा ही मंत्र पढ़कर उसको अभ्युक्षित करे कि हे आराम ! हे वृक्ष ! तुम फल, पत्र और शाखाआदिसे और छायासे आराम देकर सबका प्रियकार्य करते रहो । तुम तीर्थके जलसे अभ्युक्षित हो, मेरी समस्तकामना पूर्ण करो ॥ १३० ॥

सेतुस्त्वं भव सिन्धूनां पारदः पथिकप्रियः ।
मया संप्रोक्षितः सेतो ! यथोक्तफलदो भव॥ १३१॥

हे सेतो ! तुम्हारे द्वारा संसार समुद्रके पार उतरा जा सकता है। तुम पथिक लोगोंके अत्यन्त प्यारे हो । मैंने तुमको अभ्युक्षित किया, तुम हमको यथोचित फल दो (यह वाक्य पढ़कर पुलको अभ्युक्षित करे) ॥ १३१ ॥

संक्रम ! त्वां प्रोक्षयामि लोकानां संक्रमं यथा ।
ददासीह तथा स्वर्गे संक्रमो मे प्रदीयताम् १३२॥

हे संक्रम ! मैं तुमको प्रोक्षित करता हूं, मार्ग दिखाते हो वैसे ही हमें स्वर्गमें उतरनेका जिस प्रकार तुम पथिकलोगोंको संक्रम अर्थात् दूसरी पार उतरनेका मार्ग दो । (यह वाक्य पढ़कर संक्रमको अभ्युक्षित करे) ॥१३२ ॥

आरामप्रोक्षणे मन्त्रो य एष कथितः प्रिये ! ।
स एव शाखिसंस्कारे प्रयोक्तव्यो मनीषिभिः १३३॥

हे प्रिये ! आरामप्रोक्षणमें जो मंत्र कहा, पण्डितोंको चाहिये कि, वृक्षकी प्रतिष्ठामें भी वही मंत्र पढ़ें ॥१३३॥

प्रणवं वारुणञ्चास्त्रं बीजत्रितयमम्बिके ! ।
सर्वसाधारणद्रव्यप्रोक्षणे विनियोजयेत् ॥ १३४ ॥

हे अम्बिके ! सर्व साधारण वस्तु प्रोक्षित करनेके समय प्रणव वरुण बीज और अस्त्र इन तीन बीजोंका व्यवहार करे (१) ॥ १३४ ॥

स्नापनार्हं वाहनं च स्नापयेद्ब्रह्मविद्यया ।
अन्यत्रैवार्घतोयेन कुशाग्रेण विशोधयेत् ॥१३५॥

जिस वस्तुको स्नान कराया जा सकता है; ऐसे वाहनादिको गायत्री पढ़कर स्नान करावे जिनको स्नान नहीं कराया जा सकता उनको कुशकी नोकसे ग्रहण किये हुए अर्घ्यके जलसे शुद्ध करे ॥ १३५ ॥

प्राणप्रतिष्ठामारच्य तत्तद्वाहनसंज्ञया ।
पूजितोऽलङ्कृतो वाहो देयो भवति दैवते॥ १३६ ॥

जब किसी देवताके वाहनकी प्रतिष्ठा करनी हो तो पहले उस वाहनका नाम ले प्राणप्रतिष्ठा करके उसको पूजे और अलंकार (आभूषणादि) पहरावे । फिर उस वाहनकी प्रतिष्ठा करे ॥ १३६ ॥

(१) तीन बीज यथा–'ओं वं फट्' ॥

जलाशये पूजनीयो वरुणो यादसाम्पतिः ।
गृहे प्रजापतिर्ब्रह्मारामे सेतौ च संक्रमे ।
पूज्यो विष्णुर्जगत्पाता सर्वात्मा सर्वदृग्विभुः १३७॥

जलाशयकी प्रतिष्ठा करनेके समय जलचारियोंके स्वामी वरुणजीकी पूजा करे । गृहकी प्रतिष्ठाके समय प्रजापति ब्रह्माजीकी पूजा करे। वृक्ष, आराम, सेतु, संक्रमकी प्रतिष्ठा करनेके समय जगत्पति, सर्वात्मा,सबके साक्षी, विभु विष्णुजीकी पूजा करे ॥ १३७ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

विविधानि विधानानि कथितान्युक्तकर्म्मसु ।
क्रमो न दर्शितो येन मानवः कर्म्म साधयेत् १३८॥

देवीजीने कहा, सब उत्तम कर्मोंमें अनेक प्रकारका विधान कहा, परन्तु मनुष्य जिस कर्मका अवलम्बन करके कर्म करे वह आपने प्रकाशित नहीं किया ॥ १३८ ॥

क्रमव्यत्ययकर्म्माणि बह्वायासकृतान्यपि ।
न यच्छन्ति फलं सम्यङ् नृणां कर्म्मानुजीविनाम्॥

जो मनुष्य फलको चाहते हैं, वे जो कर्म करते हैं, यद्यपि वे कर्म बहुत क्लेशसे सिद्ध होते हैं तथापि क्रम बिगड़नेसे वे कर्म फलदायक नहीं होते ॥ १३९ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

यदुक्तं परमेशानि ! मातेव हितकारिणि ! ।
निःश्रेयसं तल्लोकानां फलव्यापृतचेतसाम् ॥१४०॥

श्रीसदाशिवने कहाः-हे परमेश्वरि ! तुम मातासमान जगत्की हितकारिणी हो रही हो, मैंने जो कुछ तुमसे कहा सो फलमें आसक्त हुए पुरुषोंके लिये सब प्रकारसे मङ्गलकारी है ॥ १४० ॥

एतेषामुक्तकृत्यानामनुष्ठानं पृथकपृथक् ।
वास्तुयागक्रमाद्देवि! कथयाम्यवधीयताम्॥ १४१॥

हे देवि ! मैंने जिन कर्मोंका वर्णन किया है उनका अनुष्ठान अलग २ है। अब मैं वास्तुयागसे आरम्भ करके क्रमानुसार कहता हूं, तुम सावधान होकर सुनो ॥१४१॥

पूर्वेऽह्नि नियताहारः श्वः प्रातः स्नानमाचरेत् ।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म्म गुरुं नारायणं यजेत् १४२॥

(वास्तुयज्ञके समय) पहले दिन आहारका संयम करके मन्त्रका जाननेवाला पुरुष दूसरे दिन सबेरे ही स्नान करे फिर प्रातःकृत्य समाप्त करके गुरु और नारायणजीकी पूजा करे ॥ १४२ ॥

ततः स्वकाममुद्दिश्य विधिदर्शितवर्त्मना ।
कृतसङ्कल्पको मन्त्री गणेशादीन्समर्च्चयेत् १४३

इसके उपरान्त कामनाके अनुसार विधिविधानसे संकल्प करके गणेशादिकी पूजा करे ॥ १४३ ॥

बन्धूकाभं त्रिनेत्रं द्विरदवरमुखं नागयज्ञोपवीतं
शङ्खं चक्रं कृपाणं विमलसरसिजं हस्तपद्मैर्दधानम् ।

उद्यद्बालेन्दुमौलिं दिनकरकिरणोद्दीप्तवस्त्राङ्गशोभं
नानालंकारयुक्तं भजत गणपतिं रक्तपद्मोपविष्टम्॥

(अब गणेशजीका ध्यान कहा जाता है) जिनकी आभा बंधूकके फूलके समान है, जो त्रिनेत्र हैं, जिनका हाथीके समान मुख है, नाग ही जिनका यज्ञोपवीत हुआ है, जो चार हाथोंसे, शंख, चक्र, कृपाण और सुन्दर पद्म धारण किये हुए हैं, उदय हुई चंद्रकला जिनके शिरका भूषण है; जिनके वस्त्र और अंगकी शोभा उदय हुए सूर्यनारायणकी किरणके समान है, जिनके अंगमें अनेक प्रकारके आभूषण शोभायमान हो रहे हैं, जो रक्त (लाल) कमलपर बैठे हैं ऐसे गणेशजीका भजन करे ॥ १४४ ॥

एवं ध्यात्वा यथाशक्ति पूजयित्वा गणेश्वरम् ।
ब्रह्माणं च ततो वाणीं विष्णुं लक्ष्मीं समर्च्चयेत् १४५

इस प्रकार ध्यान करके शक्तिके अनुसार गणेशजीकी पूजा करे । फिर ब्रह्मा, सरस्वती, विष्णु और लक्ष्मीजीकी पूजा करे ॥ १४५ ॥

शिवं दुर्गां ग्रहांश्चापि तथा षोडशमातृकाः ।
घृतधारास्वपि वसूनिष्ट्वा कुर्य्यात्पितृक्रियाम् १४६॥

अनंतर शिव, दुर्गा, ग्रह व षोडश मातृकाओंकी पूजा करके घृतकी धारासे सुगवर्णोंकी पूजा करे फिर पितृकृत्य करे ॥ १४६ ॥

ततः प्रोक्तविधानेन मण्डलं वास्तुरक्षसः।
निर्म्माय पूजयेत्तत्र वास्तुदैत्यं गणैः सह ॥१४७॥

इसके उपरांत पहले कही हुई विधिके अनुसार, वास्तु-राक्षसके मंडलको बनाकर उसमें परिवारसहित वास्तुदैत्यकी पूजा करे ॥ १४७ ॥

ततस्तु स्थण्डिलं कृत्वा वह्निं संस्कृत्य पूर्ववत्।
धाराहोमान्तमाचर्य्य वास्तुहोमं समारभेत्॥१४८॥

फिर स्थंडिल (रेतेका चौतरा) बनाकर पहलेकी नांई अग्निसंस्कार करके धाराहोमतक सब कार्योंको करके वास्तुहोमका आरंभ करे ॥ १४८ ॥

यथाशक्त्याहुतीस्तस्मै परिवारगणाय च।
तथा पूजितदेवेभ्यो दत्त्वा कर्म्म समापयेत् १४९॥

फिर वास्तुराक्षस और उसके परिवारके अर्थ यथाशक्ति आहुति दे, पूजित देवताओंके लिये आहुति देकर कर्मको समाप्त करे॥ १४९ ॥

वास्तुयागे पृथक्कार्य्ये एष ते कथितः क्रमः।
अनेनैव ग्रहाणां च यज्ञोऽपि विहितः प्रिये १५०
ग्रहाणामत्र मुख्यत्वान्नाङ्गत्वेन प्रपूजनम्।
सङ्कल्पानन्तरं कार्य्यं वास्त्वर्च्चनमिति क्रमः१५१

हे प्रिये! यदि वास्तुयज्ञ अलग करना हो तो इस कहे हुए क्रमसे करे, इस क्रमके अनुसार ग्रहोंका यज्ञ भी किया जा

सकता है, परंतु ऐसे स्थानमें ग्रहोंकी प्रधानताके हेतु अंग स्वरूपमें पूजा नहीं होगी वैसे स्थानमें क्रम यह है कि संकल्पके पीछे ही वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये १५०॥१५१

गणेशाद्यर्चनं सर्वं वास्तुयागविधानवत् ।
ग्रहाणां यन्त्रमन्त्रौ च ध्यानं प्रागेव कीर्तितम् १५२

वास्तुयज्ञके विधानकी नाईं गणेशआदि सब देवताओंकी पूजा करे । ग्रहोंके यंत्र मन्त्र और ध्यान पहले ही कहे हैं ॥

प्रसङ्गात्कथितौ भद्रे ! ग्रहवास्तुक्रतुक्रमौ ।
अथ प्रस्तुतकृत्यानामुच्यते कूपसंस्क्रिया ॥१५३॥

हे भद्रे ! प्रसंगानुसार ग्रहयज्ञ और वास्तुयज्ञके क्रम कहे हैं, अब इस समयके कार्योंमें कूपसंस्कार कहता हूं ॥१५३॥

संकल्पं विधिवत्कृत्वा वास्तुपूजनमाचरेत् ।
मण्डले कलशे वापि शालग्रामे यथामति ॥१५४॥

पहले यथाविधिसे संकल्प करके अपनी इच्छाके अनुसार मण्डलमें,कलशमें वा शालग्राममें वास्तुपूजा आरंभ करे १५४

ततः पूज्यो गणपतिर्ब्रह्मा वाणी हरी रमा ।
शिवो दुर्गा ग्रहाश्चापि पूज्या दिक्पतयस्तथा १५५

इसके उपरांत गणेश, ब्रह्मा, सरस्वती, विष्णु, लक्ष्मी, शिव, दुर्गा, ग्रह, दिक्पाल इनकी पूजा करके ॥१५५॥

मातरो वसवोऽष्टौ च ततः कार्या पितृक्रिया ।
प्राधान्यं वरुणस्यात्र स हि पूज्यो विशेषतः १५६॥

मातृगणोंकी और आठ वसु गणोंकी पूजा करे तदुपरांत पितृश्राद्ध करे । इस कूपसंस्कारमें वरुणदेवताकी ही प्रधानता है इस कारणसे भलीभाँति उनकी पूजा करे ॥ १५६ ॥

नानोपहारैर्वरुणमर्चयित्वा स्वशक्तितः ।
विधिवत्संस्कृते वह्नौ वारुणं होममाचरेत् ॥ १५७ ॥

फिर अनेक भाँतिके उपहारोंसे यथाशक्ति वरुणजीकी पूजा करके संस्कार की हुई अग्निमें विधिपूर्वक वरुणजीका होम करे ॥ १५७ ॥

पूजितेभ्यश्च देवेभ्यो दत्त्वा प्रत्येकमाहुतिम् ।
पूर्णाहुत्यन्तकृत्येन होमकर्म समापयेत् ॥ १५८ ॥

फिर पूजित देवताओंमेंसे प्रत्येकको आहुति दे, पूर्णाहुति देकर होमकर्मको समाप्त करे ॥ १५८ ॥

ततो ध्वजपताकास्रग्गन्धसिन्दूरचर्चितम् ।
उक्तप्रोक्षणमन्त्रेण प्रोक्षयेत्कूपमुत्तमम् ॥ १५९ ॥

फिर कहा हुआ प्रोक्षणमंत्र पढ़कर ध्वजा, पताका, स्रक् चंदन और सिन्दूरसे शोभायमान उत्तम कुएको प्रोक्षित करे

ततः स्वकाममुद्दिश्य देवमुद्दिश्य वा नरः ।
सर्वभूतप्रीणनायोत्सृजेत्कूपजलाशयम् ॥ १६० ॥

फिर मनुष्य अपनी कामनाके अर्थ अथवा देवताकी प्रीतिके लिये, सर्व प्राणियोंको संतोषित करनेको कुआ या जलाशयका उत्सर्ग करे ॥ १६० ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्साधकाग्रणीः ।
सुप्रीयन्तां सर्वभूता नभोभूतोयवासिनः ॥ १६१ ॥

फिर साधकश्रेष्ठको हाथ जोड़कर प्रार्थना करनी चाहिये कि, जलचारी, स्थलचारी व आकाशचारी समस्त प्राणी तृप्त हों ॥ १६१ ॥

उत्सृष्टं सर्वभूतेभ्यो मयैतज्जलमुत्तमम् ।
तृप्यन्तु सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः ॥ १६२ ॥

मैंने सर्व प्राणियोंके तृप्तिके लिये यह उत्तम जल उत्सर्ग किया, स्नान, पान और अवगाहन करके सब प्राणी तृप्त हों

सामान्यं सर्वजीवेभ्यो मया दत्तमिदं जलम् ।
ये च केचिद्विपद्यन्ते स्वस्वकर्म विपाकतः ॥ १६३॥

मैंने समान समझकर सब जीवोंको यह जल दिया जो जो अपने कर्मके विपाकसे इस जलसे प्राणत्याग करेंगे ॥ १६३॥

तत्पापैर्न प्रलिप्येऽहं सफलास्तु मम क्रियाः ।
ततस्तु दक्षिणां कृत्वा कृतशान्त्यादिकक्रियः १६४॥

मैं उनके पापमें नहीं फसूंगा। क्रिया सफल हो फिर शान्ति इत्यादि करके दक्षिणान्त कर्म करे ॥ १६४ ॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्कौलान्दीनानपि बुभुक्षितान् ।
जलाशयप्रतिष्ठासु सर्वत्रैष क्रमः शिवे ! ॥ १६५॥

अनंतर कुलवानोंको, ब्राह्मणोंको और भूखे दीन लोगोंको

भोजन करावे। जलाशयकी प्रतिष्ठामें सब स्थानोंपर ऐसा ही क्रम करना चाहिये ॥ १६५ ॥

तडागादौ च कर्त्तव्या नागस्तम्भजलेचराः ॥ १६६॥

तड़ागादिकी प्रतिष्ठाके समय विशेषता यह है कि, उसमें नाग, स्तम्भ और जलचर निर्माण करना चाहिये ॥ १६६ ॥

मीनमण्डूकमकरकूर्माश्च जलजन्तवः।
कार्य्या धातुमयाश्चैते कर्तृवित्तानुसारतः ॥ १६७॥

कर्मकर्ताके विभवके अनुसार मत्स्य, मेंढक, मकर, कछुआ यह सब जलजन्तु धातुके बनवावे ॥ १६७ ॥

मत्स्यौ स्वर्णमयौ कुर्य्यान्मण्डूकावपि हेमजौ।
राजतौ मकरा कूर्ममिथुनं ताम्ररीतिकम् ॥ १६८॥

दो मत्स्य और दो मेंढक सुवर्णके बनवावे, दो मकर चांदीके बनवावे, दो कछुए तांबेके और पीतलके बनवावे ॥

एतैर्जलचरैः सार्द्धं तडागमपि दीर्घिकाम्।
सागरञ्च समुत्सृज्य प्रार्थयन्नागमर्चयेत् ॥ १६९॥

इन जलचर जन्तुओंके साथ तड़ाग, बावड़ी और सरोवरके उत्सर्ग कर प्रार्थना करके नागकी पूजा करे ॥ १६९ ॥

अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मश्च तक्षकः।
कुलीरः कर्कटः शंखः पार्थसां रक्षका इमे ॥ १७०॥

वासुकी, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कट, शंख ये जलके रक्षक हैं ॥ १७० ॥

इत्यष्टौ नागनामानि लिखित्वाश्वत्थपल्लवे ।
स्मृत्वा प्रणवगायत्र्यौ घटमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥ १७१ ॥

पीपलके पत्तोंके ऊपर यह आठ नाम लिखकर प्रणव और गायत्रीका स्मरण करके घड़ेमें वह पत्ते डाले ॥ १७१ ॥

चन्द्रार्कौ साक्षिणौ कृत्वा विलोड्यैकं समुद्धरेत् ।
तत्रोत्तिष्ठति यो नागस्तं कुर्य्यात्तोयरक्षकम् ॥ १७२ ॥

फिर चंद्रमा सूर्यको साक्षी बनाकर इन पीपलके पत्तोंको घड़ेमें ही घुमाकर फिराकर उनमेंसे एक पत्ता निकाले, उस पत्तेमें जिसका नाम निकले उसको ही जलका रक्षक करे १७२

स्तम्भमेकं समानीय विंशहस्तमितं शुभम् ।
सरलं दारुजं तैलैरुक्षितञ्च हरिद्रया ॥ १७३ ॥

फिर बीसहाथ लंबा उत्तम व सीधे काठका बना हुआ एक थंब लाकर उसमें तेल व हल्दी लगावे ॥ १७३ ॥

स्नापयेत्तीर्थतोयेन व्याहृत्या प्रणवेन च ।
तत्र ह्रीश्रीक्षमाशान्तिसहितं नागमर्चयेत् ॥ १७४ ॥

फिर तीर्थके जलसे प्रणव और व्याहृति पढ़कर इस थंबको स्नान करावे फिर उसमें ह्री श्री, क्षमा और शान्तिके साथ नागकी पूजा करे ॥ १७४ ॥

नाग त्वं विष्णुशय्यासि महादेवविभूषणम् ।
स्तम्भमेनमधिष्ठाय जलरक्षां कुरुष्व मे ॥ १७५ ॥

अनंतर यह कहकर प्रार्थना करे कि हे नाग ! तुम विष्णुजीकी शय्या और महादेवजीके भूषण हो, तुम इस थंबमें वास करके हमारे इस जलकी रक्षा करो ॥ १७५ ॥

इति प्रार्थ्य ततो नागं स्तम्भं मध्येजलाशयम् ।
समारोप्य तडागञ्च कर्त्ता कुर्य्यात्प्रदक्षिणम् १७६॥

इस प्रकार नागसे प्रार्थना करके कर्मकर्त्ता जलाशयमें थंभको गाड़कर तड़ागकी प्रदक्षिणा करे ॥ १७६ ॥

यूपश्चेत्स्थापितः पूर्वं तदा नागं घटेऽर्चयन् ।
तज्जलं तत्र निक्षिप्य शिष्टं कर्म समापयेत्॥१७७॥

जो थंभ पहले ही गाड़ दिया हो तो घड़ेके ऊपर नागकी पूजा करे फिर इस घड़ेका जल उस जलाशयमें डालकर शेषकर्म समाप्त करे ॥ १७७ ॥

एवं गृहप्रतिष्ठायां कृतसंकल्पको बुधः ।
वास्त्वादिवसुपूजान्तं पितृकर्म च कूपवत्॥१७८॥

इसीप्रकार गृहकी प्रतिष्ठाके समय ज्ञानी पुरुष संकल्प करके कुएकी प्रतिष्ठाकी नाई वस्तुपूजा इत्यादि वसुपूजातक समाधान करके पितृकर्म करे ॥ १७८ ॥

विधायात्र विशेषेण यजेद्देवं प्रजापतिम् ।
प्राजापत्यञ्च हवनं कुर्य्यात्साधकसत्तमः ॥ १७९॥

फिर साधकश्रेष्ठको चाहिये कि, भलीभांतिसे देव प्रजापतिकी पूजा करे फिर प्राजापत्यहोम करे ॥ १७९ ॥

गृहं पूर्वोक्तमन्त्रेण प्रोक्ष्य गन्धादिनार्चयन् ।
ईशानाभिमुखो भूत्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥ १८० ॥

फिर पहला कहा हुआ मंत्र पढ़ गृह प्रोक्षित कर गन्ध पुष्पादिसे पूजा करे, अनन्तर ईशानकी ओर मुखकर हाथ जोड़ प्रार्थना करे कि ॥ १८० ॥

प्रजापतिश्च ते गेह ! पुष्पमाल्यादिभूषितः ।
अस्माकं शुभवासाय सर्वथा सुखदो भव ॥ १८१ ॥

हे गृह! प्रजापति तुम्हारे अधिष्ठाता हैं तुम पुष्पमालादिसे भूषित हुए हो। हमारे शुभवासके लिये तुम सब प्रकारसे सुखदायक होवो ॥ १८१ ॥

ततस्तु दक्षिणां कृत्वा शान्त्याशीर्वादमाचरेत् ।
विप्रान्कुलीनान्दीनांश्च भोजयेदात्मशक्तितः १८२ ॥

फिर दक्षिणान्त करके शान्ति और आशीर्वाद ग्रहण करे, तदुपरांत कुलवानोंको, ब्राह्मणोंको और दीन दरिद्रोंको अपनी सामर्थ्यके अनुसार भोजन कराना चाहिये ॥ १८२ ॥

अन्यार्थन्तु प्रतिष्ठा चेत्तद्वासायात्र योजयेत् ।
देवताकृतगेहस्य विधानं शृणु शैलजे ! ॥ १८३ ॥

यदि दूसरेके लिये गृहकी प्रतिष्ठा की जाय तो "अस्माकं शुभवासाय" न कहकर "अमुकस्य शुभवासाय" अथवा अन्येषां शुभवासाय" यह पद मिलावे। हे शैलतनये ! देवताके लिये गृहप्रतिष्ठाकी विधि कहता हूं, तुम सुनो ॥ १८३ ॥

इत्थं संस्कृत्य भवनं शङ्खतूर्य्यादिनिःस्वनैः।
देवतासन्निधिं गत्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः॥१८४॥

इसप्रकार गृहसंस्कार कर शंखादि बजाय देवताके निकट जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि॥ १८४॥

उत्तिष्ठ देवदेवेश भक्तानां वाञ्छितप्रद।
आगत्य जन्मसाफल्यं कुरु मे करुणानिधे १८५॥

हे देवदेवेश! उठो, तुम भक्तवृन्दके अभिलषित फलको देनेवाले हो। हे करुणानिधे! नये प्रतिष्ठित गृहमें आकर उसको सफल करो॥ १८५॥

इत्यभ्यर्थ्य गृहाभ्यर्णे देवमानीय साधकः।
उपस्थाप्य गृहद्वारि पुरतो वाहनं न्यसेत्॥१८६॥

इसप्रकार अभ्यर्थना करके साधक देवताको गृहके समीप लाकर घरके द्वारमें स्थापित करके सामने वाहनकी रक्षा करे॥ १८६॥

त्रिशूलमथवा चक्रं विन्यस्य भवनोपरि।
रोपयेन्मन्दिरेशाने सपताकं ध्वजं सुधीः॥१८७॥

भवनके ऊपर त्रिशूल अथवा चक्र लगाकर बुद्धिमान् साधक मंदिरके ईशानकोणमें पताकाके साथ ध्वजाको लगावे॥ १८७॥

चन्द्रातपैः किङ्किणीभिः पुष्पस्रक्चूतपल्लवैः।
शोभयित्वा गृहं सम्यक्च्छादयेद्दिव्यवाससा १८८॥

फिर चन्दोवेसे, किंकिणीसे, फूलोंकी मालासे, गिरे हुए पत्तोंसे उस मन्दिरको शोभायमान करके दिव्यवस्त्रोंसे ढके ॥ १८८ ॥

उत्तराभिमुखं देवं वक्ष्यमाणविधानतः ।
स्नापयेद्विहितैर्द्रव्यैस्तत्क्रमं वच्मि ते शृणु ॥ १८९ ॥

फिर देवताको उत्तरमुख स्थापित करके वक्ष्यमाण विधिके अनुसार विधिमें कहे हुए द्रव्यसे स्नान करावे। अब स्नानका क्रम कहता हूं, सुनो ॥ १८९ ॥

ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रान्ते मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
दुग्धेन स्नापयामि त्वां मातेव परिपालय १९० ॥

"ऐं ह्रीं श्रीं" इस मन्त्रके पीछे मूलमन्त्र उच्चारण करके फिर "दुग्धेन स्नापयामि त्वाम्" अर्थात् मैं तुमको दूधसे स्नान कराता हूं, तुम मुझको माताके समान प्रतिपालन करो, यह मन्त्र पढ़े ॥ १९० ॥

प्रोक्तबीजत्रयस्यान्ते तथा मूलं नियोजयन् ।
दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव ॥ १९१ ॥

"ऐं ह्रीं श्रीं" उच्चारण कर मूलमन्त्र पढ़ "दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव" अर्थात् मैं तुमको दहीसे स्नान कराता हूं, तुम संसारका संताप दूर करो यह मन्त्र पढ़े १९१

पुनर्बीजत्रयं मूलं सर्वानंदकरेति च ।
मधुना स्नापितः प्रीतो मामानन्दमयं कुरु ॥ १९२ ॥

फिर "ऐं ह्रीं श्रीं" बीज पढ़कर 'सर्वानन्दकर' पाठ करके फिर कहे कि मैं मधुसे स्नान करता हूं, तुम प्रसन्न होकर मुझे आनन्दमय करो (१) ॥ १९२ ॥

प्राग्वन्मूलं समुच्चार्य्य सावित्रीं प्रणवं स्मरन् ।
देवप्रियेण हविषा आयुः शुक्रेण तेजसा ।
स्नानं ते कल्पयामीश मामरोगं सदा कुरु १९३

पहलेके समान मूलमन्त्र गायत्री और प्रणवको स्मरण करके पीछे आयुः, शुक्र और तेजके बढ़ानेवाले देवताओंके प्यारे घृतसे तुमको स्नान करता हूं, हे ईश्वर ! तुम हमको सदा रोगरहित रक्खो । यह मन्त्र पढ़कर घीसे स्नान करावे १९३॥

तद्वन्मूलञ्च गायत्रीं व्याहृतिं समुदीरयन् ।
देवेश! शर्करातोयैः स्नातो मे यच्छ वाञ्छितम् १९४

इसप्रकार मूल, गायत्री और व्याहृतिका उच्चारण करके कहे कि हे देवेश ! मैं तुमको शर्बतसे स्नान कराता हूं, तुम मुझे वांछित फल दो ॥ १९४ ॥

तथा मूलं समुच्चार्य्य गायत्रीं वारुणं मनुम् ।
विधात्रा निर्मितैर्दिव्यैः प्रियैः स्निग्धैरलौकिकैः॥
नारिकेलोदकैः स्नानं कल्पयामि नमोऽस्तु ते १९५

इसप्रकार पहली कही हुई मूलगायत्री और "वं" वरुण-बीज उच्चारण करके कहे कि विधाता करके बनाया हुआ

(१) ऐं ह्रीं श्रीं सर्वानन्दकर मधुना स्नापितः प्रीतो मामानन्दमयं कुरु॥

दिव्य, प्रिय, चिकने, अलौलिक नारियलके जलसे तुमको स्नान कराता हूं, तुम्हें नमस्कार हो ॥ १९५ ॥

गायत्र्या मूलमन्त्रेण स्नापयेदिक्षुजै रसैः ॥१९६॥

फिर गायत्री और मूलमन्त्र पढ़कर गन्नेके रससे स्नान करावे ॥ १९६ ॥

कामबीजं तथा तारं सावित्रीं मूलमीरयन् ।
कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीचन्दनोदकैः ।
सुस्नातो भव सुप्रीतो भुक्तिमुक्ती प्रयच्छ मे १९७॥

फिर "क्लीं ओं" उच्चारण करके गायत्री व मूलमन्त्र पढ़कर कहे कि—कपूर, अगर, केशर, कस्तूरी और चन्दनके जलसे उत्तम स्नान कर तुम प्रसन्न हो और हमको भोग व मोक्ष दो ॥ १९७ ॥

इत्यष्टकलशैः स्नानं कारयित्वा जगत्पतिम् ।
गृहाभ्यन्तरमानीय स्थापयेदासनोपरि ॥ १९८ ॥

इस प्रकार जगन्नाथको आठ कलशोंसे स्नान कराकर गृहमें ले जाकर आसनके ऊपर स्थापन करे ॥ १९८ ॥

स्नापनार्हा न चेदर्चा तद्यन्त्रे वापि तन्मनौ ।
शालिग्रामशिलायां वा स्नापयित्वा प्रपूजयेत् १९९

जो देवताकी मूर्ति स्नान करानेके योग्य न हो तो उस देवताको यन्त्रमें, मन्त्रमें अथवा शालिग्रामकी शिलामें स्नान कराकर पूजा करे ॥ १९९ ॥

अशक्तौ मूलमन्त्रेण स्नापयेच्छुद्धपाथसाम् ।
अष्टभिः कलशैर्यद्वा पञ्चभिः सप्तभिस्तथा॥ २००॥

यदि इसमें अशक्त हो तो आठ कलश, अथवा सात कलश अथवा पांच कलश शुद्ध जलसे स्नान करावे ॥ २०० ॥

घटप्रमाणं प्रागेव कथितं चक्रपूजने ।
सर्वत्रागमकृत्येषु स एव विहितो घटः ॥ २०१ ॥

पहले चक्रके पूजास्थानमें जो घड़ेका प्रमाण कहा है आगममें कहे हुए सब कार्योंमें वैसी ही विधि है ॥ २०१ ॥

ततो यजेन्महादेवं स्वस्वपूजाविधानतः ।
तत्रोपचारान्वक्ष्यामि शृणु देवि परात्परे॥ २०२॥

फिर अपनी २ पूजाविधिके अनुसार महादेवजीकी पूजा करे. हे परात्परे देवि ! इस देवपूजामें उपचार अर्थात् निवेदन करने योग्य वस्तुओंको कहता हूं, सुनो ॥ २०२ ॥

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्कस्तथाचम्यं स्नानीयं वस्त्रभूषणे ॥ २०३ ॥

आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, भूषण ॥ २०३ ॥

गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा ।
देवार्चनासु निर्दिष्टा उपचाराश्च षोडश ॥ २०४ ॥

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, देवताकी पजामें ये सोलह उपचार कहे हैं ॥ २०४ ॥

पाद्यमर्घ्यञ्चाचमनं मधुपर्काचमौ तथा ।
गन्धादिपञ्चकं चैते उपचारा दश स्मृताः ॥२०५॥

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, इनको दशोपचार कहते हैं ॥२०५॥

गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं चापि कालिके ।
पञ्चोपचाराः कथिता देवतायाः प्रपूजने॥ २०६ ॥

हे कालिके ! देवताकी पूजामें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य इनको पञ्चोपचार कहते हैं ॥ २०६ ॥

अस्त्रेणार्घ्याम्भसा द्रव्यं प्रोक्ष्य धेनुं प्रदर्शयन् ।
सम्पूज्यगन्धपुष्पाभ्यां द्रव्याख्यानं समुल्लिखेत् २०७

फट्मन्त्र पढ़कर अर्घ्यके जलसे देने योग्य वस्तुओंको प्रोक्षित करके धेनुमुद्रादि दिखाकर गन्ध पुष्पसे पूजा करके द्रव्यका नाम ले ॥ २०७ ॥

वक्ष्यमाणं मनुं स्मृत्वा मूलं च देवताभिधाम् ।
सचतुर्थीं समुच्चार्य्य त्यागार्थं वचनं पठेत् ॥२०८॥

फिर वक्ष्यमाण मन्त्र उच्चारण कर मूल और चतुर्थी विभक्तिके अंतका देवताका नाम ले त्यागार्थबोधक वाक्य अर्थात् 'नमः' आदि पढ़े ॥ २०८ ॥

निवेदनविधिः प्रोक्तो देवे देयेषु वस्तुषु ।
अनेन विधिना विद्वान्द्रव्यं दद्याद्दिवौकसे ॥२०९॥

देवताको वस्तु निवेदन करनेकी विधि कही, विद्वान् पुरुष इस विधिके अनुसार देवताको द्रव्यनिवेदन करे ॥ २०९ ॥

आद्यार्चनाविधौ पूर्वं पाद्यार्घ्यादिनिवेदनम् ।
अर्पणं कारणादीनां सर्वमेव प्रदर्शितम् ॥ २१० ॥

पहले आदिकालिकाकी पूजा विधिमें पाद्य, अर्घ्य इत्यादिका निवेदन और कारणादिका अर्पण प्रकाशित कर आया हूं ॥ २१० ॥

अनुक्तमन्त्रा ये तत्र तानेवात्र शृणु प्रिये ।
आसनाद्युपचाराणां प्रदाने विनियोजयेत् ॥ २११ ॥

हे प्रिये ! वहांपर जो मन्त्र नहीं कहे, उनको अब कहता हूं, तुम सुनो । आसनादि उपचार देनेके समय इस मन्त्रका-प्रयोग करना चाहिये ॥ २११ ॥

सर्वभूतान्तरस्थाय सर्वभूतान्तरात्मने ।
कल्पयाम्युपवेशार्थमासनं ते नमो नमः ॥ २१२ ॥

तुम प्राणियोंके अन्तरमें विराजमान हो तुम्हारे बैठनेको आसन कल्पित करता हूं, तुमको वारंवार नमस्कार है ॥ २१२ ॥

उक्तक्रमेण देवेशि प्रदायासनमुत्तमम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्वागतं प्रार्थयेत्ततः ॥ २१३ ॥

हे देवेशि ! इस मंत्रसे उत्तम आसन देकर फिर हाथ जोड़-कर स्वागतकी प्रार्थना करे कि ॥ २१३ ॥

देवाः स्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं यस्य वाञ्छन्ति दर्शनम् ।
सुस्वागतं स्वागतम्मे तस्मै ते परमात्मने ॥ २१४॥

अपनी अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये देवतालोग जिसे दर्शनकी कामना करते हैं, तुम वही परमात्मा हो, हमारे लिये तुम्हारा स्वागत, सुस्वागत निवेदित हुआ ॥ २१४ ॥

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सफलाः क्रियाः ।
स्वागतं यत्त्वया तन्मे तपसां फलमागतम्॥२१५॥

आज तुम्हारा शुभागमन होनेसे मेरा जन्म सफल, जीवन सार्थक हुआ, सब क्रिया सार्थक हुई, आज मैं तपके फलको प्राप्त हुआ ॥ २१५ ॥

देवमामन्त्र्य संप्रार्थ्य स्वागतप्रश्नमम्बिके ।
विहितं पाद्यमादाय मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २१६ ॥

हे अम्बिके ! इस प्रकार स्वागत प्रदानसे देवताको संभाषण कर प्रार्थना करे और विधिसे पाद्य ग्रहण करके यह मन्त्र पढ़े कि ॥ २१६ ॥

यत्पादजलसंस्पर्शाच्छुद्धिमाप जगत्त्रयम् ।
तत्पादाब्जप्रोक्षणार्थं पाद्यं ते कल्पयाम्यहम्२१७

जिसके चरणामृतको स्पर्श करनेसे त्रिलोकी पवित्र हुई उसके चरणकमल धोनेके लिये यह पाद्य देता हूं ॥ २१७॥

परमानन्दसन्दोहो जायते यत्प्रसादतः ।
तस्मै सर्वात्मभूताय आनन्दार्घ्यं समर्पये ॥२१८॥

जिसके प्रसादसे परमानन्दके समूह उत्पन्न होते हैं उस सर्वात्माके लिये यह आनन्दार्घ्य समर्पण करता हूं ॥२१८॥

जातीलवङ्गकङ्कोलैर्जलं केवलमेव वा ।
प्रोक्षितार्चितमादाय मन्त्रेणानेन चार्पयेत् ॥२१९॥

जायफल, लौंग, कंकोल आदि द्वारा सुगन्धित जल अथवा केवल जल अर्घ्यके जलसे प्रोक्षित और पूजित करके उक्त मन्त्र पढ़कर अर्पण करे ॥ २१९ ॥

यदुच्छिष्टमपस्पृष्टं शुद्धिमेत्यखिलं जगत् ।
तस्मै मुखारविन्दाय आचमं कल्पयामि ते ॥२२०॥

अपवित्रमय समस्त जगत् जिसकी जूँठनसे पवित्र होता है, तुम्हारे उस मुखारविन्दमें आचमनीय कल्पना करता हूं ॥ २२० ॥

मधुपर्कं समादाय भक्त्यानेन समर्पयेत् ॥२२१॥

फिर मधुपर्क ग्रहण करके इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक समर्पण करे ॥ २२१ ॥

तापत्रयविनाशार्थमखण्डानन्दहेतवे ।
मधुपर्कं ददाम्यद्य प्रसीद परमेश्वर ॥ २२२ ॥

हे परमेश्वर ! तुम अखण्ड आनन्दके कारण आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन तापोंके नाशके लिये मैं तुमको मधुपर्क देता हूं, तुम प्रसन्न हो ॥ २२२ ॥

अशुचिः शुचितामेति यत्स्पृष्टस्पर्शमात्रतः ।
अस्मिंस्ते वदनाम्भोजे पुनराचमनीयकम् ॥२२३॥

जिसकी छुई हुई वस्तुका स्पर्श करनेसे अपवित्र वस्तु भी तत्काल पवित्र हो जाती है, तुम्हारे उस वदनकमलमें पुनराचमनीय देता हूं ॥ २२३ ॥

स्नानार्थ जलमादाय प्राग्वत्प्रोक्षितमर्च्चितम् ।
निधाय देवपुरतो मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २२४ ॥

फिर स्नानके लिये जल लेकर पहलेके समान प्रोक्षित और पूजकर देवताके सामने रखके यह मन्त्र पढ़े कि॥२२४॥

यत्तेजसा जगद्व्याप्तं यतो जातमिदं जगत् ।
तस्मै ते जगदाधार स्नानार्थं तोयमर्पये २२५॥

तुम जगत्के आधार हो, तुम्हारा तेज जगत्में व्याप रहा है, तुमसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है, मैं तुम्हारे स्नानके निमित्त यह जल अर्पण करता हूं ॥ २२५ ॥

स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ।
अन्यद्रव्यप्रदानान्ते दद्यात्तोयं सकृत्सकृत्॥ २२६॥

स्नान, वस्त्र और नैवेद्य उत्सर्ग करनेके पीछे आचमनीय देना चाहिये। और द्रव्य देनेके पीछे एक एक बार जल दे ॥ २२६ ॥

वस्त्रमानीय देवाग्रे शोधितं पूर्ववर्त्मना ।
धृत्वा कराभ्यामुत्तोल्य पठेदेतं मनुं सुधीः॥२२७॥

ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि, देवताके सम्मुख पहली कही हुई विधिके अनुसार शुद्ध वस्त्र लाकर दोनों हाथोंसे पकड़कर उठाय यह मंत्र पढ़े ॥ २२७ ॥

सर्वावरणहीनाय मायाप्रच्छन्नतेजसे ।
वाससी परिधानाय कल्पयामि नमोऽस्तु ते २२८॥

तुम्हारा कोई आवरण नहीं है, माया करके तुम्हारा तेज ढका हुआ है, तुम्हारे पहरनेके लिये वस्त्र कल्पित करता हूं, तुमको नमस्कार हो ॥ २२८॥

नानाभरणमादाय स्वर्णरौप्यादिनिर्मितम् ।
प्रोक्ष्यार्चयित्वा देवाय दद्यादेतं समुच्चरन् ॥२२९॥

इसके उपरांत सुवर्ण, चांदी आदिके बने हुए अनेक प्रकारके आभूषण ले प्रोक्षण करके पूजा कर यह मन्त्र पढ़ते पढ़ते देवताको दे ॥ २२९ ॥

विश्वाभरणभूताय विश्वशोभैकयोनये ।
मायाविग्रहभूषार्थं भूषणानि समर्पये ॥ २३० ॥

जो जगत्के भूषणस्वरूप हैं, जो जगत्की शोभाके खानि हैं, उनके मायासे बने हुए शरीरके अर्थ ये सब गहने समर्पण करता हूं ॥ २३० ॥

गन्धतन्मात्रया सृष्टा येन गन्धधराधरा ।
तस्मै परात्मने तुभ्यं परमं गन्धमर्पये ॥ २३१ ॥

जिससे गन्ध तन्मात्रद्वारा गंधकी आधार यह पृथ्वी उत्पन्न हुई है, वह परमात्मा तुम्हीं हो, मैं तुमको दिव्य गंध देता हूं॥

पुष्पं मनोहरं रम्यं सुगन्धं देवनिर्मितम् ।
मया निवेदितं भक्त्या पुष्पमेतत्प्रगृह्यताम्॥२३२॥

यह फूल देवता करके बने हुए मनोहर दिव्य और सुगंधित है। मैं भक्तिके साथ तुमको यह पुष्प चढ़ाता हूं, तुम ग्रहण करो ॥ २३२ ॥

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वभूतानां धूपो घ्राणाय तेऽर्प्यतां ॥ २३३ ॥

यह वनस्पतिके रस करके बना हुआ धूप मनोहर दिव्य और सुगंधसंपन्न है। धूप सबके सूँघने योग्य है, मैं तुम्हारे सूँघनेके लिये यह धूप समर्पण करता हूं ॥ २३३ ॥

सुप्रकाशो महादीप्तः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् २३४ ॥

यह दीप उत्तम प्रकाश करनेवाली और महादीप्त है, यह चारों ओरके अंधकारका नाश करती है, इसके बाहर और भीतर ज्योति है तुम इस दीपको ग्रहण करो ॥ २३४ ॥

नैवेद्यं स्वादुसंयुक्तं नानाभक्ष्यसमन्वितम् ।
निवेदयामि भक्त्येदं जुषाण परमेश्वर ॥ २३५ ॥

हे परमेश्वर ! इस नैवेद्यमें अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ हैं। यह उत्तम और स्वादिष्ठ है, मैं भक्तिपूर्वक इसे निवेदन करता हूं, तुम आहार करो ॥ २३५ ॥

पानार्थं सलिलं देव कर्पूरादिसुवासितम् ।
सर्वतृप्तिकरं स्वच्छमर्पयामि नमोऽस्तु ते ॥ २३६ ॥

हे देव ! कर्पूरादिसे सुवासित यह पीनेका जल सबको

तृप्त करनेवाला और अत्यंत निर्मल है, मैं यह पानार्थ जल तुमको अर्पण करता हूं, आपको नमस्कार है ॥ २३६ ॥

ततः कर्पूरखदिरलवङ्गैलादिभिर्युतम् ।
ताम्बूलं पुनराचम्य दत्त्वा वन्दनमाचरेत् ॥२३७॥

फिर कपूर, खैर, इलायची, लवंगादिके साथ ताम्बूल, पुनराचमनीय देकर नकस्कार करे ॥ २३७ ॥

उपचाराधारदाने साधारद्रव्यमुल्लिखेत् ।
दद्याद्वा पृथगाधारं तत्तन्नाम समुच्चरन् ॥२३८॥

जो उपचारके साथ आधार दिया जाय तो आधारके साथ द्रव्यका नाम ले । अथवा सब आधारोंका नाम लेकर पृथक् अधार दे ॥ २३८ ॥

इत्थमर्चितदेवाय दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
साच्छादनं गृहं प्रोक्ष्य पठेदेतं कृताञ्जलिः २३९॥

इस प्रकार पूजित देवताको तीन बार पुष्पांजलि देकर आच्छादनके साथ गृह प्रोक्षित करके हाथ जोड़कर यह मंत्र पढ़े ॥ २३९ ॥

गेहं त्वं सर्वलोकानां पूज्यं पुण्ययशःप्रदम् ।
देवतास्थितिदानेन सुमेरुसदृशं भव ॥ २४० ॥

हे गृह ! तुम सब लोगोंको पूज्य और पवित्र यश देनेवाले हो, तुम देवताओंको स्थान देकर सुमेरुके समान हो२४०

त्वं कैलासश्च वैकुण्ठस्त्वं ब्रह्मभवनं गृह ।
यत्त्वया विधृतो देवस्तस्मात्त्वं सुरवन्दितः॥२४१॥

हे गृह ! तुम कैलास, तुम वैकुण्ठ और तुम ब्रह्मभवन हो तुमने देवताको धारण किया है, अतएव तुम देवताओंके भी पूजनीय हो ॥ २४१ ॥

यस्य कुक्षौ जगत्सर्वं वरीवर्त्ति चराचरम् ।
मायाविधृतदेहस्य तस्य मूर्त्तेर्विधारणात् ॥२४२॥

जो अपनी कुक्षिमें सब संस्कारको धारण करते हैं उनके मायामें व देह धारण करनेसे तुम उनकी मूर्ति धारण करते हो॥

देवमातृमयस्त्वं हि सर्वतीर्थमयस्तथा ।
सर्वकामप्रदो भूत्वा शान्तिं मे कुरुते नमः॥२४३॥

अतएव तुम देवताकी माके समान और तीर्थमय हो । तुम हमारी सब अभिलाषायें पूर्ण करो, तुम हमको शांति दो, तुमको नमस्कार करता हूं ॥ २४३ ॥

इत्यभ्यर्थ्य त्रिरभ्यर्च्य गृहं चक्रादिसंयुतम् ।
आत्मनः काममुद्दिश्य दद्याद्देवाय साधकः॥२४४॥

इस प्रकार चक्रादिके सहित गृहकी प्रार्थना करके साधक तीनवार पूजे, फिर अपनी कामनादिको कहकर देवताके लिये इस गृहको उत्सर्ग करे ॥ २४४ ॥

विश्वावासाय वासाय गृहं ते विनिवेदितम् ।
अङ्गीकुरु महेशान कृपया सन्निधीयताम्॥२४५॥

और इस मंत्रको पढ़े कि हे महेश्वर ! यद्यपि तुम संसारके रहनेके स्थान हो तथापि तुम्हारे वासके लिये यह घर उत्सर्ग किया, तुम कृपा करके ग्रहण करो और इस घरमें स्थिति करके विराजो ॥ २४५ ॥

इत्युक्त्वार्पितगेहाय देवाय दत्तदक्षिणः ।
शंखतूर्य्यादिघोषैस्तं स्थापयेद्वेदिकोपरि ॥२४६॥

यह मन्त्र पढ़ देवताके लिये गृहको भेंट दे, दक्षिणा देकर शंख तुरही आदिके शब्दसे उस देवताको वेदीके ऊपर स्थापित करे ॥ २४६ ॥

स्पृष्ट्वा देवपदद्वन्द्वं मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
स्थां स्थीं स्थिरो भवेत्युक्त्वा वासस्ते कल्पितो मया॥
इति देवं स्थिरीकृत्य भवनं प्रार्थयेत्पुनः ॥२४७॥

फिर देवताके दोनों चरण पकड़कर मूलमन्त्र उच्चारण करके " स्थां स्थीं स्थिरो भव" मैंने इस गृहमें तुम्हारा वास कल्पित किया, यह मन्त्र कह देवताको स्थिरकर फिर गृहसे प्रार्थना करे कि ॥ २४७ ॥

गृह देवनिवासाय सर्वथा प्रीतिदो भव ।
उत्सृष्टे त्वयि मे लोकाः स्थिराःसन्तु निरामयाः२४८

हे घर ! तुम देवताके निवासमें सर्वप्रकारसे प्रीतिदायक हो । मैंने तुमको उत्सर्ग किया, मेरे लिये स्वर्गलोक निरुपद्रव हो ॥ २४८ ॥

द्विसप्तातीतपुरुषान्द्विसप्तानागतानपि ।
मां च मे परिवारांश्च देवधाम्नि निवासय ॥२४९॥

मेरे बहत्तर पूर्व और बहत्तर पीछेके पुरुषोंको मेरे परिवार वा लोगोंको देवलोकमें वास कराओ ॥ २४९ ॥

यजनात्सर्वयज्ञानां सर्वतीर्थनिषेवणात् ।
यत्फलं तत्फलं मेऽद्य जायतां त्वत्प्रसादतः २५०॥

सब यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जो फल होता है,सब तीर्थोंमें गमन करनेसे जो फल होता है आज तुम्हारे प्रसादसे मुझे वह समस्त फल हो ॥ २५० ॥

यावद्वसुन्धरा तिष्ठेद्यावदेते धराधराः ।
यावद्दिवानिशानाथौ तावन्मे वर्त्ततां कुलम् २५१॥

जबतक पृथ्वी रहे, जबतक सब पर्वत रहें, जबतक चन्द्र सूर्य रहें तबतक मेरा वंश स्थिर रहें ॥ २५१ ॥

इति प्रार्थ्य गृहं प्राज्ञः पुनर्देवं समर्चयन् ।
दर्पणाद्यन्यवस्तूनि ध्वजं चापि निवेदयेत् २५२॥

इस प्रकार गृहसे प्रार्थना करके फिर ज्ञानी पुरुष दुबारा दवताको पूजे और ध्वजा दर्पणादि और सब वस्तुयें निवेदन करे ॥ २५२ ॥

ततस्तु वाहनं दद्याद्यस्मिन्देवे यथोदितम् ।
शिवाय वृषभं दत्त्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥२५३॥

फिर जिस देवताके लिये जो वाहन कहा है, वह उसको दे, यदि शिवकी प्रतिष्ठा हो तो शिवको वृषभ दान दें, हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि ॥ २५३ ॥

वृषभ ! त्वं महाकायस्तीक्ष्णशृङ्गोऽरिघातकः ।
पृष्ठे वहसि देवेशं पूज्योऽसि त्रिदशैरपि ॥ २५४ ॥

हे वृषभ ! तुम बड़े शरीरवाले, तेज सींगवाले और शत्रु-संहारकारी हो, तुम देवदेव महादेवजीको पीठपर चढ़ाये हो, इस कारण देवतालोग भी तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ २५४ ॥

क्षुरेषु सर्वतीर्थानि रोम्णि वेदाः सनातनाः ।
निगमागमतन्त्राणि दशनाग्रे वसन्ति ते ॥ २५५ ॥

तुम्हारे चारों खुरोंमें सब तीर्थ, रोओंमें सब वेद और तुम्हारे दांतोंकी नोकोंमें सब निगम और आगम तंत्र विराजमान हैं

त्वयि दत्ते महाभाग ! सुप्रीतः पार्वतीपतिः ।
वासं ददातु कैलासे त्वं मां पालय सर्वदा ॥२५६ ॥

हे महाभाग ! मैंने तुमको दान किया इस कारण भगवान् पार्वतीके पति प्रसन्न होकर कैलासमें मुझे स्थान दें, तुम सदा हमारी रक्षा करो ॥ २५६ ॥

सिंहं दत्त्वा महादेव्यै गरुडं विष्णवे तथा ।
यथा स्तुयान्महेशानि ! तन्मे निगदतः शृणु ॥ २५७ ॥

हे परमेश्वरि ! इस प्रकार महादेवीको सिंह, विष्णुजीको

गरुड़ देकर जैसी स्तुती की जाती है सो मैं तुमसे कहता हूं, श्रवण करो ॥ २५७ ॥

सुरासुरनियुद्धेषु महाबलपराक्रमः ।
देवानां जयदो भीमो दनुजानां विनाशकृत् २५८ ॥

हे सिंह ! देवासुरसंग्राम होनेके समय तुमने महाबल और पराक्रम प्रकट किया था, तुमसेही देवताओंकी जीत हुई थी, तुम दैत्योंके संहारकारी और अत्यन्त भयंकर हो ॥ २५८ ॥

सदा देवीप्रियोऽसि त्वं ब्रह्मविष्णुशिवप्रियः ।
देव्यै समर्पितो भक्त्या जहि शत्रून्नमोऽस्तु ते २५९

तुम सदा देवीजीके प्यारे और ब्रह्मा, विष्णु व सदाशिवके भी प्यारे हो, मैं भक्तिके साथ देवीजीके निकट तुमको समर्पण करता हूं, तुम मेरे शत्रुओंका नाश करो, तुम्हें नमस्कार है ॥ २५९ ॥

गरुत्मन् ! पतगश्रेष्ठ ! श्रीपतिप्रीतिदायक ।
वज्रचञ्चो ! तीक्ष्णनख ! तव पक्षा हिरण्मयाः ।
नमस्तेऽस्तु खगेन्द्राय पक्षिराज ! नमोऽस्तु ते २६० ॥

हे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड ! तुम श्रीपति विष्णुजीको प्रसन्न करते हो । तुम्हारी चोंच वज्रके समान दृढ है, पंख सुवर्णमय है, नख तीक्ष्ण हैं, हे पक्षिराज ! तुमको नमस्कार करता हूं ॥ २६० ॥

यथा करपुटेन त्वं संस्थितो विष्णुसान्निधौ ।
तथा मामरिदर्पघ्न ! विष्णोरग्रे निवासय ॥ २६१ ॥

तुम शत्रुओंके गर्वको चूर कर देते हो, जैसे तुम विष्णुजीके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहे हो, मुझे भी विष्णुजीके संमुख वैसे ही कर रक्खो ॥ २६१ ॥

त्वयि प्रीते जगन्नाथः प्रीतः सिद्धिं प्रयच्छति ।
देवाय दत्तद्रव्याणां दद्याद्देवाय दक्षिणाम् ॥२६२॥

तुम्हारे प्रसन्न होनेसे जगन्नाथ प्रसन्न होकर सिद्धि देते हैं, जिस देवताको द्रव्य दिया जाय उसकी ही प्रीतिके लिये दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २६२ ॥

तथा कर्मफलञ्चापि भक्त्या तस्मै समर्पयेत् २६३॥

फिर भक्तिके साथ उस देवताको कर्मफल समर्पण करे ॥

नृत्यैर्गीतैश्च वादित्रैः सामात्यः सहबान्धवः ।
वेश्मप्रदक्षिणं कृत्वा देवं नत्वाऽऽशयेद्द्विजान् २६४॥

फिर नाचना, गाना और बाजे आदिके साथ मंत्रियोंके सहित और बांधवोंके साथ गृहकी प्रदक्षिणा कर देवताको नमस्कार करनेके उपरांत ब्राह्मणभोजन करावे ॥ २६४ ॥

देवागारप्रतिष्ठायां य एष कथितः क्रमः ।
आरामसेतुसंक्रामशाखिनामीरितोऽपि सः॥२६५॥

देवताके गृहकी प्रतिष्ठामें जो विधि कही है, आरामप्रतिष्ठा और वृक्षप्रतिष्ठामें भी वही विधि लगेगी ॥ २६५ ॥

विशेषणात्र कृत्येषु पूज्यो विष्णुः सनातनः ।
पूजा होमस्तथा सर्वगृहदानविधानवत्॥ २६६ ॥

परंतु इन स्थानोंमें सनातन विष्णुजीकी पूजा भलीभाँतिसे करनी होगी, इसके सिवाय पूजा होमादि समस्त कार्य गृह-प्रतिष्ठाके समान होंगे ॥ २६६ ॥

अप्रतिष्ठितदेवाय नैव दद्याद्गृहादिकम् ।
प्रतिष्ठितेऽर्चिते देवे पूजादानं विधीयते ॥ २६७ ॥

अप्रतिष्ठित देवताके लिये गृहादि भेंट नहीं देना चाहिये, प्रतिष्ठित और पूजित देवताके अर्थ ही भेंट और पूजाकी विधि है ॥ २६७ ॥

अथ तत्र श्रीमदाद्याप्रतिष्ठाक्रम उच्यते ।
येन प्रतिष्ठिता देवी तूर्णं यच्छति वाञ्छितम् २६८॥

अब श्रीमती आदिकालीकी प्रतिष्ठाका क्रम कहता हूं। जिस प्रकार देवीजी प्रतिष्ठित होनेपर शीघ्रतासे अभिलषित फल देती हैं ॥ २६८ ॥

तद्दिने साधकः प्रातः स्नातः शुचिरुदङ्मुखः ।
संकल्पं विधिवत्कृत्वा यजेद्वास्त्वीश्वरं ततः २६९॥

उस दिन प्रभातको ही स्नान कर विशुद्धाचार हो साधक उत्तरकी ओर मुख करके विधिविधानसे संकल्प करे और वास्तुदेवताकी पूजा करे ॥ २६९ ॥

ग्रहदिक्पतिहेरम्बाद्यर्चनं पितृकर्म्म च ।
विधाय साधको विप्रैः प्रतिमासन्निधिं व्रजेत् २७०॥

फिर ग्रहोंकी, दश दिक्पालोंकी और गणेशजीकी पूजा

कर पितृकृत्य करे । फिर साधकको चाहिये कि, ब्राह्मणोंके साथ प्रतिमाके निकट जावे ॥ २७० ॥

प्रतिष्ठितगृहे यद्वा कुत्रचिच्छोभनस्थले ।
आनीयार्चामर्चयित्वा स्नापयेत्साधकोत्तमः २७१॥

प्रतिष्ठित गृहमें अथवा किसी मनोहर स्थानमें साधकश्रेष्ठ प्रतिमाकी पूजा करके स्नान करावे ॥ २७१ ॥

भस्मना प्रथमं स्नानं ततो वल्मीकमृत्तया ।
वराहदन्तिदन्तोत्थमृत्तिकाभिस्ततः परम् ।
वेश्याद्वारमृदा चापि प्रद्युम्नह्रदजातया ॥ २७२ ॥

पहले भस्मसे स्नान कराकर फिर बांबीकी मिट्टीसे, तदुपरांत शूकरके दांतोंकी उखाड़ी मिट्टीसे, फिर हाथीके दांतोंसे उखाड़ी मिट्टीसे, फिर वेश्याके द्वार पर पड़ी हुई मिट्टीसे, उसके पीछे कामकूपसम्भूत द्रव्यविशेषसे ॥ २७२ ॥

ततः पञ्चकषायेण पञ्चपुष्पैस्त्रिपत्रकैः ।
कारयित्वा गन्धतैलैः स्नापयेत्प्रतिमां सुधीः २७३॥

फिर आगे कहे हुए पंच कषायसे फिर आगे कहे हुए पंच पुष्पसे, तदुपरांत आगे कहे हुए त्रिपत्रसे प्रतिमाको स्नान करावे फिर साधक सुगंधित तेलसे स्नान करावे२७३॥

वाट्यालबदरीजम्बुबकुलाः शाल्मलिस्तथा ।
एते निगदिताः स्नाने कषायाः पञ्चभूरुहाः २७४॥

वाटयाल, बेर, जामन, मौलसिरी, शाल इन पांच वृक्षोंके काढ़ेंको पंचकषाय कहते हैं। इनसे देवीको स्नान करावे २७४

करवीरं तथा जाती चम्पकं सरसीरुहम् ।
पाटलीकुसुमञ्चापि पञ्चपुष्पं प्रकीर्तितम् ॥२७५॥

कनेर, आमला, चंपा, कमल, गुलाब इनको पंचपुष्प कहा जाता है ॥ २७५ ॥

बर्बुरा तुलसी बिल्वं पत्रत्रयमुदाहृतम् ॥२७६॥

बर्बुरापत्र (बबईबनतुलसीके पत्ते) तुलसीपत्र, बेलपत्र इनको त्रिपत्र कहा जाता है ॥ २७६ ॥

एतेषु प्रोक्तद्रव्येषु जलयोगो विधीयते ।
पञ्चामृते गन्धतैले तोययोगं विवर्जयेत ॥२७७॥

इन सबके साथ जलको मिलावे,परंतु पंचामृत और सुगंधित तेलके साथ जल मिलाकर न दे ॥ २७७ ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं मूलमुच्चरन् ।
एतद्रव्यस्य तोयेन स्नापयामि नमो वदेत ॥२७८॥

प्रणवके साथ व्याहृति पढ़, गायत्री और मूलमंत्र उच्चारण कर "एतद्रव्यस्य तोयेन स्नापयामि नमः" अर्थात भस्मके या वल्मीककी मिट्टीके या पहले कहे हुए और किसी द्रव्यके जलसे तुमको स्नान कराता हूं, यह स्नान अर्पित हो। यह वाक्य पढ़े ॥ २७८ ॥

ततः प्रागुक्तविधिना दुग्धाद्यैरष्टभिर्घटैः ।
कवोष्णसलिलैश्चापि स्नापयेत्प्रतिमां बुधः २७९॥

फिर ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि, पहले कही हुई विधिके अनुसार पहले दुग्धादिके आठ घड़ोंसे और कुछ गरम जलसे प्रतिमाको स्नान करावे ॥ २७९ ॥

सितगोधूमचूर्णेन तिलकल्केन वा शिवाम् ।
शालितण्डुलचूर्णेन मार्जयित्वा विरूक्षयेत्॥२८०॥

फिर सित गोधूमचूर्णसे अर्थात् दूधमें पड़ी हुई गेहूंके मैदासे, तिलकल्कसे, आमन धान्यके तण्डुलचूर्णसे प्रतिमाको मांजकर रूखी करे ॥ २८० ॥

तीर्थाम्भसामष्टघटैः स्नापयित्वा सुवाससा ।
सम्मार्जिताङ्गीं प्रतिमां पूजास्थानं समानयेत्२८१॥

फिर आठ कलश तीर्थके जलसे देवताको स्नान कराकर उत्तम वस्त्रोंसे पोंछकर इस प्रतिमाको पूजाके स्थानमें लेजावे ॥ २८१ ॥

अशक्तौ शुद्धतोयानां पञ्चविंशतिसंख्यकैः ।
कलशैः स्नापयेदर्चां भक्त्या साधकसत्तमः २८२॥

जो ऐसा अनुष्ठान न हो सके तो साधकश्रेष्ठको चाहिये कि भक्तिपूर्वक २९ घड़े विशुद्ध जलसे प्रतिमाको स्नान करावे ॥ २८२ ॥

स्नाने स्नाने महादेव्याःशक्त्याः पूजनमाचरेत्२८३

प्रत्येक स्नानके पीछे यथाशक्ति उपचारसे महादेवीजीकी पूजा करे ॥ २८३ ॥

ततो निवेश्य प्रतिमामासने सुपरिष्कृते ।
पाद्याद्यर्घ्याद्यैरर्चयित्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः २८४॥

फिर स्वच्छ आसनपर प्रतिमाको विराजमान कराकर पाद्य अर्घ्यादिसे पूजा कर हाथ जोड़ प्रार्थना करे कि २८४॥

नमस्ते प्रतिमे ! तुभ्यं विश्वकर्म्मविनिर्मिते !
नमस्ते देवतावासे ! भक्ताभीष्टप्रदे ! नमः ॥२८५॥

हे प्रतिमे ! तुमको विश्वकर्माने बनाया था, तुमको नमस्कार है । तुम देवताकी आवास हो, तुमको नमस्कार है, तुम भक्तवृन्दोंको अभीष्ट फल देती हो, तुमको नमस्कार है२८५

त्वयि संपूजयाम्याद्यां परमेशीं परात्पराम् ।
शिल्पदोषावशिष्टाङ्गं सम्पन्नं कुरु ते नमः॥ २८६॥

तुम्हारे ऊपर मैं परात्परा परमेश्वरी आदिकालिकाकी पूजा करता हूं, शिल्पके दोषसे यदि किसी अंगकी विकलता हुई हो तो उसे सम्पूर्ण करो ।तुम्हें नमस्कार करता हूं२८६॥

ततस्तत्प्रतिमामूर्ध्नि पाणिं विन्यस्य वाग्यतः ।
अष्टोत्तरशतं मूलं जप्त्वा गात्राणि संस्पृशेत् २८७॥

फिर प्रतिमाके मस्तकपर हाथ रख, वाक्यको संयत कर १०८ वार मूल मन्त्र जपे, फिर प्रतिमाके गात्रको छुए२८७

षडङ्गमातृकान्यासं प्रतिमाङ्गे प्रविन्यसन् ।
षड्दीर्घभाजा मूलेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥२८८॥

फिर प्रतिमाके अंगमें षडङ्गन्यास और मातृकान्यास करे, षडङ्गन्यास करनेके समय मूलमंत्रमें "आ ई ऊ ऐ औ अः" यह छः दीर्घ स्वर मिलाने चाहिये । यथा "हां हृदयाय नमः । हीं शिरसे स्वाहा । हूं शिखायै वषट् । हैं कवचाय हुं । हौं नेत्रत्रयाय वौषट् । हः करतलपृष्ठाभ्यां फट्" २८८ ॥

तारमायारमाद्यैश्च नमोऽन्तैर्बिन्दुसंयुतैः ।
अष्टवर्गैर्देवताङ्गे वर्णन्यासं प्रकल्पयेत् ॥ २८९ ॥

बिन्दुयुक्त प्रणव, माया और रमाका उच्चारण करके आठवर्गके अक्षरोंको पढ़े, फिर "नमः" पद उच्चारण कर देवताके अंगमें वर्णन्यास करे (१) ॥ २८९ ॥

मुखे स्वरान्कवर्गञ्च कण्ठदेशे न्यसेद्बुधः ।
चवर्गमुदरे दक्षबाहौ टाद्यक्षराणि च ॥ २९० ॥

देवताके अंगमें वर्णन्यास करनेके समय ज्ञानी पुरुष देवताके मुखमें स्वरवर्ण, कण्ठमें कवर्ग, उदरमें चवर्ग, दहिने हाथमें टवर्ग ॥ २९० ॥

तवर्गञ्च वामबाहौ दक्षवामोरुयुग्मयोः ।
पवर्गञ्च यवर्गञ्च शवर्गं मस्तके न्यसेत् ॥ २९१ ॥

बायें हाथमें तवर्ग, दायीं ऊरूमें पवर्ग, बायीं ऊरूमें यवर्ग अर्थात् य र ल व, मस्तकमें शवर्ग अर्थात् श ष स ह ळ क्ष न्यास करे ॥ २९१ ॥

---

(१) "ओं ह्रीं श्रीं अं नमः । ओं ह्रीं श्रीं आं नमः । ओं ह्रीं श्रीं इं नमः ।" इत्यादि ।

वर्णन्यासं विधायेत्थं तत्त्वन्यासं समाचरेत् ॥ २९२ ॥

इस प्रकार देवताओंके अंगमें वर्णन्यास करके तत्त्वन्यास करे ॥ २९२ ॥

पादयोः पृथिवीतत्त्वं तोयतत्त्वञ्च लिङ्गके ।
तेजस्तत्त्वं नाभिदेशे वायुतत्त्वं हृदम्बुजे ॥ २९३ ॥

देवताके दोनों चरणोंमें पृथ्वीतत्त्व, योनिमें जलतत्त्व, नाभिमें तेजस्तत्त्व । हृदयकमलमें वायुतत्त्व ॥ २९३ ॥

आस्ये गगनतत्त्वञ्च चक्षुषो रूपतत्त्वकम् ।
घ्राणयोर्गन्धतत्त्वञ्च शब्दतत्त्वं श्रुतिद्वये ॥ २९४ ॥

मुखमें आकाशतत्त्व, दोनों नेत्रोंमें रूपतत्त्व, नासिकाके दो स्वरोंमें गंधतत्त्व, कानोंमें शब्दतत्त्व ॥ २९४ ॥

जिह्वायां रसतत्त्वञ्च स्पर्शतत्त्वं च विन्यसेत् ।
मनस्तत्त्वं भ्रुवोर्मध्ये सहस्रदलपङ्कजे ॥ २९५ ॥

जीभमें रसतत्त्व और स्पर्शतत्त्व, भ्रुवोंमें मनस्तत्त्व, ललाटमें स्थित हुए सहस्रदलकमलमें ॥ २९५ ॥

शिवतत्त्वं ज्ञानतत्त्वं परतत्त्वं तथोरसि ।
जीवप्रकृतितत्त्वे च विन्यसेत्साधकाग्रणीः ।
महत्तत्त्वमहङ्कारतत्त्वं सर्वाङ्गके क्रमात् ॥ २९६ ॥

शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और परतत्त्व, हृदयमें जीवतत्त्व और प्रकृतितत्त्वका न्यास करे, फिर साधकश्रेष्ठ सर्वाङ्गमें महत्तत्त्व और अहंकारतत्त्वका न्यास करे ॥ २९६ ॥

तारमायारमाद्येन ङेनमोऽन्तेन विन्यसेत् ॥२९७॥

यह न्यास करनेके समय प्रणव, माया और रमा उच्चारण करके चतुर्थ्यन्त तत्त्वपद पढ़कर फिर "नमः" यह मन्त्र पढ़े (१) ॥ २९७ ॥

सबिन्दुमातृकावर्णपुटितं मूलमुच्चरन् ।
नमोऽन्तं मातृकास्थाने मन्त्रन्यासं प्रयोजयेत् २९८

फिर बिन्दुयुक्त मातृकावर्णपुटित मूलमंत्र उच्चारण करके "नमः" यह मन्त्र उच्चारण करे और मातृकास्थानमें मन्त्र-न्यास करे (२) ॥ २९८ ॥

सर्वयज्ञमयं तेजः सर्वभूतमयं वपुः ।
इयं ते कल्पिता मूर्त्तिरत्र त्वां स्थापयाम्यहम् २९९

(फिर देवीजीसे प्रार्थना करे कि,) यद्यपि तुम्हारा सर्वयज्ञमय तेज और सर्वभूतमय शरीर है तथापि मैंने तुम्हारी यह मूर्ति कल्पित की, तुम्हें इस मूर्तिमें स्थापन करता हूं २९९

(१) "ओं ह्रीं श्रीं पृथ्वीतत्त्वाय नमः । ओं ह्रीं श्रीं तोयतत्त्वाय नमः" इत्यादि ।

(२) 'अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अं नमो ललाटे' । 'आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा आं नमो मुखे' । इं'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इं नमः दक्षिणचक्षुषि'। इस प्रकार ५१ वर्णपुटित करके न्यास करे, किस स्थानमें किस वर्णका न्यास होगा, उसकी मुद्रा कैसी है, किस उंगलीके साथ किस उंगलीको मिलाकर वा किस उंगलीसे कौनसे स्थानका स्पर्श होगा यह इस पुस्तकके पंचम उल्लासकी टिप्पणीमें मातृकान्यासके प्रयोगमें दिखाया है उसको पढ़कर सरलतासे न्यास किया जा सकेगा ।

ततः पूजाविधानेन ध्यानमावाहनादिकम् ।
प्राणप्रतिष्ठां सम्पाद्य पूजयेत्परदेवताम् ॥ ३०० ॥

फिर पूजाकी विधिके अनुसार ध्यान, आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि करके उस परमदेवताकी पूजा करे ॥ ३०० ॥

देवगेहप्रदाने तु ये ये मन्त्राः समीरिताः ।
त एवात्र प्रयोक्तव्या मन्त्रलिङ्गेन पूजने ॥३०१॥

देवमंदिरकी प्रतिष्ठाके समय जो जो मन्त्र कहे गये है यहांपर उन मंत्रोंका प्रयोग करना चाहिये; परन्तु पूजाके समय मन्त्र और लिंगका भेद करे ॥ ३०१ ॥

विधिवत्संस्कृते वह्नावर्चितेभ्योऽर्चिताहुतिः ।
आवाह्य देवीं सम्पूज्य जातकर्माणि साधयेत् ३०२

फिर यथाविधिसे अग्निसंस्कार करके उसमें पूजित देवताओंके लिये पूजित आहुति देकर विधिविधानसे आवाहन करे और देवीजीकी पूजा करके जातकर्म करे ॥ ३०२ ॥

जातनाम्नी निष्क्रमणमन्नप्राशनमेव च ।
चूडोपनयनं चैते षट् संस्काराः शिवोदिताः ३०३॥

जातकर्मादि छः प्रकारके संस्कार महादेवजीने कहे हैं । उन षट्संस्कारोंके नाम यह हैं-जातकर्म, नामकरण, बाहर निकलना, अन्नप्राशन, मुण्डन और उपनयन ॥ ३०३ ॥

प्रणवं व्याहृतिं चैव गायत्रीं मूलमन्त्रकम् ।
सामन्त्रणाभिधानं ते जातकर्मादिनाम च ॥३०४॥

(किस मन्त्रसे यह छः संस्कार किये जाते हैं सो कहते हैं) प्रणव, व्याहृति, गायत्री, मूलमंत्र, संबोधनान्तनाम उच्चारण करके 'ते' अर्थात्–तुम्हारा यह पद उच्चारण करे, फिर जातकर्मादिका नाम कीर्तन करे ॥ ३०४ ॥

सम्पादयाम्यग्निकान्तां समुच्चार्य विधानवित् ।
पञ्चपञ्चाहुतीर्दद्यात्प्रतिसंस्कारकर्मणि ॥ ३०५ ॥

फिर विधानका जाननेवाला पुरुष, "संपादयामि स्वाहा" यह पद उच्चारण करके प्रत्येक संस्कारमें पांच वार आहुति देवे (१) ॥ ३०५ ॥

दत्तनाम्नाहुतिशतं मूलोच्चारणपूर्वकम् ।
देव्यै दत्ताहुतेरंशं प्रतिमामूर्ध्नि निःक्षिपेत् ॥ ३०६ ॥

फिर मूल उच्चारण कर दत्त नाम पढ़े और देवीको एकशत आहुति देवे, परन्तु आहुति देनेके पीछे बचा हुआ साकल्य देवीके मस्तकपर डाल दे ॥ ३०६ ॥

प्रायश्चित्तादिभिः शेषं कर्म सम्पादयन्सुधीः ।
भोजयेत्साधकान्विप्रान्दीनानाथांश्च तोषयेत् ३०७

फिर ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि, प्रायश्चित्तादिसे शेष कर्म करके साधक ब्राह्मण, दीन, दरिद्र और अनाथोंको भोजनादि देकर संतुष्ट करे ॥ ३०७ ॥

(१) 'ओंभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। श्रीमदाद्ये कालिके "ते" जातकर्म संपादयामि स्वाहा' ॥ इस मंत्रको पढ़ पांच वार आहुति देकर "जातकर्म" पदके बदले "नामकरणम्" पद लगावे । इस प्रकार षट् कर्ममें केवल नाम बदल देना चाहिये ।

उक्तकर्मस्वशक्तश्चेत्पाथसां सप्तभिर्घटैः ।
स्नापयित्वार्चयञ्छक्त्या श्रावयेन्नामदेवताम् ३०८

जो इन कार्योंके करनेमें असमर्थ हो तो केवल सात कलश जलसे देवताको स्नान कराकर यथाशक्ति पूजा कर नाम श्रवण करावे ॥ ३०८ ॥

इति ते श्रीमदाद्यायाः प्रतिष्ठा कथिता प्रिये ।
एवं दुर्गादिविद्यानां महेशादिदिवौकसाम् ॥३०९॥

हे प्रिये ! मैंने तुमसे आदिकालिकाकी प्रतिष्ठाका प्रयोग कहा। ऐसे ही दुर्गाआदि विद्याओंकी, महेश्वरादि देवताओंकी

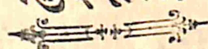
चलतः शिवलिङ्गस्य प्रतिष्ठायामयं विधिः ।
प्रयोक्तव्यो विधानज्ञैर्मन्त्रेणामोहपूर्वकम् ॥३१०॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे आद्याकालीप्रतिष्ठानुष्ठाने वास्तु-ग्रहयागजलाशयादिप्रतिष्ठादेवगृहदानाद्यादिसर्वदेवादिप्रतिष्ठाकथनं नाम त्रयोदशोल्लासः ॥ १३ ॥

एक स्थानसे दूसरे स्थानमें रख दिया जाय, ऐसे शिव-लिंगकी प्रतिष्ठामें विधान जाननेवाला पुरुष मोहरहित हो मन्त्र पढ़के इस विधिके अनुसार प्रयोग करे ॥ ३१० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे आद्याकालीप्रतिष्ठानुष्ठाने मुरादाबाद-निवासि–पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां वास्तु-ग्रहयागजलाशयादिप्रतिष्ठाकथनं नाम त्रयो-दशोल्लासः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोल्लासः १४.



श्रीदेव्युवाच ।

आद्यशक्तेरनुष्ठानात्कृपया भूरिसाधनम् ।
कथितं मे कृपानाथ ! तृप्तास्मि तव भावतः॥ १ ॥

श्रीभगवतीजीने कहा—कृपानाथ ! आदिकालिकाके प्रसंगमें आपने कृपा करके बहुत साधन कहे, मैं आपका भाव देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई हूं ॥ १ ॥

सचलस्येशलिङ्गस्य प्रतिष्ठाविधिरीरितः ।
अचलस्य प्रतिष्ठायां किं फलं विधिरेव कः ॥ २ ॥

आपने सचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठाका विधान कहा, परन्तु अचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा कैसी होती है और उस अचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठाका फल क्या है ॥ २ ॥

कथ्यतां जगतां नाथ ! सविशेषेण साम्प्रतम् ।
इदं हि परमं तत्त्वं प्रष्टुं वद वृणोमि कम् ॥ ३ ॥
त्वत्तः को वास्ति सर्व्वज्ञो दयालुः सर्व्वविद्विभुः ।
आशुतोषो दीननाथो ममानन्दविवर्द्धनः ॥ ४ ॥

सो अब भलीभाँतिसे कहिये । हे जगन्नाथ ! आपके सिवाय यह परमतत्त्व किससे पूंछू सो कहो, आपकी अपेक्षा कौन पुरुष सर्वज्ञ है ! आप दयालु, विभु, सर्ववित्, आशुतोष, दीननाथ और मेरे आनंदके बढ़ानेवाले हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

शिवलिङ्गस्थापनस्य माहात्म्यं किं ब्रवीमि ते ।
यत्स्थापनान्महापापैर्मुक्तो याति परं पदम् ॥ ५ ॥

सदाशिवने कहा, शिवलिंगके स्थापन करनेका माहात्म्य तुमसे क्या वर्णन करूं? इस शिवलिंगके स्थापन करनेसे मनुष्य महापातकसे छूटकर परमपदको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

स्वर्णपूर्णमहीदानाद्वाजिमेधायुतार्ज्जनात् ।
निस्तोये तोयकरणाद्दीनार्त्तपरितोषणात् ॥ ६ ॥

सुवर्णके ढेरसे पूर्ण हुई पृथ्वीके दान करनेसे, दश-हजार अश्वमेध यज्ञ करनेसे, निर्जल देशमें जलाशय खुदानेसे, दीन व आतुर पुरुषोंको संतुष्ट करनेसे ॥ ६ ॥

यत्फलं लभते मर्त्त्यस्तस्मात्कोटिगुणं फलम् ।
शिवलिङ्गप्रतिष्ठायां लभते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

मनुष्योंको जो फल होता है उस फलसे करोड़ गुण फल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करनेसे मिलता है, इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ७ ॥

लिङ्गरूपी महादेवो यत्र तिष्ठति कालिके ।
तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च सेन्द्रास्तिष्ठन्ति देवताः ॥ ८ ॥

हे कालिके! जिस स्थानमें लिंगरूपी शिव विराजते हैं; वहांपर ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र और देवता भी वास करते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ८ ॥

सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि दृष्टादृष्टानि यानि च ।
पुण्यक्षेत्राणि सर्व्वाणि वर्त्तन्ते शिवसन्निधौ ॥ ९ ॥

साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ और प्रकाशित व अप्रकाशित सब पुण्यक्षेत्र शिवजीके निकट वास करते हैं ॥ ९ ॥

लिङ्गरूपधरं शम्भुं परितो दिग्विदिक्षु च ।
शतहस्तप्रमाणेन शिवक्षेत्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ १० ॥

लिंगरूपी शिवजीकी सब दिशाओंमें शत हाथतक शिवक्षेत्र कहलाता है ॥ १० ॥

ईशक्षेत्रं महापुण्यं सर्व्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
यत्रामरा विराजन्ते सर्व्वतीर्थानि सर्व्वदा ॥ ११ ॥

यह शिवक्षेत्र अत्यंत पवित्र और सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ है । इस शिवक्षेत्रमें सब देवता और सब तीर्थ सदा विराजमान रहते हैं ॥ ११ ॥

क्षणमात्रं शिवक्षेत्रे यो वसेद्भावतत्परः ।
स सर्व्वपापनिर्मुक्तो यात्यन्ते शङ्करालयम् ॥ १२ ॥

जो पुरुष एक क्षणभरतक भी शिवभावपरायण हो शिवक्षेत्रमें वास करता है वह सब पापोंसे छूटकर अंतसमय शिवलोकको चला जाता है ॥ १२ ॥

अत्र यत्क्रियते कर्म्म स्वल्पं वा बहुलं तथा ।
प्रभावाद्धूर्ज्जटेस्तस्य तत्तत्कोटिगुणं भवेत् ॥ १३ ॥

इस शिवक्षेत्रमें जो थोड़ा बहुत पापपुण्यका कर्म किया जाता है, महादेवजीके प्रभावसे वह करोड़ गुण हो जाताहै॥१३॥

यत्र तत्र कृतात्पापान्मुच्यते शिवसन्निधौ ।
शैवक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपसमं प्रिये ॥ १४ ॥

हे प्रिये ! मनुष्यगण चाहे जिस स्थानमें पाप करें शिवके निकट आते ही वे पाप छूट जाते हैं, परंतु शिवजीके निकट जो पाप किये जाते हैं वे सब वज्रलेपके समान कठोर हो जाते हैं ॥ १४ ॥

पुरश्चर्य्यां जपं दानं श्राद्धं तर्पणमेव च ।
यत्करोति शिवक्षेत्रे तदानन्त्याय कल्पते ॥ १५ ॥

पुरश्चरण, जप, दान, श्राद्ध, तर्पणादि जो कर्म शिवक्षेत्रमें किये जाते हैं उनका फल अनन्त होता है ॥ १५ ॥

पुरश्चर्य्याशतं कृत्वा ग्रहे शशिदिनेशयोः ।
यत्फलं तदवाप्नोति सकृज्जप्त्वा शिवान्तिके॥ १६॥

सूर्यग्रहणके समय या चन्द्रग्रहणके समय शत पुरश्चरण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, शिवजीके पास केवल एक-बार करनेसे वह फल मिल जाता है ॥ १६ ॥

गयागङ्गाप्रयागेषु कोटिपिण्डप्रदो नरः ।
यत्प्राप्नोति तदत्रैव सकृत्पिण्डप्रदानतः ॥ १७ ॥

गयाक्षेत्रमें, गंगाक्षेत्रमें और प्रयागमें करोड़ पिंडदान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, इस शिवक्षेत्रमें केवल एक-बार पिंड देनेसे वह फल मिल जाता है ॥ १७ ॥

अतिपातकिनो ये च महापातकिनश्च ये ।
शैवतीर्थे कृतश्राद्धास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ १८ ॥

जो लोग महापातकी और अतिपातकी हैं वे भी इस शिवक्षेत्रमें केवल एकवार श्राद्ध करनेसे परमगतिको पाते हैं ॥

लिङ्गरूपी जगन्नाथो देव्या श्रीदुर्गया सह ।
यत्रास्ति तत्र तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ॥ १९ ॥

लिंगरूपी जगन्नाथ महेश्वर श्रीदुर्गाजीके साथ जिस स्थानमें विराजमान रहते हैं, वहांपर चौदह भुवनोंका वास होता है ॥ १९ ॥

स्थापितेशस्य माहात्म्यं किञ्चिदेतत्प्रकाशितम् ।
अनादिभूतभूतेशमहिमा वागगोचरः ॥ २० ॥

यह तुमसे स्थापित महादेवजीका कुछ थोड़ासा माहात्म्य वर्णन किया । जो महादेवजीके अनादि लिंग हैं उनकी महिमा वचनके भी अगोचर है ॥ २० ॥

महापीठे तवार्च्चायामस्पृश्यस्पर्शदूषणम् ।
विद्येत सुव्रते ! नैतल्लिङ्गरूपधरे हरे ॥ २१ ॥

हे सुव्रते ! तुम्हारी प्रतिमाके महापीठस्थानमें अस्पृश्यके स्पर्शका दोष होता है, परंतु लिंगरूपी महेश्वरमें अस्पृश्यके स्पर्शका दोष नहीं होता ॥ २१ ॥

यथा चक्रार्च्चने देवि ! कोऽपि दोषो न विद्यते ।
शिवक्षेत्रे महातीर्थे तथा जानीहि कालिके ॥ २२ ॥

हे देवि ! हे कालिके ! चक्रकी पूजाके समय जिस प्रकार स्पर्शदोष नहीं होता, वैसे ही महातीर्थस्वरूप शिवक्षेत्रमें स्पर्शका दोष नहीं है ॥ २२ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रे सत्यमुच्यते ।
प्रभावः शिवलिङ्गस्य मया वक्तुं न शक्यते ॥२३॥

मैं अधिक और क्या कहूं, तुमसे सत्य कहता हूं कि, भलीभाँतिसे मैं शिवलिंगके प्रभावका वर्णन नहीं कर सकता

अयुक्तवेदिकं लिङ्गं युक्तं वेदिकयापि वा ।
साधकः पूजयेद्भक्त्या स्वाभीष्टफलसिद्धये ॥२४॥

शिवलिंगमें गौरीपट मिला रहे या न रहे, साधकको अपना अभीष्टसिद्धि करनेके लिये भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ २४ ॥

प्रतिष्ठापूर्व्वसायाह्ने देवतां योऽधिवासयेत् ।
सोऽश्वमेधायुतफलं लभते साधकोत्तमः ॥ २५ ॥

देवताकी प्रतिष्ठाके एकदिन पहले साधकश्रेष्ठ देवताका अधिवास (शुभ कर्मकी पूर्व क्रिया) करते हैं, वह दशहजार अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त कर सकते हैं ॥ २५ ॥

मही गन्धः शिला धान्यं दूर्व्वा पुष्पं फलं दधि ।
घृतं स्वस्तिकसिन्दूरं शङ्खकज्जलरोचनाः ॥ २६ ॥

मही; गन्ध, शिला, धान्य, दूब, फूल, फल, दधि, घृत,

स्वस्तिक (चावलके आटेका बना हुआ त्रिकोणाकार एक अधिवासद्रव्य) सिंदूर, शंख, काजल, रोचन ॥२६॥

सिद्धार्थं काञ्चनं रौप्यं ताम्रं दीपश्च दर्पणम् ।
अधिवासविधौ विंशद्द्रव्याण्येतानि योजयेत् ॥२७॥

सफेद सरसों, सुवर्ण, चांदी, तांबा, दीप, दर्पण ये बीस प्रकारके द्रव्य अधिवासके विधानमें लगावे ॥ २७ ॥

प्रत्येकं द्रव्यमादाय मायया ब्रह्मविद्यया ।
अनेनामुष्य पदतः शुभमस्त्वधिवासनम् ॥ २८ ॥

इन बीस द्रव्योंमेंसे एक २ द्रव्यको ग्रहण करके माया और गायत्रीको पढ़ फिर कहे कि, इस द्रव्यसे इस देवताका शुभाधिवासन हो ॥ २८ ॥

इति स्पृशेत्साध्यभालं मह्याद्यैः सर्ववस्तुभिः ।
ततः प्रशस्तिपात्रेण त्रिधैवमधिवासयेत् ॥ २९ ॥

यह मंत्र पढ़कर मही आदि प्रत्येक वस्तुसे देवताका माथा छुए फिर प्रशस्तिपात्रसे तीन वार अधिवास करे ॥ २९ ॥

अनेन विधिना देवमधिवास्य विधानवित् ।
गृहदानविधानेन दुग्धाद्यैः स्नापयेत्ततः ॥३०॥
सम्मार्ज्य वाससा लिङ्गं स्थापयित्वासनोपरि ।
पूजानुष्ठानविधिना गणेशादीन्समर्च्चयेत् ॥ ३१ ॥

विधानके जाननेवाले साधकको चाहिये कि, इस विधिके अनुसार देवताका अधिवास करके गृहप्रतिष्ठाकी विधिके

अनुसार दुग्धादिसे उस देवताका स्नान करावे, फिर वस्त्रसे लिंगको मार्जित कर (पोंछकर) आसनके ऊपर स्थापन कर पूजा अनुष्ठानकी विधिके अनुसार गणेशादि देवताओंकी पूजा करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

प्रणवेन करन्यासौ प्राणायामं विधाय च ।
ध्यायेत्सदाशिवं शान्तं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥३२॥

प्रणवके द्वारा करांगन्यास और प्रणायाम करके सदाशिवका ध्यान करे । वे शांत और चंद्रमाकी कलाके समान कान्तिमान् हैं ॥ ३२ ॥

व्याघ्रचर्मपरीधानं नागयज्ञोपवीतिनम् ।
विभूतिलिप्तसर्व्वाङ्गं नागालङ्कारभूषितम् ॥ ३३ ॥

वे व्याघ्रचर्मको पहिरे और नागका यज्ञोपवीत पहरे हुए हैं, उनके सब अंग विभूतिसे शोभायमान हैं, उनके शरीरमें नागोंके गहने शोभायमान हैं ॥ ३३ ॥

धूम्रपीतारुणश्वेतरक्तैः पञ्चभिराननैः ।
युक्तं त्रिनयनं बिभ्रज्जटाजूटधरं विभुम् ॥ ३४ ॥

वह धूम्रवर्ण, पीतवर्ण, अरुणवर्ण, श्वेतवर्ण और रक्तवर्णके पांच मुखों करके शोभायमान हैं, त्रिनेत्र जटाजूटधारी और विभु हैं ॥ ३४ ॥

गङ्गाधरं दशभुजं शशिशोभितमस्तकम् ।
कपालं पावकं पाशं पिनाकं परशुं करैः ॥ ३५ ॥

उनके मस्तकपर गंगाजी विराज रही हैं । उनके दश हाथ हैं। उनके माथेपर चन्द्रमाकी कला शोभायमान है। वह बांयें हाथसे कपाल, पावक, पाश, पिनाक और परशु धारण किये हुए हैं ॥ ३५ ॥

वामैर्दधानं दक्षैश्च शूलं वज्राङ्कुशं शरम् ।
वरञ्च बिभ्रतं सर्व्वैर्देवैर्म्मुनिवरैः स्तुतम् ॥ ३६ ॥

वे दहिनें हाथमें शूल, वज्र, अंकुश, बाण और वर धारण करते हैं । सब देवता और सब महर्षियोंसे चारों ओर से वे स्तुति किये जाते हैं ॥ ३६ ॥

परमानन्दसन्दोहोल्लसत्कुटिललोचनम् ।
हिमकुन्देन्दुसङ्काशं वृषासनविराजितम् ॥ ३७ ॥

उनके कुटिल नेत्र परमानंदके समूहमें हर्षित हैं । उनकी कान्ति हिम, कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत है । वे बैलके ऊपर विराजमान हैं ॥ ३७ ॥

परितः सिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिरहर्निशम् ।
गीयमानमुमाकान्तमेकान्तशरणप्रियम् ॥ ३८ ॥

उनके चारों ओर सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराओंके साथ दिन रात स्तुति गाते हैं । वे उमाके पति शरणागतजनोंके बहुत प्यारे हैं ॥ ३८ ॥

इति ध्यात्वा महेशानं मानसैरुपचारकैः ।
संपूज्यावाह्य तल्लिङ्गे यजेच्छक्त्या विधानवित् ३९

विधानका जाननेवाला पुरुष इस प्रकार महादेवजीका ध्यान करके मानसिक उपचारके साथ पूजकर उस लिंगके ऊपर आवाहन करे और यथाशक्ति उसकी पूजा करे ॥३९॥

आसनाद्युपचाराणां दाने मन्त्राः पुरोदिताः ।
मूलमन्त्रमनुवक्ष्ये महेशस्य महात्मनः ॥ ४० ॥

आसनादि उपचार देनेके मन्त्र पीछे कह आया हूं, अब महात्मा महेश्वरजीका मूलमंत्र कहता हूं ॥ ४० ॥

माया तारः शब्दबीजं सन्ध्यर्णान्ताक्षरान्वितम् ।
अर्द्धेन्दुबिन्दुभूषाढ्यं शिवबीजं प्रकीर्तितम् ॥४१॥

माया "प्रणव" शब्दबीज "र" और चन्द्रबिन्दु अर्थात् "ह्रीं ओं ह्रौं" यह शिवबीज है ॥ ४१ ॥

सुगन्धिपुष्पमाल्येन वाससाच्छाद्य शङ्करम् ।
निवेश्य दिव्यशय्यायां वेदीमेवं विशोधयेत्॥४२॥

फिर सुगंधित पुष्प गंध मालासे और वस्त्रसे शिवजीको ढककर दिव्यसेजपर स्थापित करके गौरीपट्ट शोधन करे॥४२॥

वेद्यां प्रपूजयेद्देवीमेवमेव विधानतः ।
माययात्र करन्यासौ प्राणायामं समाचरेत् ॥४३ ॥

इस गौरीपट्टके ऊपर ऐसी विधिके अनुसार देवीकी पूजा करे यथाः—पहले "ह्रीं" बीज पढ़के करन्यास और प्राणायाम करे ॥ ४३ ॥

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिममलां वह्न्यर्कचन्द्रेक्षणां
मुक्तायन्त्रितहेमकुण्डललसत्स्मेराननाम्भोरुहाम् ।

हस्ताब्जैरभयं वरञ्च दधतीं चक्रं तथाब्जं दध-
त्पीनोत्तुङ्गपयोधरां भयहरां पीताम्बरां चिन्तये ४४

फिर इस प्रकार देवीजीका ध्यान करे कि, जिनकी कांति उदय होते हुए हजार सूर्यके समान निर्मल है, अग्नि, सूर्य, चंद्रमा ये ही हैं तीन नेत्र जिनके, वदनकमलपर मुस्कान है और वह मोतियोंकी राशिसे विराजते सुवर्णके कुंडलोंसे शोभित हो रहा है, जो करकमलमें चक्र, पद्म, वर और अभय धारण किये हुए हैं जिनके दोनों पयोधर पीन और ऊंचे हैं, जो पीतवस्त्र पहरती हैं, ऐसी भयहारिणी भगवतीका ध्यान करता हूं ॥ ४४ ॥

इति ध्यात्वा महादेवीं पूजयेन्निजशक्तितः ।
ततस्तु दशदिक्पालान्वृषभञ्च समर्च्चयेत् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार ध्यान करके अपनी शक्तिके अनुसार महादेवीकी पूजा करे । फिर दशदिक्पाल और वृषभकी पूजा करे

भगवत्या मनुं वक्ष्ये येनाराध्या जगन्मयी ॥ ४६ ॥

अब जगन्मयी भगवतीकी आराधना करनेके मंत्रको कहता हूं ॥ ४६ ॥

मायां लक्ष्मीं समुच्चार्य सान्तं षष्ठस्वरान्वितम् ।
बिन्दुयुक्तं तदन्ते च योजयेद्वह्निवल्लभाम् ॥ ४७ २

माया, लक्ष्मी, षष्ठ स्वरयुक्त हकारमें चन्द्रबिन्दु उच्चारण कर अन्तमें "स्वाहा" मिलावे, इससे यह मंत्र सिद्ध होगा कि "ह्रीं श्रीं हूं स्वाहा" ॥ ४७ ॥

पूर्व्ववत्स्थापयन्देवीं सर्व्वदेवबलिं हरेत् ।
दधियुक्तं माषभक्तं शर्करादिसमन्वितम् ॥ ४८ ॥

पहलेके समान देवीको स्थापित कर सब देवताओंके लिये शर्करादियुक्त, दहीयुक्त, उड़दयुक्त, भक्तबलि दे ॥ ४८ ॥

ऐशान्यां बलिमादाय वारुणेन विशोधयेत् ।
संपूज्य गन्धपुष्पाभ्यां मन्त्रेणानेन चार्पयेत् ॥ ४९ ॥

यह बलि अर्थात् पूजाकी सामग्री, ईशानकोणमें रखकर वरुणबीज (वं) से शुद्ध करे फिर सुगंधित पुष्पोंसे पूजकर यह मंत्र पढ़कर उत्सर्ग करे कि ॥ ४९ ॥

सर्वे देवाः सिद्धगणा गन्धर्व्वोरगराक्षसाः ।
पिशाचा मातरो यक्षा भूताश्च पितरस्तथा ॥ ५० ॥

समस्तदेव, सिद्ध, गंधर्व, नाग, राक्षस, पिशाच, मातृगण, यक्ष, भूत, पितर ॥ ५० ॥

ऋषयो येऽन्यदेवाश्च बलिं गृह्णन्तु संयताः ।
परिवार्य्य महादेवं तिष्ठन्तु गिरिजामपि ॥ ५१ ॥

ऋषि और सब देवता सावधान होकर बलिको ग्रहण करें और सब ही इन महादेव व महादेवीके साथ रहें ॥ ५१ ॥

ततो जपेन्महादेव्या मन्त्रमेतं यथेप्सितम् ।
गीतवाद्यादिभिः सद्भिर्विदध्यान्मङ्गलक्रियाम् ॥ ५२ ॥

फिर "ह्रीं श्रीं ह्रूं स्वाहा" इच्छानुसार इस महादेवीके मंत्रको जपे । अनंतर उत्तम गीत बाजे गाजे इत्यादिसे मांगलिक क्रिया करे ॥ ५२ ॥

अधिवासं विधायेत्थं परेऽह्नि विहितक्रियः।
संकल्पं विधिवत्कृत्वा पञ्चदेवान्प्रपूजयेत् ॥ ५३ ॥

इस प्रकार अधिवास करके दूसरे दिन नित्यक्रिया करके यथाविधि संकल्प कर पांच देवताओंकी पूजा करे ॥ ५३ ॥

मातृपूजां वसोर्धारां वृद्धिश्राद्धं समाचरन्।
महेशद्वारपालांश्च यजेद्भक्त्या समाहितः ॥ ५४ ॥

फिर मातृकापूजा, वसुधारा और वृद्धिश्राद्ध करके भक्ति- पूर्वक महादेवजीके नन्दीआदि द्वारपालोंकी पूजा करे॥ ५४ ॥

नन्दी महाबलः कीशवदनो गणनायकः।
द्वारपालाः शिवस्यैते सर्वे शस्त्रास्त्रपाणयः॥५५॥

नन्दी, महाबल, कीशवदन, गणनायक ये शिवजीके द्वारपाल हैं। इन सबके हाथमें अस्त्र शस्त्र हैं ॥ ५५ ॥

ततो लिङ्गं समानीय वेदीरूपां च तारिणीम्।
मण्डले सर्वतोभद्रे स्थापयेद्वा शुभासने ॥ ५६ ॥

फिर वेदीरूप तारिणी और शिवलिंगको लाकर सर्वतो- भद्र मण्डलमें वा उत्तम आसनपर स्थापित करे ॥ ५६ ॥

अष्टभिः कलशैः शम्भुं मनुना त्र्यम्बकेन च।
स्नापयित्वार्चयेद्भक्त्या षोडशैरुपचारकैः ॥ ५७ ॥

फिर "ह्रीं ओं ह्रौं" मन्त्र "और "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्" इस मन्त्रको पढ़के अष्टकलश जलसे महादेवजीको स्नान कराकर भक्तिसहित षोडशोपचारसे पूजा करे ॥ ५७ ॥

वेदीं च मूलमन्त्रेण तद्वत्संस्थाप्य पूजयन् ।
कृताञ्जलिपुटः साधुः प्रार्थयेच्छङ्करं शिवम् ॥५८॥

फिर "ह्रीं श्रीं हूं स्वाहा" इस मन्त्रसे वेदीको स्थापितकर उसमें लिंगका स्थापन कर पूजा करे, फिर साधु पुरुष हाथ जोड़कर महादेवजीसे प्रार्थना करे कि ॥ ५८ ॥

आगच्छ भगवञ्छम्भो ! सर्वदेवनमस्कृत ।
पिनाकपाणे ! सर्वेश ! महादेव ! नमोऽस्तु ते५९॥

हे भगवन् ! हे शम्भो ! आगमन करो। तुम सब देवताओंके नमस्कार करने योग्य हो । पिनाकपाणे ! तुम सबके ईश्वर हो। हे महादेव ! तुमको नमस्कार है ॥ ५९ ॥

आगच्छ मन्दिरे देव ! भक्तानुग्रहकारक ।
भगवत्या सहागच्छ कृपां कुरु नमो नमः ॥६०॥

हे देव ! तुम कृपा करो; तुम भक्तोंपर अनुग्रह करके भगवतीके साथ इस मंदिरमें आगमन करो । तुमको बारंबार नमस्कार है ॥ ६० ॥

मातर्देवि ! महामाये ! सर्वकल्याणकारिणि ।
प्रसीद शम्भुना सार्द्धं नमस्तेऽस्तु हरप्रिये ॥६१॥

हे महामाये ! हे सर्वकल्याणकारिणि ! हरप्रिये ! मातः ! हे देवि ! महादेवजीके साथ तुम प्रसन्न होवो । तुमको नमस्कार है ॥ ६१ ॥

आयाहि वरदे देवि! भवनेऽस्मिन्वरप्रदे।
प्रीता भव महेशानि! सर्वसम्पत्करी भव॥ ६१॥

हे वरदे! हे देवि! इस भवनमें आगमन करो, हे वरदायिनि! प्रसन्न होवो। हे महेश्वरि! हमें सर्व संपत्तिकी देनेवाली होवो॥ ६२॥

उत्तिष्ठ देवदेवेशि स्वैः स्वैः परिकरैः सह।
सुखं निवसतां गेहे प्रीयतां भक्तवत्सलौ॥ ६३॥

हे महेश्वर! हे महेश्वरि! अपने २ परिवारके साथ उठो, तुम भक्तवत्सल हो। तुम इस गृहमें रहकर प्रसन्न होवो॥६३॥

इति प्रार्थ्य शिवं देवीं मङ्गलध्वनिपूर्वकम्।
प्रदक्षिणं त्रिधा वेश्म कारयित्वा प्रवेशयेत्॥ ६४॥

महेश्वर और महेश्वरीसे ऐसी प्रार्थना करके मंगलध्वनि कर तीन वार गृहकी परिक्रमा कराय गृहमें प्रवेश करावे॥ ६४॥

पाषाणखनिते गर्त्ते इष्टकाराचितेऽपि वा।
अधस्त्रिभागलिङ्गस्य रोपयेन्मूलमुच्चरन्॥ ६५॥

फिर मूलमंत्र पढ़कर पत्थरके खुदे हुए थांवलेमें अथवा ईंटोंके बने हुए थांवलेमें लिंगके नीचेका भाग तीन हिस्से गाड़ दे॥ ६८॥

यावच्चन्द्रश्च सूर्य्यश्च यावत्पृथ्वी च सागराः।
तावदत्र महादेव स्थिरो भव नमोऽस्तु ते॥ ६६॥

जबतक चंद्रमा और सूर्य स्थिर रहे, जबतक समुद्र रहैं हे महादेव! तबतक तुम इस स्थानमें स्थिर होवो। तुमको नमस्कार है ॥ ६६ ॥

मन्त्रेणानेन सुदृढं कारयित्वा सदाशिवम् ।
उत्तराग्रां तत्र वेदिं मूलेनैव प्रवेशयेत् ॥ ६७ ॥

यह मंत्र पढ़ सदाशिवको दृढ़तासे स्थापन करें. और मूलमन्त्र पढ़, उत्तर मुख किया हुआ गौरीपट्ट रखके उनको प्रवेशित करावे ॥ ६७ ॥

स्थिरा भव जगद्धात्रि ! सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
यावद्दिवानिशानाथौ तावदत्र स्थिरा भव ॥ ६८॥
अनेन सुदृढीकृत्य लिङ्गं स्पृष्ट्वा पठेदिमम् ॥६९॥

फिर यह मंत्र पढ़े कि, हे सृष्टिस्थितिसंहारकारिणि जगद्धात्रि ! स्थिर होवो, जबतक चन्द्र, सूर्य रहे तबतक तुम इस स्थानमें स्थिर होवो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

व्याघ्रभूत पिशाचाश्च गन्धर्वाः सिद्धचारणाः ।
यक्षा नागाश्च वेताला लोकपाला महर्षयः ॥७०॥

व्याघ्र, भूत, पिशाच, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, यक्ष, नाग, वेताल, लोकपाल, महर्षिगण ॥ ७१ ॥

मातरो गणनाथाश्च विष्णुर्ब्रह्मा बृहस्पतिः ।
अस्य सिंहासने युक्ता भूचराः खेचरास्तथा ॥७१॥

और मातृकाएँ, गणपतिगण, भूचरगण, खेचरगण, ब्रह्मा, विष्णु और बृहस्पति जिनके सिंहासनको उठाते हैं ॥ ७१ ॥

आवाहयामि तं देवं त्र्यक्षमीशानमव्ययम्।

आगच्छ भगवन्नत्र ब्रह्मनिर्मितयन्त्रके ॥ ७२ ॥

उन त्रिनयन अविनाशी देव महादेवजीका आवाहन करता हूं, हे भगवन्! तुम इस ब्रह्मनिर्मितयंत्रमें रहो ॥७२॥

ध्रुवाय भव सर्वेषां शुभाय च सुखाय च।

ततो देवप्रतिष्ठोक्तविधिना स्नापयच्छिवम् ॥७३॥

तुम सबको स्थिर करो। तुम सबके लिये मंगल और सुखका विधान करो। फिर देवप्रतिष्ठामें कही हुई विधिके अनुसार शिवजीको स्नान करावे ॥ ७३ ॥

प्राग्वद्ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूजयेत्प्रिये।

विशेषमर्घ्यं संस्थाप्य समर्च्य गणदेवताः।

पुनर्ध्यात्वा महेशानं पुष्पं लिङ्गोपरि न्यसेत् ॥७४॥

हे प्रिये! पहलेके समान ध्यान करके मानसिक उपचारसे पूजा करे। फिर विशेष अर्घ्य स्थापित करके गणदेवताओंकी पूजा करे। और फिर ध्यान करके लिङ्गके ऊपर पुष्प स्थापित करे ॥ ७४ ॥

पाशाङ्कुशपुटा शक्तिर्यादिसान्ताः सबिन्दुकाः।

ह्रौं हं स इति मन्त्रेण तत्र प्राणान्निवेशयेत्।

चन्दनागुरुकाश्मीरैर्विलिप्य गिरिजापतिम् ॥७५॥

पाश और अङ्कुश पुटित माया उच्चारण करके "य" से लेकर "स" तक सात अक्षरमें अनुस्वार मिला, पढ़कर फिर "हौं हंसः" यह मन्त्र (१) पढ़कर उस लिङ्गकी प्राणप्रतिष्ठा करे । फिर चन्दन, अगर और केशरसे गिरिजापतिके अंगका पूजन कर ॥ ७५ ॥

यजेत्प्रागुक्तविधिना षोडशैरुपचारकैः ।

जातनामादिसंस्कारान्कृत्वा पूर्वविधानवत् ॥७६॥

पहले कही हुई विधिके अनुसार सोलह उपचारोंसे पूजा करे । फिर पहले कहे विधानकी नाईं जातकर्म, नामकरण, आदि संस्कार करके ॥ ७६ ॥

समाप्य सर्वं विधिवद्वेद्यां देवीं महेश्वरीम् ।

अभ्यर्च्य तत्र देवस्य मूर्त्तीरष्टौ प्रपूजयेत् ॥ ७७ ॥

विधिविधानसे सब कर्मोंको करे । फिर वेदीमें महेश्वरीकी पूजा करके उसमें देवदेवकी अष्टमूर्तिकी पूजा करे ॥ ७७ ॥

शर्वः क्षितिः समुद्दिष्टा भवो जलमुदाहृतम् ।

रुद्रोऽग्निरुग्रो वायुः स्याद्भीम आकाशशब्दितः ७८॥

अष्टमूर्तिकी पूजाके समय इस प्रकार कहना चाहिये कि (शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः १ भवाय जलमूर्तये नमः २ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः ३ । उग्राय वायुमूर्तये नमः ४ । भीमाय आकाशमूर्तये नमः ५ ॥ ७८ ॥

---

(१) "ओं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हं सः" ॥

पशोः पतिर्यजमानो महादेवः सुधाकरः।
ईशानः सूर्य्य इत्येता मूर्त्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ७९॥

पशुपतये यजमानमूर्तये नमः ६। महादेवाय सोममूर्तये नमः ७ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः ८) इस प्रकार आठ मूर्ति कही हैं॥ ७९॥

प्रणवादिनमोऽन्तेन प्रत्येकाह्वानपूर्वकम्।
पूर्व्वादीशानपर्य्यन्तमष्टमूर्त्तीः क्रमाद्यजेत्॥८०॥

पहले "प्रणव" अन्तमें "नमः" पद लगाकर प्रत्येक मूर्त्तिका आवाहन करके पूर्वदिशासे लेकर ईशान कोणतक क्रमसे उक्त आठ मूर्तिकी पूजा करे (१)॥ ८०॥

इन्द्रादिदिक्पतीनिष्ट्वा ब्राह्म्याद्याश्चाष्टमातृकाः।
वृषं वितानं गेहादि दद्यादीशाय साधकः॥ ८१॥

फिर साधकको चाहिये कि, इन्द्रादि सब दिक्पालोंकी और ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओंकी पूजा करके वृष, वितान गृहादि सब महादेवजीको भेंट करे॥ ८१॥

---

(१) आठ मूर्तियोंका आवाहन और पूजा इस प्रकार है। "हे शर्व ! हे क्षितिमूर्ते ! इहागच्छ इहागच्छ १। इह तिष्ठ इह तिष्ठ २। इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि ३। इह सम्मुखो भव इह सम्मुखो भव ४। इह सन्निरुद्धो भव इह सन्निरुद्धो भव ५। मम पूजां गृहाण"। ऐसे मंत्रसे आवाहन करके पूर्वदिशामें इस मंत्रसे पूजा करे-कि "ओं शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः" आठ दिशामें अष्टमूर्तिकी पूजामें भी, नाम बदलकर इस प्रकार आवाहन और पूजा करे।

ततः कृताञ्जलिर्भक्त्या प्रार्थयेत्पार्वतीपतिम् ८२॥

फिर हाथ जोड़ भक्तिके सहित पार्वतीके नाथ महादेवजीसे प्रार्थना करे कि ॥ ८२ ॥

गृहेऽस्मिन्करुणासिन्धो ! स्थापितोऽसि मया प्रभो ।
प्रसीद भगवञ्छम्भो ! सर्वकारणकारण ॥ ८३ ॥

हे करुणासागर ! मैंने तुमको इस गृहमें स्थापन किया, हे प्रभो ! तुम सब कारणोंके कारण हो । हे भगवञ्शम्भो ! प्रसन्न होवो ॥ ८३ ॥

यावत्ससागरा पृथ्वी यावच्छशिदिवाकरौ ।
तावदस्मिन्गृहे तिष्ठ नमस्ते परमेश्वर ॥ ८४ ॥

हे परमेश्वर ! जबतक समुद्रसहित पृथ्वी रहेगी, जबतक चन्द्रमा, सूर्य रहेंगे । तबतक इस गृहमें विराजो । तुमको नमस्कार है ॥ ८४ ॥

गृहेऽस्मिन्यस्य कस्यापि जीवस्य मरणं भवेत् ।
न तत्पापैः प्रलिप्येऽहं प्रसादात्तव धूर्जटे ॥ ८५ ॥

हे धूर्जटे ! इस गृहमें यदि किसी जीवकी अपमृत्यु हो तो तुम्हारे प्रसादसे मैं उसके पापमें न फसूं ॥ ८५ ॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य गृहं व्रजेत् ।
प्रभाते पुनरागत्य स्नापयेच्चन्द्रशेखरम् ॥ ८६ ॥

फिर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके गृहमें गमन करे,

दूसरे दिन प्रभातको उस स्थानमें आकर चंद्रशेखर (महादेवजी) को स्नान करावे ॥ ८६ ॥

शुद्धैः पञ्चामृतैः स्नानं प्रथमं प्रतिपादयेत् ।
ततः सुगन्धितोयानां कलशैः शतसंख्यकैः ॥ ८७ ॥

पहले शुद्ध पंचामृतसे स्नान करावे । फिर सुगंधित एकशत कलशजलसे स्नान करावे ॥ ८७ ॥

संपूज्य तं यथाशक्त्या प्रार्थयेद्भक्तिभावतः ॥ ८८ ॥

अनंतर भक्तिभावसे यथाशक्ति पूजाकर प्रार्थना करे कि ॥ ८८ ॥

विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
सम्पूर्णमस्तु तत्सर्वं त्वत्प्रसादादुमापते ॥ ८९ ॥

हे उमापते ! जो इस पूजामें कुछ विधिहीन, क्रियाहीन या भक्तिहीन हुआ हो तो आपके प्रसादसे वह सब सम्पूर्ण हो ॥ ८९ ॥

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्पृथ्वी च सागराः ।
तावन्मे कीर्तिरतुला लोके तिष्ठतु सर्वदा ॥ ९० ॥

जबतक चंद्रमा, सूर्य और सागर हैं तबतक इस लोकमें मेरी अतुलकीर्ति स्थायी रहे ॥ ९० ॥

नमस्त्र्यक्षाय रुद्राय पिनाकवरधारिणे ।
विष्णुब्रह्मेन्द्रसूर्याद्यैरर्चिताय नमो नमः ॥ ९१ ॥

जो श्रेष्ठ पिनाकधारी त्रिनेत्र रुद्र हैं, उनको नमस्कार है। जो ब्रह्मा,विष्णु, इंद्र सूर्यादि देवताओंसे पूजित हैं उन परमेश्वरको वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ ९१ ॥

ततस्तु दक्षिणां दत्त्वा भोजयेत्कौलिकान्द्विजान् ।
भक्ष्यैः पेयैश्च वासोभिर्दरिद्रान्परितोषयेत् ॥ ९२ ॥

इसके उपरांत दक्षिणा देकर कुलवानोंको और ब्राह्मणोंको भोजन करावे । फिर दरिद्रोंको खान, पान और वस्त्र देकर संतुष्ट करे ॥ ९२ ॥

प्रत्यहं पूजयेद्देवं यथाविभवमात्मनः ।
स्थावरं शिवलिङ्गं तु न कदापि विचालयेत् ॥ ९३ ॥

अनंतर अपने विभवके अनुसार प्रतिदिन महादेवजीकी पूजा करे, परन्तु स्थापित शिवलिङ्गको कभी दूसरे स्थानपर नहीं ले जाना चाहिये ॥ ९३ ॥

अचलस्येशलिङ्गस्य प्रतिष्ठा कथितेति ते ।
सङ्क्षेपात्परमेशानि ! सर्वागमसमुद्धृता ॥ ९४ ॥

हे महेश्वरि ! मैं सब आगमोंमेंसे निकालकर संक्षेपसे अचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा तुमसे कही ॥ ९४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

यद्यकस्माद्देवतानां पूजाबाधो भवेद्विभो ।
विधेयं तत्र किं भक्तैस्तन्मे कथय तत्त्वतः ॥ ९५ ॥

भगवतीने पूछा, हे विभो ! यदि अचानक किसी दिन शिवकी पूजा न हो तो वहांपर भक्तोंको क्या करना चाहिये? सो मुझसे कहो ॥ ९५ ॥

अपूजनीयाः कैर्दोषैर्भवेयुर्देवमूर्त्तयः ।
त्याज्या वा केन दोषेण तदुपायश्च भण्यताम् ९६॥

किन दोषोंके होनेसे देवमूर्ति अपूज्य और त्याग देने योग्य होती हैं सोभी मुझसे कहो ॥ ९६ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

एकाहमर्चनाबाधे द्विगुणं देवमर्चयेत् ।
दिनद्वये तद्द्विगुणं तद्द्वैगुण्यं दिनत्रये ॥ ९७ ॥

श्रीसदाशिवने कहा-जो एक दिन पूजा न हो तो दूसरे दिन दुगनी पूजा करे। दो दिन पूजा न हो तो चौगुनी पूजा करे, तीन दिन पूजा न होनेसे उससे दुगुनी अर्थात् अठगुनी पूजा करनी चाहिये ॥ ९७ ॥

ततः षण्मासपर्य्यन्तं यदि पूजा न सम्भवेत् ।
तदाष्टकलशैर्देवं स्नापयित्वा यजेत्सुधीः ॥ ९८ ॥

यदि छः मासतक पूजामें बाधा पड़े तो ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि, आठ कलश जलसे देवमूर्तिको स्नान कराकर पूजा करे ॥ ९८ ॥

षण्मासात्परतो देवं प्राक्संस्कारविधानतः ।
पुनः सुसंस्कृतं कृत्वा पूजयेत्साधकाग्रणीः ॥ ९९॥

यदि छः मास से अधिक समयतक पूजा न हो तो पहले कहे संस्कारकी विधिके अनुसार फिर देवमूर्तिका संस्कार करके साधकश्रेष्ठको पूजा करनी चाहिये ॥ ९९ ॥

खण्डितं स्फुटितं व्यङ्गं संस्पृष्टं कुष्ठरोगिणा ।
पातितं दुष्टभूम्यादौ न देवं पूजयेद्बुधः ॥ १०० ॥

जो देवमूर्ति टूट गयी है, जिस मूर्तिमें छेद हो गया है अंग हीन होगयी है, कोढ़ीसे छुई गयी है, अथवा दूषित भूमिमें गिरी है, ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि ऐसी प्रतिमाको न पूजे ॥ १०० ॥

हीनाङ्गस्फुटितं भग्नं देवं तोये विसर्जयेत् ।
स्पर्शादिदोषदुष्टं तु संस्कृत्य पुनरर्चयेत्॥ १०१ ॥

जो मूर्ति अंगहीन हो गयी है अथवा जो टूट गयी है उसको जलमें मिला देवे । परन्तु जो मूर्ति स्पर्शादिदोषसे दूषित हुई है उसको फिर संस्कार करके पूजे ॥ १०१ ॥

महापीठेऽनादिलिङ्गे सर्वदोषविवर्जिते ।
सर्वदा पूजयेत्तत्र स्वं स्वमिष्टं सुखाप्तये॥ १०२ ॥

जो महापीठ और अनादि लिंग है, उसमें छुआ छुतका दोष नहीं लगता, इस कारण उसमें सुखप्राप्तिके लिये सदा अपने अपने अभीष्टदेवताकी पूजा करे ॥ १०२ ॥

यद्यत्पृष्टं महाभागे ! नृणां कर्मानुजीविनाम् ।
निःश्रेयसाय तत्सर्वं सविशेषं प्रकीर्त्तितम् ॥ १०३ ॥

हे महाभागे ! कर्मानुजीवी मनुष्योंके मंगलार्थ जो जो तुमने पूँछा मैंने भलीभाँतिसे कहा ॥ १०३ ॥

विना कर्म्म न तिष्ठन्ति क्षणार्द्धमपि देहिनः ।
अनिच्छन्तोऽपिविवशाः कृष्यन्ते कर्म्मवायुना १०४

मनुष्यगण विना कर्म किये क्षणभर भी नहीं रह सकते, यदि वह कर्म करनेकी इच्छा न भी कर तो भी कर्म करनेकी पवनसे खींचे जाते हैं ॥ १०४ ॥

कर्म्मणा सुखमश्नन्ति दुःखमश्नन्ति कर्म्मणा ।
जायन्ते च प्रलीयन्ते वर्त्तन्ते कर्म्मणो वशात् १०५

मनुष्य कर्मसे सुख भोगते हैं, कर्मसे दुःख भोगते हैं, कर्मसे जन्मते और मरते हैं तथा कर्मानुसार वर्तते हैं ॥१०५॥

अतो बहुविधं कर्म्म कथितं साधनान्वितम् ।
प्रवृत्तयेऽल्पबोधानां दुश्चेष्टितनिवृत्तये ॥ १०६ ॥

और इस कारण मैंने अल्पज्ञानी पुरुषोंकी प्रवृत्तिके लिये और दुष्प्रवृत्तिके अलग करनेको साधन समेत अनेक प्रकारके कर्म कहे हैं ॥ १०६ ॥

यतो हि कर्म्म द्विविधं शुभञ्चाशुभमेव च ।
अशुभात्कर्मणो यान्ति प्राणिनस्तीव्रयातनाम् १०७

कर्म दो प्रकारके हैं शुभ और अशुभ, अशुभ कर्म करनेसे प्राणियोंको तीव्र पीड़ा होती है ॥ १०७ ॥

कर्म्मणोऽपि शुभाद्देवि ! फलेष्वासक्तचेतसः ।
प्रयान्त्यायान्त्यमुत्रेह कर्म्मशृङ्खलयन्त्रिताः १०८

हे देवि! जो फलमें चित्तको आसक्त करके शुभ कर्म करते हैं वे भी इस कर्मकी जंजीरमें बँधकर इस लोक और परलोकमें गमनागमन करते हैं ॥ १०८ ॥

यावन्न क्षीयते कर्म्म शुभं वाशुभमेव वा ।

तावन्न जायते मोक्षो नृणां कल्पशतैरपि॥१०९॥

जबतक शुभ या अशुभ कर्मोंका क्षय नहीं होता तबतक शतकल्पसे भी मनुष्यकी मुक्ति नहीं हो सकती ॥ १०९ ॥

यथा लोहमयैः पाशैः पाशैः स्वर्णमयैरपि ।

तथा बद्धो भवेज्जीवः कर्म्मभिश्चाशुभैः शुभैः ११०

जैसे पशु लोहेकी या सुवर्णकी जँजीरसे बँधा रहता है वैसे ही मनुष्य शुभ या अशुभ कर्मोंसे बँधा रहता है ११०॥

कुर्वाणः सततं कर्म्म कृत्वा कष्टशतान्यपि ।

तावन्न लभते मोक्षं यावज्ज्ञानं न विन्दति १११॥

जबतक ज्ञान प्राप्त नहीं होता तबतक सदा कर्मका अनुष्ठान करके और शत शत कष्ट करके भी मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती ॥ १११ ॥

ज्ञानं तत्त्वविचारेण निष्कामेनापि कर्म्मणा ।

जायते क्षीणतमसां विदुषां निर्म्मलात्मनाम् ११२

जिनका स्वभाव निर्मल है और जो लोग विज्ञानी हैं उनको तत्त्वोंके विचारसे अथवा निष्काम कर्मका अनुष्ठान करनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ११२ ॥

ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं मायया कल्पितं जगत् ।
सत्यमेकं परं ब्रह्म विदित्वैवं सुखी भवेत् ॥११३॥

ब्रह्मासे लेकर तृण गुल्मतक सब जगत् मायासे कल्पित हुआ है। एक परम ब्रह्मको सत्य जानकर नित्य सुख भोग किया जा सकता है ॥ ११३ ॥

विहाय नामरूपाणि नित्ये ब्रह्मणि निश्चले ।
परिनिश्चिततत्त्वो यः स मुक्तः कर्म्मबन्धनात् ११४

जो नामरूपको छोड़कर नित्य निश्चल ब्रह्मके तत्त्वका निरूपण करता है, वह कर्मबंधनसे छूट जाता है ॥ ११४ ॥

न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि ।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत् ॥११५॥

जप, होम और शत शत उपवास करनेसे मुक्ति नहीं होती है। मैं ही ब्रह्म हूं ऐसा ज्ञान होनेसे शरीरधारीकी मुक्ति हो जाती है ॥ ११५ ॥

आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।
देहस्थोऽपि न देहस्थो ज्ञात्वैवं मुक्तिभाग्भवेत् ११६

आत्मा साक्षिस्वरूप है अर्थात् शुभाशुभको देखनेवाला है। वह विभु अर्थात् सर्वव्यापक है। वह पूर्ण अर्थात् अखंड स्वरूप है। वह अद्वितीय अर्थात् परेसे परे है। ऐसा ज्ञान होनेसे जीवकी मुक्ति हो सकती है ॥ ११६ ॥

बालक्रीडनवत्सर्वं रूपनामादिकल्पनम् ।
विहाय ब्रह्मनिष्ठो यः स मुक्तो नात्र संशयः ॥११७॥

ब्रह्मका नाम स्वरूपादि कल्पना करना बालकोंके खेलके समान है, जो इस बालखेलको छोड़कर केवल ब्रह्मनिष्ठ होता है, वह निःसन्देह मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ॥ ११७ ॥

मनसा कल्पिता मूर्तिर्नृणां चेन्मोक्षसाधनी ।
स्वप्नलब्धेन राज्येन राजानो मानवास्तथा ११८

मनःकल्पित देवमूर्ति यदि मनुष्योंको मोक्ष दे सके तो मनुष्य स्वप्नमें पाये राज्यसे राजा होनेको भी समर्थ हो॥११८॥

मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धयः ।
क्लिश्यन्तस्तपसा ज्ञानं विना मोक्षं न यान्तिते ११९

जो मिट्टीकी, काठकी, पत्थरकी मूर्तिको ईश्वर समझकर तपस्यादि करते हैं, वे वृथा कष्ट पाते हैं क्योंकि विना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती ॥ ११९ ॥

आहारसंयमक्लिष्टा यथेष्टाहारतुन्दिलाः ।
ब्रह्मज्ञानविहीनाश्चेन्निष्कृतिं ते व्रजन्ति किम् १२०

मनुष्य आहारको वशमें रखकर क्लेश भोग करें, इच्छानुसार आहार करके तोन्दवाले हों, परन्तु ब्रह्मज्ञानके न होनेसे किसी प्रकार उनकी मुक्ति नहीं हो सकती ॥ १२० ॥

वायुपर्णकणातोयव्रतिनो मोक्षभागिनः ।
सन्ति चेत्पन्नगा मुक्ताः पशुपक्षिजलेचराः १२१॥

जो लोग केवल वायु, पत्ते, कण भक्षण कर या जल ही पीकर व्रत धारण करते हैं यदि इन लोगोंकी मुक्ति हो जाय

तो सर्प, पशु, पक्षी और जलचर भी मोक्षके भागी हो सकते हैं ॥ १२१ ॥

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः ।

स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बहिःपूजाऽधमाधमा १२२॥

ब्रह्मके सिवाय और सब ही मिथ्या है; ऐसा भाव करना उत्तम कल्प है । ध्यानभाव मध्यमकल्प है । स्तुति और जप अधम कल्प है और बाह्यपूजा अधमसे भी अधम कल्प है ॥

योगो जीवात्मनोरैक्यं पूजनं सेवकेशयोः ।

सर्वं ब्रह्मेति विदुषो न योगो न च पूजनम् १२३

जीव और आत्माकी एकताका नाम योग है, सेवक और ईश्वरकी एकताका नाम पूजा है जिसको ऐसा ज्ञान हो गया है कि, सब ब्रह्म है उनके लिये योग वा पूजा कुछ भी नहीं है ॥ १२३ ॥

ब्रह्मज्ञानं परं ज्ञानं यस्य चित्ते विराजते ।

किं तस्य जपयज्ञाद्यैस्तपोभिर्नियमव्रतैः ॥१२४ ॥

जिसके हृदयमें परमज्ञान ब्रह्मज्ञान विराजित हुआ है उसको जप, यज्ञ, तप, नियम, व्रतादिकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ १२४ ॥

सत्यं विज्ञानमानन्दमेकं ब्रह्मेति पश्यतः ।

स्वभावाद्ब्रह्मभूतस्य किं पूजाध्यानधारणा ॥१२५॥

जो सर्वत्र सत्यस्वरूप, विज्ञानस्वरूप, आनंदस्वरूप, अद्वितीय ब्रह्म अवलोकन करता है, वह स्वभावसे ही ब्रह्मस्वरूप

हो गया, उसके लिये पूजा और ध्यान धारणा कुछ भी नहीं है ॥ १२५ ॥

न पापं नैव सुकृतं न स्वर्गो न पुनर्भवः ।
नापि ध्येयो न वा ध्याता सर्वं ब्रह्मेति जानतः १२६

जिसने सबको ब्रह्ममय जान लिया है, उसके लिये पाप, पुण्य, स्वर्ग, पुनर्जन्म नहीं है, न उसके लिये ध्येय है न ध्याता है ॥ १२६ ॥

अयमात्मा सदामुक्तो निर्लिप्तः सर्ववस्तुषु ।
किं तस्य बन्धनं कस्मान्मुक्तिमिच्छन्ति दुर्धियः १२७

यह आत्मा सदा ही मुक्त है, किसी वस्तुमें लिप्त नहीं है । उसका बंधन कहां फिर किस कारणसे कुबुद्धि लोग मुक्तिकी कामना करते हैं ॥ १२७ ॥

स्वमायारचितं विश्वमवितर्क्यं सुरैरपि ।
स्वयं विराजते तत्र ह्यप्रविष्टः प्रविष्टवत् ॥१२८॥

यह जगत् ब्रह्मकी मायासे बना है, देवतालोग भी इसके भेदको नहीं पासकते । परमब्रह्म इस जगत्में प्रवेशित न होकर भी प्रवेशितके समान विराजमान है ॥ १२८ ॥

बहिरन्तर्यथाकाशं सर्वेषामेव वस्तुनाम् ।
तथैव भाति सद्रूपो ह्यात्मा साक्षी स्वरूपतः १२९॥

जैसे सब वस्तुओंके भीतर और बाहर आकाश रहता है वैसे ही सत्स्वरूप और साक्षीस्वरूप, आत्मास्वरूपसे ही सबमें विराजमान है ॥ १२९ ॥

न बाल्यमस्ति वृद्धत्वं नात्मनो यौवनं जरा।
सदैकरूपश्चिन्मात्रो विकारपरिवर्जितः॥ १३०॥

आत्माका जन्म, बालकपन और वृद्धावस्था नहीं है, वह सदा ही एकरूप, चिन्मय और विकारसे रहित है॥ १३०॥

जन्मयौवनवार्द्धक्यं देहस्यैव न चात्मनः।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति मायाप्रावृतबुद्धयः॥ १३१॥

जन्म, जवानी और बुढ़ापा देहका ही होता है। आत्मामें नहीं होता। मनुष्योंकी बुद्धि मायासे ढकी रहती है। इस कारण वे इसे देखकर भी नहीं देखतेसे हैं॥ १३१॥

यथा शरावतोयस्थं रविं पश्यन्त्यनेकधा।
तथैव मायया देहे बहुधात्मानमीक्षते॥ १३२॥

जैसे बहुतसी रखी हुई सरइयोंके जलमें बहुतसे सूर्य दिखायी देते हैं वैसे ही मायाके प्रभावसे बहुतसे शरीरमें बहुतसे आत्मा दिखायी देते हैं॥ १३२॥

यथा सलिलचाञ्चल्यं मन्यन्ते तद्गते विधौ।
तथैव बुद्धेश्चाञ्चल्यं पश्यन्त्यात्मन्यकोविदाः॥ १३३॥

जैसे जलके चंचल होनेसे उसमें पड़ी हुई चंद्रमाकी परछाईं भी चंचल मालूम होती है, वैसे ही अज्ञानी लोग बुद्धिकी चंचलताको आत्मामें ही देखते हैं॥ १३३॥

घटस्थं यादृशं व्योम घटे भग्नेऽपि तादृशम्।
नष्टे देहे तथैवात्मा समरूपो विराजते॥ १३४॥

जैसे घड़ा फूट जानेपर भी घड़ेका आकाश पहलेके समान विकाररहित रहता है, वैसे ही देह नष्ट होनेपर भी आत्मा सब समयमें समभावसे विराजमान रहता है ॥ १३४ ॥

आत्मज्ञानमिदं देवि ! परं मोक्षैकसाधनम् ।
जानन्निहैव मुक्तः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः १३५॥

हे देवि ! यह ब्रह्मज्ञान मोक्षका परमकारण है, जो इसको जानते हैं, वे निःसन्देह इस लोकमें ही जीवन्मुक्त होते हैं १३५

न कर्म्मणा विमुक्तः स्यान्न सन्तत्या धनेन वा ।
आत्मनात्मानमाज्ञाय मुक्तो भवति मानवः १३६॥

कर्मसे मनुष्यकी मुक्ति नहीं होती, सन्तान उत्पन्न करनेसे या धनसे मुक्ति नहीं, परन्तु अपने आप अपनेको जानते ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ १३६ ॥

प्रियो ह्यात्मैव सर्वेषां नात्मनोऽस्त्यपरं प्रियम् ।
लोकेऽस्मिन्नात्मसम्बन्धाद्भवन्त्यन्ये प्रियाः शिवे ॥

सब जीवोंको आत्मा ही परमप्यारा है और कोई वस्तु आत्मासे प्यारी नहीं है। हे शिवे ! इस लोकमें और पुरुष अपने सम्बन्धके अनुसार ही प्रेमपात्र होता है ॥ १३७ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं भाति मायया ।
विचार्यमाणे त्रितये आत्मैवैकोऽवशिष्यते॥ १३८॥

ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता ये तीनों मायासे ही प्रतिभासित होते हैं इन तीनोंका तत्त्वविचार करनेसे केवल एक आत्मा ही बचता है ॥ १३८ ॥

ज्ञानमात्मैव चिद्रूपो ज्ञेयमात्मैव चिन्मयः।
विज्ञाता स्वयमेवात्मा यो जानाति स आत्मवित् ॥

चिन्मय आत्मा ही ज्ञान, चिन्मय आत्मा ही जानने योग्य वस्तु है, स्वयं आत्मा ही ज्ञाता है इसको जाननेवाला आत्मवित् है॥ १३९॥

एतत्ते कथितं ज्ञानं साक्षान्निर्वाणकारणम्।
चतुर्विधावधूतानामेतदेवं परं धनम् ॥ १४० ॥

यह मैंने तुमसे साक्षात् निर्वाणका कारण ज्ञान उपदेश कहा। यही चार प्रकारके अवधूतोंका परम धन है॥ १४० ॥

श्रीदेव्युवाच।

द्विविधावाश्रमौ प्रोक्तौ गार्हस्थो भैक्षुकस्तथा।
किमिदं श्रूयते चित्रमवधूताश्चतुर्विधाः ॥ १४१ ॥

श्रीभगवतीने कहा–आपने पहले गृह और भिक्षुक इन दो आश्रमोंका वर्णन किया, अब आप अवधूत आश्रम चार प्रकारके बतलाते हो; इससे मुझको अचरज होता है, यह क्या बात है ॥ १४१ ॥

श्रुत्वा वेदितुमिच्छामि तत्त्वतः कथय प्रभो।
चतुर्विधावधूतानां लक्षणं सविशेषतः ॥ १४२ ॥

हे प्रभो! चार प्रकार अवधूतोंके लक्षण यथार्थ यथार्थ भली भाँतिसे कहिये, मैं श्रवण कर उसके जाननेका अभिलाष करती हूं॥ १४२॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

ब्रह्ममन्त्रोपासका ये ब्राह्मणक्षत्त्रियादयः ।
गृहाश्रमे वसन्तोऽपि ज्ञेयास्ते यतयः प्रिये ॥१४३॥

श्रीसदाशिवने कहा–हे प्रिये ! जो ब्राह्मण, क्षत्री, आदि ब्रह्ममन्त्रके उपासक हैं वे गृहस्थाश्रममें वास करके भी (ब्राह्मावधूत) और यति (१) होंगे ॥ १४३ ॥

पूर्णाभिषेकविधिना संस्कृता ये च मानवाः ।
शैवावधूतास्ते ज्ञेयाः पूजनीयाः कुलार्चिते १४४॥

हे कुलार्चिते ! जो मनुष्य पूर्ण अभिषेककी विधिके अनुसार संस्कृत हुए हैं,वह शैवावधूत हैं,सब ही पूजनीय हैं १४४

ब्राह्मावधूताः शैवाश्च स्वाश्रमाचारवर्तिनः ।
विदध्युः सर्वकर्माणि मदुदीरितवर्त्मना ॥१४५॥

ब्राह्मावधूत और शैवावधूतोंको चाहिये कि, अपने आश्रम और अपने आचारोंमें रहकर मेरे कहे हुए मार्गका आश्रय लेकर सब कर्म करें॥ १४५ ॥

विना ब्रह्मार्पितं चैते तथा चक्रार्पितं विना ।
निषिद्धमन्नं तोयं च न गृह्णीयुः कदाचन॥१४६॥

ब्राह्मावधूत, ब्रह्ममें अर्पित द्रव्यके सिवाय और शैवावधूत चक्रमें अर्पित द्रव्यके सिवाय कभी निषिद्ध अन्न और निषिद्ध जल ग्रहण नहीं करें ॥ १४६ ॥

---

(१) 'ब्रह्मचारिसहस्रं तु वानप्रस्थशतानि च । ब्राह्मणानान्तु कोटयस्तु यतिरेको विशिष्यते "। एक सहस्र ब्रह्मचारी, शत वानप्रस्थ और एक एक करोड ब्राह्मणसे भी सद्यति श्रेष्ठ है ।

ब्राह्मावधूतकौलानां कौलानामभिषेकिणाम्।
प्रागेव कथितो धर्म्म आचारश्च वरानने ! ॥१४७॥

हे वरानने ! ब्राह्मावधूत कौललोगोंके और अभिषिक्त कौललोगोंके (१)आचार व धर्म पहलेही प्रकट कर चुका हूं ॥

स्नानं सन्ध्याशनं पानं दानं च दाररक्षणम्।
सर्वमागममार्गेण शैवब्राह्मावधूतयोः ॥ १४८ ॥

स्नान, संध्या, भोजन, पान, दान, दाररक्षा इन कर्मोंका अनुष्ठान शैवावधूत और ब्राह्मावधूतोंको आगमके अनुसार करना चाहिये ॥ १४८ ॥

उक्तावधूतो द्विविधः पूर्णापूर्णविभेदतः।
पूर्णः परमहंसाख्यः परिव्राडपरः प्रिये ॥ १४९ ॥

यह शैवावधूत और ब्राह्मावधूत दो प्रकारके हैं--पूर्ण और अपूर्ण। हे प्रिये ! पूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूतका नाम परमहंस है। अपूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूतको परिव्राट् कहा जाता है ॥ १४९ ॥

कृतावधूतसंस्कारो यदि स्याज्ज्ञानदुर्बलः।
तदा लोकालये तिष्ठन्नात्मानं स तु शोधयेत् १५०

जो मनुष्य अवधूतसंस्कारके द्वारा संस्कृत हुआ है, वह

(१) "सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं महत्। वैष्णवादुत्तमः शैवः शैवाद्दक्षिणमुत्तमम्। दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम्। सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात्परतरो नहि" ॥ इति योनितन्त्रम् ॥

यदि ज्ञानके विषयमें दुर्बल हो अर्थात् जो उसको पूर्ण अद्वै-तभाव न उत्पन्न हुआ हो तो वह बस्तीमें या गृहस्थाश्रममें रहकर आत्माको शुद्ध करे और जिससे "एकमेवाद्वितीयम्" यह ज्ञान जन्मे इस विषयमें यत्न करता रहे ॥ १५० ॥

रक्षन्स्वजातिचिह्नं च कुर्वन्कर्माणि कौलवत् ।
सदा ब्रह्मपरो भूत्वा साधयेज्ज्ञानमुत्तमम् ॥१५१॥

वह अपनी जातिके चिह्न, शिखा व सूत्रादिकी रक्षा करे। वह कौलके समान सब कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे। वह सदा ब्रह्मनिष्ठ होकर निरंतर ज्ञान साधन करे ॥ १५१ ॥

ओं तत्सन्मन्त्रमुच्चार्य्य सोऽहमस्मीति चिन्तयन् ।
कुर्य्यादात्मोचितं कर्म्म सदा वैराग्यमाश्रितः १५२॥

वह सदा रागरहित होकर-"ओं तत् सत्" यह मन्त्र उच्चारण करके "सोऽहमास्मि" इस प्रकार चिन्ता करके योग्य कर्मका अनुष्ठान करे ॥ १५२ ॥

कुर्वन्कर्माण्यनासक्तो नलिनीदलनीरवत् ।
यतेतात्मानमुद्धर्त्तुं तत्त्वज्ञानाविवेकतः ॥ १५३ ॥

वह पद्मपत्रपर स्थित हुए जलके समान आसक्तिरहित होकर सब कर्मोंका अनुष्ठान करके तत्त्वज्ञानके विचारद्वारा अपनेको (संसारसागरसे) उद्धार करनेका यत्न करे १५३

ओं तत्सदिति मन्त्रेण यो यत्कर्म्म समाचरेत् ।
गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभीष्टाय तद्भवेत् १५४॥

गृहस्थ हो या उदासीन हो "ओं तत्सत्" इस मंत्रसे जो जिस कार्यका अनुष्ठान करे, वही अपना अभीष्ट फल पावेगा ॥ १५४ ॥

जपो होमः प्रतिष्ठा च संस्काराद्याखिलाः क्रियाः।
ओं तत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाःसम्पूर्णाःस्युर्न संशयः१५५

जप, होम, प्रतिष्ठा, संस्कारादि सब काम "ओं तत्सत्" मन्त्रसे किये जानेपर निःसंदेह पूर्ण हो जायँगे ॥१५५॥

किमन्यैर्बहुभिर्मन्त्रैः किमन्यैर्भूरिसाधनैः।
ब्राह्मेणानेन मन्त्रेण सर्वकर्माणि साधयेत् ॥१५६॥

और बहुतसे मन्त्रोंकी या बहुतसे साधनोंकी क्या आवश्यकता है केवल "ओं तत्सत्" मन्त्रसे सब कर्मोंको साधन करे ॥ १५६ ॥

सुखसाध्यमबाहुल्यं सम्पूर्णफलदायकम्।
नास्त्येतस्मान्महामन्त्रादुपायान्तरमम्बिके॥१५७॥

यह मन्त्र सुखसे सिद्ध हो जाता है, इसमें कोई बहुतायत नहीं है, परंतु यह, सम्पूर्ण फलदायक है। हे अम्बिके! इस महामंत्रके विना जीवके निस्तार होनेका दूसरा उपाय नहीं है ॥ १५७ ॥

गृहप्रदेशे देहे वा लिखित्वा धारयेदिमम्।
गेहस्तस्य महातीर्थं देहः पुण्यमयो भवेत् ॥१५८॥

जो गृहके किसी अंशमें अथवा शरीरके किसी अंशमें

"ओं तत्सत्" मन्त्र लिखकर धारण करेंगे, उसका गृह महा-तीर्थस्वरूप और देह पुण्यमय होगा ॥ १५८ ॥

निगमागमतन्त्राणां सारात्सारतरो मनुः ।
ओं तत्सदिति देवेशि ! तवाग्रे सत्यमीरितम् १५९

हे देवि ! मैं तुम्हारे सम्मुख सत्य ही सत्य कहता हूं कि "ओं तत्सत्" मन्त्र निगम, आगम और सब तन्त्रोंमें सारका सार है ॥ १५९ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां भित्त्वा तालुशिरःशिखाः ।
प्रादुर्भूतोऽयमोंतत्सत्सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ १६० ॥

सब मन्त्रोंसे अतिश्रेष्ठ "ओं तत्सत्" यह मन्त्र ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीके ब्रह्मरंध्रको भेदकर उत्पन्न हुआ है ॥ १६० ॥

चतुर्विधानामन्नानामन्येषामपि वस्तुनाम् ।
मन्त्रान्यैः शोधनेनालं स्याच्चेदेतेन शोधितम् १६१

जो "ओं तत्सत्" मन्त्रसे चर्व्य, चोष्य, भक्ष्य, लेह्य यह चार प्रकारके अन्न या और किसी वस्तुका शोधन किया जाय तो और किसी वैदिक या तांत्रिक मन्त्रसे शोधन करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ॥ १६१ ॥

पश्यन्सर्वत्र सद्रूपं जपंस्तत्सन्महामनुम् ।
स्वेच्छाचारः शुद्धचित्तस्स एव भुवि कौलराट् १६२

जो सदा सत्स्वरूप ब्रह्मको प्रत्यक्ष करता है, जो "ओंतत्सत्" इस महामंत्रका जप करता है, जिसका अन्तः-

करण शुद्ध हो गया है और जो स्वेच्छाचारी है वही पृथ्वीमें श्रेष्ठ कौल है ॥ १६२ ॥

जपादस्य भवेत्सिद्धो मुक्तः स्यादर्थचिन्तनात् ।
साक्षाद्ब्रह्मसमो देही सार्थमेनं जपेन्मनुम् ॥१६३॥
त्रिपदोऽयं महामन्त्रः सर्वकारणकारणम् ।
साधनादस्य मन्त्रस्य भवेन्मृत्युञ्जयः स्वयम्॥१६४॥

" ओं तत्सत् " मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य सिद्ध हो जाता है। इसके अर्थ (१) को विचारनेसे मुक्ति हो जाती है। जो अर्थ विचार कर इस महामन्त्रका जप करता है, वह मनुष्य शरीरी होकर भी साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। यह त्रिपदयुक्त महामन्त्र सब कारणोंका कारण है। इस मंत्रके सिद्ध कर लेनेसे स्वयं मृत्युञ्जय हो जा सकता है ॥१६३॥१६४॥

युग्मं युग्मपदं वापि प्रत्येकपदमेव वा ।
जप्त्वैतस्य महेशानि ! साधकः सिद्धिभाग्भवेत् १६५

हे महेश्वरि ! इस त्रिपदमन्त्रके दो दो पद अथवा एक २ पदका जप (२) करनेसे साधक सिद्ध हो सकता है ॥१६५॥

---

(१) " ओं तत्सत् " मंत्रका अर्थः—जिसमें सृष्टि स्थिति प्रलय होती है, वह परब्रह्म ही नित्य है।

(२) "ओंतत्सत्। ओं तत्। ओं सत्। तत्सत् ओं तत् सत्"। यह सात प्रकारके मंत्र होते हैं।

शैवावधूतसंस्कारविधूताखिलकर्म्मणः ।
नापि दैवेन वा पित्र्ये नार्षे कृत्येऽधिकारिता १६६॥

जो लोग शैवावधूतके संस्कारसे संस्कृत हुए हैं उनको और कोई कार्य्यकर्म नहीं रहता, इस कारण वह देवकर्ममें आर्षकर्ममें या पितृकर्ममें अधिकारी नहीं है ॥ १६६ ॥

चतुर्णामवधूतानां तुरीयो हंस उच्यते ।
त्रयोऽन्ये योगभागाढ्या मुक्ताःसर्वे शिवोपमाः १६७

चार प्रकारके अवधूतोंमें चतुर्थ अर्थात् पूर्ण ब्रह्मावधूतको हंस कहा जाता है और तीन प्रकारके अवधूत योग और भोग करते हैं, परन्तु सब ही अर्थात् चार प्रकारके अवधूत ही मुक्त और शिवके समान हैं ॥ १६७ ॥

हंसो न कुर्य्यात्स्त्रीसङ्गं नवा धातुपरिग्रहम् ।
प्रारब्धमश्नन्विहरेन्निषेधविधिवार्जितः ॥ १६८ ॥

हंस अर्थात् पूर्ण ब्राह्मावधूत स्त्रीसंसर्ग या धातु (रुपया पैसा) ग्रहण नही कर सकता वह विधिनिषेधरहित हो प्रारब्ध भोग करके विहार करेगा ॥ १६८ ॥

त्यजेत्स्वजातिचिह्नानि कर्माणि गृहमेधिनाम् ।
तुरीयो विचरेत्क्षोणीं निःसङ्कल्पो निरुद्यमः १६९॥

वह तुरीय परमहंस अपनी जातिके चिह्न, शिखा, सूत्र, तिलक आदि त्याग कर दे, वह गृहस्थके कर्म भी न करे । वह संकल्परहित और उद्यमरहित होकर पृथ्वीपर विचरण करे ॥ १६९ ॥

सदात्मभावसन्तुष्टः शोकमोहविवर्जितः ।
निर्निकेतस्तितिक्षुःस्यान्निःशङ्को निरुपद्रवः १७०॥

वह सदा आत्माके विचारमें सन्तुष्ट रहे । वह शोक और मोहसे न घिरे, वह किसी नियत स्थानमें न रहे । वह सहनशील, शंकारहित निरुपद्रव होवे ॥ १७० ॥

नार्पणं भक्ष्यपेयानां न तस्य ध्यानधारणाः ।
मुक्तो विरक्तो निर्द्वन्द्वो हंसाचारपरो यतिः १७१॥

वह खाने पीनेका पदार्थ किसीमें अर्पण न करे । उसको न ध्यान है न धारणा है । वह मुक्त, विरागयुक्त, निर्द्वन्द्व, हंसाचारपरायण और यति होवे ॥ १७१ ॥

इति ते कथितं देवि ! चतुर्णां कुलयोगिनाम् ।
लक्षणं सविशेषेण साधूनां मत्स्वरूपिणाम्॥१७२॥

हे देवि ! यह तुमसे चारप्रकारके कुलयोगियोंके लक्षण भलीभांतिसे वर्णन किये । ये सब ही साधु और सत्स्वरूप हैं ॥ १७२ ॥

एतेषां दर्शनस्पर्शादालापात्परितोषणात् ।
सर्वतीर्थफलावाप्तिर्जायते मनुजन्मनाम् ॥१७३॥

इन कुलयोगियोंका दर्शन करनेसे, स्पर्श करनेसे, इनके साथ बातचीत करनेसे वा इनको संतुष्ट करनेसे मनुष्योंको सर्व तीर्थोंके दर्शनका फल मिलता है ॥ १७३ ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि यानि च ।
कुलसंन्यासिनां देहे सन्ति तानि सदा प्रिये १७४॥

हे प्रिये ! पृथ्वीमें जितने तीर्थ और पुण्यक्षेत्र हैं, कुल-संन्यासियोंकी देहमें वे सब विद्यमान हैं ॥ १७४ ॥

ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च ते पुण्यास्ते कृताध्वराः ।
यैरर्चिताः कुलद्रव्यैर्मानवैः कुलसाधवः ॥ १७५ ॥

जो मनुष्य कुलसाधकोंको कुल द्रव्यसे पूजते हैं, वही धन्य, वही कृतार्थ, वही पवित्र और वही सब यज्ञोंके फलके भागी होते हैं ॥ १७५ ॥

अशुचिर्याति शुचितामस्पृश्यः स्पृश्यतामियात् ।
अभक्ष्यमपि भक्ष्यं स्याद्येषां संस्पर्शमात्रतः॥ १७६॥

कुलयोगियोंके स्पर्श करनेसे अपवित्र पुरुष भी पवित्र होता है, न छूने योग्य भी छूनेयोग्य होता है, न खानेयोग्य वस्तु भी खाने योग्य होती है ॥ १७६ ॥

किराताः पापिनः क्रूराः पुलिन्दा यवनाः खसाः ।
शुद्ध्यन्ति येषां संस्पर्शात्तान्विना कोऽन्यमर्चयेत्॥

जिस कुलयोगीके स्पर्शसे किरात, पापी, क्रूर, पुलिन्द (एक प्रकारका चांडाल), यवन, खस भी शुद्ध हो जाते हैं, उसको छोडकर और किसका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥

कुलतत्त्वैः कुलद्रव्यैः कौलिकान्कुलयोगिनः ।
येऽर्चयन्ति सकृद्भक्त्या तेऽपि पूज्या महीतले १७८॥

जो मनुष्य कुलयोगियोंको और कौललोगोंको कुलतत्त्वसे और कुलद्रव्यसे केवल एक बार भी भक्तिपूर्वक पूजेंगे वे भी पृथ्वीमें पूज्य होंगे ॥ १७८ ॥

कौलधर्मात्परो धर्मो नास्त्येव कमलानने।
अन्त्यजोऽपि यमाश्रित्य पूतः कौलपदं व्रजेत् १७९

हे कमलानने! कौलधर्मसे परमश्रेष्ठ दूसरा और कोई धर्म नहीं है क्योंकि अन्त्यज पुरुष भी इस धर्मके आश्रयसे पवित्र होकर कौलपदको प्राप्त होता है ॥ १७९ ॥

करिपादे विलीयन्ते सर्वप्राणिपदा यथा।
कुलधर्मे निमज्जन्ति सर्वे धर्मास्तथा प्रिये ॥१८०॥

हे प्रिये! जैसे समस्त प्राणियोंके चरणचिह्न हाथीके चरणचिह्नमें लीन हो जाते हैं, वैसे ही सब धर्म कुलधर्ममें लीन हो जाते हैं ॥ १८० ॥

अहो पुण्यतमाः कौलास्तीर्थरूपाः स्वयं प्रिये?।
ये पुनन्त्यात्मसम्बन्धान्म्लेच्छश्वपचपामरान् १८१

हे प्रिये! स्वयं तीर्थस्वरूप कौलगण कैसे अतिपवित्र हैं। वे अपने सम्बन्धसे म्लेच्छ, श्वपच और पामरोंको भी पवित्र करते हैं ॥ १८१ ॥

गङ्गायां पतिताम्भांसि यान्ति गाङ्गेयतां यथा।
कुलाचारे विशन्तोऽपि सर्वे गच्छन्ति कौलताम् १८२

जैसे गंगामें गिरकर कुएँका जल भी गंगाजलरूप हो जाता है, वैसे ही कुलाचारोंमें प्रवेश किये हुए सब जातिके मनुष्य भी कौल हो जाते हैं ॥ १८२ ॥

यथार्णवगतं वारि न पृथग्भावमाप्नुयात्।
तथा कुलाम्बुधौ मग्ना न भवेयुर्जनाः पृथक् १८३॥

जैसे समुद्रमें गया हुआ जल पृथक्‌भावको नहीं प्राप्त होता वैसे ही कुलसागरमें मग्न हुआ कोई पुरुष भी पृथक् नहीं हो सकता ॥ १८३ ॥

विप्राद्यन्त्यजपर्य्यन्ता द्विपदा येऽत्र भूतले ।
ते सर्वेऽस्मिन्कुलाचारे भवेयुरधिकारिणः ॥ १८४ ॥

इस पृथ्वीमें ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यजतक जितने प्रकारके दोपाये जन्तु हैं, वे सब ही इस कुलाचारमें अधिकारी हो सकते हैं ॥ १८४ ॥

आहूताः कुलधर्मेऽस्मिन्ये भवन्ति पराङ्मुखाः ।
सर्वधर्म्मपरिभ्रष्टास्ते गच्छन्त्यधमां गतिम् ॥ १८५ ॥

जो कुलधर्ममें आहुति देकर विमुख हो जाते हैं, वे सब धर्मसे भ्रष्ट होकर अधमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ १८५ ॥

प्रार्थयन्ति कुलाचारं ये केचिदपि मानवाः ।
तान्वञ्चयन्कुलीनोऽपि रौरवं नरकं व्रजेत् १८६ ॥

जो मनुष्य कुलाचारकी प्रार्थना करे और उनको कोई कौल वंचना करे तो वह कौल रौरव नरकमें जायगा ॥ १८६ ॥

चाण्डालं यवनं नीचं मत्वा स्त्रियमवज्ञया ।
कौलं न कुर्य्याद्यः कौलः सोऽधमो यात्यधोगतिम् ॥

जो कोई कौलपुरुष किसी कौलधर्मके चाहनेवालेको स्त्री, नीच, चाण्डाल वा यवन समझ निरादर करके कौल नहीं करेगा वह कौललोगोंमें अधम है और अंतकालमें उसको नीचगति प्राप्त होती है ॥ १८७ ॥

शताभिषेकाद्यत्पुण्यं पुरश्चर्य्याशतैरपि ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यमेकस्मिन्कौलिके कृते १८८॥

शत अभिषेकसे जो पुण्य मिलता है, शत पुरश्चरण करनेसे जो पुण्य होता है एक कौलके करनेसे उससे कोटिगुण पुण्य मिलता है ॥ १८८ ॥

ये ये वर्णाः क्षितौ सन्ति यद्यद्धर्म्ममुपाश्रिताः ।
कौला भवन्तस्ते पाशैर्मुक्ता यान्ति परं पदम् १८९॥

पृथ्वीमें जितने वर्ण हैं और जितने प्रकारके धर्मावलंबी पुरुष हैं, उनमें जो कौल होगा वह कर्मकी फाँसीसे छूटकर परमपदको प्राप्त कर सकेगा ॥ १८९ ॥

शैवधर्माश्रिताः कौलास्तीर्थरूपाः शिवात्मकाः ।
स्नेहेन श्रद्धया प्रेम्णा पूज्या मान्याः परस्परम् १९०

शिवके धर्मका अवलंबन करनेवाले कौल साक्षात् शिवस्वरूप और तीर्थस्वरूप हैं । स्नेह, श्रद्धा और प्रेमसे वे परस्पर एक दूसरेकी पूजा और सम्मान करें ॥ १९० ॥

बहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रे सत्यमुच्यते ।
भवाब्धितरणे सेतुः कुलधर्मो हि नापरः ॥१९१॥

मैं अब अधिक क्या कहूं, तुमसे सत्य कहता हूं कि, इस संसारसागरसे पार होनेके लिये एक कुलधर्म ही पुल है । इसके सिवाय और कोई संसारसागरसे पार होनेका उपाय नहीं है ॥ १९१ ॥

छिद्यन्ते संशयाः सर्वे क्षीयन्ते पापसञ्चयाः ।
दह्यन्ते कर्म्मजालानि कुलधर्म्मनिषेवणात् १९२॥

कुलधर्मका सेवन करनेसे सब संशय नाशको प्राप्त हो जाते हैं सारे पापपुंज क्षय होकर कर्मसमूहभी नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १९२ ॥

सत्यव्रता धर्मनिष्ठाः कृपयाहूय मानवान् ।
पावयन्ति कुलाचारैस्ते ज्ञेयाः कौलिकोत्तमाः १९३

सत्यव्रत और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि, कृपाके वश हो कुलाचारसे मनुष्योंको बुलाकर पवित्र करें इन सब महात्माओंको कौलिकश्रेष्ठ कहा जाता है ॥ १९३ ॥

इति ते कथितं देवि ! सर्वकर्म्मविनिर्णयम् ।
महानिर्वाणतन्त्रस्य पूर्वार्द्धं लोकपावनम् ॥१९४॥

हे देवि ! यह मैंने तुमसे लोकपावन सर्व धर्मको निर्णय करनेवाला महानिर्वाणतन्त्र पूर्वार्द्ध कहा ॥ १९४ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवान् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽन्तेनिर्वाणमाप्नुयात् १९५॥

जो सदा इसको श्रवण करेगा अथवा मनुष्योंको सुनावेगा, वह सब पापोंसे छूटकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करेगा॥

सर्वागमानां तन्त्राणां सारात्सारं परात्परम् ।
तन्त्रराजमिदं ज्ञात्वा जायते सर्वशास्त्रवित्॥१९६॥

समस्त आगम और समस्त तंत्रोंमें परात्पर और सारासार इस तन्त्रराजके जाननेसे सब शास्त्रज्ञ हुआ जा सकता है ॥ १९६ ॥

किं तस्य तीर्थभ्रमणैः किं यज्ञैर्जपसाधनैः ।
जानन्नेतन्महातन्त्रं कर्मपाशैर्विमुच्यते ॥ १९७ ॥

महानिर्वाणतन्त्रके जाननेवालेको तीर्थमें भ्रमणादि करनेकी आवश्यकता नहीं है. वह केवल महानिर्वाणतन्त्रके ज्ञान करके कर्मकी फाँसीसे छूट सकता है ॥ १९७ ॥

स विज्ञः सर्वशास्त्रेषु सर्वधर्मविदां वरः ।
स ज्ञानी ब्रह्मवित्साधुर्यस्तु तद्वेत्ति कालिके! १९८ ॥

हे कालिके ! महानिर्वाणतन्त्रका जाननेवाला, सर्व शास्त्रमें विज्ञानी और सब धर्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ है, वही साधु, वही ज्ञानी और वही ब्रह्मज्ञानी है ॥ १९८ ॥

अलं वेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिः संहितादिभिः ।
किमन्यैर्बहुभिस्तन्त्रैर्ज्ञात्वेदं सर्वविद्भवेत् ॥ १९९ ॥

वेद, पुराण, स्मृति, संहिता और बहुतसे तन्त्र जाननेकी क्या आवश्यकता है केवल इस महानिर्वाण तन्त्रके ही जान लेनेसे सर्वज्ञ हुआ जा सकता है ॥ १९९ ॥

आसीद्गुह्यतमं यन्मे साधनं ज्ञानमुत्तमम् ।
तव प्रश्नेन तन्त्रेऽस्मिंस्तत्सर्वं सुप्रकाशितम्॥ २०० ॥

जो कि, साधन और उत्तम ज्ञान अत्यन्त गुप्त थे, तुम्हारे प्रश्नके अनुसार उन सबको इस महानिर्वाणतन्त्रमें प्रकाश किया ॥ २०० ॥

यथा त्वं ब्रह्मणः शक्तिर्मम प्राणाधिका परा ।
महानिर्वाणतन्त्रं मे तथा जानीहि सुव्रते ! ॥ २०१ ॥

हे सुव्रते ! तुम जैसे ब्रह्मशक्ति और हमारी परम प्यारी हो, वैसे ही इस महानिर्वाणतन्त्रको भी जानो ॥ २०१ ॥

यथा नगेषु हिमवांस्तारकासु यथा शशी ।
भास्वांस्तेजःसु तन्त्रेषु तन्त्रराजमिदं तथा॥२०२॥

जैसे पर्वतोंमें हिमालय, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, तेज पदार्थोंमें सूर्य श्रेष्ठ है, वैसे ही सब तन्त्रोंमें यह तन्त्रराज श्रेष्ठ है २०२॥

सर्वधर्म्ममयं तन्त्रं ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ।
पठित्वा पाठयित्वापि ब्रह्मज्ञानी भवेन्नरः ॥२०३॥

यह तंत्र सर्वधर्ममय और ब्रह्मज्ञानका एक ही साधन है, इसको पढ़ने पढ़ानेवाला ब्रह्मज्ञानी हो जायगा ॥ २०३ ॥

विद्यते यस्य भवने सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
न तस्य वंशे देवेशि ! पशुर्भवति कर्हिचित् २०४॥

हे देवि ! सब तन्त्रोंमें श्रेष्ठ यह तंत्र जिसके घरमें रखा होगा उसके वंशमें कभी कोई पशु न होगा ॥ २०४॥

अज्ञानतिमिरान्धोऽपि मूर्खः कर्म्मजडोऽपि वा ।
शृण्वन्नेतन्महातन्त्रं कर्म्मबन्धाद्विमुच्यते ॥२०५॥

अज्ञानके अन्धकारसे अन्धा हुआ मूर्ख और कर्मसिद्ध करनेमें जड़ पुरुष भी जो इस महानिर्वाण नामक महानिर्वाणतंत्रका श्रवण करे तो वह कर्मकी फाँसीसे छूट जाता है२०५

एतत्तन्त्रस्य पठनं श्रवणं पूजनं तथा ।
वन्दनं परमेशानि ! नृणां कैवल्यदायकम् २०६॥

हे परमेश्वरि ! इस महातन्त्रके पाठ करने या श्रवण कर-

नेसे, पूजा या वन्दना करनेसे मनुष्यको कैवल्यकी प्राप्ति होती है ॥ २०६ ॥

उक्तं बहुविधं तन्त्रमेकैकाख्यानसंयुतम् ।
सर्वधर्मान्वितं तन्त्रं नातः परतरं क्वचित् ॥२०७॥

एक एक आख्यानके साथ बहुतसे तंत्र कहे हैं उन सबमें सब धर्मोंका वर्णन है परंतु इससे श्रेष्ठ और तंत्र नहीं है २०७

पातालचक्रभूचक्रज्योतिश्चक्रसमन्वितम् ।
परार्द्धमस्य यो वेत्ति स सर्वज्ञो न संशयः ॥२०८॥

इस महानिर्वाणतन्त्रके उत्तरार्द्धमें पातालचक्र, भूचक्र और ज्योतिचक्र है, जो इस उत्तरार्द्धको जानता है, वह निःसन्देह सर्वज्ञ हो जाता है ॥ २०८ ॥

परार्द्धसहितं ग्रंथमेनं जानन्नरो भवेत् ।
त्रिकालवार्त्तात्रैलोक्यवृत्तान्तं कथितुं क्षमः२०९॥

जो परार्द्धके साथ इस महानिर्वाण तन्त्रको जानते हैं वे त्रिकालवार्त्ता और त्रिलोकीका वृत्तान्त वर्णन करनेमें समर्थ होते हैं ॥ २०९ ॥

सन्ति तन्त्राणि बहुधा शास्त्राणि विविधान्यपि ।
महानिर्वाणतन्त्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् २१०॥

अनेक प्रकारके तन्त्र हैं, बहुत शास्त्र भी हैं परंतु कोई शास्त्र या कोई तन्त्र इस महानिर्वाणतंत्रके सोलहवें अंशके एकांशके भी बराबर नहीं हो सकता ॥ २१० ॥

महानिर्वाणतन्त्रस्य महात्म्यं किं ब्रवीमि ते ।
विदित्वैतन्महातन्त्रं ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ २११ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे पूर्वकाण्डे शिवलिङ्गस्थापन-चतुर्विधावधूतविवरणकथनं नाम
चतुर्दशोल्लासः ॥ १४ ॥

मैं इस महानिर्वाणतंत्रका माहात्म्य तुमसे क्या वर्णन करूं
इस महानिर्वाणतंत्रके जान लेनेसे ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त होता है ॥

दोहा-ब्रह्म मिलावनहार यह, अनुपम तंत्र महान ॥
पढ़त सुनत समुझत गुनत, देत सुभग निर्वान ॥
इक इक अक्षर ब्रह्मसम, पढ़े जो चित्त लगाय ॥
साक्षात हरिरूप बन, सो सुरलोक सिधाय ॥
जगहितकारण उमासों, वरण्यो तंत्र महेश ॥
याकी महिमा कहनको, शक्ति न राखें शेष ॥
सो मैं प्राकृतबिच कियो, सब तंत्रनको सार ॥
याहूके पढिवे सुनै, ह्वै है जगउपकार ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे पूर्वकाण्डे मुरादाबाद-निवासि पं० सुखानन्द-मिश्रात्मज-पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां शिवलिङ्गस्थापनचतुर्विधावधूत-विवरणकथनं नाम चतुर्दशोल्लासः ॥ १४ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पता-खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस
कल्याण--बम्बई.



